सच्चिदानन्दसिद्धाचार्यप्रणीतं

पुरश्चरणरहस्यम्

भाषाटीकासमन्वितम्

(मन्त्रपुरश्चरणविधि-सविधिदीक्षाप्रकार-जपरहस्य-होमरहस्य-तान्त्रिक अभिषेकरहस्य-पूजापद्धति-रहस्य एवं दशमहाविद्या-पूजनरहस्य)

भाषाटीकाकार

एस० एन० खण्डेलवाल

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
663

सच्चिदानन्दसिद्धाचार्यप्रणीतं

पुरश्चरणरहस्यम्

भाषाटीकासमन्वितम्

(मन्त्रपुरश्चरणविधि-सविधिदीक्षाप्रकार-जपरहस्य-होमरहस्य-तान्त्रिक अभिषेकरहस्य-पूजापद्धति-रहस्य एवं दशमहाविद्या-पूजनरहस्य)

भाषाटीकाकार
श्री एस० एन० खण्डेलवाल

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

पुरश्चरणरहस्यम्

पृष्ठ : 12+348

ISBN : 978-93-89665-23-9

प्रकाशक

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन

पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001

दूरभाष : +91 542-2335263

email : chaukhambasurbharatiprakashan@gmail.com

website : www.chaukhamba.co.in

प्रथम संस्करण 2020 ई०

मूल्य : ₹ 500.00

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)

गली नं. 21-ए, अंसारी रोड

दरियागंज, नई दिल्ली 110002

दूरभाष : +91 11-23286537; 32996391

email : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

•

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर

पो. बा. नं. 2113, दिल्ली 110007

•

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ौदा भवन के पीछे)

पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

प्राक्कथन

स्रष्टा की सृष्टि में भारतभूमि को तपोभूमि होने का गौरव प्राप्त है। उस धर्मप्राणमयी भूमि पर आरम्भ से ही विविध अनुष्ठानों का अनुष्ठान तप:पूत मन्त्रद्रष्टा ऋषियों द्वारा किया जाता रहा है, जिसके प्रभाव से कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं-समर्थ होकर वे अनुष्ठातागण कल्पनाओं को भी साकार करते रहे हैं एवं उसके द्वारा ही नानाविध अलौकिक कार्यों को भी सफलता-पूर्वक सम्पन्न करते रहे हैं। यहाँ तक कि अपने सफल अनुष्ठानों के द्वारा उस सर्वशक्तिमान सत्ता को भी उन्होंने अपने समझ प्रत्यक्ष किया है। आशय यह है कि किसी भी प्रकार का अनुष्ठान तप:पूत मानव जीवन की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि होती है और किसी भी इष्टमन्त्र का सविधि अनुष्ठान सम्पन्न करके साधक द्वारा अपनी अभीष्ट-पूर्ति की जा सकती है।

अनुष्ठेय इष्ट मन्त्र के सफल अनुष्ठान-हेतु की जाने वाली विविध प्रक्रियाओं में पुरश्चरण की सर्वातिशायी प्रधानता होती है। इष्टदेवता के समक्ष अभीष्ट मन्त्र का अभ्यास ही पुरश्चरण-शब्दाभिधेय होता है। यह पुरश्चरण मुख्यत: द्विविध होता है—मुख्य अथवा पञ्चाङ्ग पुरश्चरण एवं गौण अथवा खण्ड पुरश्चरण। मुख्य पुरश्चरण के पाँच अंग होते हैं और इसीलिये इसे पञ्चाङ्ग पुरश्चरण भी कहा जाता है। वे पाँच अंग हैं—जप, होम, तर्पण, अभिषेक एवं ब्राह्मण-भोजन। इनके समेकित अनुष्ठान से ही इष्ट मन्त्र की सिद्धि साधक को अवाप्त होती है, जिसके फलस्वरूप वह साधक अपने इष्ट मन्त्र का सफल प्रयोग करने में समर्थ होकर विविध कल्याणकारी कार्यों को सम्पादित करने में समर्थ होता है।

मुख्य पुरश्चरण में मन्त्र की जपसंख्या निर्धारित होती है; ज़बकि खण्ड पुरश्चरण में निर्धारित नहीं होती। खण्ड पुरश्चरण प्रधानतया निर्दिष्ट काल आदि पर आश्रित होता है। उदाहरणार्थ उदयोदय-उदयास्त, अस्तोदय-अस्तास्त, तिथि-नक्षत्र, पक्ष-मास, ऋतु, वार, अयन, वर्ष आदि निश्चित काल-पर्यन्त किया जाने वाला खण्डपुरश्चरण कहलाता है। इसमें मात्र जप की ही प्रधानता होती है।

शक्तिपूजा में दीक्षित साधकों का ही एकमात्र अधिकार कहा गया है। इसमें शक्ति-साधना हेतु साधक को उसके गुरु द्वारा सविधि दीक्षित किया जाता है, जिससे वह साधना करने का अधिकारी हो जाता है। विना दीक्षा साधना सफल नहीं होती।

दीक्षा के सद्य: अनन्तर ही शाक्ताभिषेक किया जाता है। निरुत्तर आदि तन्त्रों का कथन है कि दीक्षा-मात्र ग्रहण करके ही जो व्यक्ति कुलधर्म अथवा शास्त्र-निर्दिष्ट पूजन-अर्चन

करते हैं और विना अभिषेक के ही जिस-किसी भी मन्त्र से शिष्य को दीक्षित करते हैं, वे पृथिवी पर सूर्य-चन्द्र के विद्यमान रहने तक नरक-यन्त्रणा का भोग करते हैं—

अभिषेकं विना देवि कुलधर्म करोति यः ।
तस्य पूजादिकं कर्म अभिचाराय कल्प्यते ।।
अभिषेकं विना देवि सिद्धविद्या ददाति यः ।
तावत्कालं वसेद् घोरे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।।

शाक्ताभिषेक एवं पूर्णाभिषेक-भेद से अभिषेक दो प्रकार का होता है । समस्त सम्प्रदायों में पूर्णाभिषेक के पूर्व शाक्ताभिषेक की प्रथा प्रचलित है । पूर्णाभिषिक्त गुरु द्वारा ही शिष्य को शाक्ताभिषेक का उपदेश करना शास्त्रों में विहित है । पूर्णाभिषेक के उपरान्त क्रमशः क्रमदीक्षाभिषेक, साम्राज्याभिषेक, महासाम्राज्याभिषेक एवं योगदीक्षाभिषेक का उपदेश शास्त्रों में विहित है ।

इस प्रकार दीक्षित अभिषिक्त एवं जप के रहस्य को जानने वाला साधक ही पुरश्चरण सम्पन्न करने का सर्वविध अधिकारी होता है । वह साधक अपने इष्ट मन्त्र का पुरश्चरण करने में सफल होकर सर्वविध लोककल्याणकारी कार्यों को करने में सब प्रकार से सक्षम होता है ।

प्रकृत पुरश्चरण-रहस्य ग्रन्थ में पुरश्चरण का साङ्गोपाङ्ग विवेचन करते हुये उसकी समस्त करणीय विधियों का भी स्पष्टतः विवेचन किया गया है । दीक्षा के पूर्ण विवेचन के साथ ही सामान्य पूजापद्धति को स्पष्टतया प्रतिपादित करते हुये मन्त्रजप के रहस्य को भी उद्घाटित करना इस ग्रन्थ का विवेच्य विषय है । लघु कलेवर वाले इस ग्रन्थ में अभिषेक-रहस्य को प्रस्फुटित करने के साथ-साथ वनदुर्गा, श्रीकृष्ण, महिषमर्दिनी, दुर्गा, जयदुर्गा, जगद्धात्री दुर्गा, अन्नपूर्णा, कमलात्मिका, दक्षिणकालिका, त्रिपुरसुन्दरी, भुवनेश्वरी, भैरवी, बगला, मातङ्गी, धूमावती एवं तारा की पूजापद्धतियों के रहस्यों का भी उद्घाटन किया गया है ।

आशा है कि यह ग्रन्थ साधकों के लिये सर्वविध उपयोगी सिद्ध होगा । इस अप्राप्य ग्रन्थ को प्रकाशित कर सर्वजन-सुलभ कराने के लिए चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी के प्रतिष्ठाता स्व० नवनीतदास जी गुप्त के सुयोग्य उत्तराधिकारी-द्वय श्री नवीन एवं नीरज गुप्तद्वय सर्वतोभावेन धन्यवादार्ह हैं एवं विश्वास है कि स्वनामधन्य वे पुत्रद्वय इस कर्मभूमि पर यावज्जीवन इसी प्रकार अलभ्य ग्रन्थों को उद्घाटित करते हुये पाठकों एवं साधकों की जिज्ञासाओं का शमन करते रहेंगे ।

महाशिवरात्रि–२०७६
वाराणसी

एस० एन० खण्डेलवाल

विषयानुक्रम

प्रथम खण्ड (प्रथम उल्लास)

विषय	पृष्ठाङ्क
पुरश्चरण-प्रयोगविधि	४
गौण अथवा खण्ड पुरश्चरण	७
पुरश्चरण-काल	८
पुरश्चरण-स्थान	८
कूर्मचक्र	९
पुरश्चरणकालीन आहार्य विधि	१५
पुरश्चरण-काल में परित्याज्य विषय	१५
पुरश्चरण में स्नानादि विधि-निषेध	१६
मन्त्रसिद्धि में सहायक द्वादश विधि	१७
यम	१७
नियम	१७

प्रथम खण्ड (द्वितीय उल्लास)

विषय	पृष्ठाङ्क
मन्त्र का जातकाशौच तथा मरणाशौच	२०
मन्त्रचैतन्य	२०
सर्वश्रेष्ठ मन्त्रचैतन्य-प्रक्रिया	२२
नादतत्त्व	२२
शक्त्यात्मक सूक्ष्म मन्त्रचैतन्य-क्रिया	२३
जपात्मक-प्रधान मन्त्रचैतन्य क्रिया	२३
ध्यानात्मक मन्त्रचैतन्य क्रिया	२३
साधारण मन्त्रचैतन्य क्रिया	२३
मन्त्रचैतन्यभाव का विकास	२४
मन्त्रसिद्धि का एक आनुष्ठानिक उपाय	२४
मन्त्रों के दश संस्कार	२५
शक्तिमन्त्र का संस्कार	२५
विष्णुमन्त्र-संस्कार	२५
सूर्य तथा गणेशमन्त्र-संस्कार	२५
पुरश्चरण जप आरम्भ करने का विधान	२७
दश दिक्पाल-पूजा	२८
लिङ्गतत्त्व	३१
शिवलिङ्गतत्त्व एवं पूजन-विधि	३२
स्वयम्भू लिङ्ग	३३
दैव लिङ्ग	३३
गोल लिङ्ग	३३
आर्ष लिङ्ग	३३
मानस लिङ्ग	३३
बाणलिङ्ग का पूजन-माहात्म्य	३३
बाणलिङ्ग का लक्षण	३४
बाणलिङ्ग-परीक्षा	३५
अश्वक्रान्ता-रथक्रान्ता-विष्णुक्रान्ता-विचार	३६
ध्यान एवं जपक्रिया-विज्ञान	३७
जप	३८
चक्रदल का स्वरूप	३८
मन तथा चित्त का सङ्गम	४२
मन एवं बुद्धि का सङ्गम	४२
बुद्धि तथा चित्त का सङ्गम	४२
बुद्धि तथा शुद्ध अहङ्कार का सङ्गम	४२
देवभाव, वीरभाव, पशुभाव	४३
जपसिद्धि-विधि	४३
मन्त्रचैतन्य	४४

विषय	पृष्ठाङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
मन्त्रार्थ-भावना	४४	मालापूजा	४७
निद्राभङ्ग	४४	जप-समर्पण	४८
कुल्लूका	४४	होम	४८
महासेतु	४५	तर्पण	४८
सेतु	४५	अभिषेक	४८
अन्य देवताओं का सेतु	४५	ब्राह्मण-भोजन	४८
मुखशोधन	४६	कुमारी-पूजा	४८
करशोधन	४६	दक्षिणादान	४८
योनिमुद्रा	४६	अच्छिद्रावधारण	४८
निर्वाण	४७	वैगुण्य-संमाधान	४८

द्वितीयः खण्डः

विषय	पृष्ठाङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
दीक्षाविधिः	४९	प्रात:कृत्य	११८
प्रात:कृत्य	५७	स्नान	११८
मानसपूजा	५८	ब्राह्म स्नान	११८
चौरगणेशन्यास:	६०	आग्नेय स्नान	११८
स्नानविधि:	६३	वायव्य स्नान	११८
सन्ध्या	६५	दिव्य स्नान	११८
साधारणपूजापद्धति	६८	वारुण स्नान	११८
जपरहस्य	८०	यौगिक स्नान	११८
जप	८५	अनुकल्प स्नान	१२०
मुद्राप्रकरण	८८	तर्पणक्रिया	१२०
मन्त्रों में सिद्धादि-विचार	९१	आचमन एवं भूतशुद्धि	१२०
कुलाकुलचक्र	९२	तान्त्रिक आचमन मन्त्र का लक्ष्य एवं उद्देश्य	१२१
राशिचक्र	९३	सूक्ष्म भूतशुद्धि	१२३
नक्षत्रचक्र	९५	जलशुद्धि	१२४
अकथहचक्र	९६	तर्पण	१२६
अकडमचक्र	९७	सूर्यार्घ्य	१२७
ऋणिधनिचक्र (साध्याङ्का)	९८	जप-समर्पण	१२८
नित्यपूजारहस्य	११२	पूजा तथा उपासना में भेद	१२८
मानस पूजन	११६		

विषय	पृष्ठाङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
पञ्चदेवता-रहस्य	१३१	बलिदान-रहस्य	१४८
पूजाक्रम-रहस्य	१३६	दिव्याचारी का बलिदान	१४८
पूजागृह-प्रवेश	१३८	वीराचारीगण का बलिदान-विधान	१४९
कुण्डलिनी पूजा-रहस्य तथा अजपा-रहस्य	१३९	प्राथमिक वीराचारी अथवा दक्षिणाचारी के बलिदान	१५०

मुद्रा-रहस्य

तत्त्वमुद्रा	१५२	संहारमुद्रा	१५५
धेनुमुद्रा (अमृतीकरणमुद्रा)	१५२	शङ्खमुद्रा	१५५
अवगुण्ठन मुद्रा	१५२	चक्रमुद्रा	१५५
अङ्कुशमुद्रा	१५२	गदामुद्रा	१५५
भूतिनी मुद्रा	१५२	पद्ममुद्रा	१५५
योनिमुद्रा	१५३	त्रिशूलमुद्रा	१५६
मत्स्यमुद्रा	१५३	मृगमुद्रा	१५६
नाराचमुद्रा	१५३	दक्षिणकालिका पुरश्चरण-रहस्य	१५७
आवाहनी मुद्रा	१५३	मन्त्राचमन	१५८
स्थापनीमुद्रा	१५३	सामान्यार्घ्य-स्थापन	१५८
सन्निधापनीमुद्रा	१५३	गृहप्रवेश	१५९
संरोधिनीमुद्रा	१५३	विघ्नापसारणादि	१५९
सम्मुखीकरणी मुद्रा	१५३	भूमि-शोधन	१५९
कूर्ममुद्रा	१५४	आसनशुद्धि	१५९
खड्गमुद्रा	१५४	स्वस्तिवाचन	१५९
मुण्डमुद्रा	१५४	सङ्कल्प	१६०
वरमुद्रा	१५४	ग्रन्थिबन्धन	१६०
अभयमुद्रा	१५४	करशोधन	१६०
लेलिहानमुद्रा	१५४	पुष्पशोधन	१६०
गालिनी मुद्रा	१५४	पूजाद्रव्यादि-शोधन	१६०
प्रार्थनामुद्रा	१५५	शुद्धिक्रिया	१६१
गो-योनिमुद्रा	१५५	आत्मरक्षा	१६१
		घट-स्थापन	१६१
		प्राणायाम	१६३

विषय	पृष्ठाङ्क
भूतशुद्धि	१६३
मातृकान्यास	१६३
कराङ्गन्यास	१६३
षडङ्गन्यास	१६३
अन्तर्मातृकान्यास	१६३
बाह्यमातृकान्यास	१६४
वर्णन्यास	१६६
पीठन्यास	१६६
ऋष्यादिन्यास	१६७
अङ्गन्यास	१६७
सङ्क्षेप में षोढ़ान्यास	१६८
बीजन्यास	१६८
तत्त्वन्यास	१६८
व्यापकन्यास	१६८
आत्मप्राणप्रतिष्ठा	१६९
मानस पूजन	१६९
बाह्यपूजा	१७०
दानार्घ्य अथवा विशेषार्घ्य-स्थापन	१७०
अर्घ्य-रहस्य	१७१
पीठपूजा	१७३
यन्त्रपूजन	१७३
पुनर्ध्यान	१७४
प्राणप्रतिष्ठा	१७४
उपचार	१७५
पञ्चोपचार	१७५
षोडशोपचार	१७५
सम्प्रदानविधि	१७५
षोडशोपचार पूजाक्रम	१७६
आसन	१७६
स्वागत	१७६

विषय	पृष्ठाङ्क
पाद्य	१७६
अर्घ्य	१७७
आचमनीय	१७७
मधुपर्क	१७७
पुनराचमनीय	१७७
स्नानीय जल	१७७
वस्त्र	१७७
सिन्दूर	१७७
यज्ञोपवीत	१७८
कज्जल	१७८
आभरण	१७८
गन्ध	१७८
पुष्प	१७८
माला	१७८
धूप	१७८
दीप	१७८
नैवेद्य	१७९
अन्न-व्यञ्जनादि निवेदन	१८०
पानार्थ जल	१८०
पुनराचमनीय	१८०
ताम्बूल	१८०
वन्दना-प्रणाम	१८०
पुष्पाञ्जलि	१८१
आवरणपूजा	१८१
महाकाल-पूजन	१८१
तर्पण	१८२
बलि	१८२
देवी के करमुद्रा की पूजा	१८२
देवी का पुनर्ध्यान	१८२
देवी-तर्पण	१८२
बलि-प्रदान	१८२

विषय	पृष्ठाङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
पुष्पाञ्जलि	१८३	अन्न-भोज्यादि निवेदन	१८३

होम-रहस्य

विषय	पृष्ठाङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
वेदी का प्रमाण	१८४	अग्नि-स्थापन	१९९
स्थण्डिल-प्रमाण	१८४	अग्निपूजा	१९०
कुण्ड-प्रमाण	१८४	स्रुक् एवं स्रुवा	१९०
ब्राह्मी भूमि	१८४	घृतादि होम द्रव्य	१९०
क्षत्रिया भूमि	१८४	आहुति-प्रदान	१९१
वैश्या भूमि	१८४	महाव्याहृति होम	१९२
शूद्रा भूमि	१८४	अग्नि का गर्भाधान संस्कार	१९२
कुण्डमेखला	१८५	विशेष आहुति का सङ्कल्प	१९२
कुण्डयोनि	१८६	पूर्णाहुति	१९३
कुण्ड-फल	१८७	जप	१९४
कुण्ड-हेतु दिशाभेद	१७८	जप-समर्पण	१९४
सङ्क्षिप्त होमकार्य	१८७	दक्षिणान्त विधि	१९५
पूजा में कुण्ड तथा स्थण्डिल-स्थापन	१८७	अच्छिद्रावधारण	१९५
		वैगुण्य-समाधान	१९५
स्थण्डिल-रचना	१८८	पुरश्चरण-तत्त्व	१९७
स्थण्डिल-पूजा	१८८	पुरश्चरण-माहात्म्य तथा प्राणविचार	२०९
अग्नि-ग्रहण	१८९		

तान्त्रिक अभिषेक-रहस्य

(शाक्ताभिषेक, पूर्णाभिषेक, क्रमदीक्षाभिषेक, साम्राज्याभिषेक, महासाम्राज्याभिषेक तथा योगदीक्षाभिषेक)

विषय	पृष्ठाङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
साधारण अभिषेक क्रिया	२१२	वसुधारा	२१७
अधिवास के उपलक्ष्य में गणपति-पूजन	२१३	अच्छिद्रावधारण	२१८
		जगदम्बार्चन	२१८
स्वस्तिवाचन	२१३	घट-परिमाण	२१८
विघ्नपति गणेश-पूजन	२१४	घट में शक्तिसञ्चार	२२६
अङ्गुष्ठ-प्रभृति कराङ्गन्यास	२१४	कलान्यास	२३३
हृदयादि षडङ्गन्यास	२१४	मन्त्रदान	२३४
अधिवास	२१५	दक्षिणादान	२३४

विषय	पृष्ठाङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
क्रमदीक्षाभिषेक	२३५	महासाम्राज्याभिषेक	२३८
साम्राज्याभिषेक	२३८	योगदीक्षाभिषेक	२३९

पूजापद्धतिरहस्य

विषय	पृष्ठाङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
वनदुर्गापूजापद्धति	२४१	श्रीमद्दक्षिणकालिकापूजापद्धति	२८७
विपरीतप्रत्यङ्गिरास्तोत्र	२४६	त्रिपुरसुन्दरीपूजापद्धति	३०७
श्रीकृष्णपूजापद्धति	२५३	भुवनेश्वरीपूजापद्धति	३१४
महिषमर्दिनीपूजापद्धति	२६१	भैरवीपूजापद्धति	३२०
दुर्गापद्धति	२६६	बगलापूजापद्धति	३२६
जयदुर्गापूजापद्धति	२७०	मातङ्गीपूजापद्धति	३३१
जगद्धात्रीदुर्गापूजापद्धति	२७२	धूमावतीपूजापद्धति	३३२
अन्नपूर्णापूजापद्धति	२७६	तारापूजापद्धति	३३४
कमलात्मिकापूजापद्धति	२८३		

पुरश्चरणरहस्यम्

भाषाटीकासमन्वितम्

मन्त्रपुरश्चरणविधि • सविधिदीक्षाप्रकार • जपरहस्य
होमरहस्य • तान्त्रिक अभिषेकरहस्य • पूजापद्धति-
रहस्य • दशमहाविद्यापूजनरहस्य

॥ श्रीः ॥

सच्चिदानन्दसिद्धाचार्यप्रणीतं

पुरश्चरणरहस्यम्

भाषाटीकासमन्वितम्

प्रथमः खण्डः (प्रथम उल्लासः)

पुरश्चरण किसे कहते हैं? यह मन्त्रयोग का साक्षात् सिद्धिदायक प्राथमिक अनुष्ठान-युक्त चिरप्रसिद्ध प्रधान साधनाङ्ग है। शास्त्र कहते हैं—

जीवहीनो यथा देही सर्वकर्मसु नः क्षमः।
पुनश्चरणहीनऽपि तथा मन्त्रः प्रकीर्त्तितः ॥

जैसे जीवन-हीन देह कोई कार्य करने में अक्षम है, उसी प्रकार जो मन्त्रसाधक गुरु-दत्त इष्ट मन्त्र का यथाविधि पुरश्चरण नहीं करते, उसे वह मन्त्र कोई भी सिद्धि नहीं देता।

पुरश्चरण शब्द पुरस् + चर + अन्—इस प्रकार से सिद्ध होता है। पुरस् अर्थात् पूर्व में, प्रथम अथवा अग्र में। चर अर्थात् विचरणशील, अन् अर्थात् शकट। जन्म तथा अन्न एकत्र होकर (चर-अन्) 'चरण' होता है। अर्थात् अनुष्ठान—आचरण। अतएव पुरश्चरण शब्द का यह तात्पर्य है कि मन्त्रयोगी की मन्त्रप्रधान साधना के पूर्व का अथवा प्राथमिक आचरण। अर्थात् अनुष्ठान कार्य जो अग्रदूतरूपेण उसकी फलपुष्टि के प्रधान कारणरूप में परिचालित होता है; वही है पुरश्चरण। अतः इस विधान के साथ साधक अथवा योगी का प्रारम्भ से ही अपरित्याज्य सम्बन्ध जड़ित रहता है, यही कहना होगा।

साधारण अष्टाङ्ग योगविधि के यम अथवा संयम-नियमादि के प्राथमिक अनुष्ठानों का रीतिगत साधनाभ्यास ही है—पुरश्चरण। इसके उद्देश्य से जो-जो निमानुसार सम्पन्न किया जाता है, वही आंशिक एवं सामयिक ब्रह्मचर्य-रक्षारूप से एकाग्र भक्तियोग के साथ इष्ट-गुरु की कृपा-प्राप्ति के लिये प्राथमिक श्रेष्ठ उपाय है। गुरूपदिष्ट क्रियाओं के यथार्थ अभ्यास तथा पुष्टि-हेतु प्रकृत अनुष्ठान भी पुरश्चरण से ही सम्पन्न होता है।

आचमन तथा आसनशुद्धि से लेकर दिग्बन्धनादि क्रमिक क्रियाविधान को साधन-समर में समुपस्थित वीर साधक की आत्मव्यूहरचना का कार्य कह सकते हैं। इस साधन-व्यूह की रचना यथायथ रूप से साधित हो जाने पर साधन में विघ्न करने वाले समर-प्रत्याशी अर्थात् काम आदि विपक्षी दलपति विचलित होकर भाग जाते हैं। जैसे महाभारत-

समर में दुर्योधन ने पाण्डवों की व्यूह-रचना देखकर अपने आचार्य (सद्‌गुरु) के समक्ष उपस्थित होकर कहा था—

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्।
व्यूढा द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता॥

हे आचार्यदेव! यह पाण्डवों का महान् सैन्य-समावेश देखिये। आपके ही शिष्य धृष्टद्युम्न (द्रुपदपुत्र) द्वारा कैसी विचित्र व्यूहरचना की गई है?

साधक! तुमको भी दक्ष आचार्य[१] का शिष्य होकर द्रुपदपुत्र के समान आत्मव्यूह की रचना करनी आवश्यक है। द्रुपद का अर्थ है—द्रु = द्रुत अथवा शीघ्र। पद = गमन एवं गति। तभी द्रु + पद = द्रुपद अर्थात् जो द्रुत गति-युक्त है, ऐसे चञ्चल किया वाले का पुत्र धृष्टद्युम्न। धृष्टद्युम्न अर्थात् धृष्ट अर्थात् लाञ्छित + द्यु (गति) अर्थात् जो द्रुत परिणाम वाली चाञ्चल्य शक्ति को लाञ्छित करे, अर्थात् स्थिर वैराग्य ले आये। अथवा धृष्ट = प्रगल्भ। द्युम = बल—जिसके द्वारा सभी बल प्रगल्भता-लाभ करे अथवा जो साधक की प्रबल बहिर्मुखी वृत्तियों को चैतन्याभिमुखी कर दे अथवा साधन-समर में साधनानुकूल वृत्तियों को निवृत्तमुखी करके अभिनव व्यूहरूप से सज्जित करे, जिससे उस व्यूह का भेदन बहिर्मुखी वृत्तियाँ न कर सकें, वैसा धृष्टद्युम्न बनकर तुमको आत्मव्यूह-रचना करनी है।

साधक! अब तुमको काय-मन: से विवेक-बुद्धियुक्त होकर सामयिक वैराग्यानुकूल साधना में रत होना है। चाञ्चल्य-विरहित होकर मन्त्रपुरश्चरण कार्य का यही प्राथमिक आयोजन है। तुम्हारा उक्त आचमन तथा आसनशुद्धि प्रथम कर्त्तव्य है (इस सम्बन्ध में इसी ग्रन्थ में कूर्मपृष्ठ एवं आसन अधिग्रहण तत्त्व दिया जा रहा है)। इसके अनन्तर शवासन-कल्पनादि तथा वाम में गुरुत्रय (गुरु-परमगुरु तथा परापरगुरु) का चिन्तन, दक्षिण में गणेश का चिन्तन, ऊर्ध्व में ब्रह्मा का, अध: में अनन्त का, पीछे की ओर क्षेत्रपाल–दिक्पाल–योगिनी का चिन्तन, सामने गणेशादि पञ्चदेवता का चिन्तन, अन्त:प्रदेश में इष्टगुरु का चिन्तन तथा सर्वत्र परमात्मा का चिन्तन करके उनकी यथायथ स्थानों में प्रतिष्ठा करके तथा आन्तरिक भाव से अति सावधानी एवं यत्न के साथ अर्चित करके, दिग्बन्धनादि क्रिया द्वारा पहले अपना अलौकिक साधन-व्यूह रचित करना होगा। इन सबकी समष्टिभूता शक्ति ही तुम्हारी साधना में सहायक होगी। इस भाव से तद्‌गत हो जाने पर प्रत्येक मन्त्र तथा उनका कार्यसमूह मानो तुम्हारे अन्तर में प्रविष्ट होकर तुम्हारा एकाग्रचित्त साधन कर्म में आबद्ध रहेगा और तुम्हारी पूजा एवं पुरश्चरण का प्रकृत उद्देश्य सफल होगा।

साधक! पुन: कहता हूँ कि केवल कुछ अनुष्ठान-बहुल कर्म करना अथवा निर्दिष्ट सङ्ख्यक जप कर लेना एवं मन्त्रोच्चार—जप कर लेना ही पुरश्चरण नहीं है। भक्तियुक्त

(१) आचार्य अर्थात् मन्त्राचार्य।

साधन की अव्यभिचारिणी एकाग्र बुद्धि द्वारा आत्मलक्ष्य-भेदन करना ही पुरश्चरण है। अर्थात् पञ्चतत्त्वमयी आत्मचैतन्यरूपा कुण्डलिनी देवी के ज्ञान-लाभार्थ उसके पूर्वानुष्ठानरूप में साधन करना ही पुरश्चरण है। यह सब साधना का अत्यन्त गोपनीय वैज्ञानिक विषय है। नितान्त श्रद्धायुक्त होकर सद्गुरु के चरणों में आत्मनिवेदन अथवा आत्मसमर्पण, गुरुसेवा तथा उनसे अनुकूल समय में सविनय प्रश्न करने से स्थिति प्राप्त होती है। तभी श्रीभगवान् गीता में कहते हैं—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

वास्तविक तत्त्वदर्शी एवं तत्त्वज्ञानी गुरु की कृपा के बिना एकान्त अनुगत सिद्धि द्वारा भी यह रहस्य विदित नहीं हो सकता। गुरुपादुका की अहर्निश चिन्तना से दृढ़व्रत होकर स्थिर, धीर तथा अचञ्चल विश्वास से पुष्ट होकर अग्रसर होना चाहिये, तभी सद्गुरु की कृपा प्राप्त होगी और सभी मनोरथ सफल होंगे।

यह कहा जा चुका है कि कुण्डलिनी शक्ति के ज्ञानार्थ जो अनुष्ठान किया जाता है, वही पुरश्चरण है। यह कुण्डलिनी ही जीव की जीवनी शक्ति (प्राणशक्ति) है। प्राण सूक्ष्म वायुस्वरूप है। रुद्रयामल में श्रीसदाशिव कहते हैं—**सा देवी वायवी शक्तिः।**

जीव की यही प्राणरूपा वायवी शक्ति प्राणविद्या अथवा महाविद्या शक्तिरूपा कुण्डलिनी ही समस्त मन्त्रों की, यहाँ तक कि वेदों की भी मूलाधाररूपा गायत्री मन्त्र का उत्पत्तिस्थल है। जो साधक इस जीवनी शक्तिमयी कुण्डलिनी को जान सके हैं, वे ही यथार्थ वेदवित् हैं। योगचूड़ामणि में उक्त है—

कुण्डलिन्यां समुद्भूता गायत्री प्राणधारिणी।
प्राणविद्या महाविद्या यस्तां वेत्ति स वेदवित्॥

गौतमीय तन्त्र में भी यही कहा गया है—

मूलपद्मे कुण्डलिनी यावन्निद्रायिता प्रभो।
तावत् किञ्चिन्न सिध्येत मन्त्रयन्त्रार्चनादिकम्॥
जागर्त्ति यदि सा देवी बहुभिः पुण्यसञ्चयैः।
तदा प्रसादमायाति मन्त्रयन्त्रार्चनादिकम्॥

जब तक साधक मूलाधारपद्मस्थ कुण्डलिनी शक्ति की साधना के अभाव में निद्रित चैतन्य रहते हैं, तब तक पुरश्चरण-मूलक यन्त्र-मन्त्रादि तथा अर्चनादि से कुछ भी हाथ नहीं आता। अदि गुरुकृपा से एक बार यह शक्ति जागृत हो जाती है, तब साधक सभी साधनाओं तथा पुरश्चरण आदि में यथोचित उन्नति-कारक फल प्राप्त कर सकता है।

जैसे जीवदेह में प्राण न रहने पर वह देह कोई कार्य नहीं कर सकता, वैसे ही

प्राणशक्तिरूपा कुण्डलिनी से परिपुष्ट हुये बिना कोई भी मन्त्र सैकड़ों पुरश्चरण द्वारा भी साधक के लिये फलप्रसू नहीं हो सकता—

विना प्राणं यथा देहः सर्वकर्मषु न क्षमः ।
विना प्राणं तथा मन्त्रः पुरश्चर्याशतैरपि ॥

इसलिये पुरश्चरण का निश्चय होने पर कुण्डलिनी शक्तिरूपा प्राणशक्ति की जागरण प्रक्रिया से अभिज्ञ श्रीगुरु की कृपा तथा इस सम्बन्ध में अभ्रान्त क्रिया का उपदेश प्राप्त करना साधक का ऐकान्तिक कर्त्तव्य माना गया है; लेकिन दुःख है कि आजकल यथार्थ क्रियाज्ञान से अभिज्ञता वाले गुरु का अभाव परिलक्षित होता है । अधिकांशतः केवल पोथी वाले, व्यवसाय-परायण उपदेष्टा ही मिलते हैं । प्रकृत गुरु किसे कहते हैं? इसे जानने-समझने की शक्ति आजकल किसी में भी नहीं है । श्रीरामचन्द्र के उपदेष्टा महर्षि वशिष्ठदेव कहते हैं—

दर्शनात् स्पर्शनात् शब्दात् कृपया शिष्यदेहके ।
जनयेद् यः समावेशं शाम्भवं स हि देशिकः ॥

जिनकी अपूर्व कृपादृष्टि, दैवी स्पर्श अथवा चैतन्ययुक्त मन्त्रोपदेश (शब्दात्) से शिष्य-देह में शाम्भवभाव का समावेश हो जाता है अथवा जो उस मङ्गलमय दैवी भावानुभूति का उत्पादन करा देते हैं, वे ही यथार्थ गुरु होते हैं । स्वयं स्वयम्भू भी वही कहते हैं—**मन्त्रचैतन्यविज्ञाता गुरुरुक्तः स्वयम्भुवा** । उक्त कुण्डलिनी-जागरण अथवा मन्त्र-चैतन्य-शक्ति के जो ज्ञाता हैं, वे ही प्रकृत गुरु हैं ।

ऐसे अभिज्ञ गुरु की कृपा से जब साधक की सुप्ता कुण्डलिनी जागरित हो जाती है, तब सुषुम्ना-स्थित पद्मों तथा उनके अन्तर्गत स्थित ग्रन्थित्रय का भेदन होकर यथार्थ अभीष्ट का लाभ होता है ।

इस प्रसङ्ग में यह ज्ञातव्य है कि संसार में जैसे वेददीक्षा देने वाले गुरुओं का अभाव हो गया है, उसी प्रकार से साधनाभिलाषी उन्नत क्रियाधिकारी शिष्यों का भी अभाव हो गया है । इस सम्बन्ध में श्रीसदाशिव भगवती से कहते हैं—

वेददीक्षाकरान् लोके श्रीगुरुर्दुर्लभः प्रिये ।
शिष्योऽपि दुर्लभस्तादृक् पुण्ययोगेन लभ्यते ॥

नितान्त पुण्ययोग-लब्ध प्रारब्ध के बिना यथार्थ सद्गुरु तथा सुशिष्य का गुरु-संग नहीं हो पाता । वास्तविक गुरुत्व वाले तो कहीं-कहीं अवश्य मिल जाते हैं, किन्तु प्रकृत शिष्य आज दुर्लभ हो गये हैं ।

पुरश्चरण-प्रयोगविधि—विशुद्ध अन्तःकरण वाले शिष्य को दीक्षा के पश्चात् अभीष्ट मन्त्र को सिद्ध करने की इच्छा लेकर श्रीगुरुदेव की अनुमति प्राप्त करने के पश्चात्

पुरस्क्रिया अर्थात् मन्त्रसिद्धि-हेतु प्राथमिक क्रिया सम्पन्न करनी चाहिये। इसे भगवान् स्वयं कहते हैं—

गुरोराज्ञां समादाय श्रद्धान्तःकरणो नरः।
ततः पुरस्क्रियां कुर्यात् मन्त्रसंसिद्धिकाम्यया॥

प्रत्येक साधक के लिये पुरश्चरणरूप कर्म करना आवश्यक है। इसे यथाविधि सम्पादन करना ही मुख्य कल्प है। यदि किसी कारण से कोई अशक्त हो जाय, अर्थात् पुरश्चरण कृत्य न कर सके, तब साधन की आंशिक पुष्टि अथवा श्रद्धासम्पदा प्राप्त करने के लिये वह प्रतिनिधि द्वारा भी कार्य करा सकता है और उससे मन्त्रशक्ति का अनेक फल प्राप्त किया जा सकता है। तथापि यदि किसी कारण से प्रतिनिधि में उतनी योग्यता न हो तब फल में अल्पाधिक तारतम्य होता रहता है। जो भी हो, यदि सामर्थ्य है तब स्वयं ही पुरश्चरण करना कर्त्तव्य होना चाहिये। तभी शास्त्र का आदेश है—

तस्मादादौ स्वयं कुर्याद्, गुरूं वा कारयेद्बुधः।
गुरोरभावे विप्रं वा सर्वप्राणिहिते रतम्॥
स्निग्धं शास्त्रविदं मित्रं नानागुणसमन्वितम्।
स्त्रियं वा सद्गुणोपेतं सपुत्रां विनियोजयेत्॥

अर्थात् साधक को पहले तो मन्त्र-सिद्धिदायक पुरश्चरण कर्म स्वयं करना चाहिये। उसमें असमर्थ होने पर गुरु द्वारा कराना चाहिये। उसमें भी असमर्थ होने पर सर्वप्राणिहित में रत ब्राह्मण (शास्त्रज्ञ ब्राह्मण) से किंवा स्निग्ध स्वभावयुक्त नाना सद्गुणान्वित मित्र द्वारा अथवा सद्गुणान्विता भार्या द्वारा पुरश्चरण कराया जा सकता है। इसका भी अभाव होने पर साधन-तत्परा सद्गुणशालिनी किसी पुत्रवती महिला अथवा स्त्रीगुरु भी इसे सम्पन्न कर सकती हैं।

विशुद्ध अन्तःकरण वाला व्यक्ति यथाविधि दीक्षान्त में अपने अभीष्ट मन्त्र से सिद्धि-कामनार्थ गुरु से आज्ञा लेकर पुरश्चरण कृत्य कर सकता है। गुरु के अभाव में अथवा उनकी अविद्यमानता में तदनुरूप किसी साधक ब्राह्मण अथवा किन्हीं गुरुजन की आज्ञा लेकर अथवा मन-ही-मन गुरुदेवता का स्मरण-पूजन करके कार्य का आरम्भ करना चाहिये।

पुरश्चरण कार्य में गुरुदेव की आज्ञा-प्रसङ्ग में यह कहना आवश्यक है कि साधक यदि यथार्थ अभिज्ञ गुरु से यथाभिमत दीक्षा के बिना केवल जबानी-जमाखर्च से आज्ञा लेकर कार्य करता है तब उस पुरश्चरण क्रिया का कोई फल नहीं होता। पहले ही कहा गया है कि पुरश्चरण का प्रधान लक्ष्य है—मन्त्रचैतन्य-स्थिति पाना। यह वास्तव में क्रिया से अभिज्ञ गुरु का ही कृपादान हो सकता है। श्रीगुरु द्वारा प्रदत्त प्रथम दीक्षाभिषेक से शिष्यदेह में एक अपूर्व दैवी शक्ति का स्पन्दन प्रारम्भ होने लगता है। यह सद्गुरु के

कृपालब्ध दर्शन, स्पर्शन एवं शब्दब्रह्म के स्वरूप अभीष्ट मन्त्र की दीक्षा से ही प्राप्त होता है। जहाँ गुरु-दत्त शक्तिदान का अभाव होता है, वहाँ पुरश्चरण से भी साधक को मन्त्र-सिद्धि नहीं हो पाती। अत: जैसे केवल अन्धकार में अज्ञात पथ पर असहाय की तरह चलने वाला कभी भी गन्तव्य तक नहीं पहुँच सकता, उसी प्रकार जब तक गुरु-साधनलब्ध स्वशक्ति शिष्य में सञ्चरित नहीं हो जाती, तब तब सिद्धि प्राप्त होने का कोई उपाय नहीं है। यही कुलार्णव ग्रन्थ में कहा गया है—

शक्तिपातानुसारेण शिष्योऽनुग्रहमर्हति।
यत्र शक्तिर्न पतति तत्र सिद्धिर्न जायते॥

इस प्रकार से दैवी शक्तियुक्त दीक्षा को ही शाम्भती दीक्षा कहते हैं। वह गुरु की दृष्टि से या स्पर्श से, मन:शक्ति से, सम्भाषण से भी शिष्य की संज्ञा में जागृत हो सकती है। इसे ही श्रीसदाशिव ने वेददीक्षा कहा है। आजकल की गुरुमण्डली इससे से अनभिज्ञ हैं। इसी कारण केवल मन्त्रदानरूप साधारण (आजकल की) दीक्षा से शिष्यदेह में कोई शक्ति सञ्चारित ही नहीं हो पाती। इसी कारण से कुण्डलिनी-जागरण और अनुष्ठान में लगे आजकल के शिष्यों के अन्त:करण में कोई भी प्राकृत अनुभव अथवा जागरण सम्भव नहीं हो पाता।

यहाँ अप्रासङ्गिक होने पर भी यह बतलाना उपयुक्त है कि अभिज्ञ गुरु जिस प्रकार से वेददीक्षा की फलात्मक अपनी प्राथमिक शक्ति शिष्यदेह में सञ्चारित करते हैं, उस विषय में भगवान् सदाशिव ने जो कहा है, उसे जानना आवश्यक है। भगवान् कहते हैं—हे प्रिय! जैसे मछली अपने अण्डे में स्थित शिशुओं का केवल निरीक्षण से ही पोषित करती है, उसी प्रकार सिद्ध पुरुष भी अपनी कृपादृष्टि के प्रयोग द्वारा ही अपने शिष्यदेह में अद्भुत शक्ति सञ्चारित कर देते हैं। इसे ही 'दृग्दीक्षा' कहा गया है—

स्वापत्यानि यथा मत्स्यो वीक्षणेनैव पोषयेत्।
दृग्भ्यां दीक्षोपदेशश्च तादृशः कथितः प्रिये॥
यथा पक्षी स्वपक्षाभ्यां शिशून् संवर्द्धयेच्छनैः।
स्पर्शदीक्षोपदेशश्च तादृशः कथितः प्रिये॥
यथा कूर्मः स्वतनयान् ध्यानमात्रेण पोषयेत्।
वेददीक्षोपदेशश्च मानसः स्यात् तथाविधः॥

इसी प्रकार से 'स्पर्शदीक्षा' के सम्बन्ध में भगवान् कहते हैं कि पक्षीगण जिस प्रकार अपने पङ्खों से ढ़ककर अपने बच्चों को क्रमश: पुष्ट तथा वर्द्धित करते हैं, क्रिया के ज्ञाता गुरु भी उसी प्रकार से अधिवासादि दैवी क्रियासिद्ध स्पर्शन क्रिया से शिष्य की देह में मन्त्रपुष्टिकारी शक्ति का सञ्चार कर देते हैं।

इसी प्रकार से 'मानसदीक्षा' द्वारा भी अभिज्ञ सद्गुरु अपने शिष्य में जिस प्रकार से

आत्मशक्ति का सञ्चार करते हैं, उसके विषय में भगवान् बतलाते हैं कि जैसे कछुआ भूमि में अण्डे देकर उसे मिट्टी में गाड़कर केवल मानसिक ध्यान द्वारा उसे पुष्ट करता है, उसी प्रकार से सिद्ध गुरुदेव अपनी शक्ति से पुष्ट अभिषेकात्मक मनन क्रिया द्वारा अद्भुत रूप से शिष्य के अन्तर में शक्ति-सञ्चार करता है।

अनभिज्ञ गुरु स्वभावतः ऐसा शक्ति-सञ्चार नहीं कर सकता। उनके शिष्य का संशय-छेदन उनके द्वारा किया ही नहीं जा सकता; अतः इस अवस्था में पुरश्चरणादि द्वारा केवल बाह्य अनुष्ठान से कोई फल नहीं मिलता। तभी तो भगवान् कुलार्णवतन्त्र में कहते हैं—

अनभिज्ञं गुरुं प्राप्य संशयच्छेदकारकम्।
गुर्वन्तरन्तु गत्वा स नैतद्दोषेण लिप्यते॥

यहाँ शिष्य अन्य अभिज्ञ गुरु का आश्रय ले सकता है। इससे उसे कोई दोष नहीं होता। इसीलिये जहाँ-तहाँ के गुरु से दीक्षा लेने के पश्चात् अभिज्ञ एवं उन्नत क्रियागुरु से साधनदीक्षा लेना आवश्यक है। जिस दीक्षा के मिल जाने के अनन्तर शिष्य के अन्तर में आनन्द, शान्ति तथा किसी भाव की उपलब्धि नहीं होती (भले ही शिष्य कितना ही अधिक कर्म क्यों न करे), वहाँ अन्य गुरु की शरण में जाने से कोई पाप नहीं होता। यही भगवान् का भी कथन है—

यथानन्दः प्रबोधो वा नाल्पमप्युलभ्यते।
वत्सरादपि शिष्येण सोऽन्यं गुरुमुपानयेत्॥

जो भी हो, पुरश्चरण के पूर्व गुरु की कृपाशक्ति को प्राप्त करना साधन-परायण शिष्य का प्रधान कर्त्तव्य है।

पुरश्चरण क्रिया को भागद्वय में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम है—मुख्य, जो पञ्चाङ्ग पुरश्चरण क्रिया भी कहलाता है एवं दूसरी है—गौण, जिसे खण्डपुरश्चरण भी कहते हैं।

गौण अथवा खण्ड पुरश्चरण—इसमें पूर्वकथित रूप से मन्त्रजप की कोई विशेष सङ्ख्या निश्चित नहीं रहती। यह प्रधानतः निर्दिष्ट समय तथा काल पर ही निर्भर करता है। जैसे—(१) उदयोदय, (२) उदयास्त, (३) अस्तास्त, (४) अस्तोदय, (५-६) तिथि तथा नक्षत्र पुरश्चरण, (७) पक्ष, (८) मास, (९) ऋतु, (१०) वार, (११) अयन, (१२) वर्ष-पुरश्चरण। ग्रहण-पुरश्चरण भी इसी के अन्तर्गत आता है। इसे मन्त्रजपात्मक श्रेष्ठ गौण पुरश्चरण कहा जाता है।

पञ्चाङ्ग अथवा मुख्य पुरश्चरण—इसके सम्बन्ध में भगवान् इस प्रकार से कहते हैं—

जपहोमौ तर्पणञ्चाभिषेको विप्रभोजनम्।
पञ्चाङ्गोपासनं लोके पुरश्चरणमुच्यते॥

अर्थात् जप, होम, तर्पण, अभिषेक, विप्र-भोजनरूप पञ्च अङ्गयुक्त मन्त्रसिद्धि के

उपायस्वरूप-उपासना विधान को पञ्चाङ्ग अथवा मुख्य पुरश्चरण कहा गया है। इसमें निर्दिष्ट सङ्ख्यक मन्त्रजप तथा अन्यान्य कर्म को सम्पन्न किया जाता है।

यद्यपि यही प्रकृत पुरश्चरण कहा गया है, तथापि ग्रहण-काल में केवल 'जप' को ही गौण पुरश्चरण कहा गया है। होमादि अङ्ग न रहने पर भी इसे पुरश्चरण ही कहते हैं। कहीं-कहीं इसमें भी होमादि का वर्णन मिलता है; अन्यथा जिस स्थल पर कालपुरश्चरण में (ग्रहणकालीन में) जो होमादि का उल्लेख मिलता है, केवल उसी स्थल में होमादि करना चाहिये; अन्यथा केवल जप के द्वारा भी गौण पुरश्चरण सम्पन्न किया जा सकता है।

जो स्वयं पुरश्चरण करने में अशक्त हैं, वे होमादि क्रिया के स्थान पर केवल जप द्वारा भी पुरश्चरण के सभी अङ्ग सम्पन्न कर सकते हैं। इसका भी शास्त्रों में आदेश है। पुरश्चरण कार्य मन्त्रसाधना का अङ्गविशेष है। वैदिक तथा तान्त्रिक मन्त्रों में से जो शक्तिसम्पन्न है, उसमें यह पुर:क्रिया अनादि काल से साधनशास्त्र में विहित है। प्रत्येक साधक अपने-अपने इष्ट मन्त्र से वैदिक अथवा तान्त्रिक मन्त्र का पुरश्चरण सम्पन्न कर सकता है।

वेद अनादि है। वह धर्म विज्ञान का औपपत्तिक (Theoretical) अङ्ग है। तन्त्र है—उसका क्रियासिद्ध (Practical) अङ्ग। अतएव वैदिक मन्त्र भी पुरश्चरणरूप तान्त्रिक क्रिया अथवा साधनानुष्ठान से सम्पन्न होता है अर्थात् सिद्ध होता है।

पुरश्चरण-काल—श्रीसदाशिव वाराही तन्त्र में कहते हैं कि शुक्लपक्ष में चन्द्र तथा तारा के शुद्ध रहने पर शुभ तिथि में मन्त्र का पुरश्चरण आरम्भ करना चाहिये। देवशयन एकादशी से लेकर देवोत्थान एकादशी-पर्यन्त पुरश्चरण नहीं करना चाहिये; लेकिन चन्द्र-सूर्यग्रहण के समय तथा महातीर्थ में काल-अकाल का विचार किये बिना पुरश्चरण आरम्भ कर सकते हैं। रुद्रयामल में कहा गया है कि वैशाख, श्रावण, आश्विन, कार्त्तिक, अग्रहायण, माघ, फाल्गुन मास में, ग्रहण में तथा महातीर्थ-स्थल में दीक्षा एवं पुरश्चरण कार्य में कालाकाल का विचार नहीं किया जाता। अन्य तन्त्र में सदाशिव का आदेश है—'हे प्रिय! ग्रस्तोदय तथा ग्रस्तास्त ग्रहण-काल में (अर्थात् 'चन्द्र' अथवा 'सूर्य' उदय के पूर्व ही यदि राहुग्रस्त होकर बाद में उदित हो, तब ऐसे ग्रहण को ग्रस्तोदय ग्रहण कहा जाता है। यदि ग्रहण के समय चन्द्र अथवा सूर्य ग्रहणमुक्त होने के पहले ही अस्त हो जाता है तब ऐसे ग्रहण को ग्रस्तास्त ग्रहण कहा जाता है) दीक्षा एवं पुरश्चरण नहीं करना चाहिये। इससे साधक की आयु, श्री, सन्तान तथा सम्पत्ति की हानि होती है।

पुरश्चरण-स्थान—श्रीसदाशिव गौतमीय तन्त्र में कहते हैं कि पुण्यक्षेत्र में, नदीतट, गुहा, पर्वत के ऊपरी भाग में, तीर्थस्थान में, नदी तथा सागर-सङ्गम पर, उद्यान, विजन स्थान में, बिल्व वृक्ष के नीचे, गिरितट, तुलसी-वन, गौशाला में, ऐसे शिवालय में जहाँ नन्दी न हो, अश्वत्थ तथा आमलकी वृक्ष के नीचे, जल के बीच टापू पर, किसी देवालय में, समुद्रतट पर, अपने गृह में पुरश्चरणादि साधन करना चाहिए।

इनके अतिरिक्त भक्ति तथा विश्वास से पुष्ट हृदय से सूर्य, अग्नि, चन्द्र, प्रदीप, जल, ब्राह्मण तथा गौ के सामने जप करने से मन्त्र सफल होता है। अथवा जहाँ साधक का चित्त प्रसन्न हो, किसी पवित्र स्थान में भी साधक पुरश्चरण कर सकता है।

श्रीभगवान् ब्रह्मयामल में कहते हैं कि अपने गृह में जप करने से एकगुणा, गोष्ठ में दसगुणा, वन में सौगुणा, तड़ाग के पास सहस्त्रगुणा, नदी-तट पर लक्षगुणा, पर्वत के आगे करोड़गुणा, शिवालय में शतकोटिगुणा तथा गुरु के पास भक्ति से जप करने पर अनन्तगुणा फल मिलता है।

इसी प्रकार से तन्त्रान्तर के अनुसार गृह, गोष्ठ, वन, उपवन, नदी, पर्वत, शिवालय तथा गुरु के पास जप करना अत्यन्त श्रेष्ठ होता है।

कूर्मचक्र—गौतमीय तन्त्र में भगवान् कहते हैं कि पर्व, समुद्र-तट, पुण्यभूमि, अरण्य, नदीतट में पुरश्चरण करने पर कूर्मचक्र का विचार नहीं किया जाता; किन्तु ग्राम में, गृह में अथवा किसी सामान्य स्थान में पुरश्चरण करने पर कूर्मचक्र का विचार करके ही कार्य करना उचित होता है।

आजकल सामान्य गुरुगण, आधुनिक पण्डितगण तथा ऐसी ही श्रेणी के ग्रन्थकारगण इस कूर्मचक्र के सम्बन्ध में केवल शास्त्रवचनों का सूत्ररूप से ही वर्णन कर देते हैं। वे इसके तात्पर्य तथा रहस्य का वर्णन ही नहीं करते। हो सकता है कि वे रहस्य नहीं जानते। वास्तविक रूप से पुस्तकों में न तो इनका रहस्य उद्घाटित हो सका है और न पुस्तक पढ़कर गुरुशक्ति (बिना गुरुकृपा के) ही किसी में आ सकती है। तभी तो पुरश्चरण (साधनशास्त्र) गुरुमुखागत विद्या है। तन्त्ररूपी साधनशास्त्र अथवा कोई भी साधनशास्त्र क्रियासिद्ध अभिज्ञ व्यक्ति की सहायता के अभाव में फलीभूत नहीं होता, प्रत्युत अपने मन से करने पर हानि की ही सम्भावना परिलक्षित होती है। यहीं पर कूर्मचक्र को ही देखने से ज्ञात होगा कि केवल पुस्तक पढ़कर शास्त्र के अनुसार पुरश्चरण करने से कोई फल नहीं होगा। उदाहरण प्रस्तुत है—

दीपस्थानं समाश्रित्य कृतं कर्म फलप्रदम्।
दीप्यते पुरुषो यत्र दीपदानं तदुच्यते॥
चतुरस्त्रं भुवं भित्वा कोष्ठानां नवकं लिखेत्।
पूर्वकोष्ठादि विनिखेत् सप्तवर्गाननुक्रमात्॥
लक्षमीशे मध्यकोष्ठे स्मरान् युग्मक्रमांल्लिखेत्।
दिक्षु च पूर्वकोष्ठादि विलिखेत् स्वरसंस्थितिः॥
मुखन्तु तस्य जानीयात् हस्तावुभयतः स्थितौ।
दिक्षु पूर्वादिता यत्र क्षेत्राद्यक्षरसंस्थितिः॥

कोष्ठे कुक्षी उभे पादौ द्वे शिष्टं पुच्छमीरितम् ।
क्रमेणानेन विभजेन्मध्यस्थमपि भागतः ॥
मुखस्थो लभते सिद्धिं करस्थः स्वल्पजीवनः ।
उदासीनः कुक्षिसंस्थः पादस्थो दुःखमाप्नुयात् ॥
पुच्छस्थः पीड्यते मन्त्री बन्धनोच्चाटनादिभिः ।

पिङ्गलायाम्—

कूर्मचक्रमिदं प्रोक्तं मन्त्रिणां सिद्धिदायकम् ।
तस्य यज्ञफलं नास्ति सर्वानर्थाय कल्पते ॥

लोग इसका अनुवाद इस प्रकार करते हैं—दीपस्थान का आश्रय ग्रहण करके कर्म करने पर वह फलप्रद हो जाता है । जहाँ पुरुष दीप्यमान होता है, वही दीपस्थान होता है । जप-पूजादि का उपयुक्त स्थान निश्चित करके वहाँ एक चतुष्कोण मण्डल बनाया जाता है । तत्पश्चात् इसे नव कोष्ठ में विभक्त करके एक कूर्माकृति चक्र बनाया जाता है ।

इस चक्र को पूर्वदिक् से लिखना आरम्भ करके सात कोष्ठ में सात वर्ण (अक्षर) लिखना चाहिये । ईशान कोण में ळ-क्ष वर्ण लिखना चाहिये । चतुरस्र के मध्यवर्त्ती नव कोष्ठों में (नव कोष्ठ के आठ कोष्ठ में) पूर्व से आरम्भ करके (दो-दो वर्ण) षोडश स्वरवर्ण अङ्कित करना चाहिये । इस चक्र में क्षेत्र (अर्थात् जिस गाँव में यह कार्य कर रहे हैं) के नाम के प्रथम दो अक्षर जहाँ दृष्ट हों, वहीं कूर्म का मुख बनाना चाहिये । मुख के दोनों पार्श्व में जो दो कोष्ठ हैं, उसमें कूर्म के आगे के दो पैर बनाये जाते हैं । हस्तद्वय के नीचे जो दो कोष्ठ हैं, वह है कूर्म की कुक्षि तथा सर्वनिम्न स्थान में जो तीन कोष्ठ हैं, वहाँ अगल-बगल के दो कोष्ठों में कूर्म के दोनों पिछले पैर बनाकर बचे हुए बीच वाले कोष्ठ को कूर्म का पुच्छस्थान बनाना चाहिये । इस प्रकार कूर्म का अङ्गविन्यास करके मध्यस्थ नव कोष्ठों को भी मुख-हस्तादि अवयवरूपेण विभक्त करना चाहिये । इससे पुरश्चरणादि में कूर्मचक्र द्वारा बैठने का स्थान निर्णीत होता है ।

अब यह बतलाते हैं कि कूर्मचक्र के किस-किस स्थान पर बैठने से किस-किस कार्य की सिद्धि होती है । कूर्म के मुख पर सर्वकार्य-सिद्धि होती है । करस्थ होकर कार्य करने से साधक अल्पजीवी होता है । कुक्षि पर कार्य करने से उदासीनता होती है । पद पर कार्य करने से दुःख तथा पुच्छ पर कार्य करने से बन्धनादि एवं उच्चाटन प्राप्त होता है । इस प्रकार से कूर्मचक्र कहा गया है ।

पिङ्गला में कहते हैं कि कूर्मचक्र के ज्ञान के बिना जप-यज्ञादि कार्य करने से समस्त कार्य विफल होते हैं । इन अनुवादक ने एक कूर्मचक्र भी साथ में अङ्कित किया है । इस चक्र को देखने से इस विषय में विशेष अभिज्ञता हो जाती है । वह चित्र इस प्रकार है—

कूर्मचक्र

क्ष ळ	क ख ग घ ङ	च छ ज झ ञ
श ष स ह	अं अः, अ आ, इ ई, ओ ओ, उ ऊ, ए ऐ, ऌ ॡ, ऋ ॠ	ट ठ ड ढ ण
य र ल व	प फ ब भ म	त थ द ध न
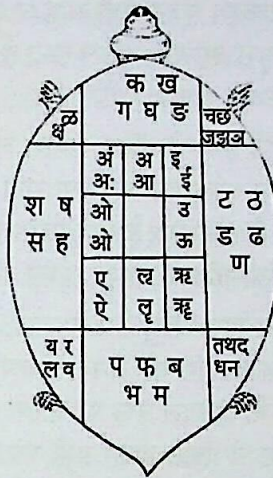
अब पाठकों को यह सोचना है कि मूल शिववाक्य तथा भाषानुवाद एवं चित्र देखकर क्या ज्ञान-लाभ हुआ? उत्तर यही है कि कुछ नहीं। वास्तव में इससे कुछ भी समझ में नहीं आयेगा। इसका साधनकार्य में इस प्रकार से कोई प्रयोग नहीं किया जा सकेगा। जो भी हो, गुरु-प्रदत्त विद्या से इसके वास्तविक तात्पर्य को यहाँ लिख रहा हूँ।

पहली बात तो यह है कि इसे कूर्मचक्र क्यों कहते हैं? प्रत्येक साधक के लिये क्रियानुष्ठानार्थ आसनशुद्धि प्रधान कार्य है। जब तक आसन स्थिर नहीं होगा, तब तक साधना में सिद्धि नहीं मिल सकती। आसनशुद्धि मन्त्र के ऋषि हैं—मेरुपृष्ठ। जो आदियुग से ही पश्यन्तीरूपा नादात्मक वेदमन्त्रों के द्रष्टा होकर आप्तवाक्य के प्रकाशक हैं, वे ही एकमात्र ऋषि हैं; अन्यथा सर्वश्रेष्ठ पण्डित, साधु, संन्यासी, योगी, जीवन्मुक्त होकर भी व्यक्ति ऋषि नहीं कहला सकता। तभी तो जगद्गुरु शङ्कराचार्य को भी ऋषि नहीं कहा गया। लेकिन आजकल तो ऋषि-ब्रह्मर्षि-महर्षि लिखने का फैशन प्रारम्भ हो गया है। वेद-सङ्कलन का कार्य तो न जाने कब सम्पन्न हो चुका है। अब उसका कोई प्रयोजन ही नहीं है। अतः इस कल्प में ऋषियों के पुनराविर्भाव की कोई सम्भावना ही नहीं है। कल्पान्त के अनन्तर नूतन कल्प का आविर्भाव होने पर वेदमन्त्रों के पुनः स्मरणकाल में ही उनका आविर्भाव सम्भव है।

'ऋषि' शब्द इसी कारण से असाधारण है। उस वेद्य ब्रह्म वस्तु के ज्ञानपथ (वेद) के अनुकूल उपायरूप मन्त्रों का प्रत्यक्ष रूप-दर्शन एवं स्मरण करके विशेष-विशेष कार्यसिद्धि के लिये विनियोग-पूर्वक जो अभ्रान्त भाव से उनका प्रकाशन कर गये हैं, उन ऋषियों का क्रिया के (मन्त्र के) प्रारम्भ में स्मृतिरूप पूजन तथा कृतज्ञता-प्रकाशनार्थ ऋष्यादि-न्यास का पहले प्रयोग किया जाता है।

आसनशुद्धि (आसन-ग्रहण) के लिये मेरुपृष्ठ ऋषि ने ही इसके पूत मन्त्र को प्रत्यक्ष किया था; इसीलिये उनका स्मरणरूप पूजन सभी साधकों का कर्त्तव्य कहा गया है। अत: इस मन्त्र के (आसनग्रहण) मेरुपृष्ठ ऋषि हैं, सुतल छन्द है। देवता हैं—कूर्म तथा आसन उपवेशनार्थ इसका सर्वदा विनियोग (प्रयोग) होता है।

तदनन्तर इस मन्त्र में कहते हैं—'हे पृथ्वि! समस्त लोक-लोकान्तर तुम्हारे द्वारा धृत हैं। हे देवि! तुम कूर्मावतार रूप भगवान् विष्णु द्वारा सदा धृत हो। मुझे भी तुमने नित्य अपनी गोद में धारण कर रखा है। अतएव हे माते वसुन्धरे! कृपया इस मन्त्रसाधन-भूमि को भी पवित्र कर दो। मेरी मन्त्रसिद्धि में समस्त प्रकार से सहायता प्रदान करो'।

ब्रह्म की व्यापक चैतन्यमय सत्ता विष्णु से ओत-प्रोत, जडित, विष्णुमाया जडात्मिका प्रकृति-शक्तिस्वरूपिणी लक्ष्मीरूपा भूमि को अनन्त भवार्णव में अपने उभय प्रान्तबिन्दु-स्थित (उत्तर तथा दक्षिण) मेरु के विशाल पृष्ठ पर धारण कर उनकी अव्यक्त शक्ति तथा ज्ञान के प्रकाशक महर्षि मेरुपृष्ठ ने प्रकट होकर इसी प्रकार कूर्मपृष्ठ-युक्त आकार ग्रहण किया। इसी कर्म तथा धर्मरूप आसन पर जीव की कर्मभोग तथा मोक्षरूप उभय क्रिया सम्पादित होती है।

साधन जगत् में उत्तर मेरु अर्थात् ध्रुव वस्तु के बाँयीं ओर निश्चयात्मक बिन्दु को जीव का निवृत्तिस्थल कहते हैं। विश्व-प्रकाशक सूर्य की ओर मुख करके खड़े होने पर उत्तर दिशा बाँयीं ओर पड़ती है। वाम का अर्थ है—प्रतिकूल। लौकिक प्रवृत्ति के प्रतिकूल जो क्रिया है, वही निवृत्तिपथ है। वही ध्रुव अथवा निश्चयात्मक मुक्तिबिन्दु का लक्ष्य कराती है। यही है—उत्तरमेरु; और दक्षिणमेरु है—जीव के भोगक्षेत्र के अनुकूल निम्नगामी अथवा लौकिक प्रवृत्ति का पथ।

यह भोग-मोक्षरूप उभय मेरु के मध्य में समुच्च कूर्मपृष्ठाकार विशिष्ट साधनार्थ विचित्र भूमि है। यह है—सुतल (सु + तल) उत्तम तलयुक्त। साधनार्थ सम्पूर्ण समत्व-प्रद (सिद्धिप्रद) छन्द अर्थात् इसे सुतल छन्द कहा गया है। ज्ञानप्रद मूल आधार अथवा अनन्त समुद्रवनों से वेष्टित विश्वमूलाधाररूप सर्वविध साधना का विचित्र आसन। इसी कारण साधक का प्रथम स्थूलभाव भी उक्त विशाल वैष्णवी माया-सम्पन्न कूर्मपृष्ठ के अनुरूप है। इसी अतिक्षुद्रायतन कूर्मचक्र की प्रतिष्ठा का स्वरूप उक्त श्लोकों में वर्णित है, जो यहाँ उद्धृत किया गया है।

अब इस चक्ररचना-विधि का वर्णन साधकों के हितार्थ किया जा रहा है। पूर्व अङ्कित चित्र के अनुसार एक कूर्माकार मण्डल बनाने से ही काम नहीं चलेगा। इसका गुरु-निर्दिष्ट परिमाण तथा अङ्कन-प्रणाली भी है। उसे जानना आवश्यक है।

पहले उपयुक्त सुविधाजनक विघ्न-रहित स्थान का चयन करने के उपरान्त उस स्थान को गोमयादि-लेप से शुद्ध कर लेना चाहिये। उसके बाद उस स्थान पर पीसे चावल से,

चन्दन से, खड़िया मिट्टी अथवा गेरु से अङ्कित कूर्मचक्र की रचना करनी चाहिये। शिव तथा शक्ति, गणपति तथा सूर्यमन्त्र-साधनार्थ रक्त चन्दन अथवा गेरु अथवा रोली से मण्डल बनाना चाहिये। विष्णुमन्त्र के लिये श्वेत चन्दन, पीली मिट्टी, गोपीचन्दन से मण्डल बनाना चाहिये। अन्य देवताओं के लिये जल से भीगे चावलचूर्ण से मण्डल बनाये जाते हैं। केशर तथा जाफरान पीस कर उससे सभी देवताओं का मण्डल बनाया जा सकता है।

यदि जप-पुरश्चरणार्थ स्थान प्रशस्त है, तब उसी के अनुसार दीर्घ मण्डल की रचना करनी चाहिये; अन्यथा क्षुद्राकृति मण्डल गृहमध्य में होने पर भी कार्य किया जा सकता है। जहाँ प्रशस्त मण्डल का स्थान हो, वहाँ साधक द्वारा अपनी पूरी लम्बाई जितनी एक लकड़ी लेकर उसी से मण्डल का माप करना चाहिये। उससे कम जगह होने पर अपनी अङ्गुली जितनी लम्बाई से दो बार नाप कर एक लकड़ी लेनी चाहिये और उससे भी कम स्थान होने पर मात्र एक हाथ (अङ्गुली से केहुनी तक) की ही लकड़ी का माप बनाना चाहिये। इसी लकड़ी से माप करके अपने पास उपलब्ध जगह के अनुरूप मण्डल बनाना चाहिये। अर्थात् अधिक जगह होने पर अपने शरीर के माप की लकड़ी से चौकोर मण्डल, कम जगह होने पर अपने दो हाथ माप वाली लकड़ी से चौकोर मण्डल और सबसे कम जगह होने पर अपने एक हाथ माप वाली लकड़ी से चौकोर मण्डल निम्न प्रकार से बनाना चाहिये—

कूर्मचक्र (चित्र-१)

ईशानकोण	पूर्व	अग्निकोण
ळ क्ष	क ख ग घ ङ	च छ ज झ ञ
उत्तर — श ष स ह	अं अः, अ आ, इ ई ओ औ, —, उ ऊ ए ऐ, ऌ ॡ, ऋ ॠ	ट ठ ड ढ ण — दक्षिण
य र ल व	प फ ब भ म	त थ द ध न
वायुकोण	पश्चिम	नैर्ऋत्यकोण

अब मान लिया कि साधक कलकत्ता में रहता है, तब प्रथम अक्षर है 'क'। अब इस साधक का दीपस्थान है, जहाँ मण्डल में 'क' लिखा है। उसे इसी 'क' वाले कोष्ठक पर बैठकर पुरश्चरण करना चाहिये, इससे उसका जीवात्मा सहज ही दीप्यमान हो जायेगा।

यही उस साधक के लिये साधनानुकूल सिद्धिदायक क्षेत्र है। यहीं कूर्मचक्र के कूर्म का मुख होगा। इस साधक का कूर्मचक्र इस प्रकार होगा, मण्डल वर्गाकार बनेगा अर्थात् चौड़ाई लम्बाई बराबर हो—

चित्र कवर्ग (साधक कलकत्ता का निवासी है; अतः कूर्मचक्र का मुख कवर्ग वाले खाने में है।)
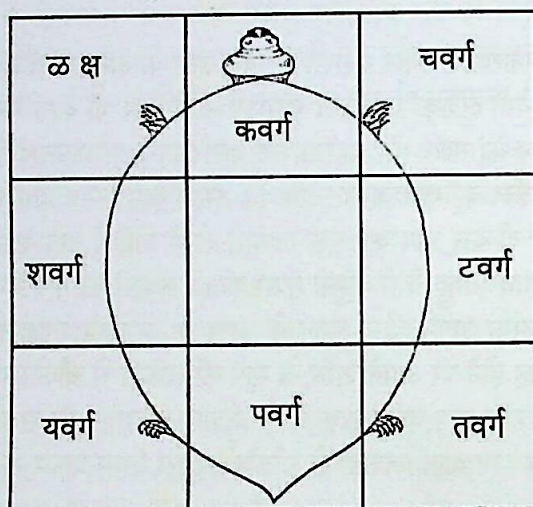
यदि स्वरवर्ण में किसी साधक के साधन-क्षेत्र का प्रथम अक्षर आ जाय और वह साधन-भूमि छोटी है तब केवल स्वरवर्ण के ही क्षेत्र की रचना करनी होगी। यदि साधक का साधन-क्षेत्र अमरावती में हो तब इस प्रकार से कूर्मचक्र होगा—

चित्र अवर्ग

अं अः
अ आ
इ ई
ओ औ
उ ऊ
ए ऐ
ऌ ॡ
ऋ ॠ
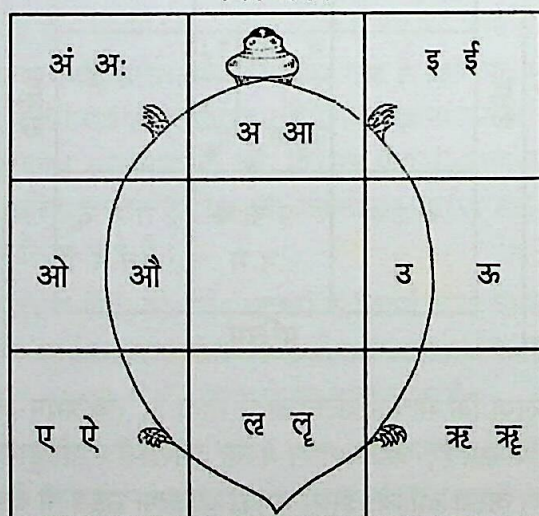
कूर्म के मुख की ओर उसके स्कन्धरूप पृष्ठ पर जो चैतन्यमय दीप्यमान अचञ्चल क्षेत्र है, वहीं आसन रखकर स्थित होकर पूर्वमुख होकर वहीं पर जप-पूजनादि करना चाहिये। पूर्व दिशा किधर है, यह पहले बता दिया गया है।

पुरश्चरणकालीन आहार्य विधि—इस काल में विशुद्ध वैधी आहारादि का नियम-पालन करना चाहिये। इसमें यम-नियम-ब्रह्मचर्य प्राथमिक तथा सामयिक उपाय हैं। इनके द्वारा देह-मन की स्थिरता तथा धैर्य वर्द्धित होता है। विश्वास एवं भक्ति पुष्ट होती है; अन्यथा साधना खण्डित हो जाती है। अत: यह आहार लेना चाहिये—गाय का दूध एवं घृत, गन्ने की चीनी, मिश्री (गुड़ न ले), तिल, मूँग, कन्दमूल (आलू कन्द नहीं है), नारियल, केला, आम, आमलकी, हर्रे, कटहल एवं हविष्यान्न के वाले द्रव्य लेने चाहिये।

मतान्तर से हैमन्तिक धान का चावल, मूँग, तिल, ककुनी दाना, तिन्नी का चावल, मूली, काकोल साग, कन्दमूल, सैन्धव नमक, गाय का घी एवं दही, विना मक्खन निकला दूध, कटहल, आम, हर्रे, पीपल, आमलकी, नारंगी, केला, जीरा, फल-मूल तथा आसानी से मिलने वाले शाक का उपयोग करना चाहिये। यावक (अर्द्धसिद्ध जौ आदि), सत्तू, गेहूँ का आटा, चना, बेर आदि भी लिया जा सकता है। पुरश्चरण में कदम्ब तथा देशी कोहड़ा निषिद्ध नहीं है।

पुरश्चरण-काल में परित्याज्य विषय—मधु, क्षारद्रव्य, समुद्री नमक, तेल, पान, कांस्य पात्र में भोजन तथा दिन में भोजन का त्याग कर देना चाहिये। यदि दिन में भोजन न करने से विशेष दुर्बलता आये तब दिवा भोजन से दोष नहीं होता। मांस, गाजर, उड़द, अरहर, मसूर, कोदो, चना, बासी अन्न, स्नेहहीन द्रव्य तथा कीड़ों से दूषित वस्तु का त्याग करना चाहिये।

पुरश्चरण-काल में मैथुन, रास-रंग, मैथुन-सम्बन्धित वार्त्ता का भी परित्याग करना चाहिये। जो नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं, ब्रह्मचर्य व्रतधारी साधु हैं, वानप्रस्थी या मुमुक्षु हैं, उनके लिये अष्टविध मैथुन त्याज्य है। कुटिलता, रसालाप, मिथ्या भाषण, कसम खाना, बाजी रखना, क्षौरकर्म, तैल-मालिश, गीत-वाद्य सुनना, नृत्यादि अभिनय देखना, गन्धादि-लेपन, इष्टदेवता को समर्पित किये बिना भोजन, असङ्कल्पित कार्य करना एवं गर्म जल से स्नान नहीं करना चाहिये; सात्त्विक भाव रखना चाहिये; भोजन, आलापन, शयन, उपवेशनादि में संयमित रहना चाहिये। कोई ऐसा अन्य कार्य नहीं करना चाहिये, जिससे देहविकार, आलस, इन्द्रिय-चञ्चलता, उदर की पीड़ा होती हो; अपितु ऐसा कार्य करना चाहिये, जिससे पेट ठंढ़ा रहे, मस्तिक शीतल रहे, प्राण में उद्यम शक्ति तथा मन में प्रफुल्लता हो।

इस समय परान्न-भोजन निषिद्ध होता है; क्योंकि भोजन-दाता को आधा फल (पुरश्चरणकारी का आधा फल) मिल जाता है। इसके अतिरिक्त शास्त्र का कथन है कि

परान्न-भोजन से जिह्वा, प्रतिग्रह से हाथ तथा परस्त्री के प्रति कामदृष्टि से मन दग्ध हो जाता है। अत: साधक सिद्धि से वञ्चित हो जाता है। लेकिन यदि पुरश्चरण करने वाला भिक्षाजीवी है तब यथोचित रूप से भिक्षा में प्राप्त भोजन से दोष नहीं होता। अन्न भी उसी से ग्रहण करना चाहिये, जो वैदिक, सनातन धर्मचारी, पवित्र हृदय, लक्ष्मीमन्त, सत्कुलजात व्यक्ति के पास से प्राप्त हो अथवा ब्राह्मण किंवा साधु व्यक्ति से ही अन्न ग्रहण करना चाहिये। पुरश्चरण स्थल से केवल एक अथवा दो मील के ही अन्तर्गत जाकर भिक्षा लेनी चाहिये; दूर नहीं जाना चाहिये।

पुरश्चरण में स्नानादि विधि-निषेध—पुरश्चरण से तीन दिन पहले प्रयोजन होने पर क्षौरकार्य करना चाहिये। ब्रह्मचारी, जटी, साधु, पञ्चकेशी, वानप्रस्थी आदि के लिये तथा स्त्री के लिये क्षौरादि का प्रयोजन नहीं है।

पञ्चगव्य अथवा केवल आमलकी रस-युक्त पवित्रीकृत जल से, स्नानमन्त्र अथवा सङ्कल्प वाक्य से मन्त्र को मन्त्रपूत करके स्नान करना चाहिये। समर्थ होने पर त्रिसन्ध्या में, अभाव होने पर दो सन्ध्या में, उसके अभाव में एक बार ही नित्य स्नान करना चाहिये। उससे भी असमर्थ हो जाने पर मान्त्रिक स्नान तथा मार्जनादि द्वारा देहशुद्धि करनी चाहिये। स्नानान्त में आचमन, तर्पण तथा देव-पूजनादि सम्पन्न करना चाहिये। अपवित्र हाथ से, नग्न अथवा अनावृत्त देह से जप-पुरश्चरण नहीं करना चाहिये। इससे सब कर्म विफल होता है।

जाते समय, शयनकाल में, भोजनकाल में, व्याकुल चित्त से, क्रुद्ध, भ्रान्त तथा क्षुधार्थ होकर, पथ में, अमङ्गल स्थान में, अन्धकार-भरे गृह में, जूता-मोजा द्वारा पैर आवृत की स्थिति में, यज्ञकाष्ठ, पाषाण तथा मृत्तिका में बैठकर, उत्कट आसन अथवा पदद्वय प्रसारित करके जप नहीं करना चाहिये। जपकाल में बिड़ाल, कुक्कुट, बक, कुक्कुर, नीचात्मा, शूद्रादि व्यक्ति, वानर एवं गर्दभ का दर्शन होने पर प्रत्येक बार आचमन कर लेना चाहिये। तथापि निर्दिष्ट जप-पुरश्चंरण काल के अतिरिक्त मानस-जपकाल में यह सब नियम पालन करना आवश्यक नहीं है। शुचि-अशुचि, गमन-उपवेशन, शयन-स्वप्न आदि सभी स्थिति में ज्ञानी व्यक्ति को निर्विकार होकर मानस जप करते रहना चाहिये; इसमें दोष नहीं होता।

जप के समय शब्दोच्चारण नहीं करना चाहिये। यदि असावधानी से शब्दोच्चारण हो जाता है, तब प्रणव-जप कर पुन: जप में प्रवृत्त हो जाना चाहिये। यदि म्लेच्छों का शब्द सुनाई पड़ जाय तब प्राणायाम करके पुनः जप प्रारम्भ कर देना चाहिये। जपकाल में हिचकी आने अथवा अस्पृश्य वस्तु का स्पर्श होने पर आचमनादि करना चाहिये।

अन्त्यज तथा पतित के आगमन पर, असत् आलाप-श्रवण करके अथवा अधोवायु नि:सृत होने पर जप छोड़कर पुन: आचमन, अङ्गन्यास आदि करके सूर्य-अग्नि, दीप, ब्राह्मण, देवता अथवा इष्टगुरु की प्रतिमूर्त्ति में से किसी को देखकर पुन: जपारम्भ करना चाहिये।

यदि मल-मूत्रादि का वेग अनुभूत होने पर जप किया जा रहा हो। तब सब कुछ अपवित्र हो जाता है। मलिन तथा दुर्गन्धयुक्त वस्त्र-परिधान धारण करके अथवा केश-मुख के अपवित्र रहते अथवा इनके दुर्गन्धमय रहते देवता क्रुद्ध हो जाते हैं। जपकाल में जंभाई, आलस्य, निद्रा, तन्द्रा, हिचकी, थूकना, भय, निम्नाङ्ग-स्पर्श जपकारी को नष्ट कर देता है।

मन्त्रसिद्धि में सहायक द्वादश विधि—(१) भू-शय्या, (२) ब्रह्मचर्य, (३) मौन, (४) गुरु-आचार्य की सेवा, (५) यथाविधि नित्य स्नान, (६) नित्य पूजा, (७) दान-त्याग, (८) गुरु-इष्ट की स्तुति, (९) नैमित्तिक पूजा, (१०) इष्ट-गुरु में विश्वास, (११) जपयज्ञ में निष्ठा, (१२) क्षुधा, हिचकी, आलस्य आदि क्षुद्रकर्म का परित्याग। ये मन्त्रसिद्धि में सहायक विधान शिव द्वारा कहे गये हैं।

पुरश्चरण-काल में पवित्र वस्त्र पहन कर कुश-कम्बलादि की शय्या पर निद्रा करनी चाहिये। प्रातः वस्त्र को धोकर शय्या को यथास्थान परिशुद्ध कर लेना चाहिये। एक वस्त्र पहनकर अथवा दो से अधिक वस्त्र पहन कर अथवा नग्न होकर, सङ्गी-साथियों से आवृत होकर, बातें करते हुये जप नहीं करना चाहिये।

यम—इस प्रसङ्ग में अष्टाङ्ग योगविधि के अन्तर्गत यम-नियम के सम्बन्ध में ऋषि तथा शिव से कहे गये दो प्रकार के उपदेश नीचे लिखे जाते हैं। यम का अर्थ है—नियम। इसका पालन करना चाहिये। ऋषियों ने इसके दस नियम बतलाये हैं—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, दया, सरलता, क्षमा, धैर्य, मिताहर तथा शौच।

'आदियामल' में श्रीभगवान् कहते हैं कि उन्नत साधक के लिये निम्नलिखित छः अङ्ग समीचीन हैं—शान्ति, सन्तोष, मितभोजन, निद्रा में न्यूनता, चित्त का दमन, अन्तःकरण की शुद्धि। ये छः विधि ही यम हैं।

नियम—ऋषिवाक्य में उक्त नियम कहे गये हैं—तपस्या, जो कुछ अयाचित मिल जाय, उसी में सन्तोष, अनास्तिकता, दान, देवपूजा, शास्त्रसिद्धान्त का श्रवण-मनन-निदिध्यासन, कुकर्म में लज्जा, शास्त्रीय अनुष्ठान में श्रद्धा, जप-व्रत (होमादि क्रिया)। ये नियम हैं।

आदियामल में भगवान् कहते हैं कि नियम के अन्तर्गत छः नियम हैं—चापल्य-त्याग, मनःस्थैर्य, निरन्तर इष्ट का ध्यान, लौकिक विषयों में लालसा-त्याग, यथाप्राप्त में ही तृप्ति, परमेश्वर में एकाग्रता तथा मान-निन्दा आदि पाशों से मुक्त होना ही नियम है।

पुरश्चरण करने वाले के लिये ये पालनीय हैं; अन्यथा पुरश्चरण क्रिया केवल लोगों को दिखलाने वाली दिखावा बनकर ही रह जायेगी।

●

प्रथमः खण्डः (द्वितीय उल्लासः)

पुरश्चरण में पञ्चाङ्ग-विधान—पहले कहा गया है कि जप, होम, तर्पण, अभिषेक तथा ब्राह्मण-भोजन ही पुरश्चरण के पञ्चाङ्ग-विधान हैं।

जप—जपकाल में मन के स्थिर होने पर ही फल मिलेगा। तभी कुलार्णव तन्त्र में भगवान् कहते हैं कि जप-काल में यदि मन कहीं है, शिव कहीं हैं, शक्ति कहीं है अर्थात् मन-मन्त्र (शिव) तथा गुरु एवं शक्ति (इष्टदेवता) में ऐक्य नहीं है तब शतकोटि कल्प जप करते रहने पर भी मन्त्रसिद्धि नहीं होगी। अत: त्रितयभाव में ऐक्यरूप मन:स्थैर्य से ही जपसिद्धि होती है।

योगाचार्य महर्षि पतञ्जलि ने 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:' कहा है। चित्त की वृत्तियों के निरोध से ही योगक्रिया प्रारम्भ होती है। पूर्वोक्त यम तथा नियम का पालन करने से मन की स्थिरता स्वत: आती है। केवल मुख से जप करना ही जप नहीं है। जिसके देह-मन का संयम नहीं है (यम), जो नियमित साधनाभ्यास नहीं करता (नियम), जो एक आसन पर कुछ देर भी नहीं बैठ सकता (आसन), जो गुरु-प्रदत्त प्राणक्रिया-रूप (प्राणायाम) साधना का अभ्यासी नहीं है, जिसने बाह्य विषयों (विषयपञ्चक) से मन को हटाकर अन्तर्मुखी (प्रत्याहार) नहीं किया है, जिनका चित्त बाह्य अथवा आभ्यन्तरीय किसी एक वस्तु में मन को स्थिर नहीं रख पाता (धारणा), उसका इष्ट-ध्यान भी नहीं हो सकता (ध्यान) और ध्यान-दृष्टि के अभाव में गुरु-मन्त्र तथा इष्ट में ऐक्य-स्थापना कैसे हो सकती है? इसीलिये पुरश्चरण में जप के पूर्व में बाह्य पूजादि क्रिया तथा विविध अनुष्ठानों में इतना कठिन विधि-व्यवस्थासमूह निरूपित किया गया है। वर्त्तमान युग में इन विधि-निषेध को लोग कठिन मानते हैं, लेकिन भक्ति-विश्वासयुक्त मन से अभ्यास करने पर यह सहज सिद्ध हो जाता है।

सनातन साधना स्तरानुरूप क्रम से सज्जित है। पहली सीढ़ी से कूदकर कोई आठवीं-दसवीं तो क्या दूसरी तीसरी पर भी नहीं जा सकता। यह स्तरानुक्रम केवल गुरु ही बतला सकते हैं। धीरता, स्थिरता एवं विश्वास से ही क्रमश: एक से दूसरे, दूसरे से तीसरे सोपान पर लोग उन्नीत होते हैं। बिन्दु-बिन्दु बरसात का पानी एकत्र होने से विशाल ह्रद भी भर जाता है। उदाहरण के लिये मानो काशी विश्वनाथ दर्शनार्थ जाना है। इस सङ्कल्प के साथ-साथ काशी किस ओर है, रास्ते में जाने का क्या साधन है, रास्ते में क्या कष्ट होगा, किस भाव से वहाँ जाना होगा, सब पहले से जान लेना होता है। केवल कल्पना तथा तर्क-वितर्क करके पड़े रहने से कोई काशी नहीं पहुँच जाता।

साधारणत: पुरश्चरण कार्य में मन्त्र-जपार्थ कुछ लाख की सङ्ख्या निर्दिष्ट की जाती है। जैसे कहीं एक लाख जप का विधान है। यह लाख (लक्ष) सङ्ख्या साधक के लिये लक्ष्य वस्तु होने पर भी सिद्धमण्डली में इसका अर्थ अन्य है। यह लक्ष्यार्थ है। सदाशिव कहते हैं कि गुरु + मन्त्र + देवता का ऐक्य सिद्ध कर लेने पर उस ज्योति:स्वरूप तीर से लक्ष्य-भेदन करना ही सूक्ष्म लक्ष्य-भेद है। इस लक्ष्य से भ्रष्ट हो जाने पर सिद्धि नहीं मिलती। लक्ष्यभेद हो जाने पर ही साधक पुरश्चरण में सफल हो सकेगा। इस लक्ष्यभेदन द्वारा ही कुण्डलिनी शक्ति की प्राप्ति होती है।

यद्यपि जपकार्य अत्यन्त दूर का तथा ऊर्ध्व स्तर का कार्य है, तथापि दीक्षा के पश्चात् गुरु ही इसका उपदेश देकर इस दूरी को कम कर देते हैं। जप ही मन्त्रयोगी की अन्तिम वस्तु है। यदि मन्त्रयोगी का लक्ष्य पहले से निश्चित नहीं होता, तब साधक के उच्छृङ्खल तथा पथभ्रष्ट होने की समस्या रहती है।

लौकिक जगत् में सूर्य अथवा चन्द्र चाहे कितनी ही दूर क्यों न हों, वे अपने प्रतिबिम्ब से विच्छिन्न नहीं होते। वे अपनी रश्मि की रेखा द्वारा सतत् संयुक्त रहते हैं; अन्यथा प्रतिबिम्ब का अस्तित्व ही नहीं रहता। भले ही उस रश्मिप्रभाव के मध्य में सामयिक भाव से मेघखण्ड आकर उस प्रतिबिम्ब को बनाने वाले रश्मिप्रवाह में बाधा दे देता है, तब वह प्रतिबिम्ब परिलक्षित नहीं हो पाता।

उस अनन्त अज्ञात सुदूर प्रदेश से सूर्य अथवा चन्द्र की तरह अखण्ड मण्डलाकार रूप से भगवान् का उदय होता रहता है। उनके किरणजाल में (आलोकरेखा में) परमाणु से लेकर त्रसरेणु रूप से न जाने कितनी वस्तुयें दृष्टिगोचर होती रहती हैं। समस्त चराचर जड़-अजड़ सब कुछ उस परमाणुसमूह से परिपूर्ण है। उनकी ओर लक्ष्य रखने से दृष्टिगोचर होगा कि कितने ही परमाणु आते हैं, भासित होते हैं। जब ये परमाणु परिदृश्यमान नहीं होते, उक्त परमाणुमय वस्तु तथा आलोकमय यह रेखा परस्पर विचित्र सम्बन्धसूत्र से ओत-प्रेतरूपेण जड़ित है कि एक के अभाव में अन्य का अस्तित्व ही नहीं रहता, तब केवल पृथ्वी में जिस वस्तु पर यह रेखा पतित होती है, केवल उसे ही देखा जा सकता है। तब केवल इस प्रतिभात आलोक अंश के बिना रश्मिखण्ड का अस्तित्व परिलक्षित ही नहीं होता।

गृह में इस आलोक के मूल चन्द्र अथवा सूर्य का दर्शन करने के लिये अथवा उनका अस्तित्व-निर्णय करने के लिये साधक को इस प्रतिभात किरण के निकट जाना होगा तथा यह देखना होगा कि वह किरण कमरे में कहाँ से आ रही है; तब तुम शिर ऊपर करने पर उस किरण के उत्स का दर्शन कर सकोगे। प्रतिभात विम्बज्योति का आश्रय लेकर ही मूल विम्ब अथवा लक्ष्यबिन्दु का दर्शन करना होगा। उसी प्रकार मूलाधारस्थ कुण्डलिनी का लक्ष्य करके (जो ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है) ही तुम ब्रह्मरन्ध्रस्थ आत्मज्योतिरूप ब्रह्मबिम्ब

को लक्ष्य बनाकर उसका भेदन कर सकोगे। महावीर अर्जुन को भी जल में प्रतिबिम्ब देखकर लक्ष्यभेद करना पड़ा था। यह साधना गम्भीर तथा गूढ़ विज्ञानमय भित्ति पर प्रतिष्ठित है। उसे सोचने में ही स्तम्भित हो जाना पड़ता है। इसका रहस्य गुरुकृपा से ही ज्ञात हो सकेगा कि प्रतिबिम्ब देखकर विम्बभेद कैसे होता है?

मन्त्र का जातकाशौच तथा मरणाशौच—जपकाल में मन्त्र का प्रथम उच्चारण करते ही साधक के हृदय में मन्त्र का जातकाशौच हो जाता है तथा मन्त्र का उच्चारण करने के पश्चात् मरणाशौच होता है। अर्थात् दोनों स्थिति में मन का गुप्त अन्तः चाञ्चल्य होने लगता है। इस अशौचद्वय से युक्त मन्त्र कभी भी सिद्ध नहीं होता। अतएव इस अशौचद्वय के निवारणार्थ शिवात्मक प्रणव को आदि तथा अन्त में लगाना चाहिये। जिनके लिये ॐ का उच्चारण निषिद्ध है, उन्हें 'ओं' अथवा 'ह्रीं' से मन्त्र को पुटित कर देना चाहिये और मन्त्रजप के प्रारम्भ में तथा अन्त में १०८ बार सम्पुट मन्त्र का जप करना चाहिये। इस भाव से अशौचद्वय समाप्त हो जाते हैं और जप्य मन्त्र सिद्धिदायक हो जाते हैं।

मन्त्रचैतन्य— मन्त्र को चैतन्य से युक्त करना चाहिये। अर्थात् मन्त्र के वर्णभाव अथवा अक्षरभाव का त्याग करके सच्चिदानन्दमयी महाशक्ति के चित् भाव का मन्त्र में परिदर्शन करना चाहिये। चित् शक्तिमय होने से ही मन्त्र सजीव, सचेतन, सिद्धमन्त्र हो जाता है। यह अवश्य ही कठिन साधन-सापेक्ष कहा गया है। यह सुविज्ञ तथा सुकर्मी गुरु के उपदेश के बिना समझ में नहीं आ सकता, तथापि यहाँ गुरुपरम्पराक्रम के अनुसार कुछ प्रकाश-प्रक्षेपण किया जा रहा है—

१. सर्वश्रेष्ठ मन्त्रचैतन्य-प्रक्रिया—मन्त्रात्मक शब्द अथवा तदात्मक वर्ण चित् शक्ति-सहयोग से ही ध्वनित एवं प्रकाशित होते हैं। अतः मन्त्ररूपेण शब्दसमूह (मातृका वर्ण) उस चित् शक्ति में सतत् समारूढ रहते हैं। जब मूलाधार से होकर एक-एक चक्र का भेदन होने लगता है, तब मन्त्रात्मक बाह्य रूप एवं वर्णभाव विलुप्त होकर केवल ध्वन्यात्मक हो जाता है। तभी मन्त्र चैतन्यमय होता है।

नादतत्त्व—पहले कहा गया है कि जीव की जीवनी शक्ति प्राणशक्तिरूपा कुण्डलिनी ही विद्याशक्तिमयी तथा चैतन्यरूपा है। वही वेदादि समस्त मन्त्रों का मूलाधार है। यदि कोई मन्त्र शक्ति अथवा चैतन्ययुक्त न हो, तब वह किसी भी रूप में फलप्रद नहीं होता। अक्षर अर्थात् अ + क्षर, जिसका क्षर अथवा क्षय नहीं है, वह अविनाशी परमनाद 'ॐ' ही शब्दब्रह्म है। मूलाधारस्थ बिन्दुरूपा शक्ति उसकी आधारभूता है। अर्थात् सहस्रारस्थ ब्रह्मबिम्ब अथवा आत्मबिन्दु की प्रतिबिम्बरूपा मूलाधार-स्थित होकर यह कुण्डलिनी शक्ति सतत् अवस्थान करती है। वहीं से नाद का बहिर्विकास किंवा जीव का शब्दोच्छ्वास

उत्पन्न होता है। ॐकार के सात अंग हैं—अ, ऊ, म, नाद, बिन्दु, कला एवं कलातीत। साथ ही प्रणव के चतुष्पाद भी हैं—स्थूल, सूक्ष्म, बीज एवं साक्षी।

उसी से योगीगण स्थूल शरीराभिमानी आत्मा के समान मूल मन्त्र के स्थूल नादात्मक विश्वरूप का दर्शन करते हैं; किन्तु सप्ताङ्गमय प्रणव की अवाङ्मनसगोचर अवस्था ही उसका मूल है। उसका सप्तम अंग कलातीत ही परमा नाद अथवा परानाद विकास की अनादि भूमि है। उससे ही उसके बाद वाले षष्ठ अंग कला का विकास होता है। वह भी वाक् एवं मन का अनुभाव्य विषय है। वह सर्वदा साक्षी-स्वरूप है। तदनन्तर इसी कला से विश्व के ब्रह्मरन्ध्र में सहस्रार केन्द्र में उसका बीजात्मक मूलबिन्दु परिदृष्ट होता है। यह प्रणव का पञ्चम अंग बिन्दु है। यह ऊकार के ऊपर का 'ं' (बिन्दु) है। इसके युक्त होते ही ॐकार का परिदृश्य भाव प्रकाशित होता है।

इसके नीचे मूलनादात्मक चन्द्रकला के आकार में आज्ञाचक्र के ऊपर सोमचक्र रूप से योगीगण के ज्ञाननेत्र में ॐकार का चतुर्थ अंग नाद प्रकाशित हो जाता है। इस नादात्मक अनादि श्रुति अथवा बीजात्मक वेदमन्त्र को साक्षात् करके मन्त्रद्रष्टा मुनिगण ऋषित्व प्राप्त करते हैं। तभी तदात्मक इस नाद को सब पश्यन्ती कहते हैं।

जब यह नाद आज्ञाचक्र का अतिक्रमण करके अज्ञान भूमि में मेरुदण्ड के मध्य से होकर क्रमशः मध्यमा नादरूप केन्द्र अनाहत चक्र में आता है, तब योगीगण इस सूक्ष्म ध्वनिमय मेघगर्जन के समान अद्भुत अनाहत ध्वनि को हृदयङ्गम करते हैं। जब अनाहत चक्र में यह नादध्वनि अविरत विघोषित होती है तब नाद की इस अवस्था को मध्यमा कहते हैं। तदनन्तर जब यह नाद स्थूल प्राणवायु के सहयोग से विशेषभावेन प्रखर अर्थात् सुस्पष्टरूपेण 'स्वर' बनकर जीव के कण्ठ से होकर तालु आदि वाक् यन्त्र के योग से बाहर विकसित होता है, तब उसे वैखरी कहते हैं।

यह वैखरी नाद ही क्रमशः अ से क्ष-पर्यन्त ५० मातृका वर्णात्मक अक्षर कहलाता है। इन अक्षरसमूह के संयोग से पद का तथा पद के समन्वय योग से जीव के कण्ठ में वाक्यरूप से उसका विकास होता है। सभी मन्त्र ही वाक्यात्मक हैं। वेद, शास्त्र, पुराण तथा काव्य, समस्त लौकिकी भाषा, षड्ज आदि सप्तस्वरात्मक सङ्गीत—सभी वैखरी नाद से ही सम्भूत हैं। इसीलिये वाग्वादिनी सरस्वती सुषुम्नारूपेण सर्वभूतसमूह की गुप्त गुहा का सतत आश्रय करके रहती हैं।

जीव का यह वाक् यन्त्र भी ठीक हारमोनियम के समान है। इसका बाहरी अंश है—परदा और भीतर रीढ़ होती है। तदनन्तर भाती होती है, जो वायु-प्रेषण करती है और वादक की इच्छाशक्ति से उसकी अङ्गुलियाँ जैसे प्रशन करती हैं, वायु तदनुरूप शब्दित होती है। जीव का वाक् यन्त्र भी प्राण-अपानरूप वायु क्रिया, मनादि अन्तःकरणचतुष्टय की चैतन्य शक्ति पर आधारित है।

अत: अकारादि समस्त मातृका वर्णों की आदि विकासभूमि ब्रह्मरन्ध्रान्तर्गत गुप्त मातृकापीठ अथवा कुलकुण्डलिनी का अन्तिम आश्रय आलय स्थान है। वहाँ से विकसित आत्मधारा ही मूलाधारस्थ प्रतिबिम्बरूपा मातृका शक्ति है अथवा कुलकुण्डलिनी है, जो शिव-शक्तियुक्त परमशिवबिन्दु अथवा आत्मबिन्दु का आदि 'आलय' तथा आविर्भाव स्थान है। परमाद्भुत मन्त्रमाता घण्टाकार सहस्रार के अन्तर्गत घण्टिकास्वरूप निरालम्ब पुरी है। गुप्तपादुका कमल (गुरुपादुका कमल) के मध्य में स्थित यह अ-कथादि युक्त गुप्त मूल मातृकापीठ है। जीव की जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति के अन्तर्गत आत्मा की तीन अवस्था तुरीय, कारण (सुषुप्ति), सूक्ष्म (स्वप्न) तथा स्थूल (जाग्रत्) अवस्था के समान नाद की भी चार अवस्था यथाक्रम से—परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी हैं।

सुषुम्ना ब्रह्मज्ञान-जननी सरस्वती है। उसी के मध्य में कुण्डलिनी-विवर (कुण्डलिनी के गमनागमन का पथ) है। यह अन्त:सलिला का गुप्त प्रवाह कहा जाता है। यह प्रवृत्ति तथा निवृत्तिरूप से सतत् विद्यमान है। एक है—बहिर्मुखी प्रवृत्तिमय स्थूल वाक् शक्ति-प्रदायक भाव और दूसरा है—निवृत्तिमय सूक्ष्म ब्रह्मज्ञान-प्रदायक भाव। मानव शिशु के भूमिष्ठ होने के पश्चात् जब तक सुषुम्ना की अनुलोम गुप्त गति सुस्पष्टत: प्रवाहित होती है, तब तक वाक्य का पूर्ण विकास नहीं होता। अत: पूर्वोक्त परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी-रूप चतुर्विध नाद का वास्तविक विकास जीव के किस अंश से उद्भूत होता है तथा क्रमश: परिस्फुट होता है, इसे योगानुशीलन में लगे साधक सहज ही जान लेते हैं।

सहस्रार के अन्तर्गत गुप्तमातृकापीठ के ऊपर है—परा अथवा मूल नाद। यह क्रमश: अनुलोम पथ से आज्ञाचक्र में आकर उसके केन्द्रस्थित 'लं' बिन्दु-सम्भूत (इस 'लं' का उच्चारण 'ड़ं' के समान होता है) तृतीय नयनपथ में स्थित होता है। यही है द्वितीय नाद पश्यन्ती। स्वर के आदि स्थूल षोड़शाक्षर-युक्त विशुद्ध चक्र से इस गुप्त स्वरवर्ण का विकास होता है। वह अनाहत चक्र में आकर मध्यमा रूप तृतीय नादरूप हो जाता है। उसका स्थूल रूप ही हृदय के स्पन्दन से उत्थित शब्द का उत्स है (हृदय में जो शब्द स्टेथेस्कोप लगाने से सुना जाता है, वह शब्द)। अथवा दोनों कानों को अपनी अङ्गुली से बन्द करने पर अन्दर के अनाहत शब्द का कुछ अनुभव होने लगता है। अन्त में मूलाधार में आने पर कुण्डलिनी शक्ति के बहिर्विकास के रूप में वैखरी रूप से यह नाद स्पष्ट होता है। यह चतुर्थ नाद है। साधारण जीव मूलाधार से उत्थित इस चतुर्थ नाद वैखरी का कण्ठपथ में अनुभव करते हैं, यही है—वाक्यात्मक बाह्य स्वर।

जो कोई प्रकृत नादसाधक (योगपथारूढ़ साधक) इस बहिर्मुखी स्वर का सङ्कर्षण करके गुरु द्वारा उपदिष्ट विधान के द्वारा कुण्डलिनी-जागरण से तथा उसकी ऊर्ध्वगति से समायुक्त होकर मूलाधार भूमि से अन्तर्मुखी नाद के सहयोग से उत्थित होते हैं, तब साधक का स्थूल मन्त्र भी चैतन्ययुक्त हो जाता है। तब साधक क्रमश: ऊर्ध्वपथ में मन्त्र की इस

चैतन्ययुक्त अवस्था को प्राप्त करके विपरीतक्रम से अनाहत में मध्यमा, आज्ञा में पश्यन्ती तथा सहस्रार केन्द्र में परा नाद की उपलब्धि कर लेते हैं। अतएव मन्त्रयोगी साधक का इस प्रकार से मन्त्रचैतन्य जब तक नहीं हो जाता, तब तक मन्त्रसिद्धि नहीं होती।

२. शक्त्यात्मक सूक्ष्म मन्त्रचैतन्य-क्रिया—जो उपरोक्त साधना में असमर्थ हैं, उन्हें इस उपाय का सहारा लेना चाहिये। प्रथमत: उनको यह दृढ़ सङ्कल्प करना चाहिये कि 'मेरा मन्त्र चैतन्ययुक्त हो जाय'। तदनन्तर यह चिन्तन करना चाहिये कि मातृका वर्णात्मक अकारादि वर्णसमूह सहस्रार में विकसित होकर सुषुम्ना पथ से अनुलोम गति से सूक्ष्मरूपेण नीचे उतर कर जीव के अनाहत केन्द्र में आकर सर्वदा वास करते हैं और चित् शक्तिमयी कुण्डलिनी के त्रिकोण यन्त्राधार के त्रिपार्श्वस्थिता इच्छा, क्रिया तथा ज्ञानरूपी त्रिधा शक्ति के प्रभाव से प्राणवायु के स्थूल विकासरूप प्रश्वास पथ में प्रवाहित होते हैं और कण्ठ में आकर जिह्वादि वाक् यन्त्र की सहायता से बहिर्गत होते हैं।

तदनन्तर यह चिन्तन करना चाहिये कि मेरा यह जप्य मन्त्र वर्णात्मक शब्दमय अथवा नादमय है। अब यह मूलाधारस्था चैतन्यमयी कुण्डलिनी शक्ति के साथ मिलकर एकाकार हो गया है।

अब यह चिन्तन करना चाहिये कि मणिपूर चक्र इस अभेद चैतन्यमय मन्त्र का प्राणरूप है। इस भाव की धारणा परिपुष्ट होने पर अर्थात् मन्त्र अथवा चित् शक्ति अथवा आत्मचैतन्य की भावना स्थिरतर होने पर मन्त्र का चैतन्य सम्पादित होता है।

३. जपात्मक-प्रधान मन्त्रचैतन्य क्रिया—उपरोक्त दोनों क्रियाओं की अपेक्षा मन्त्र-चैतन्य-विधान का सहज उपाय यह है कि 'श्रीं ऐं ह्रीं' बीज से तथा स्वर-व्यञ्जन वर्णमयी ५० मातृका वर्ण द्वारा पुटित करके अपने गुरु-दत्त मन्त्र को भक्तिपूर्वक १०८ बार जप करने से मन्त्र सामर्थ्ययुक्त हो जाता है।

४. ध्यानात्मक मन्त्रचैतन्य क्रिया—उपरोक्त तीनों क्रिया से भी सहज विधि यह है कि हृदय (अनाहत केन्द्र) में आत्मसूर्यमण्डल का चिन्तन करके उसमें 'इष्ट मन्त्र की स्थिति है' यह भावना एकाग्र भाव से करने के साथ-साथ यह भी चिन्तन करना चाहिये कि गुरुदेव साक्षात् सनातन शिव हैं तथा प्रत्यक्ष परमात्मा हैं। उनकी चित् शक्ति सर्वदा उनमें अभेदभाव से विराजित रहती है। ऐसा ध्यानरूप लक्ष्य स्थापित कर लेने पर मन्त्र चैतन्यान्वित हो जाता है।

५. साधारण मन्त्रचैतन्य क्रिया—यह सर्वापेक्षया सङ्क्षिप्त उपाय है। मूल मन्त्र को 'ईं' द्वारा पुटित करके एकाग्र होकर भक्तियुक्त हो मन-ही मन जप करना चाहिये। दीक्षा के पश्चात् ऐसा जप करते-करते जप के विघ्न तथा प्रतिबन्धक दूर हो जाते हैं और मन्त्र में चैतन्याविर्भाव हो जाता है।

६. मन्त्रचैतन्यभाव का विकास—शास्त्र कहते हैं कि चैतन्य मन्त्र सर्वसिद्धिप्रद होते हैं तथा अचैतन्य मन्त्र केवल वर्ण अथवा शब्दमात्र होते हैं। मन्त्र जब चैतन्य होता है तब हृदयग्रन्थि का भेदन होता है। तब आनन्दाश्रु, पुलक, रोमाञ्च, देहस्पन्दन, भावावेश तथा वाक्य का उच्चारण भी गद्‌गद रूप से होने लगता है।

७. मन्त्रसिद्धि का एक आनुष्ठानिक उपाय—भूतलिपि से इष्ट मन्त्र को पुटित करके अनुलोम तथा विलोम जप करना चाहिये। भूतलिपि यह है—अ इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ ह य र व ल ङ क ख घ ग ञ च छ झ ज ण ट ठ ढ ड न त थ ध द म प फ भ ब श ष स—ये भूतवर्ण हैं। यह अनुलोमक्रम है।

अब विलोमक्रम कहते हैं—स ष श व भ फ प म द ध थ त न ढ ड ठ ट ण ज झ छ च ञ ग घ ख क ङ ल व र य ह औ ओ ऐ ए ऌ ऋ उ इ अ।

अब साधक को अपने इष्टमन्त्र के उभय पार्श्व में उक्त भूतलिपि के एक-एक अक्षर को पुटित करके नित्य १००० जप करना चाहिये। एक मास तक यह जप करने के बाद पुरश्चरण करना उचित होता है। यथाविधि-निर्दिष्ट जप समाप्त करके जप-समर्पण करना चाहिये।

अब यह भावना करनी चाहिये कि इष्टदेवता कह रहे हैं कि 'जप सफल होगा' और मूल मन्त्र से प्राणायाम करना चाहिये।

साधारण जप्य मन्त्र का ही संस्कार एवं शोधन किया जाता है। गुरुमण्डली का कथन है कि काली-तारा आदि सिद्ध मन्त्रसमूह के संस्कार का प्रयोजन नहीं होता। वे मन्त्र स्वतः सिद्ध तथा नित्य संस्कृत होते हैं।

जपप्रारम्भ में तीन बार तथा जप-समापन में तीन बार नित्य प्राणायाम करना चाहिए। मन्त्रजप प्रारम्भ करने के पहले तथा अन्त में इष्टदेवता की गायत्री का १०-१० बार जप करना चाहिये। श्री सदाशिव का वचन भी स्मरणीय है—

एता दश महाविद्याः सिद्धविद्याः प्रकीर्त्तिताः।
नात्र सिद्धाद्यपेक्षास्ति नक्षत्रादिविचारणा॥
कालादिशोधनं नास्ति नारिमित्रादिदूषणम्।
सिद्धविद्यातया नात्र युगसेवा परिश्रमः॥
नास्ति किञ्चिन्महादेवि दुःखसाध्यं कदाचन।
तथा चैता महाविद्याः कलिदोषप्रबाधिताः॥

हे महादेवि! काली, तारा, षोडशी आदि १० महाविद्या का सिद्धादि विचार, नक्षत्र-चक्रादि विचार, कालादि-शोधन तथा अरिमित्रादि विचार भी आवश्यक नहीं है। इस समस्त सिद्धविद्या की साधना में युगसेवा-परिश्रम नहीं है। इनकी उपासना-हेतु जो

व्यवस्था है, वह सरल है, दुःखसाध्य नहीं है। ये सब महाविद्या कलिदोष से दूषित नहीं हैं। यद्यपि इनके मन्त्रों का कोई संस्कार नहीं करना है, लेकिन यदि सन्तोष न लगे तो अपने मन को सन्तुष्ट करने के लिये शोधन कर भी ले तो कोई दोष नहीं है।

मन्त्रों के दश संस्कार—तन्त्रों में साधारणतया जप्य मन्त्रों के दशविध संस्कार का विधान है, जैसे—जनन, जीवन, ताड़न, वेधन, अभिषेक, विमलीकरण, आप्यायन, तर्पण, दीपन और गुप्ति। इसमें पहले एक मातृका यन्त्र का अङ्कन करना चाहिये। इसे दीक्षा प्रदान-काल में गुरु स्वयं करते हैं। स्वर्णादि शुद्ध धातु के पत्र पर यहाँ अङ्कित चित्र के अनुरूप यन्त्र बनाना चाहिये।

शक्तिमन्त्र का संस्कार—काश्मीर से उत्पन्न कुङ्कुम या जाफरान से (न मिले तब रक्तचन्दन से) शक्तिमन्त्र का संस्कार करना चाहिये। (मातृकायन्त्र बनाना चाहिये)

विष्णुमन्त्र संस्कार—श्वेत चन्दन से विष्णुमन्त्र का संस्कार करना चाहिये। (मातृकायन्त्र बनाना चाहिये)।

सूर्य तथा गणेशमन्त्र संस्कार—इसके लिए रक्त चन्दन से मातृकायन्त्र बनाना चाहिये।

मातृका यन्त्र
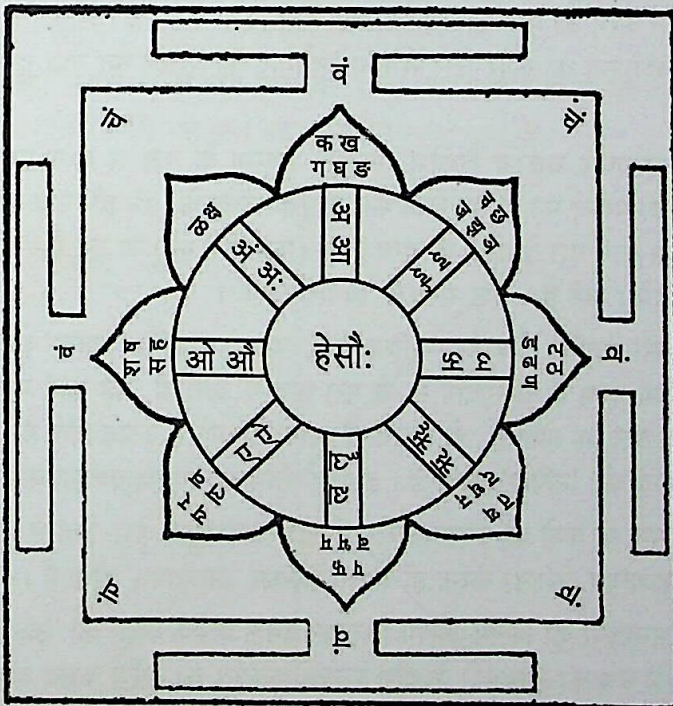
१. दीक्षाकाल में दीक्षादाता गुरु को इस मातृका यन्त्र की रचना तथा यथाविधि पूजा करके पहले मन्त्राक्षर ग्रहण करना चाहिये, तदनन्तर अपने शिष्य को मन्त्रोपदेश प्रदान करना चाहिये। यही मन्त्र-संस्कार का प्रथम कार्य है। इसे मन्त्रजनन भी कहा जाता है। इसे साधक को स्वयं नहीं करना चाहिये।

२. मन्त्र के प्रत्येक वर्ण के पहले तथा अन्त में ॐ लगाना चाहिये (अनधिकारी को 'ओं' अथवा 'ह्रीं' लगाना चाहिये)। कम-से कम १० बार अथवा १०० बार जप करना चाहिये। यही मन्त्र का द्वितीय 'जीवन' संस्कार कहलाता है।

३. जप्य मन्त्र के वर्णों को चन्दन से लिखकर 'यं' बीज से १०० बार अथवा १० बार ताड़न करना चाहिये, जो चन्दन के जल से छींटा देने का नाम है। अथवा 'यं' बीज द्वारा इष्ट मन्त्र के प्रत्येक वर्ण को पुटित करके १०० बार अथवा १० बार जप करना चाहिये। यही है—तृतीय संस्कार 'ताड़न'।

४. जप्य मन्त्र के वर्णों को पृथक्-पृथक् लिखकर जितने अक्षर मन्त्र में हों, उतने लाल कनेर के पुष्प द्वारा 'रं' बीजमन्त्र से उसे अभिमन्त्रित करना चाहिये। अथवा इष्ट मन्त्र के प्रत्येक अक्षर को 'रं' बीज से पुटित करके १०-१० बार जप करना चाहिये। यही है—चतुर्थ संस्कार 'बोधन'।

५. मन्त्र के सभी वर्णों को पृथक्-पृथक् लिखकर पीपल के पत्ते से 'रं' मन्त्र द्वारा अभिसिञ्चित करने को मन्त्र का पञ्चम संस्कार 'अभिषेक' कहते हैं। शक्तिमन्त्र का सिञ्चन मधु से, विष्णुमन्त्र का कर्पूर-जल से तथा शिवमन्त्र का सिञ्चन घृत तथा दुग्ध से किया जाता है।

६. मूलाधार चक्रस्थ त्रिकोण यन्त्रयुक्त सुषुम्ना के मूल से मध्य-पर्यन्त अर्थात् अनाहत चक्र-पर्यन्त मन ही मन जप्य मन्त्र का चिन्तन करके 'ॐ ह्रौं' मन्त्र द्वारा आणव, मायिक तथा कार्म मल के दोषों को दग्ध किया (मन्त्र दोषों को) जा रहा है—ऐसा चिन्तन करना चाहिये। यही है—षष्ठ संस्कार 'विमलीकरण'।

स्त्री-संसर्गजनित दोष है—मायिक मल, मन्त्रपुरुष-जनित अथवा पुरुषार्थ-जनित अथवा किसी पुरुष के संसर्गदोष से जो मल मन्त्र में आता है, वह कार्म मल कहलाता है। आणव मल वह होता है, जो उक्त दोनों मल के मिश्रण से उत्पन्न होता है। इन त्रिविध मलयुक्त मन्त्र को 'निषिद्ध' कहते हैं। इसलिये विमलीकरण आवश्यक कहा गया है।

७. मन्त्र के वर्णों को अलग-अलग लिखकर स्वर्णयुक्त कुश-जल से अथवा पुष्प-जल से आप्यायन (स्नान) करना ही सप्तम संस्कार 'आप्यायन' होता है।

८. मन्त्राक्षरों को अलग-अलग लिखकर उनके प्रत्येक अक्षर को 'ॐ ह्रौं' मन्त्र से पुटित करके जप कर तत्त्वमुद्रा के द्वारा प्रत्येक मन्त्राक्षर का तर्पण करना अष्टम संस्कार

'तर्पण' है। शक्तिमन्त्र का तर्पण मधु से, विष्णुमन्त्र का कर्पूर-जल से एवं शिवमन्त्र का तर्पण दुग्ध से करना चाहिये।

९. जप्य मन्त्र को 'ॐ ह्रीं श्रीं' द्वारा पुटित करके १०८ बार जपना ही मन्त्र को दीप्त करना होता है। इसे मन्त्र का नवम संस्कार 'दीपनी' कहते हैं (त्रिपुरसुन्दरी के पञ्चकूट की भिन्न-भिन्न सिद्ध दीपनी है, जो गुरुगम्य है)।

१०. इष्ट मन्त्र को किसी को प्रकट न करना ही इसका दशम संस्कार 'गुप्ति' है।

पुरश्चरणादि के पूर्व इस प्रकार से मन्त्र को संस्कृत करके जपने से लाभ होता है।

पुरश्चरण जप आरम्भ करने का विधान—स्थानादि की पूर्वकथित रूप से व्यवस्था करके प्रयोजनानुरूप कूर्मचक्रानुसार मण्डल का निर्माण करना चाहिये। यदि गुरु-परम्परानुसार इनका प्रयोजन न हो तब केवल परिशुद्ध भाव से एकाहारी रहकर अगले दिन स्नान-तर्पणादि नित्य क्रिया समाप्त करके शुद्धान्त:करण से साधनभूमि अथवा वेदी के चतुर्दिक् विघ्नविनाशक कील गाड़ देना चाहिये। एतदर्थ वट, गूलर, पाकड़ की एक बित्ते की दस कील लाकर उन पर 'ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट्' का १०८ बार जप करने के बाद उक्त साधनभूमि के दसों ओर गड्ढा करके इस मन्त्र से एक-एक कील को उस गड्ढे में गाड़ देना चाहिये। यदि साधनभूमि पक्की हो तो उसमें दस गोल छोद करके उसमें ही कीलों को गाड़ना चाहिये। दश स्थान कहाँ होगा, इसके लिये एक चित्र बनाया जा रहा है। जहाँ दिशा लिखी है, वहीं गाड़ना चाहिये। कील गाड़ते समय यह मन्त्र पढ़ना है। पहले 'ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट्' को १०८ बार पढ़कर कीलों को अभिमन्त्रित करने के बाद गाड़ते समय यह मन्त्र पढ़ना चाहिये—

कील गाड़ने का चित्र
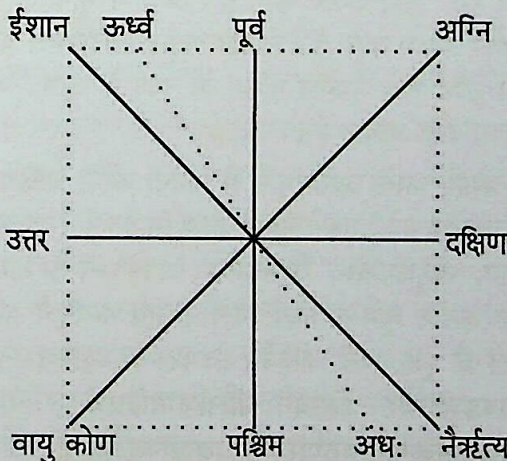
ॐ ये चात्र विघ्नकर्त्तारो भुवि दिव्यन्तरीक्षगाः ।
विघ्नीभूताश्च ये चान्ये मम मन्त्रस्य सिद्धिषु ॥
ममैतत् कीलितं क्षेत्रं परित्यज्य विदूरतः ।
अपसर्पन्तु ते सर्वे निर्विघ्नं सिद्धिरस्तु मे ॥

तत्पश्चात् 'एते गन्धपुष्पे ॐ सुदर्शनाय अस्त्राय फट्' मन्त्र से उन दस कीलों का पूजन करने के उपरान्त पूर्व से प्रारम्भ करके यथाक्रमेण इन्द्रादि १० दिक्पाल (अथवा लोकपाल) का आवाहन करना चाहिये ।

'ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्रादि लोकपाल इहागच्छ इहागच्छ' इत्यादि मन्त्र से आवाहन मुद्रा के साथ निम्नलिखित रूप से सभी की पञ्चोपचार से यशाशक्ति पूजा करनी चाहिये ।

दश दिक्पाल-पूजा—

पूर्व में— एते गन्धपुष्पे ॐ लां इन्द्राय लोकपालाय नमः ।
अग्निकोण में— एते गन्धपुष्पे ॐ रां अग्नये लोकपालाय नमः ।
दक्षिण में— एते गन्धपुष्पे ॐ यां यमाय लोकपालाय नमः ।
नैर्ऋत्य में— एते गन्धपुष्पे ॐ क्षां निर्ऋतये नमः ।
पश्चिम में— एते गन्धपुष्पे ॐ वां वरुणाय नमः ।
वायुकोण में— एते गन्धपुष्पे ॐ यां वायवे नमः ।
उत्तर में— एते गन्धपुष्पे ॐ कुं कुबेराय नमः ।
ईशान में— एते गन्धपुष्पे ॐ हां ईशानाय नमः ।
अधः में— एते गन्धपुष्पे ॐ ह्रीं अनन्ताय नमः ।
ऊर्ध्व में— एते गन्धपुष्पे ॐ आं ब्रह्मणे नमः ।

ऊर्ध्व में पूजनार्थ साधारणतः साधक आसनशुद्धि के पश्चात् अपने मस्तक के ऊपर हाथ जोड़कर 'ब्रह्मणे नमः' द्वारा प्रणाम करते हैं । अधः में भूमितल पर प्रणाम करके 'अनन्ताय नमः' कहकर प्रणाम करते हैं । लेकिन यहाँ दश दिक्पाल की पूजा में ईशान तथा पूर्व के मध्य में ऊर्ध्व तथा नैर्ऋत्य-पश्चिम के मध्य में 'अधः' का निश्चय करना चाहिये । यह शिव द्वारा कहा आदेश है ।

अब भूमि पर प्रणाम करके आसनभूमि से प्रार्थना करनी चाहिये 'अमुकदेवताया अमुकमन्त्रस्य पुरश्चरणसिद्धये मयेयं गृह्यते भूमिर्मन्त्रोऽयं सिद्धताम्' (अमुक देवता की जगह अपने इष्ट देव का नाम, 'अमुकमन्त्रस्य' के स्थान पर अपने मन्त्र का नाम लेना चाहिये)। तदनन्तर वेदी अथवा आसन-भूमि के मध्य स्थल में 'एते गन्धपुष्पे ॐ क्षौं क्षेत्रपालाय नमः' कहकर क्षेत्रपाल की पूजा करनी चाहिये । क्षेत्रपाल का ध्यान इस प्रकार होता है—

भ्राजच्चण्डजटाधरं त्रिनयनं नीलाञ्जनाद्रिप्रभं,
दोर्द्दण्डात्तगदाकपालमरुणस्रग्गन्धवस्त्रोज्ज्वलम् ।

घण्टामेखलघर्घरध्वनिमिलज्झङ्कारभीमं विभुम्,
वन्देऽहं सितसर्पकुण्डलधरं श्रीक्षेत्रपालं सदा ॥

तत्पश्चात् 'एते गन्धपुष्पे ॐ वास्तुपुरुषाय नमः' कहकर वास्तुपुरुष का पूजन करना चाहिये। वास्तुपुरुष का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

अरुणितमणिवर्णं कुण्डलश्रेष्ठकर्णं
सुसितसुभगसौम्यं दण्डपाणिं सुवेशम् ।
निलिखजननिवासं विश्वजीवस्वरूपं
नतजनभयनाशं वास्तुदेवं भजामि ॥

इसी प्रकार से 'एते गन्धपुष्पे ॐ ईशानाय नमः' कहकर ईशान देवता का पूजन गन्ध-पुष्पादि से करना चाहिये।

अब विघ्नविनाशक श्रीगणेश की पूजा का सङ्कल्प करना चाहिये। वाम करतल की ओर रखे ताम्रपात्र में जल, त्रिपत्र, कुश, तिल, फूल, हरीतकी (अभाव में केवल हरीतकी, फल तथा जल अथवा जल में केवल पुष्प ही) रख करके उसे दाहिनी हथेली से ढ़ककर दाहिना जानु भूमि में नत करके वीरासन में उत्तरमुख बैठकर (सकाम पुरश्चरण में पूर्वमुख बैठकर) भक्तियुक्त होकर इस सङ्कल्प-मन्त्र का पाठ करना चाहिये। जहाँ अमुक लिखा है, वहाँ वह-वह मास, राशि, पक्ष, तिथि, गोत्र, नाम, मन्त्र का नाम आदि का उच्चारण करना चाहिये।

विष्णुरोम् तत्सत् अद्य अमुकमासि अमुकराशीस्थभास्करे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रः श्रीअमुक (अपना नाम) मत्कर्त्तव्यतया अमुकमन्त्र (इष्टमन्त्र) पुरश्चरणकर्मणि विघ्नविनाशार्थं गणेशपूजनमहं करिष्ये।

अब ईशानकोण की ओर इस सङ्कल्पित जल को हस्त-स्थित पात्र से तनिक-सा समुपस्थित ताम्रपत्र पर छोड़ उसे अधोमुख उल्टा कर देना चाहिये तथा भक्तिभाव से श्रीगणेश का आवाहन करके पञ्चोपचार से उनका पूजन करना चाहिये।

इसके अनन्तर निम्नलिखित रूप से दिक्पालगण को बलि देनी चाहिये—बिल्वपत्रादि किसी पत्ते पर या पात्र में दधि, अक्षत, केला आदि रखकर बलि प्रदान करना चाहिये। मन्त्र है—'एष माषभक्तबलिं ॐ इन्द्रादिदिक्पालेभ्यो नमः'। इस प्रकार बलि देकर बलि की अर्चना के अनन्तर निम्न मन्त्र से बलि अर्पित करनी चाहये—

ॐ ये रौद्रा रौद्रकर्माणो रौद्रस्थाननिवासिनः ।
मातरोऽप्युक्तरूपाश्च गणाधिपतयश्च ये ।
विघ्नीभूताश्च ये चान्ये दिग्विदिक्षु समाश्रिताः ।
सर्वे ते प्रीतिमनसः प्रतिगृह्णन्त्विमं बलिम् ॥

अब ज्ञात-अज्ञात पापसमूह के क्षयार्थ अपने इष्ट के गायत्री मन्त्र-जप के लिये पूर्वकथित रूप विधान से निम्नलिखित रूप से जप्य मन्त्र का सङ्कल्प करना चाहिये—'विष्णुरोम् तत्सत् अद्य अमुके मासि अमुकराशीस्थभास्करे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रः श्रीअमुक (नाम) ज्ञाताज्ञात-अशेष-पापक्षयकामः अष्टोत्तरसहस्रं गायत्रीमन्त्रजपमहं करिष्ये'। इसके अनन्तर यथाविहित भक्तिपूर्वक गायत्री मन्त्र (इष्ट गायत्री) का जप करना चाहिये।

यदि साधक स्वयं को घोर पापी मानता है तब उसे दस सहस्र सावित्री मन्त्र का जप करना चाहिये। वहाँ पूर्ववत् सङ्कल्पवाक्य की तरह १०८ गायत्री मन्त्र की जगह 'अयुतं सावित्रीमन्त्रजपमहं करिष्ये' यह पाठ है (अनधिकारी व्यक्ति को ब्राह्मण द्वारा जप कराना चाहिये)। इस दिन भी पुरश्चरणार्थी साधक को हविष्याशी ही रहना चाहिये।

अब अगले दिन की अर्थात् पुरश्चरण जप के आरम्भ के दिन की कार्यावली यह है—प्रभात-स्नान, सन्ध्या, तर्पणादि नित्य कृत्य का समापन करके गुरु, देवता (यदि गुरु उपस्थित न हो, तब सत्कौल ब्राह्मण और साधक) की प्रीति-हेतु यथासाध्य धन-रत्न तथा वस्त्रादि से अर्चना करके (गुरु से आज्ञा लेनी चाहिये कि मैं पुरश्चरण करूँ) कहना चाहिये—'श्रीगुरोरमुकं मन्त्रस्य (अपने इष्टदेवता तथा मन्त्र का नामोल्लेख करे) पुरश्चरणमहं करिष्ये तत्र भवाननुजानातु'।

तब गुरु (गुरु न हो तब सत्कौल अथवा ब्राह्मण) कहे—'वत्स! अमुकमन्त्रस्य (पूर्ववत् मन्त्र का नाम तथा मन्त्र का उल्लेख करे) पुरश्चरणं कुरु सिद्धिस्ते भवतु'। अब कल्पादि देवताओं की साधारण पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर अभीष्ट देवता के पूजन की व्यवस्था करनी चाहिये। सभी पूजा की विधि एक ही प्रकार की होती है, केवल ध्यान अलग होता है तथा मूल मन्त्र अलग होता है। यदि गुरुपरम्परानुसार कुछ भेद हो, तब उस परम्परा के ज्ञाता से जान लेना उचित है। अतः यहाँ पूजाक्रम का अलग से उल्लेख न करके केवल पूजाङ्ग का ही निर्देश किया जा रहा है। यथा—पूजागृह (साधनभूमि) में प्रवेश, साधारण आचमन, मन्त्राचमन, सामान्यार्घ्य-स्थापन, द्वारदेवताओं का पूजन, विघ्नापसारण, दशदिक् बन्धन, भूमि-शोधन, आसन-शुद्धि, कुण्डलिनी-चिन्तन। यह सब आत्मव्यूह-रचना का कार्य है। साधक को मनोयोग से इस मूलभित्ति को दृढ़ करना चाहिये। इस मूल कार्यावली की अवहेलना करके कोई पुरश्चरण में सफल नहीं हो सकता।

इसके अनन्तर पुनः गुरुपूजन, प्रणामादि करके उनकी अनुपस्थिति में उनका ध्यान करना चाहिये। उनसे स्वयं पूजन की आज्ञा (ध्यान में) माँग लेनी चाहिये। तदनन्तर प्रदीप जलाकर उसकी अखण्डता की रक्षा करनी चाहिये; ताकि पूजान्त तक वह प्रज्ज्वलित होता रहे। इसके पश्चात् प्राणायाम एवं स्वस्तिवाचनोपरान्त इस प्रकार सङ्कल्प करना चाहिये—

'विष्णुरोम् तत्सत् अद्य अमुकमासि अमुकराशीस्थभास्करे अमुकपक्षे

अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकगोत्रः श्रीअमुक (नाम कहे) अमुकदेवताया अमुकमन्त्रस्य सिद्धिप्रतिबन्धकाऽशेषदुरितक्षयपूर्वकतन्मन्त्रसिद्धिकामोऽ-हमद्यारभ्य यावत् कालेन सेत्स्यति तावत् कालं अमुकमन्त्रस्य इयं सङ्ख्यकजपं (जपसङ्ख्या दे), जपाद्दशांशं होमं तद्दशांशं तर्पणं तद्दशांशा-भिषेकः तद्दशांशं विप्रभोजनरूपपुरश्चरणमहं करिष्ये' ।

तदनन्तर सङ्कल्प-सूक्त का पाठ करना चाहिये । तदनन्तर ग्रन्थिबन्धन, करशोधन, पुष्पशोधन, पूजाद्रव्यादि-शोधन, शुद्धिक्रिया, आत्मरक्षा के उपरान्त यदि प्रयोजनीय हो तब घट-स्थापनादि कृत्य सम्पन्न करना चाहिये । तदनन्तर गणेशादि पञ्चदेव का पूजन करना चाहिये ।

श्रीसदाशिव कहते हैं कि स्नान के पूर्व ही पुष्पचयन करना चाहिये । प्रातः स्नान करके भी पुष्पचयन हो सकता है; लेकिन देर करके तथा मध्याह्न स्नानोपरान्त पुष्पचयन से रौरव नरक प्राप्त होता है । बाँयें हाथ से पुष्पचयन नहीं करना चाहिये । उसे सूँघना नहीं चाहिये । बासी, पैर से स्पर्शित तथा शुष्क एवं म्लानमुख (मुरझाये) पुष्प से पूजन नहीं करना चाहिये । तब बारह आदित्य, नवग्रह तथा श्रीगुरु की यथाशक्ति पूजा करनी चाहिये । तदनन्तर शिव की अथवा बाणलिङ्ग की पूजा करनी चाहिये । चाहे कोई भी इष्टदेवता हो, उसकी पूजा के पहले शिवपूजा अवश्य करनी चाहिये; क्योंकि तन्त्रप्रवक्ता आदिगुरु शिव की कृपा बिना साधक को अपने इष्टपूजा का भी अधिकार नहीं है । साम्प्रदायिकता-भेदशून्य होकर शिवलिङ्ग की पूजा करनी चिहिये । इन सबके लिये विस्तार से 'आगमतत्त्वविलास' ग्रन्थ में सप्रमाण कहा गया है ।

लिङ्गतत्त्व

आकाशं लिङ्गमित्याहुः पृथिवी तस्य पीठिका ।
आलयः सर्वदेवानां लयनाल्लिङ्गमुच्यते ॥

आकाश ही लयात्मक लिङ्ग है, पृथ्वी उसका आसन है । उसमें आ-लयः अर्थात् उसके प्रकृतिस्वरूप गुणों (सत्व, रजः, तमः) के उसमें लय न होने तक उसकी सगुण सत्ता में सभी देवता प्रत्यक्षतः विद्यमान रहते हैं । अथवा वे सभी देवों के आलय हैं । जब उसमें सबका लय हो जाता है, तब उनकी निर्गुण सत्ता अखण्ड मण्डलरूप लिङ्ग नाम से अभिहित होती है ।

आलयं लिङ्गमित्याहुर्न लिङ्गं लिङ्गमुच्यते ।
यस्मिन् सर्वाणि भूतानि लीयन्ते बुद्बुदा इव ॥

जिसमें विश्वसंसार जलबुद्बुद के समान प्रकाशित होता है, पुनः उसमें विलीन हो जाता है, वही आलयस्वरूप लिङ्ग कहा गया है । वेदान्तसूत्र में भी शिवात्मक आकाश ही लिङ्ग है—**'आकाशस्तल्लिङ्गात्'**।

आकाशात्मक शिव की लिङ्गमूर्त्ति की पूजा की जाती है—

मूले ब्रह्मा तथा मध्ये विष्णुस्त्रिभुवनेश्वरः ।
तदुपरि महादेवः प्रणवाख्यः सदाशिवः ॥
लिङ्गं वेदी महादेवी लिङ्गं साक्षान्महेश्वरः ।
तयोः सम्पूजनान्नित्यं देवी देवश्च पूजितौ ॥

अर्थात् मूल में ब्रह्मा, मध्य में त्रिभुवनपति विष्णु, उसके ऊपर प्रणव (अथवा ॐकार) प्रतिपाद्य महादेव सदाशिव-रूप में विराजित रहते हैं। उसका आधार—गौरीपट्ट ही महादेवी आद्या शक्ति हैं। इस गौरीपट्ट पर प्रतिष्ठित लिङ्ग ही महेश्वररूप है। इनकी नित्य-पूजा से सभी देव-देवी का पूजन हो जाता है। छान्दोग्य श्रुति में कहते हैं—

अस्य लोकस्य का गतिराकाश इति होवाच ।
सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाश देव ॥

अर्थात् इस जगत् का मूल तत्त्व आकाश है। इसलिये आकाश से ही सर्वभूतसमूह का उदय होता है और इसी में सबका विलय हो जाता है। अन्यत्र भी कहा है—**'आकाशो वै नामरूपयोनिवाहिताः'** अर्थात् आकाश ही नाम-रूप का प्रकाशक है।

ऋग्वेद में भी कहते हैं कि क्षय-लयरहित आकाशरूप परम व्योम में देवसमूह अधिष्ठित रहते हैं तथा वेदादि प्रतिष्ठित रहते हैं। आकाश का गुण है—शब्द या नाद। नाद ही शब्दब्रह्मरूप है। वही प्रकट रूप से ॐ अथवा भिन्न रूप से व्योम शब्द-वाच्य है। तभी व्योम-व्योम (बिगड़ा रूप बम् बम्) शब्द से उनकी पूजा होती है। आकाश ईश्वर-स्वरूप अर्थात् महादेव की विराट् मूर्ति है। लिङ्गरूपी आकाश का बीज है—'ह'। श्रीसदाशिव भी 'ह'कार बीजात्मक हैं। हङ्कार को शिवबीज कहते हैं।

शास्त्र 'स' को शक्तिरूप कहते हैं। हंकार शिवबीज है एवं सःकार है—शक्तिबीज। यह 'हंसः' मन्त्र ही पुरुष-प्रकृत्यात्मक है। इसका विपरीत रूप सोऽहं भी प्रकृति-पुरुषात्मक है। यही है—ब्रह्म का अर्द्धनारीश्वर रूप। यही है—गौरीपीठ पर स्थित शिवलिङ्ग। महाप्रलय में ब्रह्मा विष्णु में, विष्णु रुद्र में, रुद्र ईश्वर में, ईश्वर सदाशिव में, सदाशिव भी परशिव-सहित परा प्रकृति में, परमा प्रकृति परमशिव में लीन हो जाती है। तब यही स्थिति अनादि तथा अनन्त शिवलिङ्गरूप में अभिहित होती है। यही है साधक-मात्र की परम लक्ष्य वस्तु।

शिवलिङ्ग तत्त्व एवं पूजन-विधि—शिवलिङ्ग कृत्रिम तथा अकृत्रिम-भेद से दो प्रकार का होता है। जो शिलाखण्डसमूह नदी के प्रवाह से घर्षित होकर क्रमशः गोलाकार पिण्डरूप हो जाते हैं, अथवा बाहर अपने-आप प्रकट अनुभूत होते हैं; वे अकृत्रिम शिवलिङ्ग होते हैं। जो प्रस्तरखण्ड शिल्पी अथवा यन्त्रोपकरणादि द्वारा साधक की

अभिरुचि के अनुसार शास्त्रानुसार गढ़े जाते हैं अथवा स्वर्ण, रजत, पारदादि से रचित किये जाते हैं, वे कृत्रिम लिङ्ग होते हैं। ये दोनों ही लिङ्ग चल एवं अचल-भेद से दो प्रकार के होते हैं। जिसे साधक पूजार्थ अपने साथ जहाँ-तहाँ ले जा सकता है, उसे चल लिङ्ग कहते हैं। जो लिङ्ग कहीं पर प्रतिष्ठित कर दिया जाता है, वह अचल लिङ्ग कहलाता है।

अकृत्रिम लिङ्ग भी पाँच प्रकार के कहे गये हैं—१. स्वयम्भू लिङ्ग, २. दैव लिङ्ग, ३. गोल लिङ्ग, ४. आर्ष लिङ्ग, ५. मानस लिङ्ग।

स्वयम्भू लिङ्ग—जो भूगर्भ से अपने-आप विकसित होकर निकलता है, जिसका जड़ (कहाँ से इसका मूल केन्द्र है) नहीं पता लग सकता।

दैव लिङ्ग—जिसमें शूल, डमरू, चन्द्रकला का चिह्न हो, जिसमें दैवी रेखा तथा छिद्रादि हों, वही होता है—दैव लिङ्ग। इसमें ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्रभाग का चिह्न नहीं होता (शिवलिङ्ग के निम्न भाग को ब्रह्मभाग, मध्य (गौरीपट्ट) को विष्णुभाग तथा ऊपरी भाग को रुद्रभाग कहते हैं)।

गोल लिङ्ग—जो कूष्माण्ड आदि फल के आकार का गोलाकार लिङ्ग होता है।

आर्ष लिङ्ग—जिसका मूल प्रदेश कैथ के फल जैसा स्थूल हो और नारियल अथवा ताड़ फल के समान बीच में स्थूल हो।

मानस लिङ्ग—यह तीन प्रकार का होता है, यथा—रौद्रलिङ्ग, शिवलिङ्ग, बाणलिङ्ग। नदी-सम्भूत सभी लिङ्ग को रुद्रलिङ्ग कहते हैं। चार अङ्गुल की जिसकी वेदिका होती है, उसे शिवनाभिलिङ्ग कहते हैं। दो अङ्गुल वाली को मध्यम नाभिलिङ्ग तथा एक अङ्गुल वाली को अधम शिवनाभिलिङ्ग कहते हैं। नर्मदा नदी से उत्पन्न सभी स्वयम्भू लिङ्ग को बाणलिङ्ग कहते हैं।

शिवपूजार्थ बाणलिङ्ग, पाषाण-निर्मित लिङ्ग, स्फटिक, पारद, सुवर्ण, रौप्य, कांस्य, नवरत्न, मणिमय-निर्मित लिङ्ग से भी काम हो सकता है। अभाव में कनेर आदि यन्त्र-पुरुष में, अपने ब्रह्मरन्ध्र में, जल में, अग्नि में; किंवा किसी भी देवमूर्त्ति में, देवपीठ में या घट में शिवपूजा कर सकते हैं। यहाँ शिव की विस्तृत पूजाविधि सम्पादित की जा सकती है। जो शिवलिङ्ग पूर्व में प्रतिष्ठित न हो, उसकी प्राणप्रतिष्ठा करके तब पूजा करनी चाहिये, किन्तु बाणलिङ्ग में प्राणप्रतिष्ठा की आवश्यकता नहीं रहती। इसके साथ शिव की अष्टमूर्ति की पूजा करने की आवश्यकता भी नहीं पड़ती। इसलिये पहले बाणलिङ्ग-पूजनविधि को कहते हैं।

बाणलिङ्ग का पूजन-माहात्म्य—पारदलिङ्ग सबसे श्रेष्ठ कहा जाता है, लेकिन उससे भी बाणलिङ्ग श्रेष्ठ कहा गया है। कोटि रत्नलिङ्ग-पूजा से भी अधिक फल एक बाणलिङ्ग की पूजा से प्राप्त होता है। इससे भोग एवं मोक्ष दोनों मिलते हैं।

बाणलिङ्ग का लक्षण—बाणलिङ्ग-हेतु निम्नलिखित लक्षणों पर ध्यान देना चाहिये—बाणलिङ्ग साधारणतः भ्रमर के रंग का अथवा काले जामुन के रंग का अच्छा कहा जाता है। सामान्य लोहित वर्ण लिङ्ग भी उचित है। लीची-फल का छिलका उतारने पर जो श्वेत वर्ण झलकता है, वैसा लिङ्ग भी उत्तम रहता है। बाणलिङ्ग जितना छोटा हो, उतना ही अच्छा होता है। शास्त्र कहते हैं—

रुद्राक्षं शिवलिङ्गञ्च स्थूलात् स्थूलं प्रशस्यते।
शालग्रामो नार्मदश्च सूक्ष्मात् सूक्ष्मं विशिष्यते॥

नर्मदा, गङ्गा, यमुना तथा अन्य पुण्य नदियों के प्रवाहजन्य शिवलिङ्ग को ही बाणलिङ्ग कहते हैं।

लिङ्ग में यज्ञोपवीत का चिह्न अच्छा माना जाता है। ऐसे सात से लेकर एक चिह्न रहने को भी अच्छा मानते हैं। कर्कश तथा अमसृण बाणलिङ्ग के पूजन से स्त्री-पुत्रादि का क्षय होता है।

वज्रादि चिह्न वाले बाणलिङ्ग की पूजा से साम्राज्य-प्राप्ति होती है। चपटे लिङ्ग की पूजा गृह के लिये भयङ्कर होती है। एक ओर झुका हुआ लिङ्ग क्षयकारी होता है। यह धनादि, गोधन, परिवार का क्षय-कारक माना गया है। स्फुटित मस्तक वाला बाणलिङ्ग व्याधि तथा मृत्यु का कारक होता है। छेद वाले लिङ्ग से विदेश जाना पड़ता है। घर छूट जाता है। इस प्रकार के लिङ्ग का पूजन विहित नहीं है।

स्वयम्भू लिङ्ग शहद के समान पिङ्गल-वर्ण होता है। उसमें कृष्णवर्ण कुण्डलिनी रहती है। उसकी पूजा सिद्ध महात्मागण करते हैं। मृत्युञ्जय लिङ्ग नाना वर्ण-युक्त जटा-शूल चिह्न-युक्त होता है। नीलकण्ठ लिङ्ग दीर्घाकार शुभ्र वर्ण होता है। उसमें कृष्णवर्ण बिन्दु रहता है। सुर-असुर सभी इसकी पूजा करते हैं। त्रिलोचन लिङ्ग शुभ्रवर्ण तथा तीन नेत्र चिह्न-युक्त होता है। यह सर्वपापहारी कहा गया है। कालाग्निरुद्र लिङ्ग स्थूल होता है; यह अग्नि के समान समुज्ज्वल होकर भी कृष्णाभा-युक्त होता है। यह सबका पूज्य होता है। त्रिपुरारि लिङ्ग मधु के समान पिङ्गल आभावान अथवा श्वेतवर्ण यज्ञोपवीत चिह्न वाला मानो सफेद कमल पर चन्द्ररेखा पड़ गयी हो, होता है। यह सर्वाभीष्ट-प्रद होता है। ईशान लिङ्ग वह है, जो शुभ्रवर्ण तथा पिङ्गल जटा चिह्न-युक्त हो। उस पर मुण्डमाला तथा त्रिशूल का चिह्न होता है। यह सर्वाभीष्टप्रद होता है। अर्द्धनारीश्वर लिङ्ग आधा शुभ्र एवं आधा रक्तवर्ण का होता है। उस पर त्रिशूल तथा डमरू का चिह्न होता है। यह सभी देवताओं से पूज्य एवं सिद्धिप्रद होता है।

जो रक्तवर्ण, स्थूल, दीर्घ, कमनीय एवं समुज्ज्वल हो, वह महाकाल लिङ्ग होता है। यह चतुर्वर्गप्रद होता है। यदि यह मात्र एक चिह्न वाला भी हो, तब भी साधक के लिये अभीष्टप्रद होता है।

इन सभी लिङ्गों में से यदि कोई भी मधु पिङ्गल वर्ण हो, तो वह अर्थप्रद होता है। मेघवर्ण वाला लिङ्ग मोक्षप्रद होता है। कपिल वर्ण स्थूललिङ्ग का पूजन गृहस्थ को नहीं करना चाहिये। जो भ्रमर के समान वर्ण वाला हो, वह गृहस्थ के लिये पूज्य होता है।

भले ही बाणलिङ्ग गौरीपीठ से युक्त न हो, फिर भी कोई बात नहीं है। इसका न तो संस्कार होता है और न ही आवाहन।

बाणलिङ्ग-परीक्षा—बाणलिङ्ग की परीक्षा के लिये प्रथम दिन चावल से बाणलिङ्ग का वजन करना चाहिये। अगले दिन उसी चावल से पुनः तौल करना चाहिये। यदि अगले दिन उसी चालव का वजन बाणलिङ्ग से अधिक हो जाय, तब वह बाणलिङ्ग ठीक होता है। ऐसा वजन तीन दिन, पाँच दिन अथवा सात दिन तक करना चाहिये। इस विषय में इसके जानकार व्यक्ति का परामर्श लेना उचित है।

एक साथ शिवलिङ्ग तथा शालग्राम का पूजन उचित नहीं है। पहले एक की पूजा करके तब दूसरे को पूजना उचित है। जैसे पार्थिव शिव की पूजा की जाती है, उसी विधान से सभी शिवलिङ्ग का पूजन किया जाता है; तब भी मिट्टी लाना, शिवलिङ्ग का गठन करना, आवाहन, स्थिरीकरण तथा विसर्जन-जैसे पार्थिव पूजन में किया जाता है, वह बाणलिङ्ग में नहीं होता। शिव के पाँच मुख हैं—पूर्व की ओर सद्योजात मुख, पश्चिम में वामदेव, उत्तर में अघोर, दक्षिण में तत्पुरुष तथा ऊर्ध्व में ईशानमुख है। ऊर्ध्वमुख सर्वप्रधान है। तभी शिव को 'ऊर्ध्वाम्नाय' कहा गया है। शिव का यह सद्योजात नामक पूर्वमुख ही लयात्मक रुद्रस्वरूप है। वह सर्वप्रथम सद्यः जात है। यही पूर्वाम्नाय है तथा संहारभाव वाला है।

उत्तर-स्थित अघोरमुख उनके वामभाग में स्थित सहधर्मिणी रुद्रशक्ति भगवती से समन्वित है। वह गौरीपीठ का प्रधान स्थान है और घोर रहित होने से अघोर नामक उत्तराम्नाय है। यह संसार-भाव में सहायक है। पश्चिम अर्थात् Back का मुख है—वामदेवरूप पश्चिमाम्नाय। यह प्रतिकूल भावशक्ति-समन्वित है। अतएव साधक पूर्व तथा उत्तर एवं पश्चिम के मुख को छोड़कर उनके दक्षिण दिक् स्थित तत्पुरुष (तत् अथवा ब्रह्मस्वरूप + पुरुष (परमपुरुष) नामक मुख की ओर बैठकर (अर्थात् तब साधक का मुख उत्तर की ओर होता है) पूजा करते हैं; यही दक्षिणाम्नाय है। 'ईशान' मुख अर्थात् ऊर्ध्वाम्नाय उनका सर्वश्रेष्ठ प्रतीक है। इसी से सर्वदा जलधारा से जल टपका कर उनकी अर्चना की जाती है। इसी ईशानमुख पर जलधारा का जल टपकता है।

इनकी अर्चना विधि-हेतु 'आगमतत्त्वविलास' ग्रन्थ द्रष्टव्य है। इसमें यह सावधानी रखनी चाहिये कि शिवपूजा तथा सूर्यपूजा में विशेषार्घ्य-हेतु शङ्खपात्र कदापि नहीं रखना चाहिये। स्वर्ण, चाँदी, ताम्र, अपने हाथ से निर्मित मिट्टी के पात्र को इस प्रयोजनार्थ रख

सकते हैं। इसी प्रकार पार्थिव शिव-पूजनार्थ विधान भी 'आगमतत्त्वविलास' ग्रन्थ से देखा जा सकता है।

अश्वक्रान्ता-रथक्रान्ता-विष्णुक्रान्ता-विचार

इस क्रान्ता-विभागार्थ पूजक-मण्डली को ज्ञान रहना आवश्यक है। महासिद्धसारतन्त्र तथा शक्तिसङ्गमतन्त्र में इसका वर्णन मिलता है। तदनुसार भारत उक्त तीन क्रान्ताओं में विभक्त है। इन तन्त्रों में वर्णित इस विभाग का सही अर्थ न कर सकने के कारण लोग इनका मनमाना अर्थ लगाते हैं। श्लोकों को यहाँ उद्धृत किया जाना आवश्यक है—

विन्ध्यपर्वतमारभ्य यावच्चहलदेशकम्।
विष्णुक्रान्तेति विख्यातं देवैरपि सुदुर्लभम्॥
करतोयां समारभ्य यावद्दिक्करदेशकम्।
अश्वक्रान्तेति विख्यातं त्रिषु लोकेषु पार्वति॥
विन्ध्यपर्वतमारभ्य महाचीनादिदेशकम्।
रथक्रान्तेति विख्यातं देवानापि दुर्लभम्॥

अन्य तन्त्र का भी वचन है—

विन्ध्यपर्वतमारभ्य यावच्चहलदेशतः।
विष्णुक्रान्तेति विख्याता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥
विन्ध्यपर्वतमारभ्य महाचीनावधि प्रिये।
रथक्रान्तेति विख्याता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥
विन्ध्यपर्वतमारभ्य यावदेव महोदधि।
अश्वक्रान्तेति विख्याता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥

इन दो तन्त्रों के वचन से ज्ञात होता है कि भारतवर्ष को विष्णुक्रान्ता, रथक्रान्ता तथा अश्वक्रान्ता-भेद से तीन भाग में बाँटा गया है; लेकिन भौगोलिक ज्ञान से रहित लोग क्रान्तिविभाग विचार में भारी गण्डगोल कर देते हैं और इसके वास्तविक तात्पर्य को नहीं जान पाते। इसके मर्मार्थ से यह विदित हो रहा है कि इन तीनों क्रान्ताओं से भारत को भागत्रय में विभक्त किया जाता है। क्रान्ति का अर्थ है—खगोल-मध्यवर्ती ईषद्वक्र गोलाकार रेखा-पथ। उसके ऊपर से मानो हम सूर्य को जाते देखते हैं। विषुव रेखा के २३° अक्षांश उत्तर है कर्कटक्रान्ति तथा २३° अक्षांश दक्षिण में अथवा मकरक्रान्ति के मध्य में उत्तर तथा दक्षिणायन-भेद से नित्य क्रमशः सामान्य-सामान्य परिवर्त्तित होकर सूर्य के गमन का सीमासूचक कल्पित रेखापथ अथवा प्रसिद्ध रविमार्ग विद्यमान रहता है। मानते हैं कि सूर्य सात घोड़े वाले, एक पहिये वाले रथ पर बैठकर जगत् की प्रदक्षिणा करते हैं।

विष्णुध्यान-मन्त्र में हम देखते हैं कि सवितृमण्डल-मध्यवर्त्ती क्षेत्र में नारायण का

ध्यान किया जाता है। तभी सूर्य को भी नारायण (विष्णु) कहते हैं। भारत में सूर्य का उदय उदयाचल (अथवा स्थूल भाव से हिमालय के उत्तर-पूर्व प्रदेश) से हम देखते हैं।

इस क्रान्ति अथवा रश्मिचक्र के मध्य रेखारूप में भारत का जो प्रदेश है, उसकी रश्मि की पहले क्रान्ति होती है अर्थात् जो प्रथम उससे स्पर्शित होती है, उस अंश को ही प्रधान स्थान (अथवा आसन) मानकर निर्णय किया जाता है (अर्थात् उस रथ पर सूर्य का प्रथम आसन मानते हैं)। तदनन्तर उस रथ के सामने के तथा दाहिनी ओर के अंश को सम्पूर्ण रश्मिरथ का मध्य अंश माना गया है। तदनन्तर उसके आगे जहाँ सप्तवर्णात्मक सात घोड़ों को माना गया है (अथवा जहाँ शेष रश्मिक्रान्ति स्पर्शित होती है), भारत के उस स्थान को अश्वक्रान्ता कहते हैं। तदनन्तर भारत के दाक्षिणात्य प्रदेश को अर्थात् दक्षिण-पश्चिम को अश्वक्रान्ता कहा गया है। सप्ताश्व के पीछे अर्थात् समस्त आर्यावर्त्त अथवा भारत के समस्त उत्तरी भाग को रथक्रान्ता कहते हैं। सर्वान्त में उदयाचल के उत्तर-पूर्व प्रदेश को विष्णुक्रान्ता कहा गया है।

इस प्रकार इस वर्णन का विश्लेषण करने पर यह विदित होता है कि विन्ध्य पर्वत के पूर्वभाग से प्रारम्भ करके आसाम एवं चट्टल (चटगाँव)-पर्यन्त विष्णुक्रान्ता है। इसी प्रकार विन्ध्य-स्थित करतोया नदी के दक्षिण से विन्ध्य पर्वत के दक्षिणस्थ सागर-पर्यन्त (हिन्द महासागर) का प्रदेश अश्वक्रान्ता कहलाता है तथा विन्ध्य पर्वतभाल से भारत के उत्तर का प्रदेश एवं तिब्बत देश रथक्रान्ता है।

ध्यान एवं जपक्रिया-विज्ञान—तत्परता अर्थात् अभीष्ट देवता के स्वरूपदर्शन योग से अपनी दैवभावमूलक देह की अथवा सूक्ष्म देह की सर्वाङ्गीण शुद्धता-लाभ का विधान ध्यान है। यथाविधि इष्ट-ध्यान से साधक के अन्तर में देवत्व का आविर्भाव हो जाता है।

षड्दल मनःश्चक्र
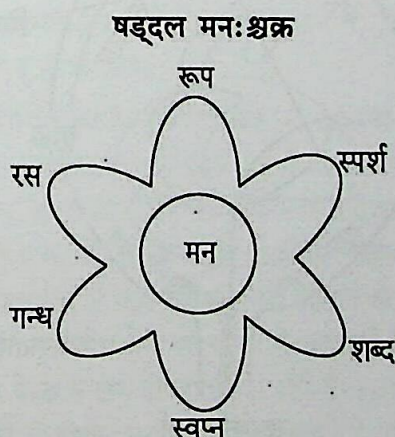
जप—उसमें अर्थात् अभीष्ट देवता के अपने चित्त के योग का यह सर्वश्रेष्ठ क्रिया-यज्ञ है। इसके फल से मनोमय कोष के केन्द्रस्थ मनश्चक्र में एक प्रकार का गुप्त स्पन्दन उपस्थित होने लगता है।

चक्रदल का स्वरूप—प्रत्येक दल में जो पुष्प-जैसी पङ्खुड़ी दिखलाई जाती है, वह सब अलौकिक ज्योति प्रभा के पुञ्जस्वरूप है। मनश्चक्र के छः दल हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध तथा इन सबका समष्टिभूत प्रतिबिम्ब, स्वप्न। ये छः दल कहे गये हैं और इनके बीच में मन है।

इस मनश्चक्र का स्थान है—आज्ञाचक्र के द्विदल पद्म के पीछे। आज्ञाचक्र के दोनों दल के सम्मुख दिक् की संयोगभूमि विज्ञान चक्र का स्थान है। जीव मनश्चक्र का अतिक्रम करके आज्ञाचक्र का भेदन करके पीछे की ओर (भ्रूद्वय के मध्यस्थ प्रदेश के पीछे की ओर) विज्ञानचक्र में कूटस्थ चैतन्य ज्योति अथवा निर्विकार आत्मज्योति का दर्शन प्राप्त करता है। यही जीव का साधक मनरूप अर्जुन है। कूटस्थ चैतन्यज्योति है—कृष्ण। यही हृदय है। यहीं हृषीकेश स्थित हैं—'त्वया हृषीकेश हृदिस्थितेन'।

हृषी = ज्ञानेन्द्रिय। ईश = ईश्वर, नियन्ता। अर्थात् जो ज्ञानेन्द्रियों के परिचालक हैं। जिस कूटस्थ चैतन्य शक्ति की सहायता से ज्ञानेन्द्रियाँ अपना-अपना कार्य करती हैं, वे ही हैं—हृषीकेश। यह विज्ञानचक्र कहीं भी प्रकाशित रूप से नहीं कहा गया है। गुरु-परम्परा से ही इसका ज्ञान होता है।
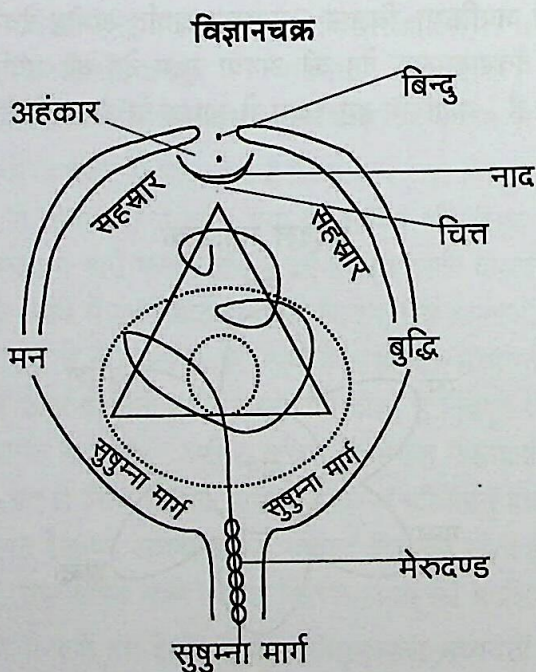
विज्ञानचक्र

आज्ञाचक्र का कोरकात्मक केन्द्र ही है—ज्ञानगुहा (ज्ञानकूप)। जैसे मनश्चक्र मनोमयकोश का केन्द्र है, उसी प्रकार अतीव गुप्त (गुरुगम्य) विज्ञानचक्र ही विज्ञानमय कोश का केन्द्र है। यह मन तथा विज्ञान ही चतुर्भेदरूप अन्त:करण (मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार) में से मन एवं बुद्धि का स्थान है। इस मन तथा बुद्धि से दो सरल कोणमुखी रेखा ऊर्ध्व की ओर उठकर एक समकोणी त्रिभुज का अङ्कन करती है (देखें चित्र)। इससे जो ऊर्ध्व कोण बनता है, वही चित्त का स्थान है। यह अन्त:करण का तृतीय स्थान है (दो स्थान हैं—मन एवं बुद्धि)। यही है—आनन्दमय कोश का निम्न केन्द्र। आनन्दमय कोश अथवा श्रीगुरुपादुका कोरक के ठीक नीचे हंस: स्थल ही शुद्ध अहङ्कार का स्थान है। पूर्वोक्त आज्ञाकेन्द्र से सुषुम्ना पथ से कुण्डलिनी चैतन्य को प्राप्त हो ज्योतिराकार में ॐकारात्मक प्रणवध्वनि अथवा द्वितीय नादरूप से (पश्यन्ती) योगीगण के हृदय में अनुभूत होती है। वही प्रतिलोमपथ से पहले मनश्चक्रस्थ मन के स्थान पर तदनन्तर विज्ञानचक्र अथवा बुद्धिस्थान में वेष्टन रूप हो किञ्चित् ऊर्ध्व की ओर एक विचित्र आवर्त्त की सृष्टि करती है। वही चित्र में ॐकार रूप से दिखलाया गया है। उसी के ऊपर नादस्थान एवं केन्द्ररूप बिन्दु मिलकर ॐकार के पञ्चमाङ्ग को पूर्ण करता है (अर्थात् अ, ऊ, म, नाद, बिन्दु)। यही सदाशिव का पञ्चमुख है।

जीव की उन्नति साधन के फलस्वरूप यह ॐकार ही प्रतिलोमपथ पर परिदृष्ट होता है; लेकिन मूल प्राकृतिक विधान से वह स्वभावत: अनुलोमपथ पर ही प्रवाहित होता है। यह अपूर्व नादात्मक प्रणवाकार में सतत् प्रवाहित रहता है। श्रीगुरुपरम्परा से निर्दिष्ट गूढ़ मन्त्र चैतन्यमूलक साधना की सिद्ध अवस्था में साधक इसे प्रत्यक्ष करते हैं। इसी कारण आदि शङ्कराचार्य ने 'योगतारावली' में नादानुसन्धान-रूप क्रियाशक्ति प्राप्त करने की आशा में उसके चरणों में आन्तरिक भाव से प्रार्थना की है। वे कहते हैं—'हे नादानुसन्धान! शिवोक्त सपादलक्ष लययोग क्रिया में इस ओंकारात्मक नादानुसन्धान क्रिया को ही श्रेष्ठ कहा जाता है। हे नादानुसन्धान! कब मेरा वह दिन आयेगा, जिस दिन तुम्हारा अपरोक्ष सन्दर्शन-लाभ करके धन्य हो जाऊँगा?

जो भी हो, पूर्ववर्णित ध्यान के समय साधक की अवस्था तथा साधनपुष्टि के फल से मनश्चक्र में उक्त उपकेन्द्र-मूलक किसी-किसी दल में विशेष स्पन्दन सम्पादित होता है। वह साधक की आन्तरिक एकाग्रता-वर्द्धन के साथ-साथ क्रमश: घनीभूत होता है अथवा उसका वेग बढ़ जाता है। स्पन्दन का घनीभूत भावविषय सहज ही जानना होगा। जैसे एक बड़े घण्टे पर आघात देने से जब उसका शब्द उत्थित हो जाता है, तब उस शब्द की ध्वनि के वेग के प्रति मनोयोग देने पर समझ में आता है कि मानो वह स्वर घण्टा के ऊपर की ओर उसके केन्द्र में लय हो जाता है। यही है—उस शब्द का आन्तर नाद। नाद की इस अवस्था को ही उसका घनीभूत स्पन्दन कहते हैं, यही योगीगण का मत है।

मनश्चक्र में उक्त रूपात्मक उपकेन्द में ऐसा स्पन्दन वर्द्धित होने से उसमें साधक के ध्यान की वस्तु की अथवा ध्येय वस्तु की प्रत्यक्षता अन्तर में अनुभूत होती है अथवा उसमें उसका स्वरूप-दर्शन स्पष्ट हो जाता है। साधक के जन्मार्जित संस्कार के कारण उसके मनश्चक्र में (क) शब्दतन्मात्रामूलक ध्यान में चित् अथवा विष्णुतत्त्व, (ख) स्पर्शतन्मात्रामूलक ध्यान में तेज अथवा सूर्यतत्त्व, (ग) रूपतन्मात्रामूलक ध्यान में आनन्द या शक्तितत्त्व, (घ) रसतन्मात्रामूलक ध्यान में ज्ञान अथवा गणेशतत्त्व, (ङ) गन्धतन्मात्रामूलक ध्यान में सत् अथवा शिवतत्त्व एवं (च) उनके प्रतिबिम्बरूप अथवा समष्टिभूत तन्मात्रामूलक ध्यान में आनन्द-प्रतिबिम्बस्वरूप ब्रह्मतत्त्व के अथवा लौकिक सृष्टितत्त्व के (स्वप्नात्मक उपकेन्द्र के) विकास के साथ तदनुगत दल की केन्द्रीय रश्मिसमूह का स्पन्दन घनीभूत अथवा वर्द्धित होता है। गणेशादि पञ्चदेवता तथा उनके साथ ब्रह्मा को लेकर ये षड्देवता हो जाते हैं।

जीव के प्रत्येक निःश्वास-ग्रहण अथवा प्रश्वास-त्याग के प्राकृतिक निर्धारित काल में (अर्थात् २ सेकेण्ड में) पूर्ववर्णित मनश्चक्र के अन्तर्गत रूप का दल (रूपात्मक दल) उक्त स्पन्दनवेग से अयुतद्वय (२००००) से अधिक (२ सेकेण्ड में) अथवा प्रतिसेकेण्ड १०००० सङ्ख्या से वर्द्धित होने पर अभीष्ट देवता की ध्यानमूलक स्थूलमूर्त्ति अन्तःपटल पर प्रत्यक्ष हो जाती है। स्पन्दन के वेगाधिक्य के अनुसार पहले अन्तःपटल पर तदनन्तर बाहर भी देवता का रूप प्रकट हो जाता है।

तेज पञ्चतत्त्व का केन्द्रीय तत्त्व है। अतः वह स्थूल-सूक्ष्म सभी तत्त्वों में ओत-प्रोत भाव से अतिसूक्ष्म रूप से सतत् सञ्चालित होकर विद्यमान रहता है। इसी कारण पूर्ववर्णित पञ्चतन्मात्रात्मक ध्यान के मूलभूत पञ्चदेवों में से किसी भी देवता का ध्यान करने से तेजात्मक रूपतन्मात्रा के केन्द्र में स्वाभाविक रूप से उक्त स्पन्दन प्रारम्भ होता है और उसके स्वरूप का सन्दर्शन होता है; साथ ही शब्दतन्मात्रामूलक केन्द्र का घनीभूत स्पन्दन इस ध्येय मूर्त्ति में वाक्यस्पन्दन (वाक्यसञ्चार) का विकास भी करा देता है। इसी प्रकार स्पर्शतन्मात्रादि केन्द्र का स्पन्दनाधिक्य देवता को स्पर्श-सम्पन्न भी कर देता है। यह समस्त क्रिया ही श्रीपादुका के स्मरणान्त में एकाग्र विश्वास तथा भक्ति-पुष्टि का भाव ध्येय मूर्त्ति चिन्तन द्वारा सुसम्पादित करती है। इसका सर्वप्रथम कार्य है—मन्त्रचैतन्य या कुण्डलिनी-जागरण आदि गुरुनिर्दिष्ट अविरत गुप्त साधना-सापेक्ष क्रिया की सम्पन्नता।

जीव के स्वप्नावस्था की प्रगाढ़ता के अनुसार मनश्चक्र में पूर्वोक्त भाव से स्पन्दन उत्पादित होता है। तब है तत् + मात्र = तन्मात्र (ज्ञानात्मक पञ्च चैतन्य-शक्तिस्वरूप)। (अब तन्मात्रतत्त्व का वर्णन करना आवश्यक है। इसे समझने के लिये वर्त्तमान में प्रचलित वैद्युतिक शक्ति-चालित यन्त्र के नियम को समझना चाहिये। बल्ब आदि में जो आलोक-विकास होता है, वह तार से होकर बह रही विद्युत् शक्ति-प्रवाह से सम्पन्न होता है। उस

शक्ति का आधार यदि Generator है, तब उससे उत्पादित शक्ति भी तार के द्वारा ही उसकी वैद्युतिक शक्ति अन्य यन्त्र तक आती है और वह यन्त्र चलने लगता है। तन्मात्रा भी यही है। तत् अर्थात् ब्रह्मवस्तु। मात्रा अर्थात् चैतन्य शक्ति। यह चैतन्यशक्ति उस चैतन्य केन्द्र से ही प्रवाहित होती है और अन्य शारीर यन्त्र तक पहुँचती है। जैसे वैद्युतिक शक्ति Switch से नियन्त्रित होती है, उसी प्रकार मनोमय कोष में ही चैतन्य शक्ति का नियामक कीलक (Switch) है। यह इन्द्रिय-पञ्चक के साथ सतत् स्पन्दित होता रहता है। जीव के देह में ज्ञानेन्द्रिय-पञ्चक के साथ संलग्न नाड़ीसमूह (Nerves) के बीच में होकर चैतन्य केन्द्र-पर्यन्त तन्मात्रारूपेण यही चैतन्य शक्ति भौतिक विद्युत् के समान इस नाड़ी-रूप तार से होकर प्रवहमान रहती है। इससे जीव को शब्द-स्पर्शादि विषय-ज्ञान का तथा तज्जनित सुख-दु:खादि का यथायथ अनुभव हो जाता है।)

तन्मात्रा शब्दादि ज्ञानयन्त्र अथवा ज्ञानेन्द्रियपञ्चक का संस्पर्श-त्याग करके मनश्चक्र के पूर्वोक्त उपकेन्द्र में अथवा उनके स्व-स्व केन्द्र में आकर स्थिर हो जाती है; किन्तु उनकी समष्टिभूत प्रतिबिम्ब सत्ता के केन्द्रस्वरूप स्वप्नस्थान में आकर सुषुप्ति की पूर्वावस्था तक उस केन्द्र में भाववैचित्र्य का विकास करके क्रमश: तन्मात्रा-सहयोग से नाड़ियों को जब शक्ति-युक्त करती है अथवा जगा देती है तब विशेष-विशेष अङ्ग-प्रत्यङ्ग अथवा ज्ञानेन्द्रिय-पञ्चक के ऊपर भी प्रतिलोमभाव से भिन्न-भिन्न क्रिया का आविर्भाव करा देती है। इसी से हास्य, क्रन्दन, भय, क्रोध, लज्जा तथा भोगानन्द आदि नाना भावों का विकास होता है और तब स्थूल देह में समस्त कर्मेन्द्रियों में सर्वजन-विदित विविध प्रकार का स्वप्नविकार भी हो जाता है।

मन: का साधारण कार्य—स्थूल संस्कारात्मक 'प्रत्यक्ष जगत्' के बाह्य विषयसमूह का मन ठीक से अनुभव नहीं कर पाता। प्राय: सभी पिता-माता-आत्मीय-स्वजन का जो रूप देखते हैं, मन द्वारा ही उनके रूप की अन्तर में धारणा करते हैं। लेकिन जिसे उन्होंने देखा ही नहीं है, उनका चित्र भी नहीं देखा है, तब केवल मन की सहायता से उनके स्वरूप की कल्पना नहीं की जाती। इसीलिये मन के उक्त शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धरूपी उपकेन्द्र-पञ्चक में केवल हमारे द्वारा अनुभूत लौकिक विषयों का भाव अथवा रूप ही पुन:-पुन: प्रतिभात होता है। लेकिन मन के स्वप्नरूप छठे उपकेन्द्र में प्रत्यक्ष जगत् के अलावा भी अब तक अनेक अप्रत्यक्ष तथा अलौकिक विषयों का भाव भी प्रतिफलित होता है। इसका कारण यह है कि पञ्चतन्मात्र की समस्त क्रिया के मन में केन्द्रीभूत होने पर भी कई बार स्मृति तथा सर्वज्ञता के आधार चित्त की क्रिया मन में प्रतिबिम्बित होती है। चित्त तथा बुद्धि मन की ही परिपुष्ट सत्ता है। मनोमय कोश में मन-बुद्धि तथा चित्त मानों एक से तीन हैं अथवा तीनों एक हैं। जाग्रत् अवस्था में मन की कार्य-प्रधानता है। स्वप्न में चित्त की ही प्रधानता रहती है।

अब यहाँ मन-बुद्धि-चित्त-अहङ्कार में परस्पर योगात्मक जो सूक्ष्म क्रिया उत्पन्न होती है, उसके सम्बन्ध में एक-दो बातें कहनी आवश्यक हैं।

मन तथा चित्त का सङ्गम—मन की प्रधानता में सांसारिक अथवा लौकिक आसक्तिपूर्ण भावसमूह की सृष्टि होती है। यही जीव के बन्धन का सर्वप्रथम कारण है। यह जीव के लिये अवनतिप्रद है। लेकिन जहाँ चित्त प्रधान है, वहाँ मन के साथ उसका सङ्गम ध्यानादि-क्रियार्थ सहायक हो जाता है।

मन एवं बुद्धि का सङ्गम—सर्वविध लौकिक विषय-ज्ञान तथा नानाविध शक्ति-पुष्ट जीवाभिमान की सृष्टि करती है। वह कीर्त्ति–ज्ञानशक्ति पूर्ण जीव के गर्वादि-मूलक विविध सदसत् भावात्मक कर्मतत्परता का कारण हो जाता है। वह नाना दु:ख-सुखमय बन्धन का हेतु है। अवस्थाभेद में यह हठ-योगादि साधन क्रिया की इच्छा भी देता है।

बुद्धि तथा चित्त का सङ्गम—विविध लौकिक-अलौकिक सुखात्मक भाव की सृष्टि करता है। वह इहलोक तथा परलोक के सुखप्रद बन्धन का कारक होने पर भी चित्त को उन्नति देने वाला तथा अवस्थाभेद से लयादि योगक्रिया की शक्ति एवं प्रकृति देने वाला है।

बुद्धि तथा शुद्ध अहङ्कार का सङ्गम—यह दैवी भाव को उत्पन्न करता है। सर्वश्रेष्ठ धर्ममूलक तथा शुद्ध मखात्मक है। यह जीव के कर्मबन्धन का मुक्ति-प्रदाता है तथा आत्मोन्नति-कारक है। यह लययोग तथा उत्तम क्रियायोग (राजयोग) की शक्ति एवं प्रवृत्ति देता है।

सतत् आसक्ति को त्याग कर शुद्ध भाव की ओर दृष्टि रखकर ध्यानादि साधन कर्म तथा सांसारिक समुदाय कर्म सम्पन्न करने का अभ्यास करना चाहिये। इष्ट गुरु की कृपा से उन्नति मिल जाती है। साधक ध्यान क्रिया द्वारा जाग्रत् अवस्था में ही यथार्थ दैवभाव का उत्पादन उक्त स्वप्न-स्थिति के अनुरूप ही अन्तर में अनुभव कर लेता है। अभीष्ट देवता के ध्यानादि के समय इस अलौकिक भाव को विधिवत् अन्तर में बढ़ा लेना होगा। जप-काल में केवल मनश्चक्र की क्रिया द्वारा वह एकबारगी सम्पन्न नहीं होता। तब पूर्वकथित विज्ञानचक्र (बुद्धिकेन्द्र) में विशेष सहायता द्वारा वह सम्पादित होता है। इसी कारण जपकाल में अभीष्ट देवता की ध्येय मूर्त्ति साकार नहीं रहती। तब वे ज्योतिर्मय अथवा ज्योतिर्मयी रूप में साधक को प्रत्यक्षीभूत होते हैं। इसीलिये अनाहत चक्र से क्रमश: ऊर्ध्व की ओर के सभी चक्रों का भेदन करके श्रीपादुका-कमल के पास निम्न देश-पर्यन्त विस्तृत एक दिव्य ज्योतिरेखा तथा विद्युत् रेखा-रूप से (सुषुम्नान्तर्गत ब्रह्मनाड़ी के अंशस्वरूप) साधक की लक्ष्य वस्तु हो जाती है। इस रेखा के ऊपर अन्तर्दृष्टि की स्थापना करके साधक को जपारम्भ करना चाहिये।

साधक अविरत साधना द्वारा उसकी अनायास उपलब्धि कर लेता है। पूर्वोक्त चित्त स्थान को ही योगीगण सर्वज्ञता का आधार व्यासासन कहते हैं। वे श्रीपादुका-पीठाश्रित 'अहङ्कार' अथवा 'हंस:' स्थान को साधक के श्वासात्मक अथवा अन्तिम लयाधार (निर्वाण मुक्ति अथवा इच्छामृत्यु वर-प्राप्त) देवव्रत (भीष्म) का आसन बतलाते हैं। इससे अधिकतर सूक्ष्मतत्त्व केवल उन्नत योगी सिद्ध गुरु द्वारा ही जाना जा सकता है।

देवभाव, वीरभाव, पशुभाव—यह पूजाविधि सर्वत्र एकरूप होने पर भी सम्प्रदाय-विभिन्नता से इसमें कुछ आचार-विभिन्नता भी है। अनेक लोग भावत्रय में निर्दिष्ट पशुभाव, वीरभाव तथा पशुभाव-विषयक वृथा तर्क एवं वितण्डादि के द्वारा केवल भ्रान्त आत्मगर्वता के पक्षपाती देखे जाते हैं। अभिज्ञ एवं क्रियावान गुरु की अभिमत शिक्षा के अभाव में आधुनिक मुद्रित ग्रन्थों का पठन-पाठन सर्वजनसुलभ हो जाने के कारण भीषण धर्म-विपर्यय उपस्थित हो गया है। पूर्णत: गोपनीय आत्मपरीक्षाप्रद वीरभाव की साधना के भ्रान्तिपूर्ण व्यभिचार क्रियावेश में लौकिक आसक्ति-प्रदायक बाह्य अनुष्ठान में अत्यन्त अनुरक्त हो गये हैं। उसके कुफल से यथार्थ साधन पुष्टि में अपरित्याज्य—सहायक मूल अथवा प्राथमिक आनुष्ठानिक साधन क्रियायुक्त पशुभाव के प्रति घोर अवज्ञाकारी हो गये हैं। यहाँ पशु का अर्थ 'जानवर' नहीं है। यहाँ पशु का अर्थ है—देवता। इनके पति होने के कारण देवाधिदेव शिव पशुपति हैं। अत: पशु का अर्थ है—देवता और पशुपति हैं—देवेश शिव।

यह देवात्मक पशुभाव ही इन्द्रियसंयमरूप ब्रह्मचर्य (देवव्रत) है। संयम अभ्यास के बिना साधनराज्य में कोई भी प्रवेश नहीं कर सकता। तभी कहता हूँ कि—बाबा! वीर होने की साध तो अनेक को है, तब देह मन में बल का सञ्चय क्यों नहीं करते हो? दण्ड-बैठक की ही तरह यम-नियमादि प्राथमिक साधना का अभ्यास तो करो। इससे मन में सत् साहस तथा अन्तर में संयमरूप बलाधान होगा, तब वीरभाव की बातें करना। उससे पहले वीरभाव की बात करना व्यर्थ है। वीरभाव तो तुम्हारी निवृत्तिमार्गी आत्मशक्ति का प्रकृत स्वरूप है। इसी से वीर श्रेष्ठ आत्मपरीक्षा देकर दिव्यभाव में आसानी से पहुँच सकते हैं। अतएव अव्यभिचारी भक्ति संयम के साथ यथाशक्ति अपने-अपने अधिकारानुरूप पूजा करके पुरश्चरण कार्य में अग्रसर हो जाओ।

जपसिद्धि-विधि—साधनशक्ति-रहित, अनभिज्ञ, असंयत तथा नितान्त विषयासक्त तथा नाम के गुरु अथवा भण्ड वाममार्गी केवल भोगानन्द के लिये गुप्त आचार में रत होकर आदर्शहीन हो जाते हैं। अत: पूर्वकथित जपविधि के अनुसार प्रात: से मध्याह्न तक जप करना चाहिये। अन्य पुरश्चरणकाल में यथाविधान समय पर ही जप करना चाहिये। यहाँ उन्नत तथा कर्मप्रिय साधक के लिये अन्य कई विधान का वर्णन किया जाता है। इससे शीघ्र मन्त्रसिद्धि प्राप्त होती है।

जप के पूर्व तथा पश्चात् में तीन बार प्राणायाम तथा १०-१० बार अपने देवता की गायत्री का जप करना चाहिये। समर्थ होने पर इसके पूर्व 'हुं' बीज का भी १० बार जप करना चाहिये। यह मन्त्ररूपी दुर्ग का दरवाजा खोल देता है। इसके पश्चात् 'क्रों' का १० बार जप करके कुण्डलिनी का आकर्षण तथा कामिनी देवी का विधि-विहित ध्यान करना चाहिये (कुण्डलिनी की अधिष्ठात्री—कामिनी देवी)। तदनन्तर 'कं' बीज का १० बार जप करना चाहिये। तदनन्तर १० बार 'लीं' बीज का तथा १० बार 'क्लीं' बीज का जप करने के उपरान्त पुनः प्राणायाम, भूतशुद्धि तथा न्यासादि करके मन्त्रशिखा-चिन्तन करना चाहिये। जैसे भक्तिपूर्ण चित्त से नयन मुद्रित करके कुम्भक द्वारा कुण्डलिनी को मूलाधार से आकुञ्चन करते हुये एक बार सहस्रार में मन:संयोग से लाना चाहिये (भावना द्वारा लाना चाहिये)। तत्पश्चात् मूलाधार में लाकर पुन: सहस्रार में ले जाना चाहिये। ऐसी क्रिया सात बार करनी चाहिये। ऐसा करने पर सुषुम्नामार्ग में विद्युत् रेखा के समान ज्योतिशिखा परिलक्षित होती है। इस ज्योतिशिखा के ऊपर एकाग्र भाव से चित्त को एकाग्र करने से मन्त्रशिखा का चिन्तन होता है।

मन्त्रचैतन्य— इसके सम्बन्ध में पहले कहा जा चुका है। साधक को किसी एक उपाय द्वारा इस कार्य को करने का लक्ष्य बनाना चाहिये।

मन्त्रार्थ-भावना—गुरु से मन्त्र का अर्थ जान लेना चाहिये।

निद्राभङ्ग—हृदय में 'ईं' बीज का दस बार भावन करने से मन्त्र का निद्रा-भङ्ग होता है।

कुल्लूका—मन्त्र के कुल्लूका का सात बार जप करना चाहिये। यहाँ कई मन्त्रों के कुल्लूका को कहा जा रहा है—

कालिका देवी का कुल्लूका—	क्रीं हुं स्त्रीं ह्रीं फट्—यह पञ्चाक्षर मन्त्र।
तारा का कुल्लूका—	ह्रीं स्त्री हुं।
त्रिपुरा का कुल्लूका—	ऐं क्लीं सौः।
जगद्धात्री का कुल्लूका—	हुं ह्रीं हुं ह्रीं।
अन्नपूर्णा का कुल्लूका—	क्लीं।
भुवनेश्वरी का कुल्लूका—	ह्रीं।
छिन्नमस्ता का कुल्लूका—	वज्रवैरोचनीये हुं।
लक्ष्मी-महालक्ष्मी का कुल्लूका—	श्रीं।
महिषमर्दिनी का कुल्लूका—	हुं तथा ह्रीं स्वाहा ॐ हुं।
दुर्गा एवं जयदुर्गा का कुल्लूका—	हुं ह्रीं हुं ह्रीं।
धनदा का कुल्लूका—	क्लीं।

शिव का कुल्लूका— हों।
विष्णु का कुल्लूका— ॐ नमो नारायणाय।
राम का कुल्लूका— क्लीं ॐ रां ॐ क्लीं।
सरस्वती का कुल्लूका— ऐं।
बगला का कुल्लूका— स्त्रीं।
धूमावती का कुल्लूका— ह्रीं।
मातङ्गी का कुल्लूका— ॐ।
अन्य देवी का कुल्लूका— ह्रीं।
अन्य पुरुषदेवता का कुल्लूका— उनका अपना मन्त्र।

महासेतु—इसका कण्ठ से सात बार जप करना चाहिये—
काली का महासेतु— क्रीं।
तारा का महासेतु— हुं।
त्रिपुरा का महासेतु— ह्रीं।
जगद्धात्री आदि समस्त स्त्रीदेवता का महासेतु—स्त्रीं।

सेतु—इसका हृदय में सात बार जप करना चाहिये—
काली का सेतु— ऐं हुं ऐं।
त्रिपुरा का सेतु— ह्रीं सौं ह्रीं।
दुर्गा, महिषमर्दिनी, छिन्नमस्ता,
अन्नपूर्णा, जगद्धात्रि का सेतु— ब्राह्मण तथा अभिषिक्त हेतु—ह्रीं स्वाहा।
शूद्र तथा अनभिषिक्त-हेतु—फट्।
भुवनेश्वरी का सेतु— ॐ ह्रीं ह्रीं ॐ ॐ।
भैरवी का सेतु— हे सौः।
शिव का सेतु— हंसः।
विष्णु का सेतु— ॐ विष्णवे ॐ।
लक्ष्मी तथ महालक्ष्मी का सेतु— श्रीं।
राम का सेतु— ॐ रां ॐ।
कृष्ण का सेतु— ॐ क्लीं ॐ।

अन्य देवताओं का सेतु—
ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा अभिषिक्त-हेतु— ह्रीं स्वाहा।
वैष्णव के लिये सेतु— ह्रीं स्वाहा।
शूद्र तथा अनधिकारी-हेतु सेतु— ह्रीं।

मुखशोधन—मुख से सात बार जप करना चाहिये—

काली-हेतु—	क्रीं क्रीं क्रीं ॐ ॐ ॐ क्रीं क्रीं क्रीं।
तारा-हेतु—	ह्रीं हुं ह्रीं।
त्रिपुरा-हेतु—	श्रीं ॐ श्रीं ॐ श्रीं ॐ।
दुर्गा, जगद्धात्री तथा भुवनेश्वरी-हेतु—	ऐं ऐं ऐं।
महिषमर्दिनी-हेतु—	ऐं ह्रीं ऐं दुर्गे स्वाहा ह्रीं ऐं ऐं।
अन्नपूर्णा-हेतु—	क्लीं।
छिन्नमस्ता-हेतु—	ह्रीं।
लक्ष्मी-महालक्ष्मी-हेतु—	श्रीं।
धनदा-हेतु—	ॐ धूँ ॐ।
भैरवी-हेतु—	ॐ हेसो ॐ।
शिव-हेतु—	ॐ।
विष्णु-हेतु—	ॐ ह्रौं।
अन्य स्त्रीदेवता-हेतु—	ह्रीं।
अन्य पुरुषदेवता-हेतु—	उनका-उनका बीज मन्त्र।

तदनन्तर चौरगणेश का न्यास करना चाहिये (यह पूजारहस्य खण्ड में देखना चाहिये)।

करशोधन—कर में ७ बार जप करना चाहिये—

काली का—	क्रीं ईं क्रीं करमाले अस्त्राय फट्।
तारा, त्रिपुरा, अन्नपूर्णा, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, लक्ष्मी, महालक्ष्मी, महिषमर्दिनी, दुर्गा, जयदुर्गा-हेतु—	इनके अपने-अपने मन्त्र से करशोधन करना चाहिये।
जगद्धात्री-हेतु करशोधन मंन्त्र—	ॐ ह्रीं श्रीं हुं श्रीं।

योनिमुद्रा—इसकी प्रक्रिया गुरु से जाननी चाहिये। तन्त्र में अनेक प्रकार की प्रक्रिया मिलती है। उनमें एक यह है—

बद्ध्वा तु योनिमुद्रा तां सङ्कोच्याधारपङ्कजम्।
तदुत्पन्नान् मन्त्रवर्णान् कुर्वतश्च गतागतान्॥
ब्रह्मरन्ध्रावधिं ध्यात्वा वायुनापूर्य कुम्भकम्।
सहस्रं प्रजपेन्मन्त्रं मन्त्रदोषोपशान्तये॥

अर्थात् मूलाधार सङ्कोचनादि कुण्डलिनी उत्थापन क्रिया द्वारा क्रमशः उच्चाधिकारी के मानस जप के अनुरूप प्रत्येक चक्र-चक्र में स्थित समुदय मातृका वर्णात्मक वर्णों द्वारा अपने इष्टबीज को पुटित करते-करते कुम्भक द्वारा ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त (कुण्डलिनी के)

गमनागमन-पूर्वक एक सहस्र बार जप करना चाहिये। इससे मन्त्रदोष नहीं रह जाता। यही योगी के लिये साधारण योनिमुद्रा-बन्धन है।

निर्वाण—साधक के समर्थ होने पर योनिमुद्रा-साधनोपरान्त नाभि में (मणिपूर चक्र में) निर्वाण जप सम्पन्न करना चाहिये। जैसे—अनुलोम मातृका में 'ॐ अं (अपना इष्टमन्त्र) ऐं'। इसी प्रकार से 'ॐ आं (अपना इष्टमन्त्र) ऐं'। ऐसे ही आगे की मातृकाओं से युक्त करके जप करना चाहिये। विलोम मातृका-हेतु 'ऐं (अपना बीज मन्त्र) अं ॐ। ऐसे समस्त मातृका वर्णयोग से मणिपूर में अनुलोम-विलोम करना चाहिये।

प्राणयोग—(हृदय में सात बार जप)— ह्रीं (इष्टमन्त्र) ह्रीं।

दीपनी—(हृदय में सात बार जप)— ईं (इष्टमन्त्र) ईं।

अशौचभङ्ग—(हृदय में सात बार जप)— ॐ (इष्टमन्त्र) ॐ।

करछिद्र—(कर में सात बार जप)— ॐ ह्रीं श्रीं हुं स्त्रीं।

अमृतयोग—(हृदय में दस बार जप)— ॐ ऊं ह्रीं (इष्टमन्त्र)।

प्रमदा—हृदय में दस बार 'ईं' का जप करना चाहिये।

सप्तच्छदा—हृदय में दस बार 'क्रीं क्लीं ह्रीं स्त्रीं हुं ओं ॐ' का जप करना चाहिये।

उत्कीलन—देवता की गायत्री का दस बार जप करना चाहिये।

दृष्टिसेतु—आँखें बन्द करके आज्ञाचक्र को लक्ष्य करके दस बार ॐ का जप करना चाहिये।

मालापूजा—'एते गन्धपुष्पे ऐं श्रीं अक्षमालायै नमः' मन्त्र से रुद्राक्ष आदि माला की पूजा करनी चाहिये। जपमाला तथा गले में पहनने वाली माला अलग होनी चाहिये। जपमाला को थैली में सर्वदा गुप्त रखना चाहिये। माला न अधिक छोटी हो, न अधिक बड़ी हो। कण्ठमाला बड़ी से बड़ी हो तो उचित है। बड़ी माला ३२ दाने की गले में पहननी चाहिये। छोटे दानों की हो तो १०८ दानों की पहननी चाहिये। इस मन्त्र से माला-ग्रहण करना चाहिये—

ॐ माले माले महामाले सर्वशक्तिस्वरूपिणी।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्माद्धै सिद्धिरस्तु मे॥
ॐ सिद्धेश्वर्यै नमः।

अब माला ग्रहण करके स्वर एवं व्यञ्जनसमूह के विच्छेद द्वारा मन्त्र के वर्णात्मक भाव को त्याग कर केवल ध्वन्यात्मक भाव का चिन्तन करना चाहिये। तदनन्तर ब्रह्मरन्ध्र से माला का स्पर्श कराना चाहिये।

अब कामकला का चिन्तन करके एकाग्र भक्ति के साथ गुरु-मन्त्र तथा देवता के एकत्वभूत स्वरूप ज्योति रेखा (अनाहत से गुरुपादुका-पर्यन्त विस्तृत ब्रह्मनाड़ी) के ऊपर लक्ष्य करके पुरश्चरण के मूल मन्त्र का जप प्रारम्भ कर देना चाहिये।

जप-समर्पण—जपकार्य सम्पन्न हो जाने पर कुश, पुष्प तथा अर्घ्यपात्रस्थ जल के साथ जपफल देवता के हाथ में समर्पित करके यह चिन्तन करना चाहिये कि जपफल सफल हो गया। तदनन्तर यथासाध्य प्राणायाम एवं देवता की गायत्री का दस बार जप करना चाहिये।

होम—पुरश्चरण कर्म का ही अनुष्ठान है—होम। पुरश्चरण में जितना जप किया गया हो, उसका दशमांश होम किया जाता है। होमविधि 'आगमतत्त्वविलास' ग्रन्थ में सविधि अङ्कित है।

तर्पण—तदनन्तर जल में इष्टदेव का आवाहन करके पाद्यादि उपहार से परिवार के साथ समन्वित इष्टदेव की अर्चना करके एक-एक अञ्जलि जल द्वारा तर्पण करना चाहिये। जप का दशमांश होम एवं होम का दशमांश तर्पण करना चाहिये।

अभिषेक—जप के दशमांश का होम, उसके दशमांश का तर्पण तथा तर्पण के दशमांश का अभिषेक किया जाता है। तर्पण तथा अभिषेक की विधि 'आगमतत्त्वविलास' में देखनी चाहिये।

ब्राह्मण-भोजन—जप का दशमांश होम, होम का दशमांश तर्पण, तर्पण का दशमांश अभिषेक एवं उसके दशमांश का ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये।

कुमारी-पूजा—पुरश्चरण का अन्तिम अनुष्ठान है—कुमारी-पूजन।

दक्षिणादान—अनन्तर आचार्य, गुरुदेव को श्रद्धापूर्वक भोजन तथा वस्त्रादि देकर यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये।

अच्छिद्रावधारण—तदनन्तर 'ॐ कृतैतत् श्री अमुकदेवतायाः अमुकमन्त्रपुरश्चरण-कर्माच्छिद्रमस्तु' कहना चाहिये।

वैगुण्य-समाधान—वाम हस्तयुक्त दक्षिण हस्त में त्रिपत्र के साथ हरीतकी को जल में रखकर इस प्रकार कहना चाहिए—'ॐ तत्सत् अद्य (सङ्कल्प में उस दिन की तिथि, मास, राशि आदि का उल्लेख करके) अमुकदेवशर्मा (अथवा अमुकानन्दनाथ) कृतेऽस्मिन् पुरश्चरणकर्मणि यद्वैगुण्यं जातं तद्दोषप्रशमनाय श्रीविष्णुस्मरणमहं करिष्ये। ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम् (अहम् विष्णुवद् हृदि यत्)'। तदनन्तर 'ॐ विष्णु' का दस बार जप करना चाहिये। तत्पश्चात् अनाथों को तथा भिक्षुकों को भोजन कराकर अन्त में स्वयं भोजन करना चाहिये।

●

द्वितीयः खण्डः

अथ दीक्षाविधिः (प्रकारान्तरेण)[1]

शक्तिपूजासु दीक्षितानामेवाधिकारात् प्रथमतो दीक्षा निरूप्यते। तत्र शिष्यः पूर्वदिने क्षौरादिकं विधाय हविष्यं कृत्वा परदिने सर्वौषध्या-मलक्यादिस्नानं विधाय गुरुरपि स्नानसन्ध्यादिकं कृत्वा दीक्षास्थानं गत्वा तत्र कूर्मचक्रं दीपस्थानं समाद्रित्य शुद्धासने उपविशेत्। गुरोर्वाम-पार्श्वे शिष्यः शुद्धासने स्वस्तिकादिक्रमेण उपविश्य स्वस्तिवाचनपूर्वकं 'सूर्यः सोम' इत्यादिकं पठित्वा सङ्कल्पं कुर्यात्। तद्यथा—उत्तराभिमुखो भूत्वा वारिपूर्णं गन्धपुष्पतिलान्विततामप्रपात्रं गृहीत्वा 'ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा धर्मार्थकाममोक्षप्राप्तिकामः श्रीअमुक-देवताया इयदक्षरमन्त्रग्रहणमहं करिष्ये। इति सङ्कल्प्य स्वशाखोक्तसूक्तं पठित्वा गुरुं वृणुयात्। कृताञ्जलिर्भूत्वा—ॐ साधु भवानास्तां इति वदेत्। ॐ साध्वहमासे इति गुरुः। ततो अर्चयिष्यामो भवन्तं इति वदेत्। ॐ अर्चय इति गुरुः। ततो गन्धपुष्पवस्त्रालङ्कारादिभिर्गुरुमभ्यर्च्य दक्षिणं जानु धृत्वा पठेत्—ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा मत्सङ्कल्पित अमुकदेवताया इयदक्षरमन्त्रग्रहणकर्मणि अमुकगोत्रं श्रीअमुकदेवशर्माणमेभिर्गन्धादिभिरभ्यर्च्य गुरुत्वेन भवन्तमहं वृणे। ॐ वृतोऽस्मीति गुरुः। ॐ यथाविहितं गुरुकर्म कुरु। ॐ यथाज्ञानतः करवाणि इति गुरुः ॥१॥

शक्त्यादि देवता की पूजा के सम्बन्ध में दीक्षित व्यक्ति का अधिकार निरूपित होने से दीक्षा कही जा रही है। दीक्षा के पूर्व दिन में शिष्य को क्षौरादि कार्य-निर्वाह करके हविष्यान्न-भक्षण करके उसके अगले दिन सर्वौषधि तथा आमलकी-प्रभृति का पान करना चाहिये। गुरु को भी स्नान-सन्ध्यादि का निर्वाह करना चाहिये। तदनन्तर दोनों को दीक्षा-स्थान में जाकर कूर्मचक्र-निर्माण करके उसके मुखस्थान पर शुद्ध आसन पर बैठ जाना चाहिये। गुरु के वाम पार्श्व में शिक्ष्य शुद्धासन पर स्वस्तिकादि-क्रमेण बैठकर स्वस्ति-वाचनपूर्वक 'सूर्यः-सोमः' मन्त्र का पाठ करके सङ्कल्प करके अपने सङ्कल्पसूक्त का पाठ करके गुरु का वरण करना चाहिये। सङ्कल्पवाक्य मूल में अङ्कित है ॥१॥

---

(१) यह विधान महान् तान्त्रिक कृष्णचन्द्र स्मृतितीर्थ द्वारा उपदिष्ट है।

ततः शिष्यो घृतपूर्णकांस्यपात्रमुपस्थाप्य 'ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा अमुकदेवताया इयदक्षरमन्त्रसिद्धिप्रतिबन्धकाशेष-पापक्षयपूर्वकतन्त्रसिद्धिकम् एतत् घृतपूर्णकांस्यपात्रं श्रीगुरवे तुभ्यमहं सम्प्रददे' इत्युत्सृज्य काञ्चनदक्षिणां दद्यात् । एवं तिलपूर्णताम्रपात्रमपि । ततो गुरुराचम्य पञ्चगव्यं शोधयित्वा मण्डपादिकं सम्प्रोक्ष्य सर्वतोभद्रमण्डलं विरच्य घटं संस्थाप्य तदुपरि सर्वौषधिसहितपनसाम्राश्वत्थवटबकुलानां पञ्चपल्लवान् दत्त्वा वस्त्रयुग्मेणाच्छाद्य घटस्थापनं कुर्यात् । तत्र क्रमः— द्रीं इति कुम्भमानीय क्लीं इति सम्प्रोक्ष्य ऐं इति संशोध्य लं इति भूमिं संशोध्य श्रीं इति ध्यानं दत्त्वा तदुपरि द्रीं इति कलसमारोप्य सौः इति सम्प्रोक्ष्य द्रीमिति जलेनापूर्य,

**ॐ गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः समुद्राश्च सरांसि च ।
सर्वे समुद्राः सरितः सरांसि जलदां नदाः ॥
ह्रदाः प्रस्रवणाः पुण्याः स्वर्गपातालभूगताः ।
सर्वतीर्थानि पुण्यानि घटे कुर्वन्तु सन्निधिम् ॥**

इति पठेत् । ततः श्रीं इतिं पञ्चपल्लवं दत्त्वा हुं इति फलं दद्यात् । स्त्रीं इति स्थिरीकृत्य रं इति सिन्दूरं दद्यात् । यं इति पुष्पं दत्त्वा मूलेन दूर्वां दद्यात् । ॐ इति अभ्युक्ष्य हूं फट् स्वाहा इति दर्भेण ताडयेत् । इति घटस्थापनम् ॥२॥

अब शिष्य द्वारा घृतपूर्ण कांस्यपात्र तथा तिलपूर्ण ताम्रपात्र स्थापित करके मूलोक्त 'ॐ अद्येतानि' से लेकर 'तुभ्यमहं सम्प्रददे' मन्त्र द्वारा काँचन (स्वर्ण) दक्षिणा के साथ गुरु को प्रदान करना चाहिये । तिलपूर्ण ताम्रपात्र का भी उत्सृजन (अर्पण) करना चाहिये । मन्त्र में जहाँ 'घृतपूर्ण-कांस्यपात्रं' लिखा है, वहाँ 'तिलपूर्णताम्रपात्रं' कहना चाहिये । तदनन्तर गुरु को आचमन करके पञ्चगव्य का शोधन करके उसके द्वारा मण्डपादि का प्रोक्षण करके सर्वतोभद्रमण्डल का अङ्कन करके घट स्थापित करके उसके ऊपर सर्वौषधि तथा कटहल, आम्र, पीपल, वट तथा बकुल के पत्ते (पञ्चपल्लव) रखकर वस्त्रयुग्म द्वारा घट का आच्छादन करना चाहिये । इसका क्रम यह है—'द्रीं' मन्त्र द्वारा कुम्भ को लाना, 'क्लीं' से उसका प्रोक्षण करना, 'ऐं' से उसका शोधन, 'लं' द्वारा उस भूमि का शोधन, 'श्रीं' मन्त्र से वहाँ धान्य-स्थापन, उसके ऊपर 'द्रीं' मन्त्र द्वारा कलश एवं 'सौः' मन्त्र से घट की स्थापना तथा द्रीं मन्त्र से उस घट को जलपूर्ण करना चाहिये । साथ में यह मन्त्र पढ़ना चाहिये—

ॐ गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः समुद्राश्च सरांसि च ।
सर्वे समुद्राः सरितः सरांसि जलदा नदाः ॥

ह्रदाः प्रस्त्रवणाः पुण्याः स्वर्गपातालभूगताः ।
सर्वतीर्थाणि पुण्यानि घटे कुर्वन्तु सन्निधिम् ।।

तदनन्तर 'श्रीं' मन्त्र द्वारा उस पर पञ्चपल्लव रखकर 'हुं' मन्त्र द्वारा फल प्रदान करना चाहिये। घट के स्थिरीकरण हेतु 'स्त्रीं' का उच्चारण करना चाहिये। 'रं' द्वारा सिन्दूर प्रदान करना चाहिये। 'यं' द्वारा पुष्प एवं मूलमन्त्र द्वारा दूर्वा प्रदान करनी चाहिये। 'ॐ' से अभ्युक्षण करके 'हूं फट् स्वाहा' मन्त्र पढ़कर दर्भ से ताड़न करना चाहिये। यही घट-स्थापन होता है ।।२।।

ततो द्वारदेशे सामान्यार्घ्यं विधाय तज्जलेन द्वारमभ्युक्ष्य द्वारदेवताः पूजयेत्। पूर्वस्यां—गां गणेशाय नमः। दक्षिणस्यां—क्षां क्षेत्रपालाय नमः। पश्चिमस्यां—वां वटुकाय नमः। उत्तरस्यां—यां योगिनीभ्यो नमः। पार्श्वद्वये—ॐ गङ्गायै नमः, ॐ यमुनायै नमः, ॐ लक्ष्म्यै नमः, ॐ सरस्वत्यै नमः। नैर्ऋत्यां—ॐ वास्तुपुरुषाय नमः, ॐ ब्रह्मणे नमः। सर्वत्र प्रणवादि नमोऽन्तेन पूजयेत्। इति द्वारदेवतां सम्पूज्य देयमन्त्रेण दिव्यदृष्ट्यावलोकनात् दिव्यान् विघ्नानुत्सार्य वामपार्ष्णिघातत्रयेण भौमान् विघ्नानुत्सार्य फडिति सप्त जप्तान् विकिरान् आदाय ॐ अपसर्पन्तु ते भूता इत्यादि पठित्वा विकिरेत् ।।३।।

तदनन्तर द्वारदेश में सामान्यार्घ्य स्थापित करके उस जल से द्वार का अभ्युक्षण करके ऊपर लिखे मन्त्रों से द्वारदेश के देवता का पूजन करना चाहिये अर्थात् पूर्व में—ॐ गां गणेशाय नमः, दक्षिण में—ॐ क्षां क्षेत्रपालाय नमः, पश्चिम में—ॐ वां वटुकाय नमः, उत्तर में—ॐ यां योगिनीभ्यो नमः। पार्श्वद्वय में—ॐ गङ्गायै नमः, ॐ यमुनायै नमः, ॐ लक्ष्म्यै नमः, ॐ सरस्वत्यै नमः। नैर्ऋत्य में—ॐ वास्तुपुरुषाय नमः, ॐ ब्रह्मणे नमः कहकर पूजन करना चाहिये। तदनन्तर देय मन्त्र से दिव्य दृष्टि द्वारा अवलोकन करके विघ्नों को अपसारित करके 'ॐ अस्त्राय फट्' मन्त्र से जल छिड़कते हुये अन्तरिक्षगत विघ्न को तथा वामपार्ष्णि द्वारा आघातत्रय देकर भौम विघ्नसमूह को दूर करना चाहिये। 'फट्' मन्त्र का सात बार जप करके विकिर लेकर 'ॐ अपसर्पन्तु ये भूता' इत्यादि मन्त्र से चारो ओर विकिर छिड़ना चाहिये ।।३।।

ततो ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः, इत्यासनं सम्पूज्य धृत्वा पठेत्—अस्य आसनमन्त्रस्य मेरुपृष्ठऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता आसनपरिग्रहणे विनियोगः। ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता। त्वञ्च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनमिति पठित्वा स्वस्तिकादिक्रमेणोपविशेत् ।।४।।

तदनन्तर आसन शुद्धि करनी चाहिये; 'अस्य' से लेकर 'कुरु चासनं' पर्यन्त पढ़कर स्वस्तिकादि क्रम से आसन पर बैठना चाहिये ॥४॥

ततो गुरुः, तिलकुशजलान्यादाय सङ्कल्पं कुर्यात्। यथा—ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रस्य श्रीअमुकदेवशर्मणो धर्मार्थकाममोक्षफलप्राप्त्यर्थं अस्मै दातव्यामुकमन्त्रस्य अमुकदेवतामहं पूजयामि' इति सङ्कल्प्य सूक्तं पठित्वा पूर्वस्थापितकलसमध्ये दधितिलान् दत्वा कृताञ्जलिर्भूत्वा वामे—ॐ गुरुभ्यो नमः, ॐ परमगुरुभ्यो नमः, ॐ परापरगुरुभ्यो नमः, दक्षिणे—ॐ गणेशाय नमः, मध्ये—ॐ अमुकदेवतायै नमः, इति नमस्कारं कृत्वा फडिति मन्त्रेण गन्धपुष्पाभ्यां करौ संशोध्य उद्ध्र्वाधः तालत्रयं दत्त्वा छोटिकया दशदिग्बन्धनं कृत्वा रमिति जलधारया आत्मानं वेष्टयित्वा वह्निप्राकारं विचिन्त्य भूतशुद्धिं कुर्यात्। ततो मातृकान्यासः। ततः प्राणायामः। ततः पीठन्यासः। ततो ऋष्यादिन्यासः। ततो मन्त्रादिन्यासः। ततो मुद्रादिदर्शनम्। ततो गणेशादीन् सम्पूज्य कराङ्गन्यासं व्यापकन्यासञ्च कृत्वा यथोक्तविधानेन ध्यात्वा मानसपूजां विशेषार्घ्यस्थापनञ्च कृत्वा तेनोदकेनात्मानं पूजोपकरणञ्चाभ्युक्ष्य पीठन्यासक्रमेण पीठपूजां कृत्वा पुनर्ध्यात्वावाह्य 'ॐ देवेशि भक्तिसुलभे' इत्यादि पठित्वा यन्त्रपक्षे प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्। ततस्त्रिस्तर्पयित्वा स्वस्वपद्धत्युक्तविधिना षोडशोपचारैः शिष्यस्येष्टदेवतां सम्पूज्य देयमन्त्रमष्टोत्तरशतं कुर्यात्। ततो मन्त्रस्य दशविधसंस्कारं कुर्यात् ॥५॥

तदनन्तर गुरु का तिल, कुशा एवं जल लेकर सङ्कल्प करना चाहिये। सङ्कल्प मन्त्र मूलोक्त 'ॐ अद्येत्यादि' से लेकर 'पूजयामि' पर्यन्त है। तदनन्तर पहले स्थापित कलस पर दधि, तिल प्रदान करके कृताञ्जलिबद्ध होकर वाम ओर 'ॐ गुरुभ्यो नमः, ॐ परम-गुरुभ्यो नमः, ॐ परापरगुरुभ्यो नमः' से नमस्कार करना चाहिये। दक्षिण ओर 'ॐ गणेशाय नमः', मध्य में जिस देवता की पूजा की जा रही है, उनका नाम लेकर 'ॐ देवतायै नमः' द्वारा नमस्कार करके हाथ से गन्ध-पुष्प को लेकर फट् मन्त्र द्वारा शोधित करना चाहिये। अब ऊर्ध्व तथा अधः में तीन ताली बजाने के बाद चुटकी बजाकर दशो दिशाओं का दिग्बन्धन करना चाहिये। तत्पश्चात् 'रं' मन्त्र से जलधारावत् आत्मा को आवेष्टित होते चिन्तन करके वह्निमण्डल का चिन्तन करके भूतशुद्धि करनी चाहिये। अब मातृका न्यास करना चाहिये। तदनन्तर प्राणायाम, तदनन्तर पीठन्यास, तदनन्तर ऋष्यादि-न्यास, तदनन्तर मन्त्रादिन्यास, तदनन्तर मुद्रा-प्रदर्शन, तदनन्तर गणेशादि का पूजन करने के पश्चात् कराङ्गन्यास, व्यापकन्यास करके गुरु-प्रदर्शित विधान के अनुसार ध्यान, मानसपूजा, विशेषार्घ्य-स्थापन करके उसके जल से पूजोपकरण का अभ्युक्षण करना

चाहिये। तत्पश्चात् पीठन्यासक्रम से पीठपूजा करके पुनः ध्यान करके तथा देवता का आवाहन 'ॐ देवेशि भक्तिसुलभे' इत्यादि मन्त्र पढ़कर यन्त्रपक्ष में प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये। तत्पश्चात् तीन बार तर्पण करके अपने गुरु की प्रदर्शित पद्धति द्वारा षोडशोपचार पूजनोपरान्त देय मन्त्र का १०८ बार जप करने के उपरान्त जप-समर्पण करके साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिये। तत्पश्चात् मन्त्र का दशविध संस्कार करना चाहिए ॥५॥

तद्यथा—

जननं जीवनं पश्चात् ताड़नं बोधनं तथा।
अथाभिषेको विमलीकरणाप्यायनं पुनः।
तपनं दीपनं गुप्तिर्दशैता मन्त्रसंस्क्रियाः ॥६॥

दशविध संस्कार हैं—जनन, जीवन, ताड़न, बोधन, अभिषेक, विमलीकरण, आप्यायन, तर्पण, दीपन तथा गुप्ति ॥६॥

तत्र क्रमः—शक्तिविषये ताम्रादिपात्रे कुङ्कुमेन, विष्णुविषये श्वेतचन्दनेन, शिवविषये भस्मना मातृकायन्त्रं लिखित्वा स्वर्णशलाकया तद्यन्त्रान्मन्त्रमुद्धृत्य पात्रान्तरे लिखेदिति जननम्। मन्त्राक्षराणि प्रणवान्तराणि कृत्वा प्रत्येकेन शतवारं जपेत्। अशक्तश्चेद्दशधा जपेदिति जीवनम्। मन्त्रवर्णान् स्वर्णादिपात्रे विलिख्य वायुबीजेन चन्दनोदकेन शतवारं पुष्पेण ताडयेदिति ताडनम्। वह्निबीजेन करवीरपुष्पेण मन्त्रवर्णसङ्ख्यया हन्यादिति बोधनम्। 'अमुकदेवताया अमुकमन्त्रमभिषिञ्चामि नमः' इति मन्त्रवर्णसङ्ख्यया अश्वत्थपल्लवैः कल्पोक्तद्रव्यैः सिञ्चेदिति अभिषेकः। देयमन्त्रं मनसा सुषुम्नामूलमध्ये सञ्चिन्त्य तस्यादौ अन्ते च 'ॐ ह्रौं' इति मन्त्रं संयोज्य पञ्चविंशतिवारं जप्त्वा मलत्रयं देहमिति विमलीकरणम्। स्वर्णयुक्तकुशतोयेन पुष्पतोयेन वा 'ॐ ह्रौं' इति मन्त्रेण शतधा दशधा वा अभ्युक्षणमिति आप्यायनम्। ॐ इति मन्त्रेण मूलमन्त्रेण वा कल्पोक्तद्रव्येण अमुकदेवताया अमुकमन्त्रं तर्पयामि नमः इति तर्पणम्। 'ॐ ह्रीं श्रीं मूलं ततो देवता ॐ ह्रीं श्रीं इत्यष्टोत्तरशतं जपेदिति दीपनम्। जप्यमन्त्रस्य अप्रकाशनं गोपनं इति गुप्तिः। संस्कारहीनो मन्त्रो न ग्राह्यः इति दशसंस्कारः ॥७॥

दशविध संस्कार का क्रम कहते हैं—शक्तिमन्त्र के लिये ताम्रपात्र में कुङ्कुम से, विष्णु के लिये श्वेत चन्दन से और शिव के लिये भस्म से मातृकायन्त्र बनाकर स्वर्णशलाका से उस यन्त्र से मन्त्र का उद्धार करके पत्रान्तर में लिखना मन्त्र का जनन होता है। मन्त्राक्षरों को प्रणव से पुटित करके प्रत्येक अक्षर का १०० बार जप करना मन्त्र का जीवन होता है। मन्त्रवर्णों को स्वर्णादि पत्र पर लिखकर 'यं' बीज कहते हुये पुष्प को चन्दन-मिश्रित

जल में डुबोकर उस पुष्प से उस मन्त्राङ्कित पत्र पर १०० बार ताड़न करना ही मन्त्रताड़न कहलाता है। 'रं' बीज द्वारा लाल कनेर के पुष्पों से मन्त्रवर्णसङ्ख्या के अनुसार आहुति देना ही बोधन होता है। 'अमुकदेवताया अमुकमन्त्रमभिषिञ्चामि नमः' (यहाँ अमुक देवता की जगह देवता का नाम, अमुक मन्त्र की जगह अपना मन्त्र कहे) कहकर मन्त्रवर्णसङ्ख्या-तुल्य अश्वत्थपत्र से कल्पोक्त द्रव्यानुसार अभिषेक करना ही मन्त्र का अभिषेक होता है। शक्तिमन्त्र के लिये मधु, विष्णुमन्त्र हेतु कर्पूर-मिश्रित जल तथा शिवमन्त्र-हेतु घृत अथवा दुग्ध से तर्पण करना चाहिये। देय मन्त्र का सुषुम्नामूल में चिन्तन करके उस मन्त्र को आदि एवं अन्त में 'ॐ ह्रौं' से पुटित करके २५ बार जप करने से मलत्रय से साधक का मन्त्र मुक्त हो जाता है। यही है—मन्त्र का विमलीकरण। स्वर्णयुक्त कुशा के जल से, पुष्पजल से 'ॐ ह्रौं' मन्त्र का १०० अथवा १० बार अभ्युक्षण ही मन्त्र का आप्यायन कहलाता है। 'ॐ इति मन्त्रेण मूलमन्त्रेण कल्पोक्तद्रव्येन अमुकदेताया अमुकमन्त्रं तर्पयामि नमः' से तर्पण करना ही मन्त्र का तर्पण होता है। 'ॐ ह्रीं श्रीं मूलं (अपना मन्त्र) ततो देवता (देवता का नाम) ॐ ह्रीं श्रीं' लेकर इसे १०८ बार जपना चाहिये। यही मन्त्र का दीपन होता है। मन्त्र को सबसे गुप्त रखना ही मन्त्र का गुप्तीकरण होता है। संस्कारहीन मन्त्र को ग्रहण नहीं करना चाहिये। इस प्रकार मन्त्र के ये दश संस्कार होते हैं ॥७॥

ततो गुरुः शिष्यमानीय वौषडिति मन्त्रेण शिष्यनेत्रं वस्त्रेणाच्छाद्य शिष्याञ्जलिं पुष्पैः पूरयित्वा गुरुः स्वयमेव देयमन्त्रमुच्चरन् कलसे देवताप्रीत्यै तत्पुष्पं क्षिपेत् ॥८॥

तदनन्तर गुरु द्वारा अपने शिष्य को सामने बैठाकर उसके नेत्रों को वस्त्र से आच्छादित करने के बाद पुष्प द्वारा शिष्य की अञ्जलि को पूर्ण करके गुरु को स्वयं ही देय मन्त्र का उच्चारण करते हुये देवता की प्रसन्नता-हेतु उस अञ्जलि में लिये पुष्प को कुम्भ पर अर्पित कराना चाहिये ॥८॥

ततो नेत्रबन्धं दूरीकृत्य दर्भान्तरे आसीनं शिष्यं सन्निहितमानीय स्वकृतपूजाक्रमाद्भूतशुद्ध्यादिकं विधाय तत्तन्मन्त्रोक्तन्यासान् शिष्यदेहे कुर्यात् ॥९॥

तदनन्तर नेत्रबन्धन हटाकर शिष्य को सामने दर्भासन पर आसीन कराकर अपने पूजाक्रमानुसार भूतशुद्धि आदि सम्पन्न कराकर शिष्य-देह में उस मन्त्रोक्त न्यास को कराना चाहिये ॥९॥

ततः कुम्भस्थां देवतां पुनः पञ्चोपचारैः सम्पूज्य कुम्भमुखस्थान् सुरद्रुम-रूपान् पञ्चपल्लवान् शिष्यशिरसि निधाय मातृकां जपन् मूलमन्त्रेण साधितैस्तोयैस्तमभिषिञ्चेत्। ततः शिष्य आचम्य गुरुसन्निधावुपविश्य

गुरुदैवतयोरैक्यं विभाव्य गुरुं प्रणमेत् । ततो गुरुः 'ॐ सहस्रारे हूं फट् स्वाहा' इति मन्त्रेण शिष्यशिखां बद्ध्वा शिष्यस्य शिरः करेणाच्छाद्य 'ॐ स्वस्तिरस्तु शिवञ्चास्तु महालक्ष्मीः प्रसीदतु । शुभं कुर्वन्तु ते देवाः सम्पदः सन्तु सर्वदा' इत्याशीः कुर्यात् । ततः शिष्यस्य शरीरे कलान्यासं कुर्यात् । यथा—कुशत्रयेण पदतलाज्जानुपर्यन्तं ॐ निवृत्त्यै नमः । जानुनोः पादपर्यन्तं ॐ प्रतिष्ठायै नमः । पुनर्ब्रह्मरन्ध्राद् ललाटं ॐ शान्त्यतीतायै नमः । ललाटादाकण्ठं ॐ शान्त्यै नमः । कण्ठान्नाभिपर्यन्तं ॐ विद्यायै नमः । नाभेर्जानुपर्यन्तं ॐ प्रतिष्ठायै नमः । जानुनोः पादपर्यन्तं ॐ निवृत्त्यै नमः ॥१०॥

तदनन्तर कुम्भस्थ देवता का पुनः पञ्चोपचार से पूजन करके उस कुम्भ पर रखे गये पञ्चपल्लव को शिष्य के मस्तक पर स्थापित करके मातृका मन्त्र का मन ही मन स्मरण करके मूल मन्त्र में पूर्वाभिमन्त्रित इस कुम्भ के जल से शिष्य का अभिषेक करना चाहिये । तदनन्तर शिष्य द्वारा आचमन करके गुरु एवं देवता के ऐक्य की चिन्तना करते हुए गुरु को प्रणाम करना चाहिये । तदनन्तर गुरु 'ॐ सहस्रारे हूं फट् स्वाहा' मन्त्र से शिष्य की शिखा का बन्धन करके शिष्य के शिर पर हाथ रखकर इस प्रकार कहना चाहिये—

ॐ स्वस्तिरस्तु शिवञ्चास्तु महालक्ष्मीः प्रसीदतु ।
शुभं कुर्वन्तु ते देवाः सम्पदः सन्तु सर्वदा ॥

इस प्रकार कहकर शिष्य की देह में मूलोक्त मन्त्रों से निवृत्त्यादि कला का न्यास करना चाहिये । यथा—

तीन कुशों से पदतल से जानुपर्यन्त— ॐ निवृत्त्यै नमः ।
,, जानु से नाभि-पर्यन्त— ॐ प्रतिष्ठायै नमः ।
,, नाभि से कण्ठ-पर्यन्त— ॐ विद्यायै नमः ।
,, कण्ड से ललाट-पर्यन्त— ॐ शान्त्यै नमः ।
,, ललाट से ब्रह्मरन्ध्र तक— ॐ शान्त्यतीतायै नमः ।
,, पुनः ब्रह्मरन्ध्र से ललाट तक— ॐ शान्त्यतीतायै नमः ।
,, ,, ललाट से कण्ठ-पर्यन्त— ॐ शान्त्यै नमः ।
,, ,, कण्ठ से नाभि-पर्यन्त— ॐ विद्यायै नमः ।
,, ,, नाभि से जानु-पर्यन्त— ॐ प्रतिष्ठायै नमः ।
,, ,, जानु से पदतल तक— ॐ निवृत्त्यै नमः ॥१०॥

ततः शिष्यशिरसि हस्तं दत्त्वा देयमन्त्रमष्टोत्तरशतं जप्त्वा 'अमुकमन्त्रं तेऽहं ददामि' इति शिष्यहस्ते जलं दद्यात् । शिष्यो 'ददस्व' इति वदेत् । ततः ऋष्यादिसंयुक्तं मन्त्रं पूर्वाभिमुखो गुरुः पश्चिमाभिमुखाय शिष्याय

दक्षिणकर्णे त्रिवारं वामकर्णे चैकवारं श्रावयेत्। स्त्रीशूद्रयोः वामकर्णे वारत्रयं दक्षिणकर्णे एकवारं श्रावयेत् ॥११॥

तदनन्तर शिष्य के मस्तक पर शिष्य को दिये गये मन्त्र का १०८ बार जप करके 'अमुकमन्त्रं तेऽहं ददामि' कहकर शिष्य के हाथ में जल प्रदान करना चाहिये और शिष्य द्वारा 'ददस्व' कहना चाहिये। तदनन्तर ऋष्यादिसंयुक्त मन्त्र को पूर्वाभिमुखोपविष्ट गुरु को पश्चिम की ओर मुख करके बैठकर शिष्य के दाहिने कान में तीन बार कहना चाहिये। पुन: वामकर्ण में मात्र एक बार कहना चाहिये। स्त्री तथा शूद्र शिष्य के बाँयें कान में तीन बार तथा दाहिने कान में एक बार सुनाना चाहिये ॥११॥

ततो लब्धमन्त्रं शिष्यो गुरु-देव-मन्त्राणामैक्यं सम्भावयन् तन्मन्त्रमष्टोत्तरशतं जपेत्, गुरुरपि स्वशक्तिरक्षार्थं सहस्रं शतं वा जपेत्। ततः शिष्यो गुरुचरणे दण्डवत् पतित एव तिष्ठेत्। 'त्वत्प्रसादादहं देव कृतकृत्योऽस्मि सर्वतः। मायामृत्युमहापाशाद्विमुक्तोऽस्मि शिवोऽस्मि च' इति वदेत्। ततो गुरुः 'ॐ उत्तिष्ठ वत्स मुक्तोऽसि सम्यगाचारवान् भव। कीर्त्तिश्रीकान्तिपुत्रायुर्बलारोग्यं सदास्तु ते' इति उत्थापयेत् ॥१२॥

तदनन्तर मन्त्र-प्राप्त शिष्य को गुरु-देवता तथा मन्त्र के ऐक्य की भावना करके उस मन्त्र का १०८ बार जप करना चाहिये। गुरुदेव को भी अपनी शक्ति के रक्षणार्थ उस मन्त्र का १००० अथवा १०० बार जप करना चाहिये। तदनन्तर शिष्य को गुरु के चरणों में दण्डवत् करके मूलोक्त 'त्वत् प्रसादात्' से लेकर 'शिवोऽस्मि' पर्यन्त कहना चाहिये। तब गुरु को भी 'उत्तिष्ठ वत्स' से लेकर 'सदास्तु ते' पर्यन्त कहकर उसे उठाना चाहिये ॥१२॥

ततः शिष्यः कुशतिलजलान्यादाय 'ॐ अद्येत्यादि धर्मार्थकाममोक्ष-प्राप्तिकामनया कृतैतत् अमुकदेवताया इयदक्षर अमुकमन्त्रग्रहणकर्मणः प्रतिष्ठार्थं दक्षिणामिदं सुवर्णादिकं अमुकगोत्राय श्रीअमुकदेवशर्मणे ब्राह्मणाय श्रीगुरवे तुभ्यमहं सम्प्रददे। ततो गुरुः शान्त्याशीर्वादं कुर्यात् ॥१३॥

तदनन्तर शिष्य द्वारा कुश-तिल-जल लेकर मूलोक्त 'ॐ अद्येत्यादि' से लेकर 'तुभ्यमहं सम्प्रददे' पर्यन्त कहते हुये श्रीगुरु को दक्षिणा-सुवर्णादि अपने वित्त-विभव के अनुसार प्रदान करना चाहिये। तब गुरु को अपने शिष्य को शान्त्यादि आशीर्वाद प्रदान करना चाहिये ॥१३॥

दीक्षादिवसे गुरुशिष्ययोरुपवासनिषेधमाह योगिनीतन्त्रे—

मन्त्रं दत्त्वा गुरुश्चैवमुपवासं यदाचरेत्।
महान्धकारे नरके क्रिमिर्भवति नान्यथा ॥

दीक्षां कृत्वा यदा मन्त्री उपवासं समाचरेत् ।
तस्य देवः सदा रुष्टः शापं दत्त्वा ब्रजेत् पुरम् ॥१४॥

।। इति दीक्षाप्रयोगः ।।

दीक्षा के दिन गुरु तथा शिष्य के लिये उपवास वर्जित है । योगिनीतन्त्र में कहा गया है कि जो गुरु मन्त्र देकर (दीक्षा देकर) उपवास करता है, वह महान् अन्धकार-युक्त नरक में कृमि होता है । इसमें अन्यथा नहीं है और जो शिष्य दीक्षा लेकर उपवास करता है, उससे देवता रुष्ट होकर शाप देते हुये अपने लोक को चले जाते हैं ॥१४॥

●

प्रातःकृत्यम्[1]

गृहीतमन्त्रं शिष्यः ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थाय शय्यायामेव बद्धपद्मासनः स्वस्तिकासनस्थो वा शिरस्थाधोमुखसहस्रदलकमलकर्णिकान्तर्गत–ऊर्ध्वमुख–द्वादशार्ण–सरसीरुहोपरिस्थित–शरदिन्दुसुन्दरपूर्णचन्द्रमण्डलान्तर्गत–हंसपीठे निजगुरुं शुक्लवर्णं शुक्लालङ्कारभूषितं ज्ञानानन्दसमुदितमानसं द्विभुजं वराभयकरं शान्तं स्वप्रकाशस्वरूपं श्वेतमाल्यानुलेपनं स्ववामोरुस्थितया रक्तवर्णया गुरुपत्नीरूपया वामकरधृतरक्तोत्पलया शक्त्या दक्षिणहस्तगृहीतकलेवरं द्विनयनं परमशिवस्वरूपं विभाव्य प्रकृतनामपूर्वकं गुरुं स्मरेत् ।।१।।

अब प्रात:कृत्य कहा जा रहा है । मन्त्रग्रहणोपरान्त शिष्य को ब्राह्म मुहूर्त्त में निद्रा से उठकर शय्या के ऊपर पद्मासन अथवा स्वस्तिकासन में बैठकर शिर:स्थित अधोमुख सहस्रदल कमल की कर्णिका में ऊर्ध्वमुखी द्वादशदल पद्म के ऊपर स्थित शरदिन्दु सुन्दर पूर्णचन्द्र मण्डलान्तर्गत हंसपीठ पर स्थित शुक्लवर्ण तथा शुक्ल अलङ्कार से भूषित ज्ञानानन्द-सम्मुदित मन वाले द्विभुज, त्रिनयन, वर-अभयप्रद, शान्त, स्वप्रकाशमूर्त्ति, श्वेत माला तथा श्वेत चन्दनधारी, स्ववामभागस्थ रक्तवर्णा गुरुपत्निरूपा वाम कर में रक्त कमल धारण करने वाली शक्ति को दाहिने हाथ से पकड़े हुये स्थित अपने गुरु की परमशिवस्वरूप भावना करके उनके प्रकृत नाम का उच्चारण करके गुरु का चिन्तन करे ॥१॥

विशेष—यहाँ प्रात:काल में निद्रा से उठते ही शय्या पर ध्यान करने का विधान है, जिसे मल-मूत्र परित्याग के पूर्व ही रात्रि के वस्त्रों को बदले बिना सोकर उठते ही करने का आदेश है; लेकिन राघवभट्ट का कथन है कि मल-मूत्रादि त्यागोपरान्त ही यह करना चाहिये । वास्तव में राघवभट्ट का यह अभिप्राय न होकर तात्पर्य यह है कि शौचादि के

---

(१) यह विधान महान् तान्त्रिक कृष्णचन्द्र स्मृतितीर्थ द्वारा उपदिष्ट है ।

उपरान्त ही देवगृह में गमन करना चाहिये। शिवार्चनचन्द्रिका का भी मत है कि निद्रा-त्याग करते ही शय्या पर ही ध्यान करना उचित है। यहाँ यह भी कहना है कि यदि कोई व्यक्ति सूर्योदय के समय अथवा उसके पश्चात् निद्रा-त्याग करता है, तो उसे भी यह प्रातःकृत्य करना चाहिये; अन्यथा उसे पूजाधिकार नहीं मिलता। समय बीतने के पश्चात् प्रातःकृत्य के पहले प्रायश्चित्तार्थ १० बार 'ऐं' बीज का जप करना चाहिये।

●

अथ मानसपूजा

'ऐं' इति मन्त्रमुच्चार्य उभयहस्तकनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन लं पृथ्व्यात्मकं गन्धं सशक्तिकश्रीगुरवे समर्पयामि नमः। उभयहस्ताङ्गुष्ठाभ्यां तर्जनीयोगेन हं आकाशात्मकं पुष्पं सशक्तिकश्रीगुरवे समर्पयामि नमः। उभयहस्त-तर्जनीभ्यां अङ्गुष्ठयोगेन यं वाय्वात्मकं धूपं सशक्तिकश्रीगुरवे समर्पयामि नमः। उभयहस्तमध्यमाभ्यां अङ्गुष्ठयोगेन रं वह्न्यात्मकं दीपं सशक्तिक-श्रीगुरवे समर्पयामि नमः। उभयहस्तानामिकाभ्यां अङ्गुष्ठयोगेन वं अमृतात्मकं नैवेद्यं सशक्तिकश्रीगुरवे समर्पयामि नमः। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ऐं सर्वात्मकं ताम्बूलं सशक्तिकश्रीगुरवे समर्पयामि नमः इति। ततः ऐं इति मन्त्रं यथाशक्ति जप्त्वा 'गुह्यातिगुह्यगोप्तृ त्वम्' इत्यादिना जपं समर्प्य प्रणमेद् यथा—

**अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥
नमोऽस्तु गुरवे तस्मै इष्टदेवस्वरूपिणे।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम्॥**

समर्थश्चेत् गुरुस्तोत्रादिकं पठेत्॥२॥

'ऐं' का उच्चारण करके दोनों हाथ की कनिष्ठिका का अङ्गुष्ठ से योग करके—लं पृथ्व्यात्मकं गन्धं सशक्तिकश्रीगुरवे समर्पयामि नमः, दोनों हाथ के अङ्गुष्ठ को जोड़कर तर्जनी से जोड़कर—हं आकाशात्मकं पुष्पं सशक्तिकश्रीगुरवे समर्पयामि नमः, दोनों हाथ की तर्जनी को अङ्गूठे से जोड़कर—यं वाय्वात्मकं धूपं सशक्तिकश्रीगुरवे समर्पयामि नमः, दोनों हाथ की मध्यमा को अङ्गूठे से जोड़कर—रं वह्न्यात्मकं दीपं सशक्तिकश्रीगुरवे समर्पयामि नमः, दोनों हाथ की अनामिका को अङ्गूठे से जोड़कर—वं अमृतात्मकं नैवेद्यं सशक्तिकश्रीगुरवे समर्पयामि नमः कहना चाहिये। तदनन्तर कृताञ्जलिबद्ध होकर—ऐं

सर्वात्मकं ताम्बूलं सशक्तिकश्रीगुरवे समर्पयामि नमः कहना चाहिये। तत्पश्चात् 'ऐं' का यथाशक्ति जप करके 'गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वम्' इत्यादि द्वारा जप-समर्पण करके गुरु को प्रणाम करना चाहिये। गुरुप्रणाममन्त्र मूलोक्त 'अखण्डमण्डलाकारं' से लेकर संसारसंज्ञकम्' तक है। जो समर्थ है, उसे गुरुस्तोत्रादि का पाठ भी करना चाहिये ॥२॥

विशेष—प्रातःकृत्यादि काल में ध्यान के समय बाँयीं हथेली के ऊपर दाहिनी हथेली रखनी चाहिये; लेकिन ताराविद्या के उपासक को अपनी नाभि के पास पहले दाहिनी हथेली रखकर उसके ऊपर बाँयीं हथेली रखनी चाहिये। साधारण नियम यह है कि पुरुष देवता की उपासना में बाँयीं हथेली के ऊपर दाहिनी हथेली तथा स्त्रीदेवतार्थ दाहिनी हथेली के ऊपर बाँयीं हथेली रखनी चाहिये। यदि स्त्रीगुरु है तब उसके लिये नमस्कारमन्त्र इस प्रकार है—

ब्रह्मविष्णुशिवत्वादि जीवन्मुक्तिप्रदायिनी।
ज्ञानविज्ञानदात्री च तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

अथ कुलकुण्डलिनीं ध्यायेत्। यथा—गुरोराज्ञां गृहीत्वा मूलाधारपद्म-कर्णिकास्थत्रिकोणान्तर्गतस्वयम्भूलिङ्गवेष्टिनीं प्रसुप्तभुजगाकारां सार्द्ध-त्रिवलयान्वितां कोटिसौदामिनीभासां मृणालतन्तुसदृशीं इष्टदेवतारूपां कुलकुण्डलिनीं 'यं रं' इति मन्त्राभ्यां पवनदहनयोगात् हुङ्कारेण च सचैतन्यां विधाय 'हंसः' इति मन्त्रेण उत्थाप्य ब्रह्मवर्त्मना परमशिवे समायोज्य तयोः सामरस्यं विचिन्त्य त्रिपुरसुन्दरीस्वरूपया रक्तवर्णया गुरुशक्त्या युक्तं परमशिवरूपं गुरुं ध्यायेत्॥३॥

तदनन्तर कुलकुण्डलिनी का ध्यान करना चाहिये। यथा—गुरु से आज्ञा लेकर मूलाधार कमल की कर्णिका में स्थित त्रिकोण के अन्तर्गत स्वयम्भू लिङ्ग को प्रसुप्त सर्पिणी के समान सार्द्धत्रितय (साढ़े तीन फेरा) वेष्टन करके कुण्डलिनी विराजित है। उसकी देहकान्ति करोड़ों विद्युत् के समान है। वे मृणालतन्तु-सूत्र के समान अतीव सूक्ष्मा हैं। साधक को इस प्रकार की इष्टदेवतारूपिणी कुलकुण्डलिनी शक्ति को 'यं रं' मन्त्रयोग से हुङ्कार द्वारा चैतन्ययुक्त करके 'हंसः' मन्त्र से उठाकर ब्रह्ममार्ग में परमशिव के साथ संयोजित करके शिव-शक्ति के सामरस्य-चिन्तन द्वारा त्रिपुरसुन्दरी-स्वरूपिणी रक्तवर्णा गुरुशक्ति के साथ परमशिवरूपी गुरु का ध्यान करना चाहिये॥३॥

अथ परमशिवसामरस्येनामृतप्लुतां कुलकुण्डलिनीं मूलाधारे समानीय श्वासं त्यक्त्वा इष्टदेवतानमस्कारमन्त्रेण तां प्रणमेत्॥४॥

तदनन्तर परमशिव-सामरस्योद्भूत अमृत द्वारा परिप्लुता कुलकुण्डलिनी को मूलाधार में लाकर श्वास-परित्याग करके इष्टदेवता को नमस्कार मन्त्र द्वारा प्रणाम करना चाहिये॥४॥

अथ चौरगणेशन्यासः

प्रथमं हृदये क्रों इति दशधा जप्त्वा दशनेत्रे ह्रीं ह्रीं वामनेत्रे ह्रीं ह्रीं, दक्षकर्णे हुं हुं, वामकर्णे हुं हुं, दक्षनासापुटे क्रीं क्रीं, वामनासापुटे क्रीं क्रीं, मुखे स्त्रीं स्त्रीं, नाभौ ऐं, लिङ्गमूले हेसौः, गुह्ये ब्लूं, भ्रूमध्ये हुं इति एकादशस्थाने एकादशबीजं दशधा, एकधा वा न्यसेत्।

पहले हृदय पर 'क्रों' का १० बार जप करके दाहिने नेत्र पर–ह्रीं ह्रीं, वाम नेत्र पर–ह्रीं ह्रीं, दाहिने कान पर–हुं हुं, वाँये कान पर–हुं हुं, दाहिने नासा पर–क्रीं क्रीं, बाँयें नासापुट पर–क्रीं क्रीं, मुख पर–स्त्रीं स्त्रीं, नाभि पर–ऐं, लिङ्गमूल पर–हे सौः, गुह्य पर–ब्लूं, भ्रूमध्य में–हुं। इन ११ स्थानों पर इन बीजों का १० बार अथवा १ बार न्यास करना चाहिये।

समर्थश्चेदस्मिन्नेव समये अजपाजपसमर्पणं कुर्यात्। यथा—अस्य अजपागायत्रीमन्त्रस्य हंसऋषिरव्यक्तगायत्रीच्छन्दः परमहंसो देवता हं बीजं सः शक्तिः सोऽहं कीलकं परमात्मप्रीतये उच्छ्वासनिःश्वासाभ्यां षट्शताधिकैकविंशतिसहस्र–अजपाजपसमर्पणे मोक्षप्राप्तये विनियोगः।

समर्थ साधक को अजपाजप का समर्पण करना चाहिये। मन्त्र मूलोक्त 'अस्य' से लेकर 'विनियोग' पर्यन्त है।

शिरसि— हंसऋषये नमः।
मुखे— अव्यक्तगायत्रीच्छन्दसे नमः।
हृदि— परमहंसाय देवतायै नमः।
मूलाधारे— हं बीजाय नमः।
पादयोः— सः शक्तये नमः।
सर्वाङ्गे— सोऽहं कीलकाय नमः।

ततः षडङ्गन्यासं कुर्यात् यथा—

इस प्रकार से करने के पश्चात् षडङ्गन्यास करे—

ॐ हं सां सूर्यात्मने तेजोवत्यै शक्तये हृदयाय स्वाहा।
ॐ हं सीं सोमात्मने प्रभाशक्तये शिरसे स्वाहा।
ॐ हं सूं निरञ्जनात्मने अविद्याशक्तये शिखायै स्वाहा।
ॐ हं सैं निरभ्यासात्मने मायाशक्तये कवचाय स्वाहा।
ॐ हं सौं अनन्तात्मने ईक्षणशक्तये नेत्रत्रयाय वौषट्।
ॐ हं सः अनन्तात्मने ज्ञानशक्तये अस्त्राय फट्।

इसके पश्चात् ध्यान करना चाहिये। यथा—

गमागमस्थं गमनादिशून्यं चिद्रूपरूपं तिमिरान्तकारम् ।
पश्यामि तं सर्वजनप्रधानं नमामि हंसं परमार्थरूपम् ।।

अब जप-समर्पण करना चाहिये—

मूलाधारमण्डपे स्वर्णवर्णचतुर्दलपद्मे द्रुतसौवर्णवर्णे—

(१) वादि-सान्त–चतुर्वर्णान्विते गायत्रीसहिताय रक्तवर्णाय गणनाथाय षट्शतसङ्ख्यमजपाजपमहं समर्पयामि नमः ।

(२) स्वाधिष्ठानमण्डपे विद्रुमनिभे सावित्री सहिताय ब्रह्मणे अजपामन्त्रं षट्सहस्रमहं समर्पयामि नमः ।

(३) मणिपूरमण्डपे सुनीलप्रभे महानीलप्रभडादिफान्तदशवर्णविभूषिते दशदलपद्मे लक्ष्मीसहिताय विष्णवे षट्सहस्रमजपाजपमहं समर्पयामि नमः ।

(४) अनाहतमण्डपे तरुणरविनिभे महावह्निकर्णिकाभकादिठान्तद्वादशवर्णयुते द्वादशदलपद्मे गौरीसहिताय शिवाय षट्सहस्रमजपाजपमहं समर्पयामि नमः ।

(५) विशुद्धमण्डपे धूम्रवर्णे रक्तवर्ण अकारादि अःकारान्तषोडशस्वरान्विते षोडशदलपद्मे प्राणशक्तिसहिताय जीवात्मने सहस्रसङ्ख्यमजपाजपमहं समर्पयामि नमः ।

(६) आज्ञामण्डपे विद्युत्पुञ्जनिभे शुभ्रहक्षवर्णान्विते द्विदलपद्मे मायासहितपरमात्मने एकसहस्रमजपाजपमहं समर्पयामि नमः ।

(७) ब्रह्मरन्ध्रमण्डपे कर्पूराभे नानावर्णोज्ज्वलदलविभूषिते नानावर्णसमुदयोज्वले सहस्रारे नादबिन्दूपरिस्थिते ब्रह्मरूपसशक्तिकगुरवे एकसहस्रसङ्ख्यमजपाजपमहं समर्पयामि नमः ।

इति जपं समर्प्य अष्टोत्तरशतसङ्ख्य 'हंसः' इति अजपाजपं कुर्यात् ।

सङ्ख्या (१) से (७) पर्यन्त जप-समर्पण मन्त्रों द्वारा जप का समर्पण करने के अनन्तर 'हंस:' मन्त्र का १०८ अजपा जप करना चाहिये ।

'षट्शताधिकैकविंशतिसहस्रजपेन परदेवतारूपश्रीपरमेश्वरः प्रीयताम्' इति मनसा सङ्कल्प्य पुनः परदिनार्थं हंसस्य ध्यानं कुर्यात्; यथा—

आराधयामि मणिसन्निभमात्मलिङ्गं मायापुरीहृदयपङ्कजसन्निविष्टम् ।
श्रद्धानदीविमलचित्तजलावगाहं नित्यं समाधिकुसुमैरपुनर्भवाय ।। इति ।

तदनन्तर मूलोक्त 'षट्शताधि' से 'प्रीयताम्' तक से सङ्कल्प करके अगले दिन के

लिये 'आराधयामि' से लेकर 'कुसुमैरपुनर्भवाय' पर्यन्त से 'हंस' का ध्यान करना चाहिये।

अथ इष्टदेवतां ध्यात्वा मानसोपचारैः सम्पूज्य प्राणायामादिकं कृत्वा इष्टमन्त्रं यथाशक्ति जप्त्वा समर्प्य प्रणमेत्। समर्थश्चेदिष्टदेवतास्त-वादिकञ्च पठेत् ॥८॥

तदनन्तर इष्टदेवता का ध्यान करके मानसोपचार से पूजन, प्राणायामादि करके यथाशक्ति इष्ट मन्त्र का जप करके उसका समर्पण करने के अनन्तर प्रणाम करना चाहिये। समर्थ होने पर इस समय इष्टदेवता का स्तवादिक भी पढ़ना चाहिये।

ततः कृताञ्जलिः—

इस मन्त्र से अब अञ्जलि प्रदान करनी चाहिये—

ॐ त्रैलोक्यचैतन्यमयि त्रिशक्ते श्रीविश्वमातर्भवदाज्ञयैव।
प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं संसारयात्रामनुवर्त्तयिष्ये।
जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
त्वया हृषीकेशि हृदिस्थया मे, यथानियुक्तोऽस्मि तथा करोमि॥
ॐ अहं देवो चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तस्वरूपवान्॥

इति प्रार्थयेत्।

इस अञ्जलि-प्रदान मन्त्र द्वारा प्रार्थना करनी चाहिये।

ततः— समुद्रमथने देवि पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥
धारणं पोषणं त्वत्तो भूतानां देवि सर्वदा।
तेन सत्येन मां पाहि पाशान्मोचय धारिणि॥

इति कृताञ्जलिं सम्प्रार्थ्य 'ॐ प्रियदत्तायै भुवे नमः' इति पृथिवीं प्रणम्य श्वासानुसारेण वामपादपुरःसरं बहिर्गत्वा विण्मूत्रत्याग-दन्तधावन-मुखप्रक्षालनादिकं कुर्यात्। मुखप्रक्षालनमन्त्रस्तु 'क्लीं कामदेवाय सर्वजनप्रियाय स्वाहा'।

अञ्जलि-प्रदान मन्त्र से प्रार्थना करके 'ॐ प्रियदत्तायै भुवे नमः' कहकर पृथ्वी को नमस्कार करके श्वास के अनुसार पहले बाँयाँ पैर आगे बढ़ाकर आगे बढ़ना चाहिये और शौचादि-दन्तधावन-मुखप्रक्षालनादि कार्य सम्पन्न करना चाहिये। मुख-प्रक्षालन मन्त्र है— 'क्लीं कामदेवाय सर्वजनप्रियाय स्वाहा' (यदि साधक स्त्री है तब 'स्वाहा' की जगह 'नमः' कहना चाहिये)।

●

अथ स्नानविधिः

नद्यादौ वैदिकस्नानं कृत्वा तान्त्रिकस्नानमाचरेत् । तद्यथा—दूर्वातिल-जलान्वितं ताम्रपात्रं गृहीत्वा 'ॐ अद्येत्यादि अमुकदेवताप्रीतये स्नानमहं करिष्ये' इति सङ्कल्पं कुर्यात् ।

नदी आदि में वैदिक स्नान करने के बाद अब तान्त्रिक स्नान करना चाहिये । यथा—दूर्वा तथा तिल से समन्वित जलयुक्त ताम्रपात्र में 'ॐ अद्येत्यादि' से लेकर 'करिष्ये' पर्यन्त कहकर सङ्कल्प करना चाहिये ।

विशेष—वैदिक स्नानविधि इस प्रकार है—साधक मूल मन्त्र के पश्चात् 'फट्' लगाकर इस मन्त्र से शङ्कु द्वारा खोदकर किञ्चित् मिट्टी लेकर दूर्वा तथा तिल के साथ ताम्रपात्र में मिलाकर इष्टदेवता की प्रीति के लिये इष्टदेव का स्मरण करते-करते नद्यादि में स्नानार्थ जाय । यदि लाये गये जल से स्नान करना पड़े तब उसे गर्म करे अथवा उसमें किञ्चित् सुवर्ण अथवा रजत का स्पर्श कराकर अथवा कुश, पुष्प, बेलपत्र, श्वेत सरसो छिड़क कर जल का शोधन करे । स्नान तथा सन्ध्यापूजनादि करते समय हाथों में कुशा-धारण की विधि है । शाक्तगण वन की कुशा धारण न करें । वे तर्जनी में चाँदी की अङ्गूठी अथवा अनामिका में स्वर्ण की अङ्गूठी पहनें । 'वरदातन्त्र' में इसका प्रमाण मिलता है ।

साधकगण जलाशय के पास जाकर विष्णुस्मरण करके 'फट्' मन्त्रोच्चारण द्वारा तीन स्थल को धोकर वहाँ पर स्नानीय द्रव्य रखें । तदनन्तर मिट्टी, दूर्वा तथा तिल को मिलाकर जो पिण्ड ताम्रपात्र में रखा गया था, उसका तीन भाग करके एक भाग यह मन्त्र पढ़ते हुये जल में फेंक दे । मन्त्र है—'इदं विष्णुरिति मन्त्रस्य मेधातिथिऋषिर्गायत्रीच्छन्दो विष्णुर्देवता तोये मृत्तिकालम्भने विनियोगः । ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं समूढमस्य पांशुले' । अब बचे दो मृत्तिकापिण्ड में से एक द्वारा मस्तक से नाभि-पर्यन्त तथा दूसरे से नाभि से पैर-पर्यन्त इस मन्त्र द्वारा लेप करना चाहिये—

ॐ अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे ।
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥
ॐ उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ।
आरुह्य मम गात्राणि सर्वपापं प्रमोचय ॥
मृत्तिके ब्रह्मदत्तासि काश्यपेनाभिमन्त्रिते ।
नमस्ते सर्वभूतानां प्रभवारिणि सुव्रते ॥
ॐ आधारः सर्वरूपस्य विष्णोरतुलतेजसः ।
तद्रूपाश्च ततो जाता अग्रे ताः प्रणमाम्यहम् ॥

इसके बाद 'ॐ तत्सत्' अथवा मूल मन्त्र को पढ़कर जल में अवतरण करे । यदि अन्य व्यक्ति के जलाशय में स्नान करना पड़े तब जल में से ५ मिट्टी का पिण्ड निकाल कर—

ॐ ऊत्तिष्ठोत्तिष्ठ पङ्क त्वं त्यज पुण्यं परस्य च ।
पापानि विनाशय मे शान्तिं देहि सदा मम ॥

इस मन्त्र को पढ़कर तट पर फेंके । तदनन्तर नाभि-पर्यन्त जल में खड़े होकर गंगा का स्मरण करते हुये 'ह्रीं गङ्गायै ह्रीं' मन्त्र का सात बार जप करके इष्टदेवता का स्मरण करते हुये केशों को खोलकर मूल मन्त्र पढ़ते हुये सूर्य की ओर मुख करके दो बार डुबकी लगाकर गमछा से शरीर का मार्जन करना चाहिये । यही है—मलापकर्षण स्नान । तत्पश्चात् नाभि-पर्यन्त जल में खड़े रहकर गायत्री पढ़ते हुये शिखा बाँधे और प्राणायाम एवं षडङ्गन्यास करके जलपूर्ण ताम्रपात्र लेकर सङ्कल्प करना चाहिये । यथा—'ॐ तत्सत् ॐ अद्य अमुके मासि अमुकराशीस्थे भास्करे अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रः श्री-अमुकदेवशर्मा अमुकदेवताप्रीतये मन्त्रस्नानमहं करिष्ये' । तदनन्तर 'ह्रीं' मन्त्र द्वारा जल को आलोड़ित करके जल में अङ्गुलि से एक हाथ का चतुष्कोण अथवा त्रिकोण मण्डल अङ्कित करके अङ्कुश मुद्रा द्वारा 'क्रों गङ्गे च यमुने चैव' इत्यादि मन्त्रपाठ करके जल में तीर्थ का आवाहन करके हाथ जोड़कर इस मन्त्र से प्रार्थना करे—

ॐ ब्रह्माण्डे यानि तीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे ।
तेन सत्येन मे देव तीर्थं देहि दिवाकर ॥

तदनन्तर वक्ष्यमाण मन्त्र का पाठ करके जल में गङ्गा का आवाहन करना चाहिये । मन्त्र है—

ॐ आवाहयामि त्वां देवि स्नानार्थमिह सुन्दरि ।
त्राहि गङ्गे नमस्तुभ्यं सर्वतीर्थसमन्विते ॥

तदनन्तर 'वं' मन्त्र से धेनुमुद्रा तथा 'हुं' मन्त्र से अवगुण्ठन मुद्रा का प्रदर्शन करके चक्रमुद्रा से रक्षा तथा 'फट्' मन्त्र से चुटकी बजाकर दसो दिशाओं का बन्धन करके मत्स्यमुद्रा से आच्छादित करके मूल मन्त्र का ११ बार जप करके सूर्य की ओर मुख करके १२ अञ्जलि जल छोड़े । तथा उस मण्डल मध्यगत (जो मण्डल जल में अङ्गुलि से बनाया था) जल में वह्निमण्डल-सोममण्डल-सूर्यमण्डल का चिन्तन करके 'अपने इष्टदेवता के पादारविन्द से निःसृत जल से स्नान कर रहा हूँ'—यह भावना करके कर्ण-नासिकादि छिद्रों को अङ्गुलियों से बन्द करके जल में ३ बार डुबकी लगाये । तदनन्तर पुनः पूर्वोक्त मन्त्र से आचमन तथा षडङ्गन्यास करके जल पर ३ बार मूल मन्त्र का जप करने के अनन्तर कलसमुद्रा बनाकर मस्तक पर ७ बार अथवा १० बार अभिषेक करे । तदनन्तर इच्छानुसार पिता-पितामहादि का तर्पण करके जल से बाहर आते समय—

ॐ असुरा भूतवेतालाः कूष्माण्डा ब्रह्मराक्षसाः ।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु मया दत्तेन वारिणा ॥

पढ़कर तीन बार तीन अञ्जलि जल छोड़कर तीर पर आकर शरीर को पोंछकर विशुद्ध

वस्त्र धारण करे। तदनन्तर जलाशय के किनारे ही बैठकर अथवा घर आकर गायत्री-पाठ करके शिखाबन्धन करके उपदेशानुरूप ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करके त्रिपुण्ड्र-धारण करे और यथाविधि सन्ध्या करे। जो व्यक्ति प्रात:स्नान में समर्थ नहीं है, वह यौगिक स्नान अथवा अन्य प्रकार का मानसिक स्नान करे। स्नान छ: प्रकार का होता है—ब्राह्म, आग्नेय, वायव्य, दिव्य, वारुण तथा यौगिक।

ततः षडङ्गन्यासप्राणायामौ कृत्वा ॐ गङ्गे च यमुने चेत्यादिनाङ्कुशमुद्रया सूर्यमण्डलात्तीर्थमावाह्य, वमिति धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य कवचेनावगुण्ठ्य अस्त्रेण संरक्ष्य मूलेनैकादशधाभिमन्त्र्य सूर्याभिमुखं द्वादशवारिधारां निक्षिप्य, तस्मिन्निष्टदेवताचरणारविन्दनिःसृते जले. त्रिर्निमज्य देवतां ध्यायन् मूलमन्त्रं यथाशक्ति जपन् उन्मज्य उदकेन त्रिवारजप्तेन कलसमुद्रया आत्मानमभिषिच्य वैदिकसन्ध्यादिकं कृत्वा तान्त्रिकसन्ध्यां कुर्यात्।

तदनन्तर षडङ्गन्यास तथा प्राणायाम करके 'ॐ गङ्गे च यमुने चैव' इत्यादि मन्त्र का पाठ करके अङ्कुशमुद्रा से सूर्यमण्डल से तीर्थावाहन करके 'रं' मन्त्र से धेनुमुद्रा द्वारा अमृतीकरण, कवचमुद्रा से अवगुण्ठन तथा 'फट्' मन्त्र से संरक्षण करके मूल मन्त्र से उस जल को ११ बार अभिमन्त्रित करके सूर्याभिमुख होकर १२ बार जलनिक्षेप करके यह चिन्तन करे कि स्नानजल इष्टदेवता के चरणारविन्द से निकल रहा है। उसमें तीन बार डुबकी लगाकर देवध्यानोपरान्त यथाशक्ति मूल मन्त्र का जप करना चाहिये। तदनन्तर कलस मुद्रा से तीन बार जल लेकर अपने मस्तक का अभिषेक करके वैदिकी सन्ध्या करने के बाद तान्त्रिक सन्ध्या करनी चाहिये।

●

अथ सन्ध्या

'ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा, ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा, ॐ शिवतत्त्वाय स्वाहा' इति त्रिराचम्य 'ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्' इति मन्त्रं स्मृत्वा ओष्ठाधरनासिकानेत्रादिस्पर्शनादिकं कुर्यात्।

तीन बार 'ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा, ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा, ॐ शिवतत्त्वाय स्वाहा' से आचमन करना चाहिये। तदनन्तर मूलोक्त 'ॐ तद्विष्णो' से लेकर 'चक्षुराततम्' तक पढ़ते हुये ओष्ठ, अधर, नासिका तथा नेत्रादि का स्पर्श करना चाहिये।

विशेष—आचमन की प्रणाली यह है—दाहिनी हथेली को गोकर्ण आकृति का करके अर्थात् अङ्गूठा एवं कनिष्ठा को मुक्त रखकर तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका को संहत एवं ऊर्ध्वमुख करके इतना जल लेना चाहिये, जिसमें एक उड़द का दाना डूब जाय।

उक्त मन्त्र पढ़ते हुये एक-एक मन्त्र से एक-एक बार जल पीना चाहिये। जल पीते समय मुँह से पीने का शब्द न हो। तत्पश्चात् मुख को बन्द करके अङ्गुष्ठमूल से दो बार मार्जन करके हाथ धोकर तर्जनी, मध्यमा तथा अनामा को एक में मिलाकर उसके अग्रभाग से मुख-स्पर्श करना चाहिये। अङ्गूठा तथा तर्जनी से नासापुटों का, अङ्गूठा तथा अनामिका से दोनों नेत्र तथा दोनों कान का, अँङ्गूठा तथा कनिष्ठा से नाभि का स्पर्श करके हाथ धोना चाहिये। तदनन्तर चारो अङ्गुलियों से बाहुमूलद्वय का स्पर्श करना चाहिये। तदनन्तर वाम-हाथ स्थित कुशों में बचे जल में से कुछ को मिट्टी पर छोड़कर शेष जल को दाहिने हाथ में लेकर उससे दोनों हाथों को धोना चाहिये।

ततः पुटाञ्जलिर्भूत्वा वामे ॐ गुरुभ्यो नमः, ॐ परमगुरुभ्यो नमः, ॐ परापरगुरुभ्यो नमः। दक्षिणे ॐ गणेशाय नमः, मूर्ध्नि मूलमुच्चार्य श्रीअमुकदेवतायै नमः। इति गुर्वादिप्रणामं कृत्वा 'क्रों गङ्गे च' इत्यादिमन्त्रेण अङ्कुशमुद्रया जले तीर्थमावाह्य मूलमुच्चरन् कुशेन त्रिवारं भूमौ जलं क्षिपेत्, मूलेनैव सप्तधा मूर्द्धानमभिषिञ्चेत्। ततः प्राणायामं षडङ्गन्यासञ्च कृत्वा वामहस्ततले जलं निधाय दक्षिणहस्तेन तज्जलं आच्छाद्य 'हं यं वं लं रं' इति मन्त्रेण त्रिवारमभिमन्त्र्य मूलमुच्चरन् अङ्गुलिविवरनिःसृतोदकविन्दुभिः दक्षहस्ततत्त्वमुद्रया मूर्ध्नि सप्तधा अभ्युक्षणं कृत्वा शेषजलं दक्षिणहस्ते समादाय तेजोरूपं विभाव्य वं इति इडया आकृष्य देहान्तर्गतसमस्तपापं प्रक्षालितं विभाव्य पिङ्गलया विरेच्य तज्जलं पापरूपं कृष्णवर्णं विचिन्त्य पुरःकल्पितवज्रशिलायां फडिति मन्त्रेण पापपुरुषरूपं तज्जलं क्षिपेत्। इति अघमर्षणम्।

तदनन्तर कृताञ्जलिपुट होकर गुरु आदि को नमस्कार करना चाहिये (मूलोक्त मन्त्रों से)। 'क्रों गङ्गे च यमुने चैव' इत्यादि मन्त्र से तीर्थ का आवाहन करके अङ्कुशमुद्रा का प्रदर्शन करके मूल मन्त्र के उच्चारण द्वारा कुश से (यदि कुश न हो तब अभयमुद्रा द्वारा) तीन बार जल छिड़क कर भूमि को शुद्ध करना चाहिये। मूल मन्त्र से सात बार मूर्द्धा (मस्तक) का अभिषेक करना चाहिये। तत्पश्चात् प्राणायाम, षडङ्गन्यास करके बाँयीं हथेली पर कुछ जल रखकर उसे दाहिनी हथेली से ढँक लेना चाहिये। अब उस जल को 'हं यं वं लं रं' मन्त्र से तीन बार अभिमन्त्रित करके दाहिने हाथ की तत्त्वमुद्रा बनाकर उसकी अङ्गुलियों के छिद्र से टपक रहे जलबिन्दु से मूल मन्त्र पढ़कर उससे ७ बार अपने मस्तक का अभ्युक्षण करके वाम हथेली पर बचे जल को दाहिनी हथेली पर उलट कर इस जल का तेजोरूपेण चिन्तन करके इस जल को 'वं' मन्त्र से इडा (बाँयें नासिकाछिद्र) से खींचकर यह चिन्तन करना चाहिये कि इस जल से शरीरान्तर्गत समस्त पाप धुल रहा है तथा इस खींचे जल को दाहिनी नासिका के छिद्र से विरेचित करना चाहिये और इस जल में

कृष्णवर्ण पापपुरुष की भावना करके पूर्वकल्पित वज्रशिला पर 'फट्' मन्त्र को पढ़ते हुये इस पापपुरुषरूप जल को फेंक देना चाहिये। यही अघमर्षण क्रिया है (यहाँ वज्रशिला की किसी शिला पर कल्पना करनी चाहिये, जिसका ऊपर उल्लेख है, तदनन्तर उस पर इस पापपुरुषरूप जल को फेंक देना चाहिये)।

ततो हस्तं प्रक्षाल्य पूर्ववत् आचम्य तर्पणं कुर्यात्; यथा—ॐ देवांस्तर्पयामि नमः। ॐ ऋषींस्तर्पयामि नमः। ॐ पितॄंस्तर्पयामि नमः। एवं गुरुं परमगुरुं परापरगुरुं परमेष्ठिगुरुं च तर्पयेत्। ततो मूलमुच्चार्य 'अमुकदेवीं तर्पयामि स्वाहा' इति त्रिधा तर्पणं कृत्वा आवरणदेवतां प्रत्येकेन सकृत् तर्पयेत्।

तदनन्तर हाथों को धोकर पूर्ववत् आचमन करके 'ॐ देवांस्तर्पयामि नमः' द्वारा देवों का, ॐ ऋषींस्तर्पयामि नमः' द्वारा ऋषिगणों का तथा 'ॐ पितॄंस्तर्पयामि नमः' द्वारा पितरों का तर्पण करना चाहिये। इसी प्रकार गुरु, परमगुरु, परापरगुरु तथा परमेष्ठिगुरु का भी तर्पण करके मूल मन्त्र का उच्चारण करने के पश्चात् 'अमुकदेवीं (देवी का नाम अमुक के स्थान पर) तर्पयामि स्वाहा' द्वारा मूल देवता का तीन बार तर्पण करके आवरण देवताओं में से प्रत्येक का एक-एक बार तर्पण करना चाहिये।

अथ दूर्वाक्षतरक्तकुसुमादिना तदभावे केवलेन जलेन वा अर्घ्यं दद्यात्, यथा—ह्रीं हंसः मार्त्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय एषोऽर्घ्यः (इदमर्घ्यं) श्रीसूर्याय स्वाहा। इष्टदेवतागायत्रीमुच्चार्य 'ॐ उद्यदादित्यमण्डलमध्य-वर्त्तिन्यै नित्यचैतन्यादित्यायै इदमर्घ्यं श्रीअमुकदेवतायै स्वाहा' इति दूर्वाक्षतबिल्वपत्रजवापुष्पादिना तदभावे केवलजलेन वा अर्घ्यं दद्यात्।

तदनन्तर दूर्वा, अक्षत, तण्डुल तथा रक्तपुष्पादि द्वारा अथवा इनके अभाव में केवल जल से ही 'ह्रीं हंसः मार्त्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय इदमर्घ्यं श्रीसूर्याय स्वाहा' से सूर्यदेव को अर्घ्य देकर इष्टदेव की गायत्री का उच्चारण करके 'ॐ उद्यदादित्यमण्डलमध्यवर्त्तिन्यै नित्यचैतन्यादित्यायै इदमर्घ्यं श्रीअमुकदेवतायै (देवता का नाम अमुक के स्थान पर लिखे) स्वाहा' मन्त्र से दूर्वा, अक्षत, बिल्वपत्र तथा जवापुष्पादि द्वारा इष्टदेवता को अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। यदि सामग्री न हो तब केवल जल से ही अर्घ्य देना चाहिये।

अथ गायत्रीध्यानानन्तरं गायत्रीं जपेत्। गायत्रीध्यानं यथा—

प्रातःकाले—ॐ उद्यदादित्यसङ्काशां पुस्तकाक्षकरां स्मरेत्।
कृष्णाजिनाम्बरां ब्राह्मीं ध्यायेत्तारकितेऽम्बरे॥

मध्याह्ने— ॐ श्यामवर्णां चतुर्बाहूं शङ्खचक्रलसत्कराम्।
गदापद्मधरां देवीं सूर्यासनकृताश्रयाम्॥

सायाह्ने— ॐ सायाह्ने वरदां देवीं गायत्रीं संस्मरेद् यतिः ।
शुक्लां शुक्लाम्बरधरां वृषासनकृताश्रयाम् ।
त्रिनेत्रां वरदां पाशं शूलञ्च नृकरोटिकाम् ।
बिभ्रतीं करपद्मैश्च वृद्धां गलितयौवनाम् ।
सूर्यमण्डलमध्यस्थां ध्यायन् देवीं समभ्यसेत् ।

इति ध्यात्वा गायत्रीं जपेत् ।

मूलोक्त प्रकार से गायत्री का यथाकाल ध्यान करके गायत्री-जप करना चाहिये ।

गायत्री तु—कालिकायै विद्महे श्मशानवासिन्यै धीमहि तन्नो घोरे प्रचोदयात् । इति दक्षिणकालिकायाः ।

तारायै विद्महे महोग्रायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात् । इति तारायाः ।

ऐं त्रिपुरायै विद्महे क्लीं कामेश्वर्यै धीमहि सौस्तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात्— इति त्रिपुरायाः ।

महादेव्यै विद्महे दुर्गायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्—इति जगद्धात्रीदुर्गायाः ।

नारायण्यै विद्महे भुवनेश्वर्यै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्—इति भुवनेश्वर्याः ।

भगवत्यै विद्महे माहेश्वर्यै धीमहि तन्नोऽपूर्णे प्रचोदयात्—इति अन्नपूर्णायाः ।

ततः गुह्यातीत्यादिना जपं समर्प्य प्राणायामं ऋष्यादिन्यासं षडङ्गन्यासञ्च कृत्वा यथाशक्ति मूलमन्त्रं जप्त्वा—

ॐ गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवित्वत् प्रसादान्महेश्वरि ॥

इति गोयोनिमुद्रया जपं समर्प्य—

ॐ सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तुते ॥

इति प्रणमेत् ।

यहाँ मूल में कालिकागायत्री, तारागायत्री, त्रिपुरागायत्री, जगद्धात्रिदुर्गागायत्री, भुवनेश्वरी गायत्री, अन्नपूर्णा गायत्री अङ्कित है । अन्यान्य गायत्री ग्रन्थशेष में लिखी जायेगी । गायत्री का यथाशक्ति जप कर 'गुह्यातिगुह्यगोप्त्री' से लेकर 'प्रसादान्महेश्वरि'-पर्यन्त पढ़कर गो-योनि मुद्रा द्वारा जप-समर्पण करके 'ॐ सर्वमङ्गल' से लेकर 'नमोऽस्तु ते' पर्यन्त से प्रणाम करना चाहिये ।

●

अथ साधारणपूजापद्धतिः

अथ संयतमनाः साधक इष्टदेवतां ध्यायन् स्तोत्रं पठन् मूलमन्त्रं वा

जपन् पूजास्थानं गच्छेत्। ततः पूजागृहद्वारि आसने उपविश्य पापापनोदनार्थं कृताञ्जलिः पठेत्। यथा—

ॐ देवि तत्प्राकृतं चित्तं पापाक्रान्तमभून्मम।
तन्निःसारय चित्तान्मे पापं हुं फट् च ते नमः॥
ॐ सूर्यः सोमो यमः कालो महाभूतानि पञ्च च।
एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नव साक्षिणः॥ इति।

अब सामान्य पूजापद्धति कहते हैं। संयत मानस साधक को अपने इष्टदेव का चिन्तन करके स्तोत्र पढ़ते अथवा मूल मन्त्र पढ़ते हुये पूजागृह में गमन करना चाहिये। पूजागृह के द्वार पर आसनासीन होकर पापों के नाशार्थ कृताञ्जलिबद्ध होकर मूलोक्त 'ॐ देवि' से लेकर 'नव साक्षिण:' पर्यन्त का पाठ करना चाहिये।

ततः (१) ॐ ह्रीं स्वाहा, ॐ ह्रीं स्वाहा, ॐ ह्रीं स्वाहा अथवा (२) ॐ ह्रीं आत्मतत्त्वाय स्वाहा, ॐ ह्रीं विद्यातत्त्वाय स्वाहा, ॐ ह्रीं शिवतत्त्वाय स्वाहा, इति त्रिराचामेत्। शेषं सन्ध्याचमनवत्।

उपरोक्त में से (१) अथवा (२) अङ्कित तीन मन्त्रों से तीन बार आचमन करना चाहिये। शेष सन्ध्या के आचमनवत् करना चाहिये।

ततो रक्तवर्णां चतुर्भुजां सिंहारूढां शङ्खचक्रधनुर्बाणकरां कामिनीं ध्यात्वा जपपूजां समाचरेत्।

तत्पश्चात् रक्तवर्णा, चतुर्भुजा, सिंहस्था, शङ्ख, चक्र, धनुष-बाण हाथ में ली हुई कामिनी के रूप का ध्यान करके जप-पूजा का अनुष्ठान करना चाहिये।

कं इति दशधा जपेत्। ततो जलं सव्यहस्ते समानीय 'ॐ वज्रोदके हुं फट् स्वाहा' इति मन्त्रेण शोधितजलं प्रोक्षणीपात्रे संस्थाप्य शेषजलेन आसनमभ्युक्ष्य तत्र स्वस्तिकाद्यासने उपविश्य 'ॐ ह्रीं विशुद्धिसर्वपापानि शमयाशेषविकल्पमपनय हुं' इति हस्तपादौ प्रक्षाल्य मन्त्राचमनं कुर्यात्।

'कं' का दस बार जप करके दाहिनी हथेली पर जल लेकर 'ॐ वज्रोदके हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से शोधित उस जल को प्रोक्षणीपात्र में रखकर शेष जल से आसन का अभ्युक्षण करके उस पर स्वस्तिकादि क्रम से आसीन होकर 'ॐ ह्रीं' से लेकर 'विकल्पमपनय हुं' पर्यन्त पढ़ते हुये हाथ-पैर धोकर मन्त्राचमन करना चाहिये।

विशेष—विभिन्न देवताओं का मन्त्राचमन भी भिन्न-भिन्न होता है। इसके लिये 'आगमतत्त्वविलास' ग्रन्थ देखना चाहिये।

ततः सामान्यार्घ्यं स्थापयेत्। यथा—स्ववामे त्रिकोणवृत्तचतुरस्रमण्डलं विलिख्य 'ॐ एते गन्धपुष्पे आधारशक्तये नमः' इति मण्डलं सम्पूज्य

तत्र आधारं संस्थाप्य 'फट्' इति पात्रं प्रक्षाल्य आधारे संस्थाप्य 'नमः' इति जलेनापूर्य 'ॐ' इति दूर्वाक्षतबिल्वपत्राणि सचन्दनपुष्पाणि च तत्र निक्षिप्य 'क्रों गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति । नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु' इति अङ्कुशमुद्रया सूर्यमण्डलात्तीर्थमावाह्य हुं इत्यवगुण्ठ्य वं इति धेनुमुद्रयामृतीकृत्य योनिमुद्रां प्रदर्श्य मत्स्यमुद्रयाच्छाद्य ॐ इति दशधा जप्त्वा तज्जलेन द्वारमभ्युक्ष्य द्वारदेवताः पूजयेत् । यथा—ॐ एते गन्धपुष्पे द्वारदेवताभ्यो नमः ।

तदनन्तर सामान्यार्घ्य की स्थापना करनी चाहिये । अपने वाम भाग में त्रिकोण, वृत्त उसके बाहर चतुरस्त्र मण्डल बनाकर 'ॐ एते गन्धपुष्पे आधारशक्तये नमः' से मण्डल का पूजन करके उस पर आधार स्थापित करके 'फट्' मन्त्र से पात्र-प्रक्षालन करके उसे आधार पर स्थापित करके 'नमः' मन्त्र से जल से पूर्ण करके उसमें 'ॐ' द्वारा दूर्वा, अक्षत, बिल्वपत्र, चन्दन, पुष्प छोड़कर उसमें 'क्रों गङ्गे च' से लेकर 'सन्निधिं कुरु'-पर्यन्त मूलोक्त श्लोक पढ़कर उसमें अङ्कुश मुद्रा द्वारा तीर्थ-जल का आवाहन करना चाहिये । यह तीर्थावाहन सूर्यमण्डल से हो रहा है, यह भावना करनी चाहिये । तदनन्तर 'हुं' मन्त्र द्वारा अवगुण्ठन करके 'वं' मन्त्र द्वारा धेनुमुद्रा से उस जल को अमृतीकृत करके योनिमुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये और उसे मत्स्यमुद्रा द्वारा आच्छादित करके 'ॐ' का १० बार जप करके उस जल से द्वार का अभ्युक्षण करके द्वारदेवता का पूजन करना चाहिये । यथा—ॐ एते गन्धपुष्पे द्वारदेवताभ्यो नमः ।

विशेष—काली, तारा तथा त्रिपुरा-हेतु द्वारदेवता का पूजन इस प्रकार किया जाता है, यथा—द्वारोद्र्ध्व में ॐ एते गन्धपुष्पे ॐ ह्रीं गणेशाय नमः । अपने वाम भाग में ॐ ह्रीं क्षां क्षेत्रपालाय नमः । अपने दक्षिण में ॐ ह्रीं वां वटुकाय नमः । अधः में ॐ ह्रीं यां योगिनीभ्यो नमः । पूर्वादिक्रम से चारो द्वार में क्रमशः ॐ ह्रीं गां गङ्गायै नमः, ॐ ह्रीं यां यमुनायै नमः, ॐ ह्रीं श्रीं लक्ष्म्यै नमः, ॐ ह्रीं ऐं सरस्वत्यै नमः । देहली पर ॐ ह्रीं अस्त्रेभ्यो नमः, ॐ ह्रीं अष्टमातृकाभ्यो नमः कहकर गन्धपुष्प से पूजा करनी चाहिये । यदि गन्ध-पुष्प न मिल सके तब गन्धाक्षत द्वारा पूजा करनी चाहिये ।

अथ वामाङ्गं सङ्कोचयन् वामपादपुरःसरं गृहे प्रविश्य नैर्ऋते 'एते गन्धपुष्पे ॐ ब्रह्मणे नमः, ॐ वास्तुपुरुषाय नमः' इति सम्पूज्य सिद्धार्थाक्षतानि फट् इति सप्तधा अभिमन्त्र्य ॐ सर्वविघ्नानुत्सारय हुं फट् स्वाहा इति । ॐ अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः । ये भूता विघ्नकर्त्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ।। इति मन्त्रेण च नाराचमुद्रया विकिरेत् ।

तत्पश्चात् साधक को अपने बाँयें अङ्ग का सङ्कोचन करके वाम पैर आगे करके पूजा-

गृह में प्रवेश करके नैर्ऋत्य कोण में 'एते गन्धपुष्पे ॐ ब्रह्मणे नमः, ॐ वास्तुपुरुषाय नमः' से पूजा करके नाराचमुद्रा द्वारा सफेद सरसो तथा अक्षत लेकर उसे 'फट्' मन्त्र द्वारा सात बार अभिमन्त्रित करके 'ॐ सर्वविघ्नानुत्सारय हुं फट् स्वाहा' पढ़ते हुये उसे विकिरित कर देना चाहिये।

ततः 'ॐ रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा' इति मुष्टिनिःसृतजलेन भूमिं संशोध्य 'ॐ पवित्रवज्रभूमे हुं हुं फट् स्वाहा' इति योनिमुद्रया भूमिं स्पृष्ट्वा अभिमन्त्र्य त्रिकोणमण्डलं विलिख्य, एते गन्धपुष्पे 'ॐ ह्रीं आधार-शक्त्यादिभ्यो नमः' इति मण्डलं सम्पूज्य तदुपरि विहितासनं संस्थाप्य तत्र स्वस्तिकाद्यासनक्रमेण उपविश्य आसनं स्पृश्य(?) 'अस्य आसनोपवेशनमन्त्रस्य मेरुपृष्ठऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता आसनोप-वेशने विनियोगः'। कृताञ्जलिं—

ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वञ्च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम्॥

ततः 'आः सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहा' इति मन्त्रेण आसनोपरि त्रिकोणमण्डलं विलिख्य एते गन्धपुष्पे 'ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः' इति गन्धपुष्पाभ्यां मण्डलं सम्पूज्य वामे ॐ गुरुभ्यो नमः, ॐ परमगुरुभ्यो नमः, ॐ परापरगुरुभ्यो नमः, ॐ परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः। दक्षिणे ॐ गणेशाय नमः, मूर्ध्नि मूलमुच्चार्य श्रीअमुकदेवतायै नमः इति प्रणमेत्।

तदनन्तर 'ॐ रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से मुट्ठी से गिर रहे जल द्वारा भूमि-शोधन करके ॐ पवित्रवज्रभूमे हुं हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से योनिमुद्रा द्वारा भूमिस्पर्शोपरान्त उसे अभिमन्त्रित करके वहाँ त्रिकोणमण्डल अङ्कित करना चाहिये। उसका पूजन 'ॐ एते गन्धपुष्पे 'ॐ ह्रीं आधारशक्त्यादिभ्यो नमः' से मण्डल की पूजा करके उसके ऊपर विहितासन की स्थापना करनी चाहिये। अब उस पर स्वस्तिकादि क्रमेण बैठकर आसन-स्पर्श करते हुये 'अस्य आसनोपवेशने' से लेकर 'विनियोगः'-पर्यन्त मन्त्र पढ़कर हाथ जोड़कर मूलोक्त 'पृथ्वि त्वया' से लेकर 'पवित्रं कुरु चासनम्' मन्त्र पढ़ते-पढ़ते आसन पर त्रिकोण-मण्डल अङ्कित करके उसमें नमः मन्त्र अङ्कित करना चाहिये। तत्पश्चात् 'ॐ एते गन्धपुष्पे ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः' मन्त्र द्वारा गन्ध-पुष्प से मण्डल की अर्चना करके गुरु-पङ्क्ति को (बाँयीं ओर) 'ॐ गुरुभ्यो नमः, ॐ परमगुरुभ्यो नमः, ॐ परापरगुरुभ्यो नमः, ॐ परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः' मन्त्र से प्रणाम करना चाहिये। तदनन्तर दक्षिण में 'ॐ गणेशाय नमः' से प्रणाम करके सिर पर मूल मन्त्र द्वारा 'श्रीअमुकदेवतायै नमः' से प्रणाम करना चाहिये (अमुक की जगह इष्ट का नाम कहना चाहिये)।

विशेष—अन्नपूर्णा देवी की पूजा के समय चतुष्कोण मण्डल में त्रिकोण मण्डल अङ्कित करके उसके मध्य 'नमः' मन्त्र को लिखना चाहिये। तदनन्तर 'ॐ कामरूपाय नमः' मन्त्र से मण्डल की पूजा करके उस पर आसन स्थापित करने के पश्चात् आसन के ऊपर त्रिकोण मण्डल बनाकर पूजा के समय 'क्लीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः' द्वारा पूजन करना चाहिये।

त्रिपुरा-पूजन में आसन के नीचे त्रिकोण मण्डल बनाकर 'ॐ एते गन्धपुष्पे ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः, मूलप्रकृत्यै नमः, कूर्माय नमः, अनन्ताय नमः, पृथिव्यै नमः' से पूजन करने के पश्चात् 'अस्य आसनोपवेशनमन्त्रस्य मेरुपृष्ठऋषिः' इत्यादि पूर्वोक्त मन्त्र द्वारा जो मूल में लिखा है, पूजन करना चाहिये।

जो देवी शवासना हैं, उनकी मण्डलपूजा मूलोक्त विधि से करके आसन के ऊपर 'हेसौः' लिखकर 'ॐ एते गन्धपुष्पे हेसौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः' मन्त्र से पूजा करनी चाहिये।

ततः 'ॐ मणिधरिवज्रिणि महाप्रतिसरे रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा' इति वस्त्राञ्चले ग्रन्थिं बद्ध्वा 'आं हुं फट् स्वाहा' इति गन्धपुष्पाभ्यां करौ सम्मार्ज्य वामकरे समादाय 'क्लीं' इति निर्म्मज्ज्य 'ऐं' इति चाघ्राय 'फट्' इति ऐशान्यां नाराचमुद्रया क्षिपेत्। 'ॐ शताभिषेक हुं फट् स्वाहा' इति पुष्पमभ्युक्ष्य 'ॐ पुष्पकेतुराजार्हते शताय सम्यक् सम्बन्धाय हुं' इति पुष्पं संस्पृश्य 'ॐ पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पसम्भवे। पुष्पचयावकीर्णे हुं फट् स्वाहा' इति शोधयेत्। ततो मूलेन दिव्यदृष्ट्या दिव्यान् विघ्नान् उत्सार्य तर्जनीमध्यमाभ्यां ऊर्ध्वाधः तालत्रयं दत्त्वा अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां पूर्वादित ईशानकोणपर्यन्तम् अध ऊर्ध्वञ्च छोटिका-भिर्दशदिग्बन्धनं कुर्यात्।

तदनन्तर 'ॐ मणिधरि' से लेकर 'फट् स्वाहा'-पर्यन्त मूलोक्त मन्त्र से वस्त्र के अञ्चल में गाँठ बाँधना चाहिये तथा 'आं हुं फट् स्वाहा' कहकर गन्ध पुष्प से हाथ की मार्जना करके उसे बाँयीं हथेली में ग्रहण करना चाहिये। उसका निर्मज्जन 'क्लीं' मन्त्र से करके 'ऐं' से सूँघना चाहिये तथा 'फट्' मन्त्र पढ़ते-पढ़ते उसे नाराचमुद्रा से नैर्ऋत्य कोण में फेंक देना चाहिये। अब 'ॐ शताभिषेक हुं फट् स्वाहा' से अन्य पुष्प का अभ्युक्षण करके 'ॐ पुष्पकेतुराजार्हते शताय सम्यक् सम्बन्धाय हुं' से पुष्प का स्पर्श करना चाहिये। अब पुष्प का शोधन 'ॐ पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पसम्भवे। पुष्पचयावकीर्णे हुं फट् स्वाहा' से करना चाहिये। तत्पश्चात् मूलमन्त्रोच्चारण के साथ दिव्य दृष्टि से अवलोकन करके दिव्य विघ्नों का उत्सारण करना चाहिये और तर्जनी मध्यमा से ऊर्ध्व अधः दिशा

में तीन ताली बजाकर और अङ्गुष्ठ-तर्जनी से चुटकी बजाते हुये पूर्व दिशा से लेकर ईशान कोण पर्यन्त आठ दिशा में तथा ऊर्ध्व एवं अधः इन दो दिशा में दिग्बन्धन करना चाहिये।

ततः 'फट्' इति भूमौ वामपार्ष्णिघातत्रयं दत्त्वा 'अस्त्राय फट्' इति जलेन नभोविघ्नानुत्सार्य मूलान्ते 'फट्' इति देवतां पूजाद्रव्याणि च संशोध्य धेनुमुद्रां प्रदर्श्य मातृकापुटितमन्त्रजपेन मन्त्रं शोधयेत्॥५॥

ततदन्तर 'फट्' मन्त्र से वामपार्ष्णि द्वारा भूमि पर तीन बार आघात करके 'अस्त्राय फट्' कहकर जल द्वारा (जल को ऊपर फेंककर) अन्तरिक्षगत विघ्नों को हटाकर मूल मन्त्र के अन्त में 'फट्' संयुक्त करके देवता तथा पूजाद्रव्य का शोधन करके मातृकापुटित मन्त्र से मन्त्र-शोधन करना चाहिये।

ततो 'रं' इति जलधारया चतुर्दिक्षु वह्निप्राकारं विचिन्त्य मूलमन्त्रेण स्वदेहं सम्मार्ज्य हृदि हस्तं दत्त्वा 'ॐ दुर्गे रक्षिणि स्वाहा, ॐ आं हुं फट् स्वाहा' इति आत्मरक्षां विधाय प्राणायामं कृत्वा भूतशुद्धिं कुर्यात्। तद्यथा—स्वाङ्के उत्तानौ करौ सोऽहमिति जीवात्मानं हृदयस्थं दीप-कलिकाकारं मूलाधारस्थितकुलकुण्डलिन्या सह सुषुम्नावर्त्मना मूला-धारस्वाधिष्ठानमणिपूरकानाहतविशुद्धाज्ञाख्यषट्चक्राणि भित्त्वा शिरोऽ-वस्थिताधोमुखसहस्रदलकमलकर्णिकान्तर्गतपरमात्मनि संयोज्य, तत्रैव पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशगन्धरसरूपस्पर्शशब्दनासिकाजिह्वाचक्षुस्त्वक्श्रोत्र-वाक्पाणिपादपायूपस्थप्रकृतिमनोबुद्ध्यहङ्काररूपचतुर्विंशतितत्त्वानि विलीनानि विभाव्य यमिति वायुबीजं धूम्रवर्णं वामनासापुटे विचिन्त्य तस्य षोडशवारजपेन वायुना देहमापूर्य नासापुटौ धृत्वा तस्य चतुःषष्टि-वारजपेन कुम्भकं कृत्वा, वामकुक्षिस्थकृष्णवर्णपापपुरुषेण सह देहं संशोध्य तस्य द्वात्रिंशद्वारजपेन दक्षिणनासया वायुं रेचयेत्। दक्षिणनासापुटे रमिति वह्निबीजं रक्तवर्णं ध्यात्वा तस्य षोडशवारजपेन वायुना देहमापूर्य नासापुटौ धृत्वा तस्य चतुःषष्टिवारजपेन कुम्भकं कृत्वा पापपुरुषेण सह देहं मूलाधारस्थितवह्निना दग्ध्वा तस्य द्वात्रिंशद्वारजपेन वामनासया भस्मना सह वायुं रेचयेत्। ठमिति चन्द्रबीजं शुक्लवर्णं वामनासिकायां ध्यात्वा तस्य षोडशवारजपेन ललाटे चन्द्रं नीत्वा नासापुटौ धृत्वा वमिति वरुणबीजस्य चतुःषष्टिवारजपेन तस्माल्ललाटचन्द्राद्गलितसुधया मातृकावर्णात्मिकया समस्तदेहः विरच्य लमिति पृथ्वीबीजस्य द्वात्रिंशद्वारजपेन देहं सुदृढं विचिन्त्य दक्षिणेन वायुं रेचयेत्।

तदनन्तर 'रं' मन्त्र से जलधार प्रदान करते-करते चतुर्दिक् वह्निप्राकार का चिन्तन

करना चाहिये तथा मूल मन्त्र से देह का मार्जन करके हृदय पर हाथ रखकर 'ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा, ॐ आं हुं फट् स्वाहा' से आत्मरक्षा करके प्राणायामोपरान्त भूतशुद्धि करनी चाहिये। वह इस प्रकार से है—अपनी गोद में उत्तान अर्थात् हथेली को ऊपर की ओर करके रखे और सोऽहं रूप जीवात्मा को हृदयस्थ दीपकलिकाकार मूलाधारस्थ कुलकुण्डलिनी के साथ सुषुम्ना वर्त्म में मूलाधार स्वाधिष्ठान मणिपूर अनाहत विशुद्ध आज्ञारूप षट्चक्र का भेदन करके शिर में स्थित अधोमुखी सहस्रदल कर्णिका के अन्तर्गत परमात्मा के साथ संयुक्त करे। वहाँ पर पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, गन्ध, रूप, रस, स्पर्श, शब्द, नासिका, जिह्वा, चक्षु, त्वक्, श्रोत्र, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, प्रकृति, मन, बुद्धि, अहङ्कार रूप चौबीस तत्त्व विलीन हो रहे हैं—यह भावना करनी चाहिये। तब 'यं' वायुबीज को, जो धूम्रवर्ण है, वाम नासापुट में उसकी भावना करके वहाँ १६ बार उसका जप करके वायु से देह को आपूरित करके (पूरक करके) नासापुट को दबाये। बीज का (इस दबायी स्थिति में) ६४ बार कुम्भक स्थिति में जप करे और बाँयीं कोख में स्थित काले रंग के पापपुरुष से देह को शुद्ध करके ३२ बार जप करते हुये दाहिने नासापुट से वायु को बाहर (रेचक) करे। अब दाहिने नासापुट से 'रं' बीज, जो रक्तवर्ण है, का ध्यान करते हुये इसी बीज का १६ बार जप करते हुये वायु को भीतर (पूरक) खींचे और देह को वायु से आपूरित करे। अब नासापुटों को दबाकर ६४ बार जप करते हुये कुम्भक करे। तदनन्तर पापपुरुष के साथ देह को मूलाधारस्थ अग्नि में दग्ध करके ३२ बार जप करते हुये वाम नासा से देह तथा पापपुरुष की भस्म के साथ वायु को बाहर छोड़े (रेचक करे)। 'ठं' चन्द्रबीज, जो शुक्लवर्ण है, उसका ध्यान वाम नासा में करके १६ बार जप करते हुये उसे ललाट में चन्द्र तक (पूरक) ले जाय। अब नासापुटों को दबाकर 'वं' वरुणबीज का ६४ बार (कुम्भक) जप करते हुये कुम्भक करके ललाटस्थ चन्द्रमा से गलित हो रही सुधा को, जो मातृकावर्णात्मिका है, समस्त देह में लगाकर (भावना करके) 'लं' पृथ्वी-बीज का ३२ बार जप करते हुये देह की सुदृढ़ता की भावना करे और दाहिनी नासिका से वायु को बाहर छोड़े (रेचन)।

विशेष—श्यामार्चनचन्द्रिका, वीरतन्त्र, तन्त्रसार-प्रभृति अनेक तन्त्रों का कथन है कि पहले भूतशुद्धि करके तब प्राणायाम करना चाहिये। कालीतन्त्र तथा श्यामारहस्य में कहते हैं कि पहले प्राणायाम करके तब भूतशुद्धि करनी चाहिये। लेकिन अन्नदाकल्प, लिङ्गार्चन-तन्त्र तथा गौतमीय तन्त्र में कहते हैं कि भूतशुद्धि तथा मातृकान्यासोपरान्त प्राणायाम करना चाहिये। स्वतन्त्रतन्त्र में कहते हैं कि पूजा अनेक प्रकार की होती है। उसमें से जिस प्रकार की पूजा करने की इच्छा हो जाय, उसी के अनुसार करनी चाहिये—'पूजा तु विविधा प्रोक्ता तास्वेकतममाश्रयेत्'।

ततः 'ॐ आं हुं फट् स्वाहा' इति व्यापकतया कायवाक्चित्तशोधनं

कृत्वा मातृकान्यासं कुर्यात्। यथा—अस्य मातृकामन्त्रस्य ब्रह्मऋषि-गायत्रीछन्दो मातृकासरस्वती देवता हल्भ्यो बीजानि स्वराः शक्तयः अव्यक्तं कीलकं मातृकान्यासे विनियोगः।

अब 'ॐ आं हुं फट् स्वाहा' से देह, वाक्य तथा चित्तशोधन करके मातृकान्यास करना चाहिये। यथा—इस मातृका मन्त्र के ब्रह्म ऋषि हैं। गायत्री छन्द है। मातृका सरस्वती देवता हैं। हल् बीज है। स्वर शक्ति है। अव्यक्त कीलक है। इसका मातृका न्यास में प्रयोग किया जाता है।

शिरसि—ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे—गायत्रीच्छन्दसे नमः। हृदि—मातृकासरस्वत्यै देवतायै नमः। मूलाधारे—हल्भ्यो बीजेभ्यो नमः। पादयोः—स्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः। सर्वाङ्गे—अव्यक्तकीलकाय नमः।

ततः कराङ्गन्यासौ—

अं कं खं गं घं ङं आं—अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।
ईं चं छं जं झं ञं ईं—तर्जनीभ्यां स्वाहा।
उं टं ठं डं ढं णं ऊं—मध्यमाभ्यां वषट्।
एं तं थं दं धं नं ऐं—अनामिकाभ्यां हूं।
ओं पं फं बं भं मं औं—कनिष्ठाभ्यां वौषट्।
अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अः—करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्।

एवं हृदयादिषु; अं कं खं गं घं डं आं हृदयाय नमः इत्यादि।

इस प्रकार से न्याय करना चाहिये।

अथान्तर्मातृकान्यासः (अन्तर्मातृका न्यास) कण्ठे विशुद्धचक्रे—अं नमः, आं नमः, इं नमः, ईं नमः, उं नमः, ऊं नम, ऋं नमः, ॠं नमः, ऌं नमः, ॡं नमः, एं नमः, ऐं नमः, ओं नमः, औं नमः, अं नमः, अः नमः।

हृदयस्थित अनाहतचक्रे—कं नमः, खं नमः, गं नमः, घं नमः, ङं नमः, चं नमः, छं नमः, जं नमः, झं नमः, ञं नमः, टं नमः, ठं नमः।

नाभिस्थितमणिपूरचक्रे—डं नमः, ढं नमः, णं नमः, तं नमः, थं नमः, दं नमः, धं नमः, नं नमः, पं नमः, फं नमः।

लिङ्गमूलस्थितस्वाधिष्ठानचक्रे—बं नमः, भं नमः, मं नमः, यं नमः, रं नमः, लं नमः।

मूलाधारचक्रे—वं नमः, शं नमः, षं नमः, सं नमः।

भ्रूमध्यस्थित-आज्ञाचक्रे—हं नमः, क्षं नमः ।

इस प्रकार से अन्तर्मातृका न्यास करना चाहिये ।

ततो बाह्यमातृकान्यासः । ध्यानं यथा—

पञ्चाशल्लिपिभिर्विभक्तमुखदोः पन्मध्यवक्षस्थलां
भास्वन्मौलिनिबद्धचन्द्रशकलामापीनतुङ्गस्तनीम् ।
मुद्रामक्षगुणं सुधाढ्यकलसं विद्याञ्च हस्ताम्बुजै-
र्विभ्राणां विषदप्रभां त्रिनयनां वाग्देवतामाश्रये ।।

अब बाह्यमातृका न्यास कहते हैं। पहले मूलोक्त श्लोक द्वारा मातृका का ध्यान करना चाहिये ।

एवं ध्यात्वा न्यसेत् । तद्यथा—मध्यमानामिकाभ्यां ललाटे अं नमः । तर्जनीमध्यमानामिकाभिः मुखवृत्तस्य चतुःपार्श्वे आं नमः । अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां दक्षचक्षुषि इं नमः । वामचक्षुषि ईं नमः । अङ्गुष्ठपृष्ठेन दक्षकर्णे उं नमः । वामकर्णे ऊं नमः । कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन दक्षनासायां ऋं नमः । वामनासायां ॠं नमः । तर्जनीमध्यमानामिकाभिः दक्षगण्डे लृं नमः । वामगण्डे ॡं नमः । मध्यमया ओष्ठे एं नमः । अधरे ऐं नमः । अनामिकया ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ ओं नमः । अधोदन्तपङ्क्तौ औं नमः । मुखविवरे अः नमः । कनिष्ठामध्यमानामिकाभिः दक्षबाहौ मूलात् सन्धित्रये यथाक्रमेण कं नमः, खं नमः, गं नमः । अङ्गुलियुगले घं नमः । अङ्गुल्यग्रभागे ङं नमः । वामबाहौ सन्धित्रये अङ्गुलिमूले अङ्गुल्यग्रभागे च यथाक्रमेण चं नमः, छं नमः, जं नमः, झं नमः, ञं नमः । दक्षपादे यथाक्रमं पूर्ववत् टं नमः, ठं नमः, डं नमः, ढं नमः, णं नमः । वामपादे यथाक्रमं पूर्ववत् तं नमः, थं नमः, दं नमः, धं नमः, नं नमः । कनिष्ठामध्यमानामिकाभिः दक्षपार्श्वे पं नमः । वामपार्श्वे फं नमः । पृष्ठदेशे बं नमः । अङ्गुष्ठमध्यमानामाकनिष्ठायोगेन नाभौ भं नमः । जठरे सर्वाङ्गुलियोगेन मं नमः । करतलेन हृदये यं त्वगात्मने नमः । एवं दक्षस्कन्धे रं असृगात्मने नमः । ककुदि लं मांसात्मने नमः । वामस्कन्धे वं मेद आत्मने नमः । करतलेन हृदयादिदक्षबाहु-पर्यन्तं शं अस्थ्यात्मने नमः । हृदयादि वामबाहुपर्यन्तं षं मज्जात्मने नमः । एवं हृदयादिदक्षपादपर्यन्तं सं शुक्रात्मने नमः । एवं वामपादपर्यन्तं हं प्राणात्मने नमः । हृदयादि उदरपर्यन्तं लं जीवात्मने नमः । हृदयादि मुखपर्यन्तं क्षं परमात्मने नमः ।

ध्यानोपरान्त इस प्रकार न्यास करना चाहिये—मध्यमा-अनामिका से ललाट पर—अं नमः । तर्जनी, मध्यमा, अनामिका से मुखवृत्त के चारो ओर—आं नमः । अङ्गुष्ठ-अनामिका से दाहिने चक्षु पर—इं नमः । बाँयीं चक्षु पर—ईं नमः । अङ्गुष्ठपृष्ठ से दाहिने कर्ण पर—उं नमः । वामकर्ण पर—ऊं नमः । कनिष्ठा अङ्गुष्ठ से दाहिनी नासिका पर—ऋं नमः । वाम नासा पर—ॠं नमः । तर्जनी, मध्यमा, अनामिका से दाहिने गण्ड पर—ऌं नमः । वाम गण्ड पर—ॡं नमः । मध्यमा से ओष्ठ पर—एं नमः । अधर पर—ऐं नमः । अनामिका से ऊपरी दन्तपङ्क्ति पर—ओं नमः । नीचे की दन्तपङ्क्ति पर—औं नमः । मध्यमा से उत्तमाङ्ग पर—अं नमः । अनामिका से मुखविवर पर—अः नमः । कनिष्ठा, मध्यमा, अनामिका से दाहिनी बाहु तथा मूलसन्धित्रय पर यथाक्रम से कं नमः, खं नमः, गं नमः । अङ्गुलिमूल पर—घं नमः । अङ्गुली के अग्रभाग पर—ङं नमः । वामबाहु, सन्धित्रय, अङ्गुलिमूल, अङ्गुलियों के अग्रभाग पर यथाक्रम से चं नमः, छं नमः, जं नमः, झं नमः, ञं नमः । दाहिने पैर की सन्धित्रय, अङ्गुलिमूल तथा अङ्गुलियों के अग्रभाग पर यथाक्रम से टं नमः, ठं नमः, डं नमः, ढं नमः, णं नमः । बाँयें पैर की सन्धित्रय, अङ्गुलिमूल तथा अङ्गुलियों के अग्रभाग पर यथाक्रम से तं नमः, थं नमः, दं नमः, धं नमः, नं नमः । कनिष्ठा-मध्यमा-अनामिका से दाहिने पार्श्व पर—पं नमः । वाम पार्श्व पर—फं नमः । पृष्ठदेश पर–बं नमः । अङ्गुष्ठ-मध्यमा-अनामिका तथा कनिष्ठा से नाभि पर—भं नमः । जठर पर सभी अङ्गुलियों द्वारा—मं नमः । करतल से हृदय पर—यं त्वगात्मने नमः । दाहिने कन्धे पर—रं असृगात्मने नमः । ककुद पर—लं मांसात्मने नमः । बायें कन्धे पर—वं मेद आत्मने नमः । करतल से ही हृदय आदि से लेकर दाहिने बाहु-पर्यन्त—षं मज्जात्मने नमः । करतल से ही हृदयादि से लेकर दाहिने पैर-पर्यन्त—सं शुक्रात्मने नमः । वामपाद-पर्यन्त—हं प्राणात्मने नमः । हृदयादि उदर-पर्यन्त—लं जीवात्मने नमः । हृदयादि मुख-पर्यन्त—क्षं परमात्मने नमः ।

अथ तत्त्वमुद्रया वर्णन्यासं कुर्यात्; यथा—

हृदये— अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं नमः ।
दक्षहस्ते— एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं नमः ।
वामहस्ते— ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं नमः ।
दक्षपादे— णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं नमः ।
वामपादे— मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं नमः ।

अब यहाँ तत्त्वमुद्रा से वर्णन्यास करना चाहिये । जो मूलोक्त प्रकार से है ।

ततः पीठन्यासः—ॐ आधारशक्तये नमः, ॐ कूर्माय नमः, ॐ अनन्ताय नमः, ॐ पृथिव्यै नमः, ॐ क्षीरसमुद्राय नमः, ॐ श्वेतद्वीपाय

नमः, ॐ मणिमण्डपाय नमः, ॐ कल्पवृक्षाय नमः, ॐ मणिवेदिकायै नमः, ॐ रत्नसिंहासनाय नमः। एतत् सर्वन्तु हृदि।

यह पीठन्यास मूलोक्त प्रकार से करे। यह सब हृदय पर किया जाता है।

ततो दक्षिणस्कन्धे—ॐ धर्माय नमः। वामस्कन्धे—ॐ ज्ञानाय नमः। वामोरौ—ॐ वैराग्याय नमः। दक्षिणोरौ—ॐ ऐश्वर्याय नमः। मुखे—ॐ अधर्माय नमः। वामपार्श्वे—ॐ अज्ञानाय नमः। नाभौ—ॐ अवैराग्याय नमः। दक्षिणपार्श्वे—ॐ अनैश्वर्याय नमः, हृदि—ॐ अनन्ताय नमः, ॐ पद्माय नमः, ॐ अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः, ॐ उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः, ॐ मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः, ॐ पं परमात्मने नमः, ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः। सर्वत्र प्रणवादि नमोऽन्तेन न्यसेत्।

इस न्यास को मूलोक्त प्रकार से करना चाहिये। सभी के आदि में प्रणव तथा अन्त में नमः शब्द लगाना चाहिये (यहाँ पर सभी मन्त्रों में आदि में प्रणव तथा अन्त में नमः लगाकर लिखा गया है)।

ततः आदौ गुरुं दशोपचारेण सम्पूज्य बाणेश्वरं पारदादिनिर्मितं वा शिवं नारायणादिकञ्च पूजयेत्।

तब पहले गुरु का दशोपचार से पूजन करने के बाद बाणेश्वर लिङ्ग, पारद आदि के लिङ्ग तथा नारायणादि का पूजन करना चाहिये।

विशेष—शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, गाणपत्य आदि सबको सर्वाग्र में शिवलिङ्ग-पूजन करना चाहिये। बाणलिङ्ग, स्फटिकलिङ्ग, पारदलिङ्ग, पाषाण-निर्मित शिवलिङ्ग, सुवर्णलिङ्ग, चाँदी के लिङ्ग, कांस्यलिङ्ग-प्रभृति जिसके पास जैसा लिङ्ग है, उन्हें उसी से शिवपूजन करना चाहिये तथा सभी लोग पार्थिव लिङ्ग बनाकर भी पूजन कर सकते हैं। शिवपूजा किये बिना अन्य पूजा नहीं करनी चाहिये। लिङ्गार्चनतन्त्र में यही कहा गया है। बाणलिङ्ग की पूजा में उनकी प्रतिष्ठा, संस्कार, आवाहन तथा अष्टमूर्त्ति-पूजन नहीं किया जाता। बिल्वपत्र के ऊपर बाणलिङ्ग स्थापित नहीं करना चाहिये; जैसा कि शिवार्चनतन्त्र में कहा भी है—

मदासनं बिल्वपत्रं न कुर्वीत कदाचन।
यदि मोहाद् प्रकुर्वीत शिवहा व्रतमाचरेत्॥

लेकिन पार्थिव शिवलिङ्ग को बिल्पपत्र पर स्थापित करना ही चाहिये। जो विष्णुक्रान्ता में (विन्ध्याचल के पूर्व से लेकर चट्टग्राम-पर्यन्त) रहते हैं, उन्हें बिल्वपत्र की वह डण्डी तोड़कर शिवपूजा नहीं करनी चाहिये, जो शाखा से जुड़ी होती है। शास्त्र में इसका वर्णन

किया गया है; लेकिन जो अश्वक्रान्ता में (विन्ध्यपर्वत के दक्षिण में) रहते हैं, उन्हें यह डण्डी तोड़कर शिवार्चन करना चाहिये। रथक्रान्ता (विन्ध्यपर्वत के उत्तरी भाग से लेकर हिमालय-पर्यन्त) में रहने वालों के लिये यह नियम नहीं है, तथापि सवज्र (बिना डण्डी तोड़े) बिल्वपत्र से रथक्रान्ता वालों को भी पूजन करना उचित है। जिस वृक्ष में फल नहीं होते, ऐसे वृक्ष के बिल्वपत्र से पूजा नहीं करनी चाहिये। बिल्वपत्र धोते समय यह देखते हैं कि उसकी डण्डी का सिरा न धोया जाय। बिल्वपत्र का चयन मन्त्र से करना चाहिये—

अमृतोद्भव श्रीवृक्ष शङ्करस्य सदा प्रिय।
क्षमस्व शिवपूजार्थं तव पत्रं हराम्यहम्॥

दूर्वा—कोई-कोई शिवपूजन में गर्भशून्य दूर्वा देते हैं। यह उचित नहीं है।

पाषाण, पारद, स्फटिक, अष्टधातु, चाँदी अथवा अन्य पदार्थ से निर्मित शिवलिङ्ग अथवा अनादिलिङ्ग का पूजन पार्थिव पूजन के ही समान करना चाहिये।

जपरहस्यम्

तन्त्रशास्त्र के अनुसार जप से दुर्लभ सिद्धि मिलती है। अत: जप-साधन-रहस्य जानना आवश्यक है। जप के प्रारम्भ में क्रमश: चौरगणेश-पूजन, गुर्वादि नाम, मन्त्रशिखा, मन्त्र-चैतन्य, मन्त्रार्थ, गुरुध्यान, इष्टध्यान, कुल्लूका, महासेतु, सेतु, निर्वाण, योनिमुद्रा, अङ्गन्यास, करन्यास, प्राणायाम, जिह्वाशोधन, मन्त्रप्राण, दीपनी, सूतक (अशौचभङ्ग), निद्रादोषहरण, वर्गाष्टक, मुखशोधन, करशोधन तथा गुरु, देवता एवं मन्त्रैक्य करके जप करना चाहिये तथा जपान्त में पुन: कुल्लूका, महासेतु, सेतु, सूतक तथा प्राणायाम करने से जप-फल की प्राप्ति होती है।

चौरगणेश से प्रारम्भ करके जपान्त में प्राणायाम-पर्यन्त उल्लिखित क्रमसमूह में चौरगणेश, गुर्वादिनाम, गुरुध्यान, इष्टध्यान, करन्यास, प्राणायाम, प्रात:कृत्य के ही समय अनुष्ठित हो जाता है। अतएव जपाचरण काल में पुन: अनुष्ठान करने की आवश्यकता ही नहीं होती। चौरगणेश, गुर्वादिन्यास, गुरुध्यान, इष्टध्यान, अङ्गन्यास, करन्यास तथा प्राणायाम पहले ही वर्णित किया जा चुका है। अत: अब शेष क्रम को ही कहना उचित है।

शाक्तानन्दतरङ्गिणी तथा कामधेनुतन्त्र के अनुसार जप के पहले कामिनी-ध्यान तथा 'कं' बीज का जप करना चाहिये। तत्पश्चात् प्रफुल्ल जप किया जाय। अर्थात् 'लीं' बीज का १० बार जप करके उसे 'क' से संयुक्त करके 'क्लीं' का १० बार जप करना चाहिये। यथा—

> एवं हि कामिनीं ध्यात्वा ककारं दशधा जपेत्।
> प्रफुल्लञ्च ततो जप्त्वा जपस्य फलभाग् भवेत्॥ इत्यादि।

कामिनीतत्त्व—हृदय प्रदेश में 'क्रों' बीज का १० बार जप करके कामिनी का ध्यान करना चाहिये। जैसे—

> सिंहस्कन्धसमारूढां रक्तवर्णां चतुर्भुजाम्।
> नानालङ्कारभूषाढ्यां रक्तवस्त्रविभूषिताम्॥
> शङ्खचक्रधनुर्बाणविराजितकराम्बुजाम्।
> कामिनीं प्रथमं ध्यात्वा जपपूजां समाचरेत्॥

न्यासजाल—पूर्वोक्त प्राणायामोपरान्त मातृकान्यास, भूतशुद्धि, ऋष्यादिन्यास, करन्यास, अङ्गन्यास, तत्त्वन्यास तथा व्यापकन्यास-रूप सप्तविध न्यास सम्पन्न करना चाहिये। असमर्थ साधक को केवल ऋष्यादि न्यास, करन्यास, अङ्गन्यास, तत्त्वन्यास तथा व्यापकन्यास-मात्र ही करना चाहिये (समर्थ व्यक्ति को मन्त्र का जीवन्यास, तारकन्यास तथा डाकिन्यादि मन्त्रन्यास भी करना चाहिये)।

मन्त्रशिखा—जैसे अन्धकार-भरे कमरे में कुछ भी लक्षित नहीं होता, वैसे ही मन्त्रशिखा-भावना के बिना कभी भी मन्त्रसिद्धि नहीं मिलती। निःश्वास रोककर भावना द्वारा कुण्डलिनी को एक बार सहस्रार में ले जाकर पुनः वहाँ से मूलाधार में लौटा लाना चाहिये। ऐसे ही पुनः-पुनः करते-करते सुषुम्नापथ में तड़ित् के समान किंवा भ्रामित अङ्गार के समान दीर्घाकृति तेज परिलक्षित होता है। इस शिखा में चित्त को एकाग्र करके स्थापित करने से मन्त्रशिखा-भावना होती है। अथवा अपने मूल मन्त्र को तेजोमय ज्ञान करने को मन्त्रशिखा कहते हैं। अर्थात् मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त कुण्डलिनी की भावना करके यह चिन्तन करना चाहिये कि उसके ही शरीर में सभी मन्त्र ग्रथित हैं। इन ग्रथित मन्त्रों की दीप्ति से कुण्डलिनी आलोकित तथा तेजोमय होती है। ऐसे ज्ञान को ही मन्त्रशिखा कहते हैं।

मन्त्रचैतन्य—शरीराभ्यन्तर्गत षट्चक्र का भेद करके ब्रह्म-विवर से जो ॐकार ध्वनि (अनाहत) उत्थित हो रही है, उस ध्वनि का ओंकार रूप वर्णभाव का परित्याग करके केवल विशुद्ध ध्वन्यात्मक शब्दब्रह्म का अनुभव करना ही मन्त्रचैतन्य है। जो ऐसे आध्यात्मिक भाव की धारणा में असमर्थ होते हैं, वे 'ईं' बीज से अपने मूल मन्त्र को पुटित करके उसका दस बार जप करते हैं, इससे उनका मन्त्र चैतन्य हो जाता है। यह शाक्तानन्दतरङ्गिणी का कथन है—

ईं बीजेनैव पुटितं मूलमन्त्रं जपेद् यदि।
तदैव मन्त्रचैतन्यं भवत्येव सुनिश्चितम्॥

कुब्जिकातन्त्र के अनुसार—'क्लीं श्रीं ह्रीं' अनुलोममातृका (मूलमन्त्र) और विलोम-मातृका 'ह्रीं श्रीं क्लीं' का १०८ बार जप करने से मन्त्र चैतन्य हो जाता है।

मन्त्रार्थभावना—मन्त्रार्थं देवतारूपचिन्तनं परमेश्वरि।
वाच्यवाचकभावेन अभेदो मन्त्रदेवयोः॥

अर्थात् वाच्य-वाचकभाव से मन्त्र तथा देवता की अभेद-धारणा करके देवमूर्त्ति का जो चिन्तन है, वही है—मन्त्रार्थभावना। मन्त्र का वर्णभाव त्याग कर केवल भावार्थ द्वारा इष्टदेवता की देह का सङ्गठन करना ही मन्त्रार्थ है। जैसे 'ह्रीं' एक मन्त्र है। इसका अर्थ करने पर यह जानना होगा कि 'ह' अर्थात् शिवरूप ब्रह्म, रेफ अर्थात् प्रकृतिरूप शक्ति, ईकार अर्थात् महामाया। नाद का अर्थ है—सृष्टिशक्तिविशेष, बिन्दु अर्थात् दुःखमोचनी शक्ति। यह ह + र + ई + ँ + ० = ह्रीं हो जाता है, जो महामाया का स्वरूप है। यह अर्थ-चिन्तन ही मन्त्रार्थभावना है। मन्त्रार्थ को सिद्ध गुरु से जान लेना चाहिये।

कुल्लूका—किसी देवता का मन्त्रजप करते समय जप के पूर्व क्षण में तथा जपान्त में अपने मस्तक पर मन्त्रविशेष का जप करना ही कुल्लूका है। तीन प्राणायामोपरान्त सात बार कूल्लूका का जप करना चाहिये। देवताओं की कुल्लूका इस प्रकार होती है—

काली का कुल्लूका—	क्रीं हुं स्त्रीं ह्रीं फट्।
तारा का कुल्लूका—	ह्रीं स्त्रीं हुं।
त्रिपुरा का कुल्लूका—	ऐं क्लीं सौः।
भुवनेश्वरी का कुल्लूका—	ह्रीं।
छिन्नमस्ता का कुल्लूका—	वज्रवैरोचनीये हुं।
मातङ्गी का कुल्लूका—	ओं।
कमला का कुल्लूका—	स्त्रीं।
जगद्धात्री का कुल्लूका—	हुं ह्रीं हुं ह्रीं।
अन्नपूर्णा का कुल्लूका—	क्लीं।
महिषमर्दिनी का कुल्लूका—	हुं ओं ह्रीं स्वाहा ओं हुं।
दुर्गा तथा जयदुर्गा का कुल्लूका—	ह्रीं स्त्रीं हुं ह्रीं।
शिव का कुल्लूका—	हौं।
विष्णु का कुल्लूका—	ॐ नमो नारायणाय।
बगला का कुल्लूका—	स्त्रीं।
धूमावती का कुल्लूका—	ह्रीं।
भैरवी का कुल्लूका—	कीं लीं वीं।

सेतु—सेतुमन्त्र का हृदय (अनाहत चक्र) पर सात बार जप करना होता है। विभिन्न देवताओं के सेतु इस प्रकार कहे गये हैं—काली का सेतु—ऐं हुं ऐं। तारा का सेतु—ॐ ह्रीं। त्रिपुरा का सेतु—ह्रीं सौं ह्रीं। भुवनेश्वरी का सेतु—ॐ ह्रीं ह्रीं ओं ओं। छिन्नमस्ता का सेतु—ह्रीं स्वाहा; स्त्री-शूद्र के लिये—फट्। जगद्धात्री का सेतु—ह्रीं स्वाहा; स्त्री-शूद्र-हेतु फट्। अन्नपूर्णा का सेतु—ह्रीं स्वाहा। कमलात्मिका का सेतु—स्त्रीं। दुर्गा तथा जयदुर्गा का सेतु—ह्रीं; स्त्री-शूद्र के लिये—फट्। महिषमर्दिनी का सेतु—ह्रीं स्वाहा। भैरवी का सेतु—हेसौः। मातङ्गी का सेतु—ओं। शिव का सेतु—हंसः। विष्णु का सेतु—ॐ विष्णवे ॐ।

महासेतु—पहले महासेतु का जप करके तब सेतुमन्त्र का जप करना चाहिये। विशुद्ध चक्र में (कण्ठ में) महासेतु का सात बार जप करना चाहिए। काली का महासेतु है—क्रीं। तारा का महासेतु—हुं। त्रिपुरा का महासेतु—ह्रीं। अन्य देवीगण का महासेतु—स्त्रीं।

निर्वाण—मातृकापुटित मूल मन्त्र (जैसे अं ह्रीं अं, आं ह्रीं आं) का जप नाभिमूल में (मणिपूर चक्र में) करना ही निर्वाण है।

योनिमुद्रा—मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त अधोमुख त्रिकोण तथा ब्रह्मरन्ध्र से मूलाधार-पर्यन्त ऊर्ध्वमुख त्रिकोण, इस प्रकार से षट्कोण की भावना करके 'एं' रूप योनिबीज का

दस बार जप करना ही योनिमुद्रा होती है। जो योनिमुद्रा में असमर्थ है, उसे मूल मन्त्र को 'ह्रीं' बीज से, 'श्रीं' बीज से, कामबीज 'क्लीं' से किंवा प्रणव में से किसी बीज से पुटित करके १००८ बार जप करना चाहिये। इससे सिद्धि मिलती है। जैसा कि कुब्जिकातन्त्र में कहा गया है—

योनिमुद्रा महादेवि यदि कर्त्तुं न शक्यते।
मायया वा श्रिया वापि कामेन प्रणवेन च।
सम्पुटं मूलमन्त्रञ्च जपेदष्टसहस्रकम्॥

जिह्वाशोधन—मत्स्यमुद्रा से आच्छादित करके 'हेसौः' मन्त्र का सात बार जप करने से जिह्वाशोधन हो जाता है।

मन्त्रप्राण—मूल मन्त्र को मायाबीज 'ह्रीं' से पुटित करके सात बार जप करने से मन्त्र में प्राणोद्दीपन हो जाता है। यही मन्त्रप्राण है। इसे अथवा 'कलरीं' मन्त्र का सात बार जप करना चाहिये।

दीपनी—प्रणव (ॐ) पुटित मूल मन्त्र का सात बार जप करने से मन्त्र की दीप्ति वर्द्धित हो जाती है, यही दीपनी है।

सूतक—(अशौचभङ्ग) जप के आदि में जातसूतक (जननाशौच) तथा जप के अन्त में मृतसूतक (मरणाशौच) होता है। अतएव अशौचावस्था का जप व्यर्थ हो जाता है। अतएव अशौचभङ्ग आवश्यक है। अशौचभङ्ग का ही नाम है—सूतक। ॐकार-पुटित मूल मन्त्र का हृदय पर सात बार जप करने से अशौचभङ्ग हो जाता है।

निद्रादोषहरण—कामकला बीज 'ईं' से मूल मन्त्र को पुटित करके हृदय पर दस बार जप करने से मन्त्र का निद्रादोष नहीं रह जाता।

वर्गाष्टक—अष्टवर्ग-जप के बिना कोटि पुरश्चरण का भी जपफल व्यर्थ हो जाता है। अष्टवर्ग-जप का यह नियम है—प्रत्येक वर्गाद्यवर्ण को अर्थात् अ क च ट त प य श— इन आठ वर्ग के प्रत्येक वर्ण को बिन्दुयुक्त करके मूल मन्त्र को पुटित करके आदि-अन्त में १०८ बार जप करना चाहिये। जैसे—अं मूल अं, कं मूल कं इत्यादि क्रमेण 'शं' मूल पर्यन्त का जप एक बार होता है। इस प्रकार १०८ बार जप करना चाहिये (मूल अर्थात् मूलमन्त्र)।

मुखशोधन—जप के प्रारम्भ में मुखशोधन का प्रयोजन है। मुखशोधन करके मन्त्रों का सात बार जप करना चाहिये। काली का मुखशोधन मन्त्र है—ॐ क्रीं क्रीं क्रीं ओं ओं क्रीं क्रीं क्रीं। इसी प्रकार तारा के विषय में—ह्रीं हुं ह्रीं; त्रिपुरा के लिये—श्रीं ॐ श्रीं ॐ श्रीं ॐ; अन्नपूर्णा के विषय में—'क्लीं'; महिषमर्दिनी के विषय में—ऐं ह्रीं ऐं दुर्गे स्वाहा ह्रीं ऐं ऐं; छिन्नमस्ता के विषय में—ह्रीं; भुवनेश्वरी के विषय में—ऐं ऐं ऐं; मातङ्गी के विषय

में—क्रों ऐं फ्रें; कमलात्मिका के विषय में—श्रीं एवं दुर्गा तथा जयदुर्गा के विषय में—ऐं ऐं ऐं मुखशोधन होता है।

करशोधन—करशोधन मन्त्र का सात बार जप करना होता है। काली का करशोधन मन्त्र है—क्रीं ई क्रीं करमाले अस्त्राय फट्। इसी प्रकार तारा का उनका मूलमन्त्र; जगद्धात्री का उनका ॐ ह्रीं स्त्रीं हुं श्रीं; अन्नपूर्णा का उनका मूलमन्त्र; भुवनेश्वरी का उनका मूलमन्त्र एवं अन्यान्य देवी हेतु उनका-उनका मूलमन्त्र करशोधन मन्त्र होता है।

गुरु-मन्त्र-देवता का एकीकरण—गुरुदेव का सहस्रार में चिन्तन करके जिह्वामूल में मन्त्रवर्ण का ध्यान करके हृदय में इष्ट का ध्यान करना चाहिये। सहस्रार में गुरुमूर्त्ति का ध्यान तेजोमय रूप में, जिह्वामूल में मन्त्रवर्ण का ध्यान तेजोमय रूप में तथा हृदय में इष्टमूर्त्ति का ध्यान तेजोमय रूप में करके इन तीनों तेजों का एकीकरण करना चाहिये तथा इस तेज के प्रभाव से स्वयं का चिन्तन तेजोमय रूप एवं अभिन्न रूप से करना चाहिये। अब हृदय में स्थित तेजोमय इष्टमूर्त्ति का लक्ष्य रखते हुये जप करना चाहिये। [मतान्तर से उत्कीलन तथा दृष्टिसेतु—ये दो क्रम विहित हैं। इसे गुरु-मन्त्र तथा देवता के ऐक्य-स्थापन के पूर्व अनुष्ठित करना चाहिये। उत्कीलन है—देवता का गायत्री जप। दृष्टिसेतु है—नासाग्र अथवा भ्रूमध्य में दृष्टि रखकर प्रणव (ॐ) का दस बार जप]

तदनन्तर साधक स्वयं का चिन्तन कामकलारूपेण करके जप करे। कामकला की आकृति—ऊर्ध्व में एक बिन्दु है, उसके नीचे दोनों पार्श्व में दो बिन्दु हैं। अर्थात् मन ही मन एक ऊर्ध्वमुखीन त्रिकोण की भावना करके उसके तीनों कोणों में एक-एक बिन्दु स्थापित करे। उसके नीचे एक नाद अङ्कित करे, यही कामकलाकृति होती है।
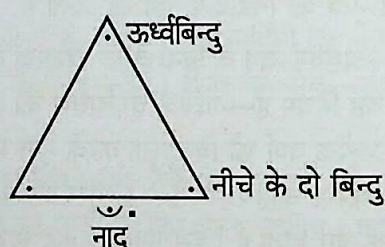
प्रकृति के गुण-क्षोभ से इन तीन बिन्दु की उत्पत्ति होती है। अब साधक को स्थिर-चित्त होकर यथासाध्य इष्ट मन्त्र जप करना चाहिये। जपान्त में पुन: कुल्लूका, महासेतु, सेतु तथा सूतक मन्त्र जप करना चाहिये। अन्त में जप-समर्पण तथा प्राणायामोपरान्त प्रणाम करना कर्त्तव्य है। जप-समर्पण के पूर्व कामिनीगर्भ जप करके हाथ में (अधो वामहस्त में) तथा त्रिपुरसुन्दरी एवं पुरुष देवताओं के दाहिने हाथ में (दक्षिण अधोहस्त में) जप-फल प्रदान करना चाहिये।

जप

मन्त्रवर्णों की क्रमबद्धता के साथ पुनः-पुनः आवृत्ति ही जप है। यह त्रिविध है—मानसिक, उपांशु तथा वाचनिक। मन्त्रार्थ-स्मरण करते-करते मन ही मन किया गया मन्त्रजप है—मानसिक जप। देवता के प्रति मनोनिवेश करके जिह्वा तथा कण्ठ का किञ्चित् परिचालन करके केवल स्वयं को सुनाई देने वाला जप है—उपांशु जप। वाक्य द्वारा मन्त्रोच्चारण को वाचनिक जप कहते हैं। केवल जिह्वा से जो जप होता है, वह है—जिह्वा जप। अत्यन्त धीमी गति से किया गया जप व्याधिकारक तथा अधिक तेजी से किया गया जप धनक्षयकारी होता है। जो जप स्पष्ट श्रुतिगोचर हो रहा हो, वह निष्फल होता है।

नित्यपूजार्थ जप-सङ्ख्या—कङ्कालमालिनीतन्त्रमतानुसार नित्य पूजा में १००८, १०८, ५८, ३८, २८, १८, १२, १० अथवा ८ बार जप करने से भी जप सिद्ध हो जाता है। श्यामार्चनचन्द्रिका के अनुसार २० से कम जप नहीं करना चाहिये। यह मत नैमित्तिक तथा काम्य पूजार्थ व्यक्त किया गया है।

करमाला—करमाला में तर्जनी, अनामा तथा कनिष्ठा के तीन-तीन पर्व तथा मध्यमा का एक ही पर्व ग्रहण करना चाहिये, मध्यमा के अन्य दो पर्व मेरुरूप कल्पित हैं। जब १०८ आदि जप करना हो तब पूर्वोक्त नियम से १०० जप पूर्ण करके अनामिका के मूल पर्व से प्रारम्भ करके कनिष्ठादि क्रम से तर्जनी के मध्यपर्व-पर्यन्त आठ पर्व पर आठ जप करने से १०८ जप पूर्ण हो जाता है।

शक्तिमतानुसार अनामा के तीन पर्व, कनिष्ठा के तीन पर्व तथा तर्जनी के मूल पर्व, इन १० पर्व पर जप करना चाहिये। तर्जनी के अग्र तथा मध्य पर्व पर शक्तिमन्त्र का जप नहीं करना चाहिये। ऐसा करने वाला पातकी हो जाता है। तर्जनी के ऊपर वाले पर्वद्वय मेरु कहलाते हैं।

श्रीविद्या के १०८ जप-हेतु पूर्वोक्त नियम से १०० जप करके कनिष्ठा के मूल पर्व से आरम्भ करके तर्जनी के मूल पर्व-पर्यन्त आठ पर्वों पर प्रदक्षिणक्रम से आठ जप करना चाहिये। जपकाल में अङ्गुली वियुक्त न करके हथेली को कुछ आकुञ्चित करके जप करना चाहिये। अङ्गुलियों के बीच छिद्र रहने से जप-फल में हानि होती है। तन्त्रान्तर में कहा गया है कि हृदय के ऊपर हाथ रखकर अङ्गुलियों को किञ्चित् वक्र रखकर दोनों हाथों को वस्त्र से ढ़ककर दाहिने हाथ से जप करना चाहिये। अङ्गुलियों के अग्रभाग से अथवा मेरुपर्व का लङ्घन करके तथा पर्वसन्धि पर जो जप किया जाता है, वह जप विफल होता है।

जपसङ्ख्या रखकर जप करना चाहिये। सङ्ख्यारहित जप निष्फल कहा गया है। अक्षत, हस्तपर्व, धान्य, पुष्प, चन्दन तथा मृत्तिका से जपसङ्ख्या नहीं रखनी चाहिये।

बाह्यपूजार्थ विहित माला—इस हेतु गृहस्थ को रुद्राक्ष, शङ्ख, पद्मबीज, जीवपुत्रिका,

मुक्ता, स्फटिक, मणि रत्न, स्वर्ण, प्रवाल, रौप्य, कुशमूल—इनमें से एक से माला ग्रथित करनी चाहिये। एक प्रकार के दाने में अन्य जाति का दाना मिलाकर माला नहीं बनाना चाहिये। त्रिपुरा के जपार्थ रक्तचन्दन के बीज की माला बनानी चाहिये। भैरवीविद्या-हेतु सुवर्ण, मणि, स्फटिक, शङ्ख अथवा प्रवाल की माला श्रेयस्कर होती है। तारा-हेतु मनुष्य के नेत्र तथा कर्ण के बीच की अस्थि (महाशङ्ख माला) की माला विहित है। विष्णुमन्त्र-जपार्थ तुलसी-माला प्रयुक्त होती है। माला की मणि (मनके) एक नाप के हों, कोई बड़ा-छोटा न हो, कीटादि-भक्षित तथा जीर्ण भी नहीं होना चाहिये।

माला-ग्रथनार्थ सूत्र-नियम—कपास के सूत से माला को ग्रथित करके जप करना चाहिये। यह सूत विप्रकन्या द्वारा कपास कात कर बनाया गया होना चाहिये। रक्तवर्ण सूत्र माला-ग्रथनार्थ विहित है। यह सभी फल प्रदान करता है। पहले सूत्र को तिहरा बाँट करके उसे पुनः तिहरा बाँटकर उससे शिल्पशास्त्र के अनुसार माला गूँथनी चाहिये।

माला-ग्रथनार्थ नियम—माला के दानों का मुँह में मुँह मिलाकर गोपुच्छाकृति अथवा सर्पाकृति माला बनानी चाहिये। रुद्राक्ष-माला में मनके का मुख ऊपर तथा पुच्छ नीचे होना चाहिये। अन्यान्य मनकों के सम्बन्ध में जो भाग स्थूल हो, वह मुख और जो भाग पतला हो, वह पुच्छ होता है। जैसे मनकों की माला बनाई जाय, उसी जाति के एक मनके द्वारा सुमेरु बनाना चाहिये। मनकों के बीच की गाँठ साढ़े तीन अथवा ढाई फेरों की होनी चाहिये। प्रत्येक माला को ब्रह्मग्रन्थि देकर बनाना चाहिये। अथवा ग्रन्थिरचित मजबूत सूत से माला का ग्रन्थन करना चाहिये। ॐ अं, ॐ आं, इत्यादि एक-एक वर्ण का उच्चारण करते-करते माला ग्रथित करना उचित है। मेरु को भी ग्रन्थियुक्त होना चाहिये। ब्रह्मग्रन्थि अथवा नागपाशग्रन्थि द्वारा माला गूँथकर अन्त में माला का दोनों छोर मिलाते समय 'हुं' मन्त्र पढ़ना चाहिये तथा मेरुबन्धन-काल में 'ॐ' द्वारा मेरुबन्धन करना चाहिये।

माला-शोधन प्रणाली—ग्रथित माला का शोधन आवश्यक होता है। अशोधित माला से जप करने पर जप में निष्फलता तथा देवता का कोप होता है। शोधन-प्रणाली यह है—९ अश्वत्थपत्र (पीपल के पत्ते) पद्माकार बिछाकर उस पर मातृका मन्त्र तथा मूल मन्त्र पढ़ते हुये माला को स्थापित करना चाहिये। तदनन्तर—

ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः।
भवेऽभवेऽनादिभवे भव स्व मां भवोद्भवाय वै नमः॥

इस मन्त्र से माला को धोकर 'ॐ वामदेवाय नमः नमो ज्येष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः' मन्त्र को पढ़ते हुये चन्दन, अगुरु तथा कर्पूर द्वारा माला का घर्षण करना चाहिये। तदनन्तर 'ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वसर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः' मन्त्र से उसे धूपित करना चाहिये। अब 'ॐ

तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्' मन्त्र पढ़कर चन्दन द्वारा माला पर लेप करना चाहिये। तदनन्तर 'ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदाशिवोम्' मन्त्र से माला पर १०० जप करना चाहिये। गौतमीय तन्त्र का मत है कि एक बार ही इस मन्त्र का जप यथेष्ट होता है।

तदनन्तर माला में देवता का आवाहन करके यथाविधि प्राणप्रतिष्ठा करके मूल मन्त्र से अपनी आर्थिक शक्ति के अनुसार अर्चना करनी चाहिये। शक्तिमालार्थ वाराही तन्त्र में विशेष विधान है। यथा—

माले माले महामाले सर्वतत्त्वस्वरूपिणि।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव॥

इस मन्त्र को पढ़कर माला का अभिमन्त्रण करके 'ॐ ह्रीं अक्षतादिमालिकायै नमः' मन्त्र से रक्त पुष्प द्वारा माला की पूजा करनी चाहिये। विष्णु-विषयार्थ यामल में कहते हैं— 'ऐं श्रीं अक्षादिमालायै नमः' मन्त्र से पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार से मालार्चन करके अकारादि प्रत्येक वर्ण से मूल मन्त्र को पुटित करके माला के ऊपर अनुलोम-विलोमरूप जप करना चाहिये। योगिनीतन्त्र के अनुसार इस पूजन की समाप्ति के अनन्तर १०८ होम घृताहुति प्रदान करते हुये करनी चाहिये। जो होम करने में असमर्थ हो, उसे द्विगुण जप करके कार्य सम्पन्न करना चाहिये। जिस देवता के मन्त्र से जिस माला की प्रतिष्ठा की गयी है, उस पर अन्य माला से जप नहीं करना चाहिये।

माला-जपार्थ नियम—जपकाल में जपकर्त्ता द्वारा अपने अङ्गों को अथवा माला को नही हिलाना चाहिये। यह सतर्कता रखनी चाहिये कि जपकाल में माला के रगड़ आदि से कोई शब्द न हो, माला अङ्गुलियों से न गिरे। ऐसा हो जाने पर जपकर्त्ता का नाश होता है। जपकाल में माला का सूत्र टूटने से जपकर्त्ता की शीघ्र मृत्यु होती है। जपान्त में किसी ऊँचे स्थान पर माला रखनी चाहिये।

ॐ त्वं माले सर्वदेवानां सर्वसिद्धिप्रदा मता।
तेन सत्येन मां सिद्धिं देहि मातर्नमोऽस्तु ते॥

इस माला मन्त्र से माला का पूजन करके उसे छिपाकर रखना उचित होता है। यदि जपकाल में माला हाथों से गिर जाती है, तब माला को ग्रहण करके १०८ बार मूल मन्त्र का जप करना ही इसका प्रायश्चित्त होता है। माला का सूत्र टूट जाने पर उसे ग्रथित करके उस पर १०८ बार मूल मन्त्र का जप करना चाहिये।

आगमकल्पद्रुम में प्रकारान्तर से माला-संस्कार उक्त है। यथा—भूतशुद्धि आदि सम्पन्न करके माला में गणेश, सूर्य, विष्णु, महादेव तथा दुर्गा का आवाहन करके पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर पञ्चगव्य में माला को छोड़कर 'हेसौः' मन्त्र से पञ्चगव्य में से

माला को निकाल कर स्वर्ण पात्र में उसे रखना चाहिये। तदनन्तर दुग्ध-दधि-घृत, मधु, शर्करा में माला को संस्थापित करके (क्रमशः स्थापित करके) क्रमशः उसे इन सब द्रव्यों से तथा पञ्चामृत एवं शीतल जल से स्नान कराकर चन्दन, कस्तूरी, कुङ्कुमादि सुगन्धित द्रव्य से 'हेसौः' मन्त्र द्वारा माला का लेपन करके १०८ बार जप करना चाहिये। तदनन्तर माला में नवग्रह, दिक्पाल तथा गुरु की अर्चना करके उस माला को ग्रहण करना चाहिये।

●

मुद्राप्रकरण

मोदनात् सर्वदेवानां द्रावणात् पापसन्ततेः।
तस्मान्मुद्रेति विख्याता मुनिभिस्तन्त्रवेदिभिः॥

मुद्रा समस्त देवताओं का हर्ष बढ़ाती है, पापों का निवारण करती है; इसीलिये तन्त्रज्ञ मुनिगण इसे 'मुद्रा' कहते हैं। पूजा, जप, ध्यान, काम्य कर्म, स्नान, आवाहन, शङ्खस्थापन (अर्घ्य-स्थापन), प्राणप्रतिष्ठा, रक्षण, नैवेद्य तथा अन्यान्य कल्पोक्त कार्य में स्व-स्व लक्षण से लक्षित मुद्रा का प्रदर्शन आवश्यक होता है।

लिङ्ग, योनि, त्रिशूल, माला, वर, अभय, मृग, खट्वाङ्ग, कपाल तथा डमरू—ये दस मुद्रायें शिव को सन्तोष देती हैं। आवाहनी-प्रभृति ९ मुद्रायें सर्वसाधारण में प्रसिद्ध हैं। षडङ्ग मुद्रा भी सर्वकार्य में विधेय है। पाश, अङ्कुश, वर, अभय, खड्ग, चर्म, धनुः, शर तथा मूसल—ये ९ मुद्रायें दुर्गापूजार्थ विहित हैं। ये सभी शक्तिदेवता को अतिप्रिय हैं। मत्स्य, कूर्म, लेलिहा, मुण्ड तथा महायोनिमुद्रा सर्वसमृद्धि-प्रदायिका हैं। तारा-अर्चनार्थ योनि, भूतिनी, बीज, दैत्यधूमिनी, लेलिहाना प्रशस्त है। त्रिपुरा-पूजनार्थ क्षोभिणी, द्राविणी, आकर्षणी, वश्या, उन्मादिनी, महाङ्कुशा, खेचरी, बीज, योनि तथा त्रिखण्ड मुद्रा विहित हैं। अभिषेक कार्य में कुम्भ मुद्रा, आसनार्थ पद्ममुद्रा, विघ्न-अपसारणार्थ तथा जलशोधनार्थ गालिनीमुद्रा प्रशस्त है। कमला-पूजनार्थ लक्ष्मीमुद्रा विहित है। यथासाध्य मुद्राओं का चित्र प्रस्तुत किया जा रहा है—

गोयोनि	ग्रास	चक्र

तत्त्व

त्रिखण्डा

त्रिशूल

धेनु

नाराच

पद्म

पस्मीकरण

प्रार्थना

वर

भूतिनी

मत्स्य

महायोनि

मुण्ड
मृग
लेलिहान
शंख
संरोधनी अथवा सन्निरोधनी
संहार
सन्निधापनी
सम्मुखीकरण
स्थापनी
अंकुश
अवगुण्ठन
अभय

मन्त्रों में सिद्धादि-विचार

शास्त्र का वचन है कि बीज स्मरण तथा मननादि से संसार से त्राण दिलाता है; अत: वह 'मन्त्र' है। साधकों के लिये उनके हितार्थ नक्षत्रचक्र तथा राशिचक्रादि का प्रावधान प्रस्तुत किया गया है, जिससे वे अपने अनुकूल मन्त्र की उपासना कर सकें। वाराहीतन्त्र का वचन है कि धनिमन्त्र तथा अकुलमन्त्र ग्रहण नहीं करना चाहिये। अत: ऋणि, धनि, चक्र तथा कुलाकुल चक्र का विचार करना चाहिये। [लेकिन स्वप्नलब्ध मन्त्र, स्त्री-गुरु से प्राप्त मन्त्र, २० अक्षर से अधिक वाले मन्त्र (मालामन्त्र), त्र्यक्षर मन्त्र तथा सभी वैदिक मन्त्र के लिये सिद्धादि विचार नहीं करने चाहिये; जैसा कि वाराही तन्त्र में लिखा है—

स्वप्नलब्धे स्त्रिया दत्ते मालामन्त्रे च त्र्यक्षरे।
वैदिकेषु च सर्वेषु सिद्धादीन्नैव शोधयेत्॥]

मुण्डमाला तन्त्र का मत है कि काली, तारा, षोडशी, भुवनेशी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगला, मातङ्गी तथा कमलासिद्धविद्या हैं। इनके मन्त्रग्रहण में सिद्धादि विचार नहीं किया जाता; यहाँ तक कि इनके सम्बन्ध में नक्षत्रादि-विचार, कालादि-शोधन, अरि-मित्रादि विचार भी उचित नहीं है। ये सभी सिद्ध विद्या हैं।

मालिनीविजय के अनुसार काली, नीला, महादुर्गा, त्वरिता, छिन्नमस्ता, वाग्वादिनी, अन्नपूर्णा, प्रत्यङ्गिरा, कामाख्यावासिनी, बाला, मातङ्गी, शैलवासिनी-प्रभृति कलि में पूर्ण फलप्रदा हैं। इनका मन्त्र भी सिद्ध मन्त्र है। ये सभी कलिदोष से दूषित नहीं हैं। लेकिन

साम्प्रदायिकगण का मत है कि सर्वत्र ही विचार करना आवश्यक है। सभी मन्त्रग्रहणार्थ सिद्धादि विचार प्रयोज्य है।

यहाँ पञ्चकोष्ठयुक्त एक चक्र अङ्कित किया जा रहा है। इस चक्र के प्रत्येक कोष्ठ के ऊपरी ओर वायु, अग्नि, पृथ्वी, जल तथा आकाश का नाम अङ्कित करके उसके नीचे एक-एक कोष्ठ में जो वर्ण लिखा गया है, वह सभी एकभूत अथवा एकदैवत है। मन्त्र लेने वाले के नाम का पहला अक्षर तथा ग्रहणीय मन्त्र का प्रथमाक्षर एकभूत अथवा एक दैवत होने पर वह स्वकुल मन्त्र होता है, अन्यथा अकुल तथा त्याज्य होता है। मन्त्र का प्रथमाक्षर तथा व्यक्ति के नाम का प्रथमाक्षर एक न होने पर भी मन्त्र ले सकते हैं, तथापि शत्रुता रखने के कारण उनका न लेना ही उचित होता है। वारुणवर्ण अथवा जलवर्ण भौमवर्ण का तथा मारुतवर्ण आग्नेयवर्ण का मित्र होता है। मारुतवर्ण पार्थिव वर्ण का तथा आग्नेय वर्ण वारुण वर्ण किंवा पार्थिववर्ण का शत्रु होता है। आकाश वर्ण सभी वर्णों का मित्र होता है। शत्रुमन्त्र का ग्रहण न करना ही उचित माना जाता है। रुद्रयामल का मत है कि पार्थिव वर्ण का मित्र है—वरुणवर्ण तथा शत्रु है—आग्नेयवर्ण। आकाशवर्ण तथा वारुण वर्ण का शत्रु है—मारुतवर्ण। यह राघवभट्ट के वचन से विवृत होता है।

कुलाकुलचक्र

वायु	अग्नि	पृथिवी	जल	आकाश
अ आ	इ ई	उ ऊ	ऋ ॠ	ऌ ॡ
ए	ऐ	ओ	औ	अं
क	ख	ग	घ	ङ
च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण
त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म
य	र	ल	व	श
ष	क्ष	ळ	स	ह

जैसे कि चन्द्रशेखर नामक व्यक्ति काली-मन्त्र ग्रहण करे अथवा नहीं? इस प्रश्न का उत्तर है कि हाँ, कर सकता है। यहाँ मन्त्र लेने वाले के नाम का प्रथमाक्षर है—'च' और मन्त्र का आद्य अक्षर है—क (काली)। अत: दोनों ही वर्ण एकभूत अर्थात् वायु महाभूत के अन्तर्गत हैं। चन्द्रशेखर दुर्गामन्त्र भी ले सकता है; क्योंकि यहाँ नाम का प्रथमाक्षर 'च' तथा मन्त्राक्षर (दुर्गा का) 'दुं' एक गृह में स्थित न होकर भी वायुवर्ण 'च' में तथा पार्थिव-वर्ण 'दु' में मित्रता है। अत: चन्द्रशेखर को दुर्गामन्त्र के ग्रहण में कोई दोष नहीं होगा।

राशिचक्र

मेष — अ आ इ ई
वृष — उ ऊ ऋ
मिथुन — ॠ ऌ ॡ
कर्क — ए ऐ
सिंह — ओ औ
कन्या — अं अः श ष स ह ळ क्ष
तुला — क ख ग घ ङ
वृश्चिक — च छ ज झ ञ
धनु — ट ठ ड ढ ण
मकर — त थ द ध न
कुम्भ — प फ ब भ म
मीन — य र ल व
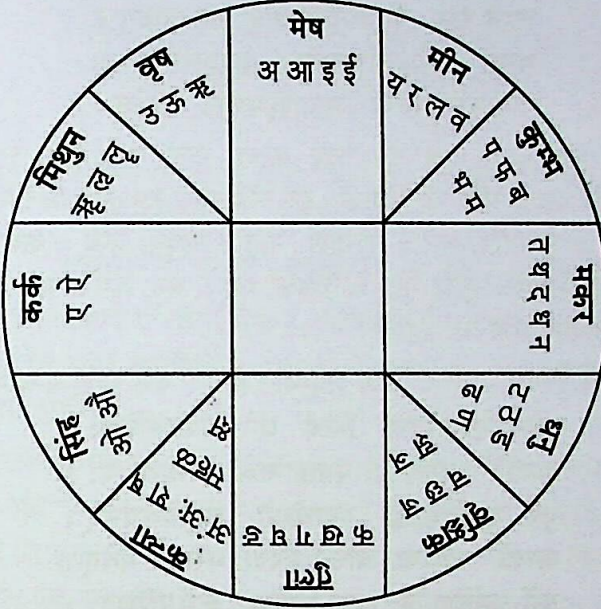
राशिचक्रानुसार गणना करके अपने अनुकूल मन्त्र को ग्रहण करना चाहिये। यह नारद का वचन है। यथा—**स्वताराशिकोष्ठानामनुकूलान् भजेन् मनूम्।**

अपनी जन्मराशि से मन्त्रराशि का मेल देखना चाहिये अर्थात् जिस राशि में मन्त्र का आदि वर्ण हो, उस राशि-पर्यन्त गणना करनी चाहिये। यदि जन्मकालीन राशि न ज्ञात हो तब नाम के प्रथमाक्षर को राशि मानकर जो मन्त्र जन्म से षष्ठ, अष्टम अथवा द्वादश पड़े, उस मन्त्र को नहीं लेना चाहिये। रिपुमन्त्र लेने से हानि होती है। 'रामार्चनचन्द्रिका' में कहा है—

एकपञ्चनव बान्धवाः स्मृताः द्वौ च षष्ठदशमाश्च सेवकाः।
वह्निरुद्रमुनयस्तु पोषका द्वादशाष्टचतुरस्तु घातकाः॥

'चतुरस्रघातका' इति विष्णुविषयम्। शक्त्यादौ षष्ठं वर्जनीयम्। 'षष्ठाष्टमद्वादशानि वर्जनीयानि यत्नतः' इति वचनात्।

प्रथम, पञ्च तथा नवम राशिगत मन्त्र हितकारी होता है। द्वितीय, षष्ठ तथा दशम राशिस्थ मन्त्र सेवक होता है अर्थात् सेवक के समान कार्य सिद्ध करने वाला होता है। तृतीय, एकादश तथा सप्तम राशिगत मन्त्र पुष्टिदायक एवं द्वादश, अष्टम, चतुर्थ राशिगत मन्त्र घातक होता है। चतुर्थ राशिगत मन्त्र केवल विष्णुमन्त्र-विषय में घातक होता है। शक्तिमन्त्र-ग्रहण में षष्ठराशिगत मन्त्र वर्जनीय है। तन्त्रान्तर में कहा भी गया है—**'वैष्णवे**

तु बन्धुस्थाने शत्रुं शत्रुस्थाने बन्धुरिति पाठः'।

लग्नं धनं मातृबन्धुपुत्रशत्रु कलत्रकम्।
मरणं धर्मकर्मायव्यया द्वादशराशयः॥
नामानुरूपमेतेषां शुभाशुभफलं भवेत्।

लग्न, धन, मातृ, बन्धु, पुत्र, शत्रु, कलत्र, मृत्यु, धर्म, कर्म, आय, व्यय—ये क्रमशः मेषादि द्वादश राशि की संज्ञा हैं। इस संज्ञानुसार शुभाशुभ फल निर्णीत होता है, अर्थात् लग्न = मेषराशि, धन = वृषराशि, मातृ = मिथुन, बन्धु = कर्क, पुत्र = सिंह, शत्रु = कन्या, कलत्र = तुला, मृत्यु = वृश्चिक, धर्म = धनु, कर्म = मकर, आय = कुम्भ और व्यय = मीन राशि की संज्ञा है।

विष्णु के विषय में चतुर्थ राशि शत्रुस्थान है तथा षष्ठ राशि बन्धुस्थान है।

लग्नं सिद्धिस्तथा नित्यं धने धनसमृद्धिदः।
भ्रातरि भ्रातृवृद्धिः स्याद्बान्धवे बान्धवप्रियः॥
पुत्रे पुत्रविवृद्धिः स्याच्छत्रौ शत्रुविवर्धनम्।
कलत्रे मध्यमा प्रोक्ता मरणे मरणं भवेत्॥
धर्मे धर्मविवृद्धिः स्यात् सिद्धिदः कर्मसंस्थितः।
आये च धनसम्पत्तिर्व्यये च सञ्चितव्ययः॥

लग्नराशिगत मन्त्रग्रहण से मन्त्रसिद्धि, धनस्थानगत मन्त्रग्रहण से धनवृद्धि, भ्रातृस्थानस्थ मन्त्रग्रहण से बान्धवप्रियता, पुत्रस्थानस्थ मन्त्रग्रहण से पुत्रवृद्धि, शत्रुस्थानस्थ मन्त्रग्रहण से शत्रुवृद्धि, कलत्रस्थानस्थ मन्त्रग्रहण से मध्यम फल, मृत्युस्थानस्थ मन्त्रग्रहण से मृत्यु, धर्मस्थानगत मन्त्रग्रहण से धर्मवृद्धि, कर्मस्थानस्थ मन्त्रग्रहण से कार्यसिद्धि, आयस्थानस्थ मन्त्रग्रहण से धनलाभ तथा व्ययस्थानस्थ मन्त्रग्रहण से सञ्चित धन भी नष्ट हो जाता है।

अथ नक्षत्रचक्रम्

अश्विनी अ आ देवः	भरणी इ मानुषः	कृत्तिका ई उ ऊ राक्षसः	रोहिणी ऋ ॠ ऌ ॡ मानुषः	मृगशिरा ए देवः	आर्द्रा ऐ मानुषः	पुनर्वसु ओ औ देवः	पुष्य क देवः	अश्लेषा ख राक्षसः
मघा ग घ ङ राक्षसः	पू॰फा॰ च मानुषः	उ॰फा॰ छ ज मानुषः	हस्त झ ञ देवः	चित्रा ट ठ राक्षसः	स्वाती ड देवः	विशाखा ढ ण राक्षसः	अनुराधा त थ द देवः	ज्येष्ठा ध राक्षसः
मूल न प फ राक्षसः	पूर्वाषाढ़ा ब मानुषः	उत्तराषाढ़ा भ मानुषः	श्रवण म देवः	धनिष्ठा य र राक्षसः	शतभिषा ल राक्षसः	पूर्वभाद्र व श मानुषः	उत्तरभाद्र ष स ह मानुषः	रेवती ळ क्ष अं अः देवः

स्वजातौ परमा प्रीतिर्मध्यमा भिन्नजातिषु ।
रक्षोमानुषयोर्नाशो वैरं दानवदेवयोः ॥
जन्मसम्पत् विपत् क्षेमप्रत्यरिः साधको वधः ।
मित्रं परममित्रञ्च जन्मादीनि पुनः पुनः ॥

जन्मतः तृतीय-पञ्चम-सप्तमानि नक्षत्राणि वर्जनीयानि; तथा च—

रसाष्टनवभद्राणि युग्मयुग्मगतानि च ।
इतराणि न भद्राणि तत्त्याज्यानि मनीषिणा ॥ इत्यादि ।

तत्र स्वनक्षत्रादेव गणनीयम् । स्वनक्षत्राज्ञाने स्वनामाद्यक्षरसम्बद्ध-नक्षत्रादेव नक्षत्रं गणनीयम् । तथा च—प्रादक्षिण्येन गणयेत् साधाकान्य-क्षयात् सुधीः ।

स्वजाति में परमा प्रीति, भिन्न जाति में मध्यमा प्रीति, राक्षस तथा मनुष्य में विनाश एवं राक्षस तथा देवगण में शत्रुता होती है। मन्त्र लेने वाले का जन्मनक्षत्र तथा मन्त्र का आद्य अक्षर जिस गृह में पड़े, उस गृहस्थित नक्षत्र, इन दो नक्षत्र को लेकर गणना करनी चाहिये। मन्त्र एवं मन्त्रग्रहीता जब एकगण हो तब मन्त्रग्रहण शुभ हो जाता है। मनुष्यगण वाला देवगण मन्त्र ले सकता है। मनुष्यगण से राक्षसगण में तथा राक्षसगण से देवगण में शत्रुता होती है। अत: ऐसा मन्त्र त्याज्य होता है।

जन्म, सम्पत्, विपद्, क्षेम, प्रत्यरि, साधक, वर्ण, मित्र, परममित्र—ये ९ नाम निर्दिष्ट हैं। मन्त्रग्रहीता के जन्मनक्षत्र से मन्त्रनक्षत्र जन्म, तृतीय, पञ्चम किंवा सप्तम होने पर वर्जनीय है। षष्ठ, अष्टम, नवम किंवा चतुर्थ शुभ है। इसके अतिरिक्त अशुभ फलदायक हैं।

गणनाकाल में अपने नक्षत्र से गणना करनी चाहिये। यदि स्वीय जन्मनक्षत्र न ज्ञात हो तब नाम के प्रथमाक्षर से नक्षत्रनिर्णय करना चाहिये। पूर्वपृष्ठ-स्थित चक्र को देखने से (नक्षत्रचक्र देखने से) यह बोधगम्य हो जाता है।

उदाहरण—रामचन्द्र नामक व्यक्ति का जन्मनक्षत्र स्वाती है। वह शङ्कर मन्त्र ले सकेगा? चक्र से ज्ञात होता है कि स्वाती नक्षत्र के देवता तथा मन्त्र का आदि नक्षत्र है—मनुष्यगण। देव तथा मनुष्य भिन्न जाति हैं; अत: उनमें मध्यम प्रीति होगी। अत: रामचन्द्र शङ्कर मन्त्र ले सकेगा। लेकिन जिस कोष्ठ में स्वाती नक्षत्र अङ्कित है, उस कोष्ठ की गणना से विदित होता है कि जिस कोष्ठ में 'श' है, वह परममित्र का कोष्ठ है। अत: स्वाती नक्षत्रोत्पन्न व्यक्ति शङ्कर मन्त्र ले सकता है।

अब अकथह चक्र कहते हैं—

दक्षिणावर्त्तयोगेन कोष्ठे वर्णान् लिखेत् सुधीः ।
येनैव लिखनं कुर्यात्तेनैव गणनं स्मृतम् ।।

धीमान् साधक दक्षिणावर्त्त क्रमेण अकथह चक्र के कोष्ठ के वर्णों को लिखे । जिस नियम से वर्ण लिखा जाय, उसी नियम से गणना करनी चाहिये ।

नामाद्यक्षरमारभ्य यावन्मन्त्रादिमाक्षरम् ।
सिद्धः साध्यः सुसिद्धोऽरिः क्रमाज्ज्ञेयो विचक्षणैः ।।

मन्त्र-ग्रहीता के नाम के प्रथमाक्षर से आरम्भ करके मन्त्र का आदि अक्षर-पर्यन्त सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध तथा अरि—इस रूप से गणना करनी चाहिये । एक कोष्ठ में साधक का नाम तथा आदिवर्ण होने पर उसकी भी इसी प्रकार से गणना करनी चाहिये । सिद्धमन्त्र ग्रहण करने से मन्त्र तो स्वयं सिद्ध हो जाता है । साध्यमन्त्र ग्रहण करने से वह जप-होमादि से सिद्ध हो जाता है । सुसिद्ध मन्त्र ग्रहण करने से तत्क्षण मन्त्रसिद्ध हो जाता है तथा अरिमन्त्र ग्रहण करने पर साधक समूल नष्ट हो जाता है ।

अकथहचक्र

अ क थ ह	उ ङ प	आ ख द	ऊ च फ
ओ ड ब	ऌ झ म	औ ढ श	ॡ ञ य
ई ध न	ऋ ज भ	इ ग ध	ॠ छ व
अः त स	ऐ ठ ल	अं ण य	ए ट र

अकथह चक्र के विषय में अनायास ज्ञानार्थ यह चक्र बनाया गया । इस चक्र में इष्ट शुद्धादि गणना द्वारा शुद्ध मन्त्र ग्रहण करना चाहिये । कभी भी अरिमन्त्रादि को ग्रहण नहीं करना चाहिये । यदि प्रमादवशात् अरिमन्त्र का ग्रहण हो गया हो, तो उसका परित्याग कर देना चाहिये । वैरीमन्त्र के परित्याग का प्रमाण तन्त्र में मिलता है—

गवां क्षीरं द्रोणमिते जपेन्मन्त्रशताष्टकम् ।
पीत्वा क्षीरं जपेत्तद्वत् समुच्चार्य त्यजेत्तथा ।
अनेनैव विधानेन वैरिमन्त्राद्विमुच्यते ।।
अरिमन्त्रं विदित्वा तु न पुनः प्रजपेच्च तत् ।
सन्त्यज्य ते देवतायास्तस्या अन्यं त्यजेन्मनूम् ।।

कैसे अरिमन्त्र का त्याग करना होगा, इसकी तन्त्रोक्त प्रणाली कहते हैं । एक द्रोण-परिमित [दो पल = एक प्रसृति अर्थात् आठ तोला । ४ प्रसृति से एक कुडव अर्थात् ३२ तोला । ४ कुडव (१२८ तोला) = एक प्रस्थ । चार प्रस्थ (५१२ तोला) = १ आढ़क । ४ आढक (२०४८ तोला) = एक द्रोण] गाय के दूध पर १०८ बार वैरीमन्त्र (जिसे

गलती से ग्रहण किया गया है) का जप करके उस दुग्ध का पान करना चाहिये। पुनः १०८ बार इसी मन्त्र का जप करके मन्त्र का उच्चारण करते-करते उसका त्याग करना चाहिये। अब उन्हीं देवता के अन्य मन्त्र को ग्रहण करना चाहिये।

अकडमचक्र
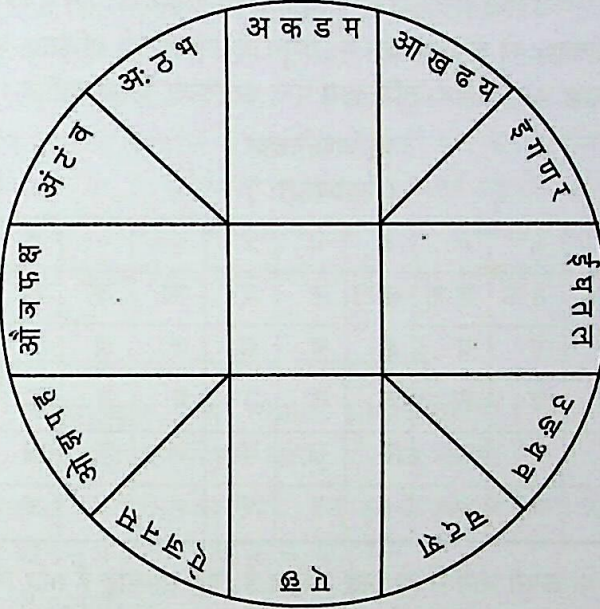
जप्तुः स्वनामतो मन्त्री यावन्मन्त्रादिमाक्षरम्।
सिद्धसाध्यसुसिद्धादीन् पुनः सिद्धादयः पुनः॥
नवैकपञ्चमे सिद्धः साध्यः षड्दशयुग्मके।
सुसिद्धस्त्रिसप्तके रुद्रे वेदाष्टद्वादशे रिपुः।
एतत्तु कथितं देवि अकडमादिकमुत्तमम्॥

इदन्तु गोपालविषयकमेव 'गोपालेऽकडमः स्मृतः' इति वचनात्। शिवविषयेऽपि 'वैष्णवं राशिसंशुद्धं शैवञ्चाकडमं स्मृतम्' इति जामलीयात्। तथा च वाराहीतन्त्रे—

ताराशुद्धिर्वैष्णवानां कोष्ठशुद्धिः शिवस्य च।
राशिशुद्धिस्त्रैपुरे च गोपालेऽकडमः स्मृतः॥

साधक के नाम के प्रथमाक्षर से मन्त्र के प्रथमाक्षर-पर्यन्त दक्षिणावर्त से सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध, अरि—इस प्रकार से गणना करनी चाहिये; किन्तु यदि मेष से मीन-पर्यन्त अर्थात् वामावर्त्त से वर्णों को लिखा गया हो तब गणना को भी वामावर्त्त क्रम से करना चाहिये।

नवम, पञ्चम, प्रथम सिद्धगृह कहे गये हैं। षष्ठ, दशम तथा द्वितीय साध्यगृह हैं। तृतीय सप्तम तथा एकादश सुसिद्ध गृह हैं एवं चतुर्थ, अष्टम एवं द्वादश रिपुगृह होते हैं। इस चक्रगणना से सिद्ध, साध्य तथा सुसिद्ध होने पर मन्त्रग्रहण का शुभ फल एवं अरिमन्त्र ग्रहण से अशुभ फल होता है। अतः अरिमन्त्र ग्रहण नहीं करना चाहिये। इस अकडम चक्र का विचार गोपालमन्त्र तथा शिवमन्त्र के लिये है। वाराहीतन्त्र का मत है कि वैष्णव को ताराशुद्धि से, शैवगण को अकडम चक्र से, त्रिपुरा के उपासक को राशिचक्र-शुद्धि से एवं गोपाल के उपासक को अकडम-शुद्धि द्वारा मन्त्र का विचार करना चाहिये।

ऋणिधनिचक्र

(साध्याङ्काः)

६	६	६	०	३	४	४	०	०	०	३
अ आ	इ ई	उ ऊ	ऋ ॠ	ऌ ॡ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट
ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ
ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह
२	२	५	०	०	२	१	०	४	४	१

इस चक्र के ऊपरी भाग में जो अङ्क अङ्कित है, वह साध्याङ्क है और निम्न भाग में जो अङ्क अङ्कित है, वह साधकाङ्क है। जब मन्त्र का अक्षर ग्रहण करके गणना की जाय तब साध्याङ्क को और जब साधक के नाम के अक्षर से गणना की जाय तब साधकाङ्क को ग्रहण करना चाहिये।

अब इस चक्र द्वारा कैसे शुद्धाशुद्धि का विचार किया जाय, उसे कहते हैं। मन्त्र के स्वर तथा व्यञ्जन वर्ण को पृथक्-पृथक् रखना चाहिये। इस प्रकार करने से जो-जो वर्ण चक्र के जिस-जिस कोष्ठ में है, उस-उस कोष्ठक के ऊपरी भाग में जो अङ्क लक्षित होता है, प्रत्येक वर्ण के उस अङ्क को लेकर एकत्र योग करके जो अङ्क होता है, उसमें से ८ घटाकर शेष अङ्क को एक स्थान पर रखना चाहिये।

इस प्रकार से मन्त्रग्रहीता के नाम के समस्त स्वर तथा व्यञ्जन वर्ण पृथक्-पृथक् करके उक्त रूप से अङ्कों को लेकर योग करके तथा ८ का भाग देकर शेष को ग्रहण करना चाहिये। इसमें विशेष यह है कि चक्र के निम्नवर्त्ती अङ्क को ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार से मन्त्र का भाग्यलब्ध अङ्क तथा नाम का भागलब्ध अङ्क—इन दोनों से अङ्क का विचार करना चाहिये। जो अधिक होगा, वह ऋणी तथा जो अङ्क न्यून होगा, वह धनी होगा। यदि मन्त्र ऋणी हो (मन्त्राङ्क अधिक हो), तब उसे ग्रहण करना चाहिये और यदि

मन्त्र धनी (मन्त्राङ्क न्यून हो) तब उसे ग्रहण नहीं करना चाहिये। यदि मन्त्राङ्क तथा नामाङ्क का भागफल कुछ भी न बचे अर्थात् उभयाङ्क शून्य हो, तब उस मन्त्र को ग्रहण करने से साधक की मृत्यु हो जाती है। अत: उसका त्याग करना चाहिये।

दृष्टान्त—रामनाथ नामक व्यक्ति 'हर' मन्त्र ग्रहण करे अथवा न करे? यहाँ रामनाथ नाम के प्रत्येक स्वर तथा व्यञ्जन वर्ण का चक्रानुसार अङ्क ग्रहण करना होगा। रामनाथ नाम में र, आ, म, अ, न, आ, थ, अ—ये आठ वर्ण स्थित हैं। इनका अङ्क है—र + ० = आ + २ = म + ५ = अ + २ = न + ४ = आ + २ = थ + २ = अ + २ = १९। इसे ८ द्वारा भाग करने पर भागफल ३ बचता है। अब हर मन्त्र के प्रत्येक स्वर तथा वर्ण को पृथक् करने पर ह, अ, र, अ—ये ४ वर्ण होते हैं। इनका अङ्क है—ह + ३ = अ + ६ = र + ३ = अ + ६ = १८। इसमें ८ का भाग देने पर २ बचता है। अत: साधकाङ्क से साध्याङ्क (मात्राङ्क) अधिक है। यह ऋणी हो रहा है। अत: रामनाथ 'हर' मन्त्र को ग्रहण कर सकता है।

अथ साधकनामग्रहणप्रकरणमाह सनत्कुमारीये—

पितृमातृकृतं नाम त्यक्त्वा शर्मादिदेवकान्।
श्रीवर्णञ्च ततो हित्वा चक्रेषु योजयेत् क्रमात्॥

पिता-माता जो नाम निश्चित कर गये हैं, उस नाम के पूर्व लगने वाले श्री को छोड़कर अन्यान्य वर्णों को इस गणनार्थ ग्रहण करना चाहिये।

तथा च पिङ्गलायां—

प्रसिद्धं यद्भवेन्नाम किंवास्य जन्मनाम च।
यतीनां पुष्पपातेन गुरुणा यत्कृतं भवेत्॥

जिसका जो नाम प्रसिद्ध है, अथवा जन्मकालीन जो नाम रक्षित है तथा यतिगण के लिये गुरु पुष्पपात द्वारा जो नया नाम रखते हैं, उसे ही ग्रहण करना चाहिये।

रुद्रयामले—

सुप्तो जागर्त्ति येनासौ दूरस्थः प्रतिभाषते।
वदत्यन्यमनस्कोऽपि तन्नाम ग्राह्यमेव च॥

जिस नाम से सम्बोधन करने पर निद्रित व्यक्ति जाग जाता है, दूर से ही जिस नाम को सुनकर प्रत्युत्तर देता है, जिस नाम को लेने पर अन्यमनस्क अवस्था में भी प्रत्युत्तर देता है, उसी नाम को लेकर दीक्षाकार्य का अनुष्ठान करना चाहिये।

देवताभेदे चक्रविचारस्यावश्यकत्वमाह यामलादौ—

ताराशुद्धिर्वैष्णवानां कोष्ठशुद्धिः शिवस्य च।
राशिशुद्धिस्त्रैपुरे च गोपालेऽकडमः स्मृतः॥

अकडमो रामचन्द्रे गणेशे हरचक्रकम् ।
कोष्ठचक्रं वराहस्य महालक्ष्म्या कुलाकुलम् ॥
नामादिचक्रं सर्वेषां भूतचक्रं तथैव च ।
त्रैपुरं तारके चक्रे शुद्धं मन्त्रं जपेद् बुधः ॥

देवताभेद से चक्र-विचार कहते हैं। विष्णुमन्त्र-ग्रहणार्थ नक्षत्रचक्र, शिवमन्त्र-ग्रहणार्थ कोष्ठचक्र, त्रिपुरामन्त्र-ग्रहणार्थ राशिचक्र, गोपालमन्त्र-ग्रहणार्थ तथा राममन्त्र-ग्रहणार्थ अकडम चक्र, गणेशमन्त्र-ग्रहणार्थ हरचक्र, वराहमन्त्र-ग्रहणार्थ कोष्ठचक्र तथा महालक्ष्मी मन्त्र-ग्रहणार्थ कुलाकुल चक्र का विचार करके मन्त्रदीक्षा लेनी चाहिये। नामचक्र अर्थात् जिस चक्र से नाम के प्रथम अक्षर को लेकर गणना की जाती है तथा भूतचक्र का सभी मन्त्र-ग्रहणार्थ विचार करना चाहिये। त्रिपुरामन्त्र-हेतु ताराचक्र का विचार करना चाहिये; परन्तु सभी देवताओं के मन्त्र-ग्रहणार्थ ऋणि-धनिचक्र विचार प्रयोज्य होता है।

●

श्मशानकालीयन्त्रम्
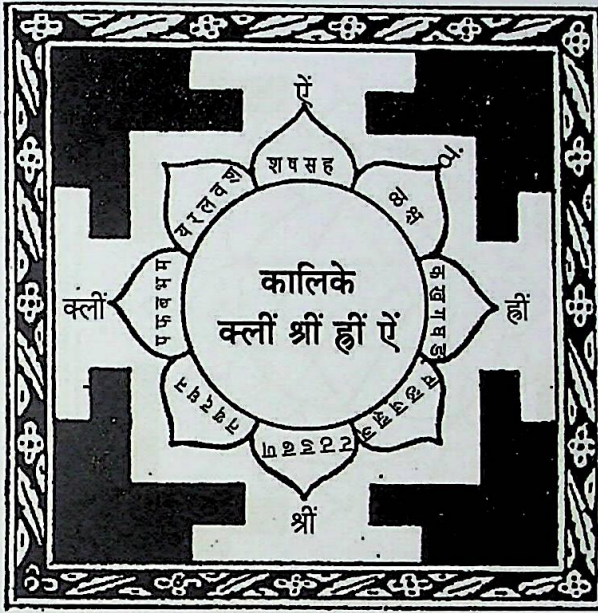
गुह्यकाली-श्मशानकाली-भद्रकाली-महाकालीनां यन्त्रम्

तारिणीयन्त्रम्

नीलसरस्वतीयन्त्रम्
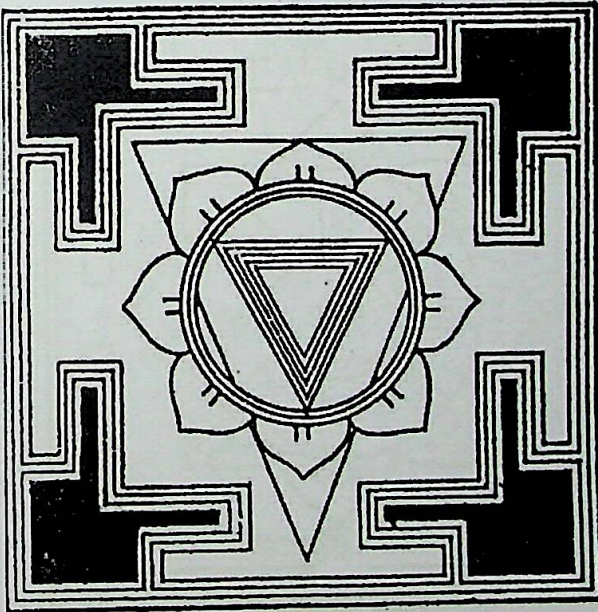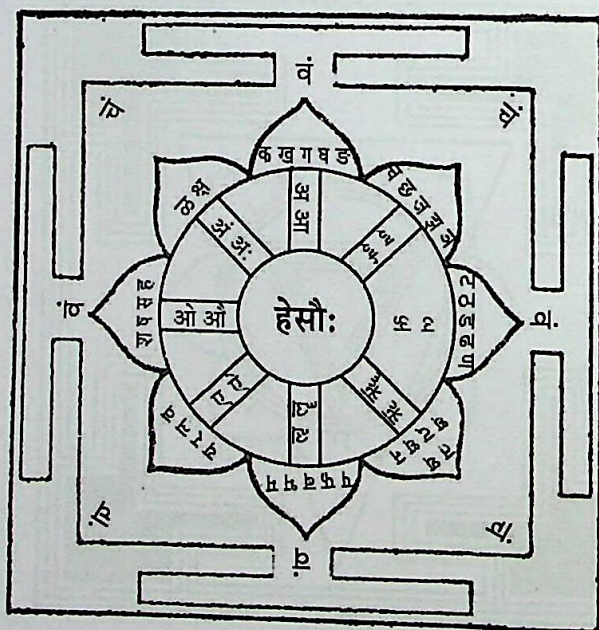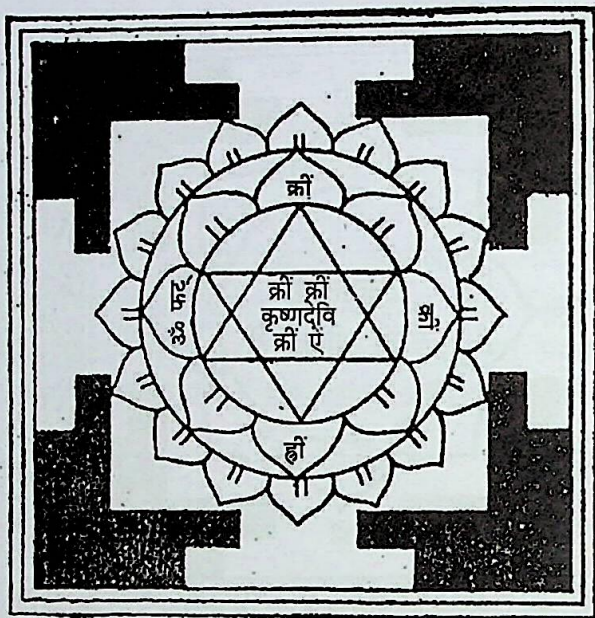
वटुकयन्त्रम्
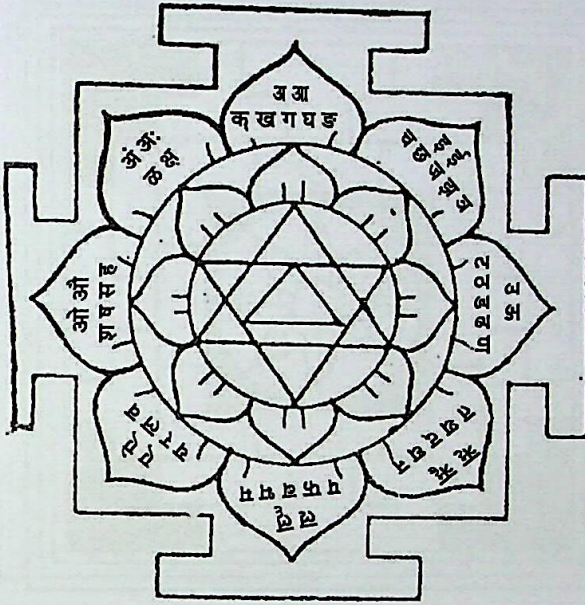
चण्डोग्रशूलपाणियन्त्रम्
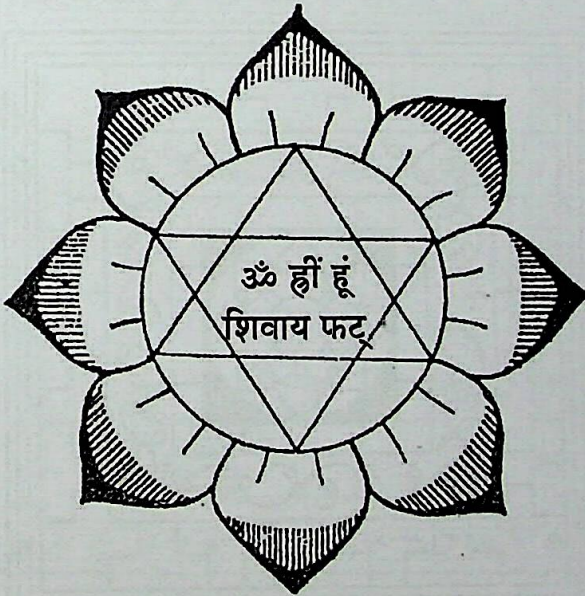
सल्लसर्वतोभद्रयन्त्रम्
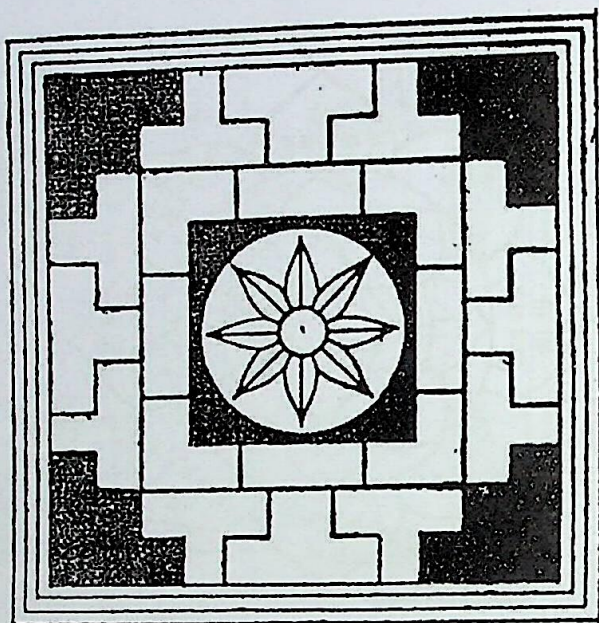
सर्वतोभद्रमण्डलम्
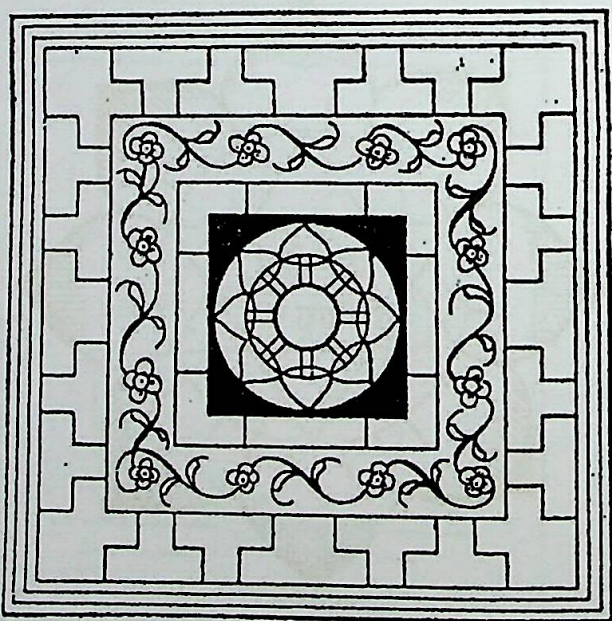
भुवनेश्वरीयन्त्रम्

सामान्यपूजायन्त्रम्

तारायन्त्रम्
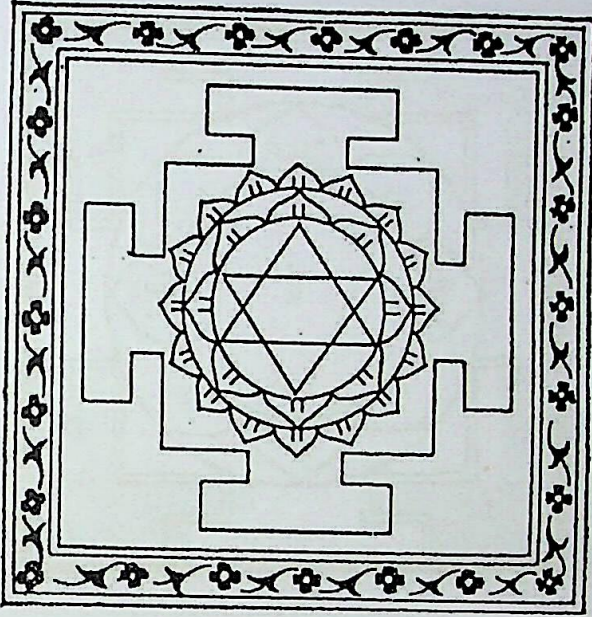
अन्नपूर्णाभैरवीयन्त्रम्
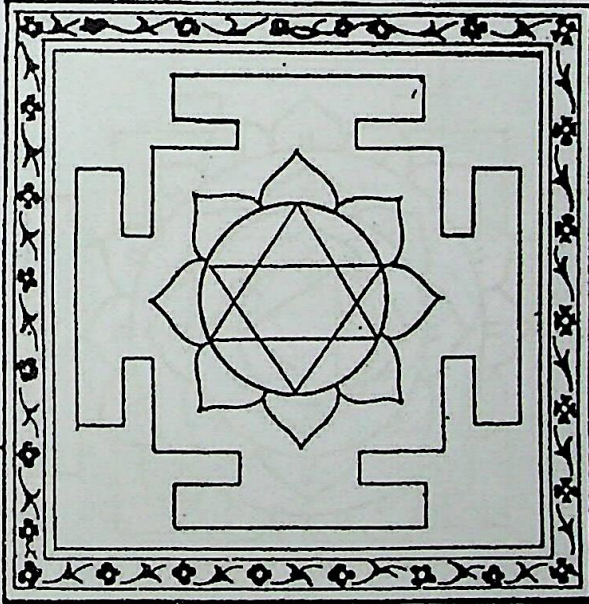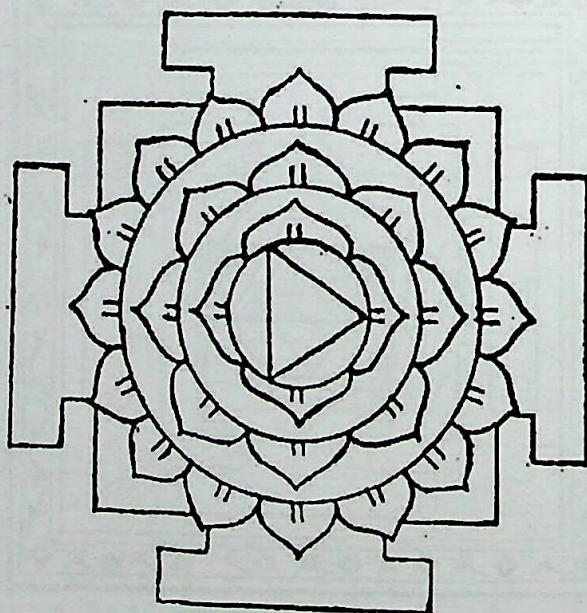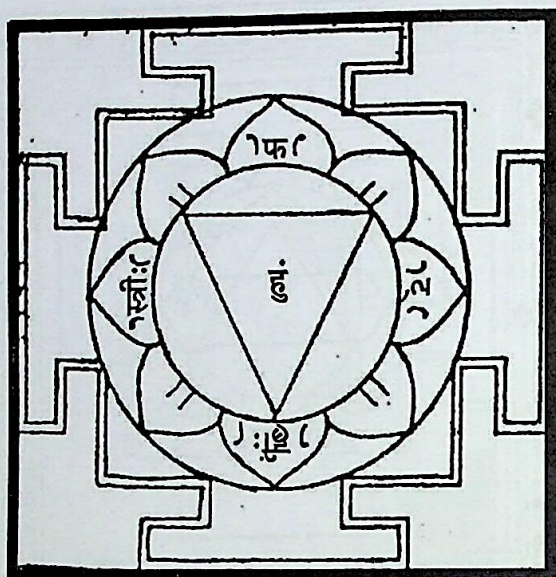
विशालाक्षीयन्त्रम्

धनदायन्त्रम्

श्रीकृष्णयन्त्रम्
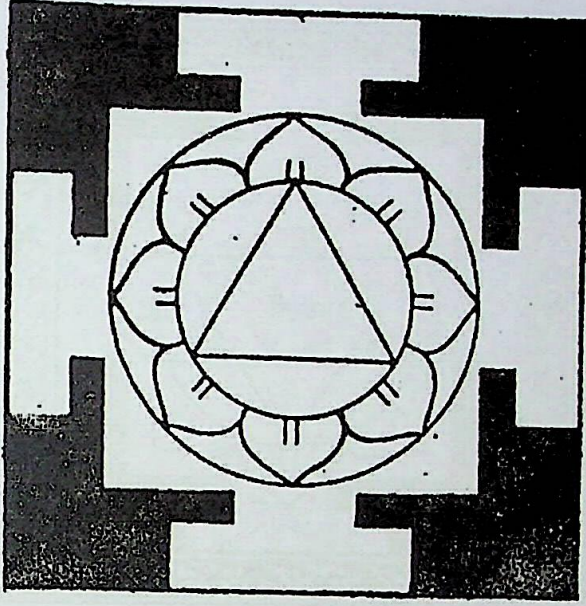
गोपालयन्त्रम्
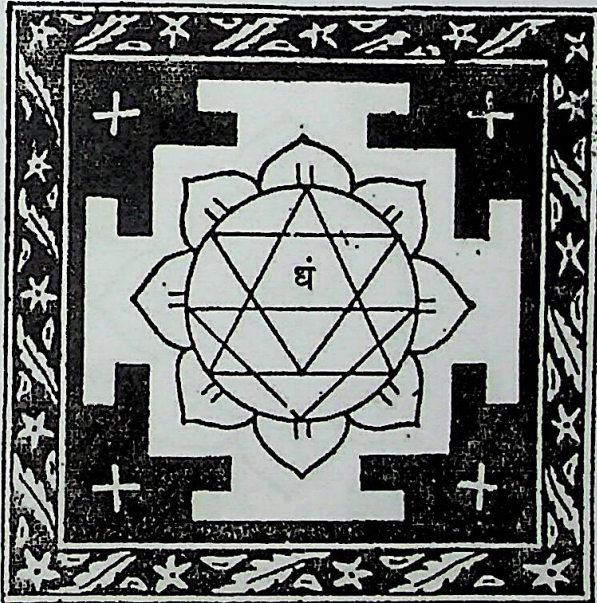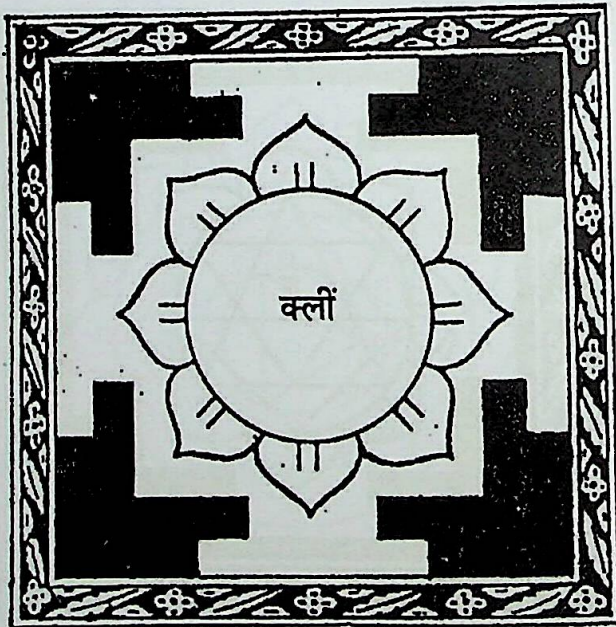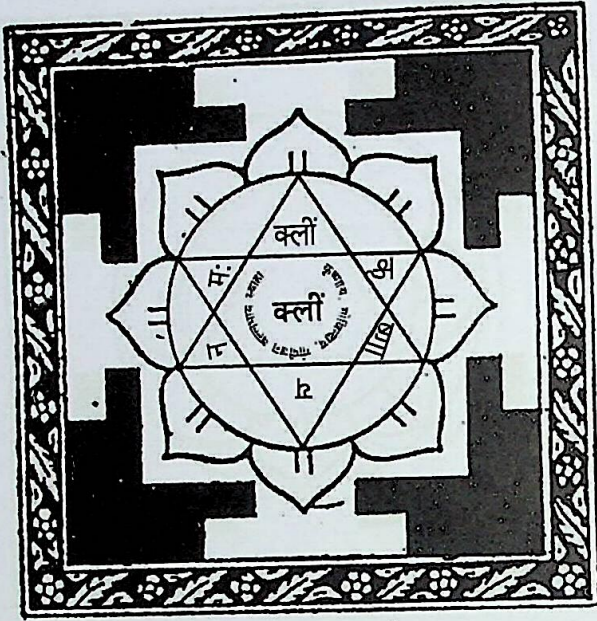
नवनाभमण्डलम्

गरुडयन्त्रम्

वागीश्वरीयन्त्रम्
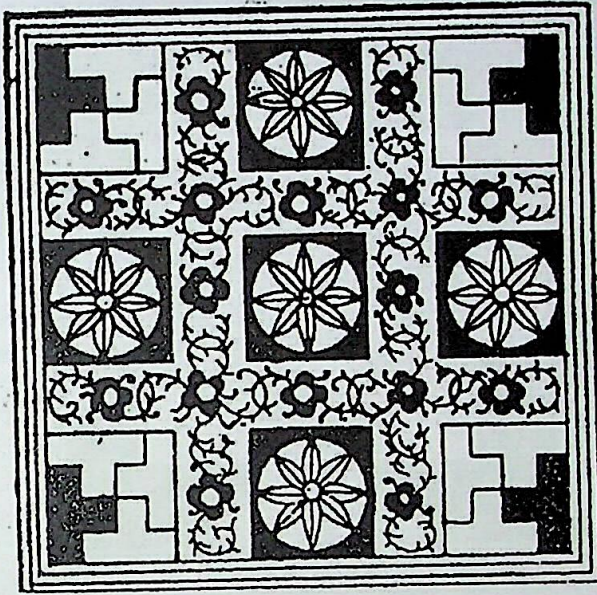
दुर्गायन्त्रम्
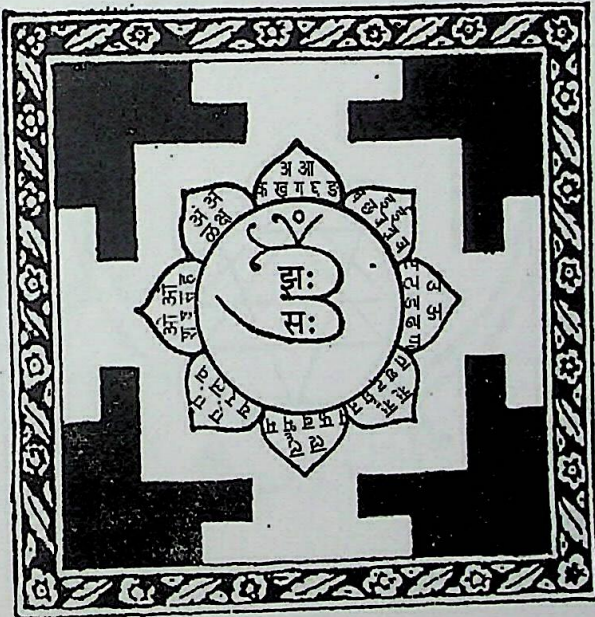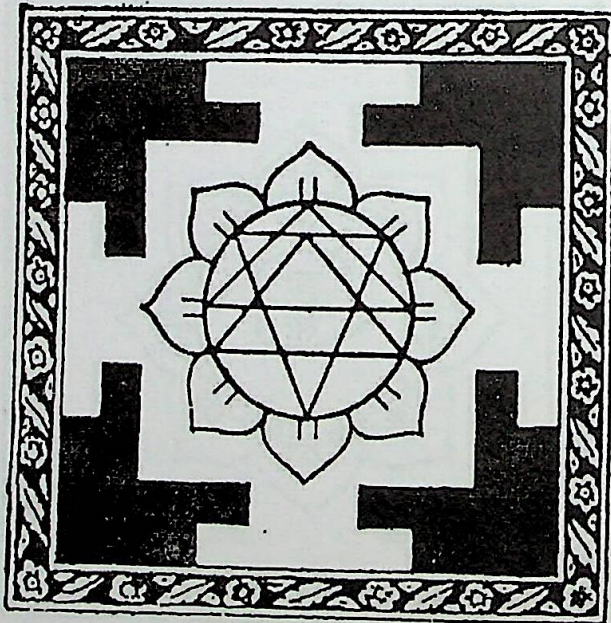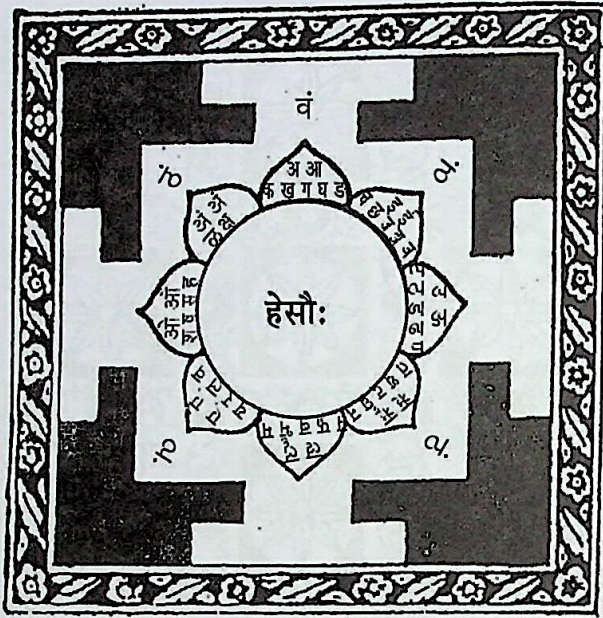
षट्कूटाभैरवीयन्त्रम्
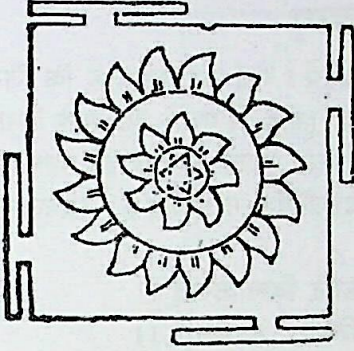
वराहयन्त्रम्
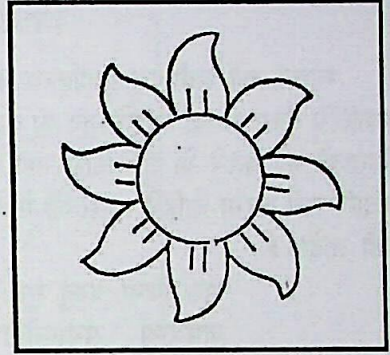
पद्मकुण्डम्
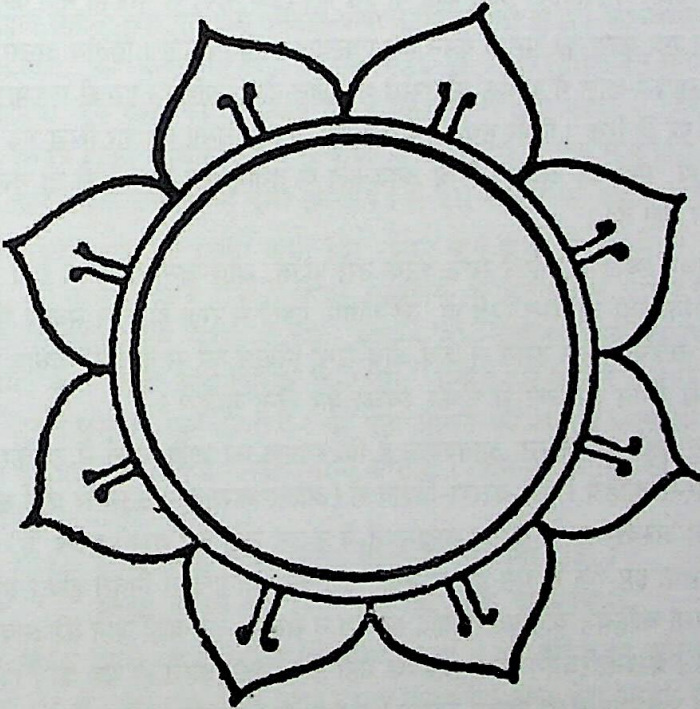
नित्यपूजारहस्य

साधक को सर्वप्रथम ब्राह्मकृत्य करना चाहिये। यहाँ यह कहना है कि जिनकी यथाविधि दीक्षा अथवा अभिषेकादि की व्यवस्था नहीं हुई है, वे गुरु के आदेश के बिना इन क्रियाओं को करने के अधिकारी नहीं होते। केवल पुस्तक देखकर इन साधनों को कदापि नहीं करना चाहिये। पुस्तकों में केवल दिशानिर्देश-मात्र होता है। रुद्रयामल का यही आदेश है—

गुरुं विना यस्तु मूढः पुस्तकादि विलोकनात्।
जपबन्धं समाप्नोति किल्विषं परमेश्वरि।।

हे परमेश्वरि! गुरु के बिना जो मूढ़ मात्र पुस्तकादि का अवलोकन करके जपादि क्रिया करता है, उसे कोई फल ही नहीं मिलता, अपितु वह प्रत्यवायी हो जाता है।

न माता न पिता भ्राता तस्य को वा गतिः प्रिये।

न माता, न पिता, न भ्राता कोई भी उसे पाप (इस पाप) से मुक्त ही नहीं कर सकते।

इन सब कृत्य को सम्पन्न करने हेतु एकाग्रता आवश्यक है। द्वितीय अन्तराय है—चिन्ता। साधन-काल में साधक को इससे भी रहित होना चाहिये। इसकी एकमात्र औषधि है—गुरु पर निर्भरता। निर्भर तथा विश्वास-प्रवण अपनी चिन्ता का भार सिद्ध गुरु पर छोड़ देता है (हाँ, यहाँ यह अवश्य है कि आजकल के तथाकथित गुरुओं को तो गुरुपद देना भी उचित नहीं है)।

साधन स्थल को पहले साफ करके उसे पूर्णतः जीव-जन्तुरहित कर देना चाहिये। यहाँ तक कि वहाँ जो वस्तु रखी हो, जो सामान पहले से रखा हो, उन सबको भी स्वच्छ कर देना चाहिये, ताकि उसमें से कोई जीव-जन्तु निकल कर साधना में व्याघात न पहुँचा सके। उस स्थान को जल से धोकर स्वच्छ कर लेना चाहिये।

अब यहाँ यह जानना आवश्यक है कि साधक को ब्राह्म मुहूर्त्त में उठकर साधना प्रारम्भ करनी चाहिये। यदि कारण-विशेष से (आलस्यवशात् न उठने से कोई क्षमा नहीं है) अथवा अस्वस्थता के कारण ब्राह्ममुहूर्त्त में न उठ सके तब गुरुबीजमन्त्र 'ऐं' का दश बार जप तथा इष्ट गुरु से मन ही मन क्षमा माँग कर स्नानादि से निवृत्त होकर शुद्ध वस्त्र धारण करना चाहिये। यदि मल-मूत्रादि का वेग न सताये, तब कहीं जाने की आवश्यकता ही नहीं है। वस्त्र-परिवर्त्तन भी आवश्यक नहीं है। सोकर उठते ही यह कार्य हो सकता है, अथवा शयनगृह में ही अलग आसन बिछाकर कार्य प्रारम्भ करना चाहिये। शय्यासन पर भी आसन बिछाकर बैठना चाहिये।

आसन पर बैठकर दाहिने हाथ की मध्यमा अङ्गुली द्वारा आसन के सामने दक्षिण पार्श्व की ओर निम्नलिखित यन्त्र का अङ्कन करना चाहिये—
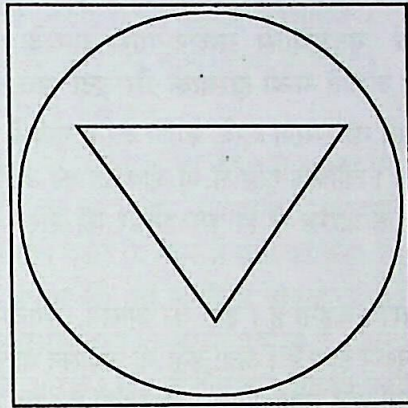
उक्त मन्त्र का अङ्कन करके यह मन्त्र पढ़ना चाहिये—ॐ आः सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहा।

ब्राह्मण साधक तथा गुरु द्वारा आदेश-प्राप्त अधिकारी को ही ॐ का व्यवहार करना चाहिये; अन्यथा 'ओं' पढ़ना चाहिये। तदनन्तर 'ॐ ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः' कहना चाहिये। इन मन्त्रों का तात्पर्यार्थ यह है कि 'यह त्रिकोण यन्त्ररूपी तीनों सुरेखा वज्रशक्ति सम्पन्न होकर आधारस्थ समस्त बाधा-विघ्नों को 'फट्' रूप मन्त्र द्वारा नष्ट करे तथा वह अग्निशक्ति 'स्वाहा' से दग्ध हो जाय। मैं ऐसे आसन को प्रणाम करता हूँ'।

अब दाहिने हाथ को सामने बाँयीं ओर लाकर बाँयें हाथ को दाहिने ले जाने पर क्रास (×) बन जायेगा। अब दोनों हाथों की अङ्गुलियों के अग्रभाग से आसन का स्पर्श करते हुये ऋष्यादि न्यास करना चाहिये। यथा—'ॐ आसनमन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता आसनपरिग्रहे विनियोगः' अर्थात् इस आसन मन्त्र के मेरुपृष्ठ ऋषि हैं, सुतल छन्द है, कूर्म देवता हैं। यह मन्त्र आसन-परिग्रहणार्थ प्रयुक्त हो रहा है। इन ऋषि के आशीर्वादार्थ हम उनका स्मरण करते हैं। तदनन्तर आसन का शुद्धि-मन्त्र उच्चारित करना चाहिये—

ॐ पृथ्विं त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वञ्च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम्॥

'हे पृथ्वि! तुमने समस्त लोकों को धारण किया है। हे देवि! तुम कूर्मरूप विष्णु द्वारा धृता हो। हे देवि! तुमने मुझे नित्य धारण किया है। अतः मेरा आसन कृपापूर्वक पवित्र करो'।

अब आसन की शवासन अथवा शव के पीठरूप में कल्पना करके वाम हस्त की

हथेली से आदर के साथ आसन पर तीन बार आघात करना चाहिये और प्रत्येक आघात के साथ एक बार कहना चाहिये—'ॐ ह्रीं मृतकाय नमः'। तदनन्तर अञ्जलिबद्ध होकर कहना चाहिये—

शय्ये त्वं मृतरूपासि साधनायासि साधके।
अतोऽत्र जप्यते मन्त्रो ह्यस्माकं सिद्धिदा भव॥

अब श्मशानेश्वर भैरव का स्मरण करके प्रणाम करना चाहिये। श्मशान ही वासना-विकाररहित वैराग्य भूमि है। लौकिक दृष्टि से भी जीव देह का अन्तिम क्षेत्र है। इसीलिये मोक्षाभिलाषी को साधना के प्रारम्भ से ही श्मशानेश्वर की शरण में जाना ही श्रेयस्कर होता है।

अब आसन पर विशेष कहना है। ऊन का आसन, मृगचर्म या व्याघ्रचर्मादि का आसन शवासन के ही अनुरूप होता है। अतः इन्हें भी शवासन वाले मन्त्रपूत आसन जैसा ही सिद्धिप्रद मानते हैं। इसमें कोई साम्प्रदायिक मतभेद नहीं है। गुरु की आज्ञानुसार आसन का चयन करना चाहिये। आसन-शोधनोपरान्त गुरुपूजा करनी चाहिये। तदनन्तर आसन बनाना चाहिये अर्थात् पद्मासन, सुखासन, स्वस्तिकासन आदि पर बैठना चाहिये। रात्रि की साधना उत्तरमुख करनी चाहिये और दिन की साधना पूर्वमुख उचित होती है। कुछ सन्तों का मत है कि सकाम साधना पूर्वमुखी एवं निष्काम साधना उत्तरमुखी करनी चाहिये। सूर्य पूर्व की ओर उगते हैं। वे संसार को जीवन देते हैं। अतः सकाम साधना पूर्वाभिमुखीन होकर करना न्यायोचित प्रतीत होता है। अब सङ्क्षेप में गुरु आदि देवताओं को प्रणाम करने का विधान जानना आवश्यक है। बाँयीं ओर हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुये कहना चाहिये—'ॐ गुरुभ्यो नमः, परमगुरुभ्यो नमः, परापरगुरुभ्यो नमः'। इसी प्रकार दाहिनी ओर प्रणाम करके कहना चाहिये—'ॐ गणेशाय नमः'। एवमेव ऊपर की ओर प्रणाम करके 'ॐ ब्रह्मणे नमः'। अधः की ओर प्रणाम करके 'ॐ अनन्ताय नमः'। पीछे की ओर प्रणाम करके 'ॐ क्षेत्रपालाय नमः, ॐ योगिनीभ्यो नमः, ॐ दिक्पालाय नमः'। सम्मुख प्रणाम करके 'ॐ गणेशादि पञ्चदेवतासहित इष्टगुरुदेवताभ्यो नमः' तथा सर्वत्र प्रणाम करके 'ॐ परमात्मने नमः' कहना चाहिये।

साधक को अब भावना करनी चाहिये कि वह कुलवृक्ष-समूह के बीच बैठा है। कुलवृक्षों का वर्णन रेवतीतन्त्र में इस प्रकार है—

हरीतकी तथा धात्री निम्बाश्वत्थकदम्बकाः।
डुम्वुरुर्वटबिल्वौ च तिन्तिडी नवमः स्मृतः॥

हरीतकी, आमला, नीम, पीपल, कदम्ब, गूलर, वट, बेल तथा तिन्तिड़ी—ये ९ वृक्ष कुलवृक्ष होते हैं।

इनमें स्थूलतः ब्रह्मशक्ति विकसित रहती है। ब्रह्मज्ञ तान्त्रिक सुषुम्ना मार्गस्थ

दशग्रन्थि-विशिष्ट कुलवृक्ष बतलाते हैं। अत: अब कुलवृक्ष की भावना द्वारा पूजा करनी चाहिये—ॐ कुलवृक्षेभ्यो नम: ।

ॐ नमस्ते कुलवृक्षेभ्यो सर्वपापविमुक्तये ।
शुभं विधेहि मे नित्यं कुलरक्षाय ते नमः ।।

यह कहकर प्रणाम करना चाहिये ।

ब्राह्ममुहूर्त्त में जो शय्या पर न बैठकर स्नानोपरान्त आसन पर बैठकर जलपात्र आदि लेकर कार्य करते हैं, उन्हें विष्णु का स्मरण, मूल मन्त्र से आचमन तथा जलशुद्धि आदि भी करनी चाहिये; अन्यथा इस काल के कार्य में जल का वैसा प्रयोजन नहीं होता। इस समय स्थूलत: करने की अपेक्षा यह सब मानसिक भावनानुसार करना उचित होता है। तब भी मन्त्राचमन, विघ्नापसरण तथा दिग्बन्धन प्रयोज्य है। उसे ऐसे करना चाहिये—वाम पद के गुल्फ से बाँयीं ओर की भूमि में तीन बार आघात करके 'फट्' का उच्चारण करना चाहिये। इससे अनेक विघ्न समाप्त हो जाते हैं।

स्त्रीदेवता की साधना में वाम पद से तथा पुरुषदेवता की उपासना में दक्षिण पद से भूमि पर आघात करके 'फट्' का उच्चारण करना चाहिये। तदनन्तर यह मन्त्र पढ़ना चाहिये—

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः ।
ये भूता विघ्नकर्त्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ।।

इस मन्त्र को नाराचमुद्रा दिखाते हुए पढ़ना चाहिये (नाराचमुद्रा ग्रन्थ में चित्ररूप अङ्कित है, देखें)। नाराचमुद्रा द्वारा सरसों या चावल लेकर (इस मन्त्र को पढ़ने के अनन्तर) फट्-फट् कहकर चतुर्दिक निक्षेप करना चाहिये। तत्पश्चात् 'ॐ नम: शिवाय' कहकर ऊर्ध्व में शान्त नेत्रों से देखना चाहिये। 'ॐ अस्त्राय फट्' द्वारा बाँयीं हथेली के ऊपर में दाहिनी तर्जनी तथा मध्यमा अङ्गुली से अपने मस्तक के ऊपर तीन बार ताली देना चाहिये। तत्पश्चात् 'फट्' कहते हुये अपने देह के दशो दिशाओं की ओर चुटकी बजाकर दिग्बन्धन करना चाहिये। जीव-देहस्थ वायुतत्त्व की आकर्षिणी तथा विकर्षिणी-भूत क्रिया हाथ की तर्जनी में विशेषतया प्रकाशित होती है। तभी वाण्यात्मक मन्त्रास्त्र-प्रयोग में तर्जनी ही नाराच मुद्रार्थ व्यवहृत की जाती है।

तदनन्तर 'रं' अग्निबीज का चिन्तन करना चाहिये। मानो चतुर्दिक् तरल अग्निप्रवाह से अग्नि ज्वलित है। साधक को 'रं' का उच्चारण करके अग्निमुद्रा द्वारा जलधारा देनी चाहिये, अथवा मध्यमा एवं अङ्गुष्ठ से चुटकी बजानी चाहिये। मध्यमा अङ्गुली जीवदेहस्थ वह्न्यात्मक आकर्षिणी तथा विकर्षिणीभूत क्रिया की श्रेष्ठ प्रकाशिका होती है। इससे भक्तिमान गुरुप्राण साधक का यथेष्ट कल्याण होता है।

इस समय मिश्रयोग अथवा योगसमाहार विधि के अनुसार भाव से कुण्डलिनी शक्ति

को एक बार जगाने की बात गुरु से सुनी गई है। यद्यपि कुण्डलिनी पूजा अंश में तथा भूतशुद्धि अंश में वह विस्तृतरूपेण कही जायेगी, उसे देखकर अधिकारी साधक यथासमय साधन करेंगे। तथापि यहाँ साधारण साधक के लिये यह सङ्क्षेप में कहा गया है कि मेरुदण्ड के सबसे नीचे मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी शक्ति या जीव की जीवनी शक्ति सतत् स्वयंभू लिङ्ग का वेष्टन करके निद्रित रहती है। साधक को गुरुनिर्दिष्ट मुद्रा अथवा आसन पर बैठकर 'यं रं' मन्त्र से सामान्य प्राणायाम करके तीन बार मूलाधार-सङ्कोचन करने के उद्देश्य से पायु तथा उपस्थ इन्द्रियद्वय का 'हु'कार बीज उच्चारण करके भीतर की ओर आकुञ्चन तथा आकर्षण करना चाहिये तथा अपने उदर को भी भीतर की ओर खींचना चाहिये। अब मन ही मन चिन्तन करना चाहिये कि मूलाधारस्था कुण्डलिनी जाग्रत होकर ऊपर उठती जा रही है। इसके बाद पुनः चिन्तन करना चाहिये कि वे क्रमशः मूलाधार से स्वाधिष्ठान, तदनन्तर मणिपूर में उत्थित हो रही है और वे कामिनी शक्ति रूप से उस रक्तकमल पर सिंहारूढ़ा, चतुर्भुजा, रक्तवर्णा होकर प्रकट हो रही है। अब इस चिन्तन के साथ वहाँ 'कं' बीजमन्त्र का १० बार जप करना चाहिये। ये साधक की सभी कामनायें पूरी कर देती हैं।

तदनन्तर इस मणिपूर में ही रक्तवर्ण-युक्त ब्रह्मा का 'श्रीगुरुदेव' रूप में, अनाहत में नीलवर्ण-युक्त विष्णु का श्रीपरमगुरुबोध में ध्यान करना चाहिये। विशुद्धाख्य पद्म के ऊपर तथा आज्ञाचक्र के नीचे शुभ्रवर्ण-युक्त महेश्वर का परापरगुरुबोध में और सर्वान्त में आज्ञाचक्र के ऊपर परब्रह्म का परमेष्ठि गुरुबोधयुक्त चिन्तन तथा ध्यान करके निम्न मन्त्र के साथ प्रणाम करना चाहिये—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

अब सहस्रार-स्थित कमल पर गुरु की मूर्त्ति का चिन्तन करना चाहिये। यहाँ श्रीगुरु-पादुका पञ्चकस्तोत्र-पाठ के साथ स्तोत्रान्तर्गत जो रहस्य है, वह भी हृदयङ्गम करना चाहिये। तदनन्तर 'मानसपूजा' करनी चाहिये। अर्थात् शरीर, मन, वाणी से उन्हें आत्मसमर्पण करना चाहिये। इससे साधक का अभिमान विगलित हो जाता है।

मानस पूजन—पूर्णाभिषिक्त से लेकर और उच्चभूमि के अधिकारी के हेतु प्रत्येक बार (प्रत्येक दिन) मानस पूजन भी करना चाहिये। जो शाक्ताभिषेक-युक्त हैं अथवा असमर्थ हैं, उन्हें केवल गुरुबीज 'ऐं' का उच्चारण करके मानस पूजन कर मन्त्र-जप करना चाहिये। दोनों हाथों की कनिष्ठा अङ्गुलियों को सटाकर देह में स्थित पृथ्वीबीज 'लं' का चिन्तन करना चाहिये। पृथिवी का गुण है—गन्ध। वह चन्दनवत् है। यह भावना करते-करते १० बार 'ऐं' जपने के पश्चात् 'ऐं लं पृथ्व्यात्मकं गन्धं सशक्तिकाय श्रीमद् अमुकानन्दनाथाय (अपने गुरु का नाम कहकर) श्रीगुरवे समर्पयामि नमः'।

तदनन्तर अपने पञ्चभूतात्मक देह में अवशिष्ट चार भूतों में से आकाश का चिन्तन

'हं' रूप में करना चाहिये। आकाश का गुण है—शब्द। यही वहाँ पुष्परूप है। मन ही मन देहस्थ आकाश अंश की कल्पना पुष्परूपेण करते-करते दोनों अङ्गुष्ठों को युक्त करके गुरुबीज का योग करके कहना चाहिये—'ऐं हं आकाशात्मकं पुष्पं सशक्तिकाय श्रीमद् अमुकानन्दनाथाय (यहाँ गुरु का नाम युक्त करे) श्रीगुरवे समर्पयामि नमः'।

अब वायुतत्त्व का चिन्तन 'यं' बीज से करना चाहिये। वायु का गुण है—स्पर्श। स्पर्श ही सूक्ष्मरूपेण यहाँ धूपरूप है। मन ही मन देहस्थ वायु का चिन्तन 'धूप' रूप में करना चाहिये। अब दोनों तर्जनी को परस्पर युक्त कर कहना चाहिये—'ऐं यं वायव्यात्मकं धूपं सशक्तिकाय श्रीमद् अमुकानन्दनाथाय (अपने गुरु का नाम ले) श्रीगुरवे समर्पयामि नमः'।

तदनन्तर देहस्थित वह्नितत्त्व का चिन्तन 'रं' बीज के रूप में करना चाहिये। वह्नि का गुण है—रूप। वही यहाँ सूक्ष्मतः दीप है। मन ही मन देहस्थ तेजांश की कल्पना दीप रूप में करके दोनों मध्यमा को युक्त करके कहना चाहिये—'ऐं रं वह्न्यात्मकं दीपं सशक्तिकाय श्रीमद् अमुकानन्दनाथाय (अपने गुरु का नाम ले) श्रीगुरवे समर्पयामि नमः'।

अब जलतत्त्व जो देह में है, उसकी कल्पना वरुणबीज 'वं' से करनी चाहिये। जल का गुण है—रस। वही सूक्ष्मतः अमृतरूप है। अब अनामिकाद्वय को युक्त करके गुरुबीज के साथ कहना चाहिये—'ऐं वं अमृतात्मकं नैवेद्यं सशक्तिकाय श्रीमद् अमुकानन्दनाथाय (अपने गुरु का नाम ले) श्रीगुरवे समर्पयामि नमः'।

अन्त में दोनों हाथ के अङ्गूठों तथा अङ्गुलियों को परस्परत संयुक्त करके अथवा हाथ जोड़कर देह के पञ्चतत्त्वसमूह के सूक्ष्मतर सार के समाहार का चिन्तन करके उसकी ताम्बूल के रूप में भावना करके गुरुबीज-युक्त करके कहना चाहिये—'ऐं सर्वात्मकं ताम्बूलं सशक्तिकाय श्रीमद् अमुकानन्दनाथाय (अपने गुरु का नाम ले) श्रीगुरवे समर्पयामि नमः'।

अब शिष्य को अपने निजकृत ज्ञात-अज्ञात पाप तथा समस्त अपराध का स्मरण करके अनुताप के साथ पुनः-पुनः क्षमाप्रार्थना करनी चाहिये। इससे साधक का पापों से मलिन चित्त दग्ध होता है, पवित्र होता है तथा साधक का वास्तविक प्रायश्चित्त होता है। यही इष्ट गुरु में पूर्ण आत्मसमर्पण है।

गुरु से मन्त्र विकसित होता है। मन्त्र से देवता का स्वरूप विकास प्राप्त करता है। अतः तीनों का अभेद-चिन्तन करना चाहिये। जो गुरु हैं, वे ही मन्त्र हैं, वे ही देवता हैं। इस अभेद-चिन्तन से सिद्धि हो जाती है। मुण्डमालातन्त्र में इसी बात का प्रतिपादन इस प्रकार किया गया है—

देवतागुरुमन्त्राणामैक्यं सम्भावयन् धिया।
तदा सिद्धो भवेन्मन्त्रः प्रकटे हानिरेव च॥

तदनन्तर गुरु को प्रणाम करना चाहिये।

●

प्रातःकृत्य

स्नान—प्रातःकृत्य में सन्ध्या की जाती है, लेकिन उससे पूर्व स्नान करना कर्त्तव्य है। जो किसी कारण से अशक्तता के कारण प्रातःस्नान नहीं कर सकता, उसे मानसिक अथवा यौगिक स्नान करना चाहिये। मन ही मन 'गङ्गा अथवा किसी मुक्तिप्रद तीर्थ में स्नान करता हूँ' यह भावना करनी चाहिये। वैदिक सन्ध्याविधि में भी जो मार्जन अथवा मस्तक पर जल छिड़कते हैं, वह भी मान्त्रिक स्नान ही होता है। सामान्यतः ब्राह्म, आग्नेय, वायव्य, दिव्य, वारुण तथा यौगिक—यह छः प्रकार का स्नान होता है। इनका विवरण इस प्रकार है—

ब्राह्म स्नान—मार्जन मन्त्र के साथ कुशगुच्छों से स्नान ही मार्जनरूप ब्राह्म स्नान कहलाता है।

आग्नेय स्नान—इसमें आपाद-मस्तक भस्म अथवा विभूति मलते हैं। कपाल, हाथ, वक्ष में तथा समर्थ होने पर अन्य अङ्गों में भी विभूति-लेपन करना आग्नेय स्नान कहलाता है।

वायव्य स्नान—गोधूलि वेला में गौ जब चर कर वापस आती हैं तब उनके खुर से जो धूल उड़ती है, उससे शरीर जब धूलिसिक्त होता है, तब वह वायव्य स्नान होता है।

दिव्य स्नान—सूर्य प्रकाशमान हैं, धूप भी है, अथ च वृष्टि हो रही है, उस वृष्टि के जल में किया गया स्नान दिव्य स्नान कहलाता है।

वारुण स्नान—जल में उतरना अथवा पात्र से जल ऊपर डालना, जो सामान्य स्नान है, वह है—वारुण स्नान।

यौगिक स्नान—इसमें दिव्य स्थान पर बैठकर भावना करनी चाहिये कि आकाश में विष्णुदेव विमान पर हैं। उनके चरणद्वय से शुद्ध ज्ञानमयी पवित्र गङ्गा प्रकट होकर अजस्त्र धारा रूपेण शिर पर गिर रही है। उससे मेरा अन्तः-बाह्य, सर्वाङ्ग धौत, निर्मल तथा पवित्र होता जा रहा है। जो योगदीक्षा में अभिषिक्त हैं अथवा उच्चतर अधिकार-प्राप्त हैं, वे गुरु के उपदेशक्रमानुसार मुक्त त्रिवेणी से युक्त त्रिवेणी-पर्यन्त योगनिर्दिष्ट निम्नलिखित में से किसी एक तीर्थ में स्नान कर लेते हैं।

ज्ञानसङ्कलिनी तन्त्रमतानुसार इड़ा नाड़ी भागीरथी गङ्गा है। पिङ्गला यमुना है। सुषुम्ना ही अन्तःसलिला त्रिवेणी है। इनका सङ्गम स्थान ही प्रयाग है। वहाँ स्नान द्वारा योगी समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। योग में आज्ञा को ही प्रयाग कहते हैं। वहाँ स्नान करके (वहाँ उत्तीर्ण होकर) योगी सर्वपाप-रहित हो जाता है। यही है—युक्त त्रिवेणी। मूलाधार ही है—मुक्त त्रिवेणी; क्योंकि यहाँ गङ्गा-यमुना, सरस्वतीरूप इड़ा, पिङ्गला, सुषुम्ना

पृथक्-पृथक् होती जाती हैं। लेकिन रुद्रयामल में मूलाधार को महातीर्थ कहा गया है। यहाँ स्नान से योगी मुक्ति पा जाता है। स्वाधिष्ठान कमल में स्वाधिष्ठान तीर्थ है। स्वर्ग के सभी तीर्थ उसमें हैं। भावना द्वारा यहाँ स्नान ही गङ्गास्नान है। मणिपूर महातीर्थ में पञ्च-कुम्भ सरोवर है। इसे कामनातीर्थ भी कहते हैं। अनाहत कमल है—सर्वतीर्थ। सूर्यमण्डलस्थ सभी तीर्थ यहीं हैं। विशुद्धाख्य कमल है—विशुद्धतीर्थ। यहाँ अष्टतीर्थ का समुद्भव है। वीराचारी यहीं पर आत्मविमुक्ति-हेतु ध्यान करते हैं। आज्ञाचक्र ही कालीकुण्ड, मानसतीर्थ अथवा बिन्दुतीर्थ है। निर्वाण-हेतु कुलाचारी योगी यहीं स्नान करते हैं। सहस्रार चक्र में श्रीपादुका-तीर्थ है। यही सोमतीर्थ भी है। मूलाधार से सोमतीर्थ-पर्यन्त सप्ततीर्थ-सम्भूत जल ही पूजाकाल में आत्मघटरूप घट-स्थापन है।

अब मन्त्रयोगी साधक को स्नानार्थ 'ॐ श्रीविष्णुः ॐ तत्सत् ॐ अद्य अमुकमासि अमुकराशीस्थभास्करे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकदेवताप्रीतये मन्त्रस्नानमहं करिष्ये' (प्रत्येक अमुक के स्थान पर क्रमशः उन-उन तिथि आदि का उल्लेख करना चाहिये) बोलकर 'ह्रीं' मन्त्रजप से जल को हिलाना चाहिये तथा जल में आसनशुद्धि-हेतु जिस त्रिकोण मण्डल का उल्लेख पहले किया गया है, उसका अङ्गुलि से अङ्कन करके अङ्कुशमुद्रा द्वारा तीर्थ का आवाहन करना चाहिये—

ॐ नमः क्रों गन्धे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

तदनन्तर अञ्जलिबद्ध होकर सूर्यदेव के समक्ष प्रार्थना करनी चाहिये—

ॐ ब्रह्माण्डे यानि तीथानि करैः स्पृष्टानि ते रवे।
तेन सत्येन मे देव तीर्थं देहि दिवाकर॥

तदनन्तर श्रीगङ्गामाता का आवाहन करना चाहिये—

ॐ आवाहयामि त्वां देवि स्नानार्थमिह सुन्दरि।
त्राहि गङ्गे नमस्तुभ्यं सर्वतीर्थसमन्विते॥

अब 'वं' द्वारा धेनुमुद्रा एवं 'हुं' से अवगुण्ठन मुद्रा का प्रदर्शन करके चक्रमुद्रा से रक्षा करनी चाहिये तथा 'फट्' मन्त्र द्वारा नाराचमुद्रा से चुटकी बजाकर दशों दिशाओं का बन्धन करना चाहिये। तदनन्तर मत्स्यमुद्रा से जल का आच्छादन करके मूल मन्त्र का ११ बार जप करके सूर्याभिमुखीन होकर १२ अञ्जलि जल-निक्षेप करके पूर्वाङ्कित मण्डल के मध्य स्थित जल में वह्निमण्डल, सूर्यमण्डल तथा चन्द्रमण्डल की भावना करनी चाहिये तथा 'अपने इष्ट तथा गुरु देवता के चरणारविन्द से निर्गत जल से स्नान कर रहा हूँ' यह भावना करते हुये इष्टदेव में ध्यान तथा मन ही मन इष्ट मन्त्र का उच्चारण करते-करते स्नान करना चाहिये। मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुये कलशमुद्रा द्वारा अपने मस्तक पर दस बार, सात बार अथवा तीन बार अभिषेक करना चाहिये।

अनुकल्प स्नान—इस प्रकार के स्नान में असमर्थ होने पर साधक सङ्क्षेप में किसी प्रकार के अनुकल्प अथवा गौण स्नान कर सकते हैं। आर्द्र वस्त्र से सर्वाङ्ग-मार्जन करना कापिल स्नान होता है। यदि ज्ञानी (आत्मज्ञानी) यह कहे कि 'तुम पवित्र हो गये' तब यह सारस्वत स्नान होता है। जल में १० बार गायत्री-जप करके उससे सर्वाङ्ग प्रोक्षण करना गायत्री स्नान कहलाता है। अशक्त व्यक्ति केवल गुरुपादोदक द्वारा शुभ एवं मानस स्नान कर लेते हैं। इसी प्रकार विप्रपादोदक से विष्णुस्नान हो जाता है। गङ्गाजल-मार्जन से भी मानस स्नान हो जाता है। सब कुछ के अभाव में मनन द्वारा भी मानस स्नान सम्पन्न होता है। कहा भी है—

आर्द्रेण वाससा चापि मार्जनं कापिलं स्मृतम्।
विद्वत् सरस्वती प्राप्तं स्नानं सारस्वतं विदुः॥
गायत्र्या जलमादाय दशकृत्वोऽभिमन्त्र्य च।
शिरश्चाङ्गानि सर्वाणि प्रोक्षयेत्तेन वारिणा॥
अशक्तानान्तु जन्तूनां गुरोः पादोदकं शुभम्।
तथा विप्रपदात् विष्णुस्नानं मानसमीरितम्॥

तर्पणक्रिया—अब पिता तथा पितामह-प्रभृति का यथाशक्ति तर्पण करने का विधान है। यह सब नित्यकर्म-पद्धति आदि ग्रन्थों में अङ्कित रहता है। अभिषिक्त साधक की तर्पण विधि आगे वर्णित की जायेगी। स्नानोपरान्त जल से बाहर आते समय तीन अञ्जलि जल किनारे पर नि:क्षेप करके कहना चाहिये—

ॐ असुरा भूतवेतालाः कूष्माण्डब्रह्मराक्षसाः।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु मया दत्तेन वारिणा॥

आचमन एवं भूतशुद्धि—स्नान, शिखाबन्धन तथा तर्पणादि सम्पन्न करके साधक को सन्ध्याकार्य करना चाहिये। इसका प्रथम सोपान है—आचमन। यह तान्त्रिक तथा वैदिक विधि से द्विविध होता है। यहाँ केवल तान्त्रिक आचमन ही कहा जायेगा। जो अभिषिक्त नहीं हैं, ऐसे साधक, स्त्री तथा शूद्रगण को ॐकार तथा स्वाहा का उच्चारण नहीं करना चाहिये। वे ॐकार के स्थान पर 'ओं' अथवा 'ऐं' कह सकते हैं। स्वाहा के स्थान पर 'नम:' कह सकते हैं। जो अभिषिक्त हैं, वे 'ॐ' तथा 'नम:' का पूरा उच्चारण कर सकते हैं। तान्त्रिक आचमन है—ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा, ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा, ॐ शिवतत्त्वाय स्वाहा।

इन तीनों का उच्चारण करते हुये यथाक्रमेण प्रथम मन्त्र से मुख, द्वितीय मन्त्र से नासिका एवं तृतीय मन्त्र से चक्षु, कर्ण, नाभि का स्पर्श करना चाहिये। तदनन्तर तीनों मन्त्र से हृदय का स्पर्श करना चाहिये। आचमन-विधि यह है कि दाहिने हाथ को गोकर्ण की तरह करके अर्थात् अङ्गुष्ठ, कनिष्ठा को छोड़कर केवल तर्जनी, मध्यमा, अनामा को

एकत्र करके करतल को सामान्य रूप से इतना सङ्कुचित करना चाहिये कि उसमें से केवल एक उड़द का दाना-मात्र निकल सके। इसी परिमाण का कुछ निर्मल जल लेकर ब्रह्मतीर्थ से अर्थात् अङ्गूठा अङ्गुली के मूल से आचमन मन्त्र का उच्चारण करते हुये तीन बार मन्त्रोच्चारण के साथ इस जल का पान करना चाहिये। जो स्त्री है, शूद्र है अथवा जिसका अभिषेक सम्पन्न नहीं हुआ है, उसे ब्रह्मतीर्थ के स्थान पर केवल देवतीर्थ से अर्थात् अङ्गुलियों के अग्रभाग से आचमनीय ग्रहण करना चाहिये। तदनन्तर इन विष्णुस्मरण मन्त्रों को कहना चाहिये—

ॐ विष्णु ॐ विष्णुः ॐ तद्विष्णोः परमं पदं
सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम्।

इसका अर्थ है—ॐ तद् = वह परमात्मा ही, विष्णु = जो व्यापक चैतन्यरूपेण विश्व को सर्वदा परिव्याप्त होकर स्थित है, परमपदं = परमव्योम अथवा उनकी गुणातीत सत्ता, सदा = सर्वक्षण। सूरयः = देवतागण, पश्यन्ति = दर्शन करते हैं अथवा अन्तर में अनुभव करते हैं। दिवि = आकाश में, इव = अनुरूप, चक्षुः = विश्वनेत्र सूर्य, आततम् = सर्वत्र प्रकाशमान।

इसका तात्पर्य यह है कि जैसे देवगण महाकाश में उन परमात्मा का अनिर्वचनीय ज्ञानमय विकास-स्वरूप विश्वविभूति अथवा सूर्यनारायण की सूक्ष्मसत्ता का अबाध दर्शन करते रहते हैं; हम भी उसी प्रकार से अपने-अपने अन्तराकाश में उस परब्रह्म के ज्ञानमय अपूर्व विकास सत्तारूप आत्मसूर्य का सर्वदा अविच्छेद चिन्तन करें।

उपरोक्त विष्णुमन्त्र का उच्चारण करते-करते दाहिने अङ्गूठे से ओष्ठ का एक बार दाहिनी ओर और दूसरी बार बाँयीं ओर पर्यायक्रमेण दो बार मार्जन करके हाथ को जल से धो लेना चाहिये। तदनन्तर तर्जनी से नासाद्वय, मध्यमा द्वारा चक्षुद्वय, अनामिका द्वारा कर्णद्वय, कनिष्ठा द्वारा नाभि, अङ्गूठा छोड़कर चार अङ्गुलियों से वक्षःस्थल, सभी अङ्गुलियों से मस्तक तथा दोनों हाथ की अङ्गुलियों से दोनों बाहुमूल से लेकर अङ्गुलाग्रपर्यन्त स्पर्श करना चाहिये।

तान्त्रिक आचमन मन्त्र का लक्ष्य एवं उद्देश्य

साधक सन्ध्या-पूजादि निजकर्मों से मुक्ति के पथ पर अग्रसर होता है। उस मुक्ति का तत्त्व अथवा स्वरूप जिस भाव से ज्ञात होता है, उस त्रितत्त्व का उच्चारण करके आचमन मन्त्र अत्यन्त गभीर भाव से साधन-सङ्केत प्रदान करता है। (त्रितत्त्व है—आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व, शिवतत्त्व। तत्त्व अर्थात् किसी विषय का प्रकृत स्वरूप। किसी वस्तु के मूल अथवा सार को ही तत्त्व कहते हैं)। आत्मा-विद्या तथा शिव आचमन मन्त्रान्तर्गत इन तीन तत्त्व का सार जब तक नहीं ज्ञात होता अथवा इन तीन तत्त्वपथ में जब तक स्वयं को उन्नत नहीं कर लिया जाता, तब तक साधक मुक्त नहीं हो सकता।

'आत्म' का अर्थ है 'मैं'। यहाँ स्थूल शरीराभिमानी अर्थात् अस्थि-मांसयुक्त अन्नमय कोषरूप इस जीव देह का अभिमानी अथवा जीवरूपी 'मैं' अर्थ है। प्रत्येक व्यक्ति इस स्थूल देहान्तर्गत क्षुद्र 'अमित्व' के अभिमान में पागल होकर स्वयं को उस विराट् 'मैं' से अलग मानकर मुग्ध रहता है। वह उस विराट् 'मैं' को भूल कर सतत् परिवर्तनशील इस देह को ही सब कुछ मान बैठता है और इस शरीर को ही 'मैं' मानकर कार्य करता है। अत एव पहले यह जानना होगा कि 'मैं' कौन है। पहले तुमको इसी ज्ञान को आयत्त करना होगा। तान्त्रिक आचमन में उक्त आत्मतत्त्वरूप मन्त्र 'ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा' द्वारा यही इङ्गित करते हैं। यदि गुरुकृपा से इस 'आत्मतत्त्वाय' का ज्ञान हो जाता है, तब द्वितीय मन्त्र 'ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा' सहज बोध्य हो जायेगा।

साधना के पूर्व साधक को स्वयं देवता बनना चाहिये। भूतशुद्धि तथा न्यासादि द्वारा तन्मय एवं अभीष्ट देवतात्मक होकर देवता की पूजा करनी पड़ती है। इसलिये प्राणायाम द्वारा देह को शुद्ध करना चाहिये। पञ्चतत्त्वात्मक देह में पञ्चभूत स्थित हैं। उनकी शुद्धि से स्थूल देह पवित्र हो जाता है। उसका पुरातन देह मानो अग्निबीज 'रं' संदग्ध हो जाता है। तत्पश्चात् चन्द्रबीज अथवा चन्द्रामृत से नवीन देह की सृष्टि करके अर्थात् न्यासादि द्वारा अभीष्ट देवताओं के देवदेह को प्राप्त करता है। तदनन्तर इस देवदेह में प्राण-क्रियादि के सहयोग से जैवी प्राण-केन्द्र में देवीपीठ की स्थापना करके अभीष्ट देवता की प्राणमयी मूर्त्ति की प्रतिष्ठा करनी होती है। अन्यथा स्थूल जीवदेह के साथ सूक्ष्म अथवा तैजसात्मक देवदेह का योग नहीं मिल पाता। इसीलिये साधक स्थूल भूतशुद्धि से अपनी देहात्मबुद्धि का विनाश करके उस तैजस सूक्ष्म शरीर की देहात्मबुद्धि का विनाश करके वे इसके अभ्यन्तर में उस पीठस्थान के ऊपर अभीष्ट देवता की प्रतिष्ठा करके मानसपूजा करते हैं। भूतशुद्धि भी स्थूल एवं सूक्ष्मभेद से द्विविध है। स्थूल भूतशुद्धि का गुरुप्रदत्त रूप यह है कि साधक यह भावना करे कि अनन्त समुद्र में एक सामान्य द्वीपाकार भूमिखण्ड है, एक कूर्मपृष्ठ के समान। उसके पार्श्व में कल्पवृक्ष जैसा एक वृक्ष है, उसमें अपूर्व सौरभ वाले विचित्र पुष्प एवं रसीले अनेक फल लगे हैं। उस पर रङ्ग-बिरङ्गे अनेक पक्षी भी हैं।

सभी पक्षी 'ह्रीं' मन्त्ररूप अतिमधुर गायन कर रहे हैं। उनसे स्पर्श करती मृदु मन्द वायु प्रवाहित हो रही है। वह द्वीपभूमि अतीव प्रीतियुक्त लग रही है। साधक इसी के नीचे एकाग्र मन से बैठकर साधन कर रहा है। शीघ्र ही इस समुद्र में उत्ताल लहरें बहने लगी हैं। उसके घात-प्रतिघात से द्वीप की भूमि कट-कटकर समुद्र में विलीन होती जा रही है। धीरे-धीरे वह द्वीप तिलमात्र भी नहीं बचा और वह वृक्ष भी समुद्र में डूब गया। अब साधक उस जल के ऊपर आसनासीन है। दैवबल से उसका आसन भूमि न रहने पर भी अचञ्चल है। अब साधक यह अनुभव करे कि शीघ्र ही उस सागर का जल उत्तप्त होता जा रहा है। धीरे-धीरे अनलरूप होकर वह बाष्पीभूत हो गया। सागरजल तेज की तरह जल उठा।

साधक की देह भी भस्मरूप हो गयी है। अब वहाँ वायु के प्रबल वेग में वह भस्म भी चतुर्दिक् उड़ता जा रहा है। अब साधक की देह है ही नहीं। वह शब्दरूप से अवस्थित है। न तो स्थूल-देह है न जर्जर है। अब साधक का देहरूप कुछ भी शेष नहीं है। सब विलुप्त। साधक शेषतत्त्व आकाश के सूक्ष्म रूप शब्दरूपेण अवस्थित है। यही है उसका मन्त्ररूप। यह हो गई स्थूल भूतशुद्धि।

पञ्चतत्त्वात् भवेत् सृष्टिस्तस्मात् तत्त्वं विलीयते।
पञ्चतत्त्वात् परं तत्त्वं तत्त्वातीतं निरञ्जन॥

साधारण साधक पूजा पद्धति-निर्दिष्ट मान्त्रिक भूतशुद्धि करते हैं। 'ॐ ह्रौं' का १०८ जप करके वे भूतशुद्धि सम्पन्न कर लेते हैं।

सूक्ष्म भूतशुद्धि—साधारण साधक सामान्य भूतशुद्धि को केवल मन्त्र से ही साधित मानते हैं, कोई इसके साधारण अर्थ को ही लेते हैं। उच्चाधिकारी लययोगी साधकगण की इस क्षेत्र में जो उपलब्धि है, उसे सङ्क्षिप्तरूपेण कहता हूँ।

स्वाङ्के उत्तानौ करौ कृत्वा हंसः इति मन्त्रेण कुण्डलिनीं जीवात्मानं वैलोम्येन चतुर्विंशतितत्त्वानि (लयानि) विभाव्य च सुषुम्नावर्त्मना शिरोऽवस्थिते परमात्मनि परमशिवे संयोज्य 'ह्रीं'कारं रक्तवर्णं नाभौ ध्यायेत्, पूरकेण तस्य षोडशवारजपेन तदुद्भूतेन अग्निना लिङ्गशरीरं सन्दह्य स्त्रीकारं पीतवर्णं हृदि चिन्तयन् कुम्भकेन तस्य चतुःषष्टिवारजपेन, तदुद्भूतेन वायुना भस्म प्रोत्सार्य हुंकारं श्वेतवर्णं शिरसि ध्यायेत्, रेचकेन तस्य द्वात्रिंशद्वारजपेन, तदुद्भूतेन अमृतेन तदस्थि प्लावितं कृत्वा समस्तं अपगतव्यथं विश्वं शरीरमाप्लावयेत्। तत आत्मानं अपगतव्यथं निर्मलं देवताभेदेन चिन्तयेत्।

अन्य एक प्रकार का सङ्क्षिप्त भूतशुद्धि-मन्त्र है—

ॐ (मूलमन्त्र) भूतशृङ्गाटाच्छिरः सुषुम्नापथेन जीवशिवं परमशिवपदे योजयामि स्वाहा।

ॐ यं लिङ्गशरीरं शोषय शोषय स्वाहा।

ॐ रं सङ्कोचशरीरं दह दह स्वाहा।

ॐ परमशिव सुषुम्नापथेन मूलशृङ्गाटमुल्लसोल्लसज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल सोऽहं हंसः स्वाहा।

अनेक की यह धारणा है कि इनका केवल पाठ करना चाहिये। लेकिन केवल पाठ नहीं करना है। इसका तात्पर्य यह है कि ॐ (मूल मन्त्र) भूत शृङ्गाटाच्छादित अर्थात् ॐ मूलाधारकमलस्थ पञ्चभूत के समष्टिभूत शृङ्गाट से लेकर सहस्रार-पर्यन्त। शृङ्गाट अर्थात् सिंघाड़ा। वह जैसे त्रिकोण होता है, उसी प्रकार यह त्रिकोण यन्त्र मूलाधार के मध्य में स्थित है। जैसे सिंघाड़े में दोनों पार्श्व में दो कांटे होते हैं तथा त्रिकोण वाला काँटारहित

हिस्सा पौधे से युक्त रहता है, वैसे ही मूलाधार में भी दोनों ओर इड़ा-पिङ्गला नाड़ी वैद्युतिक आकर्षण-विकर्षण के रूप में स्थित है। लेकिन तृतीय कोणरूप अङ्ग सुषुम्ना से उसी प्रकार संयुक्त है, जैसे सिंघाड़ा पौधे से जुड़ा रहता है। यह सुषुम्ना शिरोदेशस्थ सहस्रदल-पर्यन्त गयी है। 'स्वाहा' ब्रह्म की शक्ति है। इसी से होम होता है। होम में आचार्य (होता) होते हैं, जो प्रधानरूपेण अग्नि में आहुति देते हैं। दूसरे होते हैं—अध्वर्यु, जो ऋत्विक्‌गण के प्रधान सदस्य होते हैं तथा यज्ञविधि के ज्ञाता एवं यज्ञ के भ्रमसंशोधक होते हैं। तीसरे हैं—ब्रह्मा, जो प्रत्येक देवता के लिये उपयुक्त मन्त्र का उनके नाम के साथ आहुति में प्रेरक होते हैं। उद्‌गाता, जो वेद अथवा तन्त्र पढ़ते हैं। ग्रन्थ देखकर उच्चारण के साथ कार्यसाधन (यज्ञ, होम में) करते हैं।

यह कुछ विषयान्तर होगा। अब तक 'आत्मतत्त्वाय स्वाहा' का वर्णन करने के पश्चात् विद्यातत्त्वाय स्वाहा का प्रसङ्ग पुनः प्रारम्भ किया जाता है। द्वितीय आचमन है—'ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा। विद्या तत्त्व अर्थात् वह्निशक्ति स्वाहा के संयोग से यह परिणति। विद्या का अर्थ है—ज्ञानशक्ति, प्रकृतिरूपा माता। वे ही मुक्तिदायिनी हैं। उनकी कृपा के विना 'शिवतत्त्व' (पुरुष अथवा पितृतत्त्व) हृदयङ्गम नहीं होता। यह विद्यारूपिणी माँ मूलाधार में अवस्थित होकर शक्तिरक्षा करती हैं। यह कुण्डलिनी ही है। इसे उद्‌बोधित करके जीवात्मा को इससे संयुक्त करना होगा, तब जो 'आत्मतत्त्वाय स्वाहा' था, वही विद्यातत्त्व हो जायेगा।

आचमन का अन्तिम (तृतीय) मन्त्र है—शिवतत्त्वाय स्वाहा। यहाँ भी अग्निशक्ति 'स्वाहा' के सहयोग से विद्यारूपेण परिणत होकर साधक की विद्याशक्ति को अन्तिम ज्ञेय वस्तुरूपेण परिणत कर देती है। सहस्रदल में जो शिवबिन्दु अथवा परमात्मबिन्दु है, वह मूल व्यापक आमित्व के रूप में निर्लिप्ततः विद्यमान रहता है। वही है—शिवतत्त्वाय स्वाहा। यही आचमन का शेष लक्ष्य है। यह है—त्रितय साधन। साधक को दृढ़सङ्कल्प होकर इसमें अग्रगामी होना चाहिये। यह साधना के प्रथम सोपान से लेकर अन्तिम सोपान-पर्यन्त का एक रेखाचित्र आचमन मन्त्र रूप में कहा गया है। अब गुरु देवता आदि का नमन करके जलशुद्धि करनी चाहिये।

जलशुद्धि—अङ्कुशमुद्रा द्वारा पूजा के जल पर (अङ्गुली से) ▽ अङ्कित करके यह पढ़ना चाहिये—

ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

अब पूर्वोक्त तरीके से सूर्यमण्डल से तीर्थ का आवाहन करना चाहिये। उपर्युक्त श्लोक पढ़कर अङ्कुशमुद्रा द्वारा तीर्थावाहन किया जाता है। तदनन्तर कृताञ्जलिबद्ध होकर सूर्यदेव की प्रार्थना करनी चाहिये—

ॐ ब्रह्माण्डे यानि तीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे ।
तेन सत्येन मे देव तीर्थं देहि दिवाकर ॥

तदनन्तर गङ्गा का आवाहन करना चाहिये—

ॐ आवाहयामि त्वां देवि स्नानार्थमिह सुन्दरि ।
त्राहि गङ्गे नमस्तुभ्यं सर्वतीर्थसमन्विते ॥

तदनन्तर मूल मन्त्र से इसको 'जलतत्त्वमुद्रा' द्वारा तीन बार भूमि पर तथा सात बार मस्तक पर छिड़कना चाहिये । सन्ध्या आदि के समय अङ्गुली (जल-मार्जन) में कुश अथवा त्रिलौह की अङ्गूठी पहननी चाहिये । अब मूल मन्त्र अथवा बीजमन्त्र से प्राणायाम करके पूर्ववर्णित नियम से करन्यास तथा हृदयादि छः अङ्गों का न्यास करना चाहिये ।

अब अघमर्षण क्रिया करनी चाहिये । बाँयें हाथ के करतल में जल लेकर दाहिने हाथ द्वारा उसे ढ़ककर तथा 'हं यं रं लं वं' मन्त्र से ईशान, वायु, वरुण, इन्द्र तथा अग्नि इन पञ्चदेवता के पाँच बीजमन्त्रों का तीन बार उच्चारण करके तथा उस जल से अभिमन्त्रित करके वाम कराङ्गुलियों के बीच से गिर रहे बिन्दु-बिन्दु जल से पूर्वकथित तत्त्वमुद्रा द्वारा सात बार अपने मस्तक पर छींटा देना चाहिये । अब बाँयीं हथेली पर जो जल है, उसे दाहिने हाथ की हथेली पर ड़ाल कर उस जल पर यह भावना करनी चाहिये कि वह जल अग्नि-बीजात्मक अथवा तेजोमय हो गया है । यह भावना करके 'वं' मन्त्र से इड़ा नाड़ी (वाम नासिका छिद्र) से मस्तक को ऊँचा करके उसमें प्रवेश कराना चाहिये तथा यह भावना करनी चाहिये कि उसके द्वारा देह का समस्त पाप धुल गया है । तदनन्तर मस्तक को पीछे की ओर हिलाकर क्रम से घुमाकर दाहिनी ओर झुकाने पर पिङ्गला नाड़ी (दाहिनी नासिका) से जो बिन्दु-बिन्दु जल (जो नासारन्ध्र में जाने से तनिक उष्ण हो गया है) गिर रहा हो । (उस गिरते जल को) उसे ग्रहण करके उस जल को भीतर में कृष्णवर्ण पाप-स्वरूप बाहर आ रहा है, यह भावना करके किसी पत्थर की शिला पर 'फट्' मन्त्र का उच्चारण करके फेंक देना चाहिये । यही है—अघमर्षण क्रिया ।

यह स्मरण रखना चाहिये कि यह पापपुरुष ही महिषमर्दिनी, दुर्गा, काली तथा बगला आदि देवी के ध्यान में असुररूप है, जिसको देवीमूर्त्तियों में वध करते दिखलाया जाता है । असुरवध का कार्य देवी के वाम पार्श्व में किया जाता है । माँ भवानी दाहिने हाथ में अस्त्र धारण करके बाँयीं ओर स्थित इस असुर का वध करती हैं ।

तन्त्रों के अनुसार यह पापपुरुष अङ्गुष्ठ परिमाण वाला, घोर कृष्णवर्ण, क्रोधन स्वभाव का है । इसके केश, श्मश्रु तथा नेत्र रक्तवर्ण हैं । यह बाँयीं कोख में अधोमुखी होकर अङ्गुष्ठ प्रमाणवत् अवस्थित रहता है । इसके विनाशोपरान्त हाथों को धोकर पुनः पूर्ववत् आचमन करना चाहिये । तदनन्तर शास्त्रानुसार तर्पण करना चाहिये ।

तर्पण—यह शास्त्रोक्त स्नान का ही अङ्ग है। स्नानोपरान्त जो तर्पण न कर सके अर्थात् जो स्नान किसी कारण से नहीं कर सकता, उसे मन्त्रस्नानोपरान्त सन्ध्यादि के साथ तर्पण करना चाहिये। प्रत्येक सन्ध्या के समय तर्पण नहीं किया जाता। केवल प्रातःसन्ध्या अथवा मध्याह्नसन्ध्या के समय ही तर्पण प्रदान करना चाहिये। इसे चतुःश्रेणी में विभक्त करते हैं—देवता-तर्पण, ऋषितर्पण, पितृतर्पण, गुरु इष्टदेवता-तर्पण। यह पशु, वीर (दक्षिण-वाम) तथा दिव्याचार के अनुसार पृथक्-पृथक् है। सामान्य विधि यह है कि वाम हाथ से तत्त्वमुद्रा बनाकर अङ्गुष्ठ तथा अनामायुक्त अङ्गुलिद्वय के मध्य के छिद्र से दक्षिण हाथ पर जो जल गिरे, उसे ताम्रकुण्ड में मन्त्र के साथ गिराना चाहिये। मन्त्र है—ॐ देवांस्तर्पयामि नमः। ॐ ऋषींस्तर्पयामि नमः। ॐ पितॄंस्तर्पयामि नमः।

अब गुरुमण्डली का तर्पण करना चाहिये। पहले पूर्वकथित गुरुपादुका मन्त्र से अथवा केवल गुरुबीज 'ऐं' से एक-एक मन्त्र पढ़कर यथाविधि तर्पण करना चाहिये। जैसे—सशक्तिक गुरु श्रीअमुकानन्दनाथ श्रीअमुकीदेव्यम्बाश्रीपादुकां तर्पयामि नमः। यहाँ अमुकानन्द के स्थान पर गुरु का नाम लिखे। श्रीअमुकी के स्थान पर इष्टदेवी का नाम लिखे। इसी प्रकार से—'परमगुरुं तर्पयामि नमः। परापरगुरुं तर्पयामि नमः' कहकर 'परमेष्ठिगुरुं तर्पयामि नमः' कहना चाहिये। तदनन्तर 'दिव्यौघगुरुं तर्पयामि नमः, सिद्धौघगुरुं तर्पयामि नमः, मानवौघगुरुं तर्पयामि नमः' कहना चाहिये।

अब अपने अभीष्ट देवता का तर्पण करना चाहिये। इसके लिये पहले देवता का बीजमन्त्र लगाकर कहना चाहिये 'साङ्गायाः सावरणायाः सायुधायाः सपरिवारायाः सवाहनायाः अमुकभैरव (यहाँ अपने अभीष्ट देवता के भैरव का नाम लगाना चाहिये) सहितायाः श्रीअमुकीदेव्याः (देवी का नाम जो इष्टदेवी हों) श्रीपादुकां तर्पयामि स्वाहा'। यह तर्पण तीन बार करना चाहिये।

यहाँ विभिन्न देवीगण देवगण के भैरव का नाम लिखा जा रहा है। जिसके जो इष्ट हों, उनके भैरव का नाम देकर तदनुरूप भैरव का तर्पण उपरोक्त विधि से करना चाहिये।

दक्षिणकालिका के भैरव — महाकाल।
तारा के भैरव — अक्षोभ्य सद्योजात।
त्रिपुरा के भैरव — कामेश्वर (पञ्चमुख शिव)।
जगद्धात्री के भैरव — नीलकण्ठ शिव।
अन्नपूर्णा के भैरव — दशमुख वाले शिव।
भुवनेश्वरी के भैरव — त्र्यम्बकशिव।
छिन्नमस्ता के भैरव — कालरुद्र (कबन्ध शिव)।
बगला के भैरव — एक मुख वाले महारुद्र।
मातङ्गी के भैरव — मतङ्ग।

कमला के भैरव — विष्णुरूप सदाशिव।
दुर्गा के भैरव — नारद।
अन्यान्य विद्या के भैरव — उनके मन्त्रों के ऋषि।
महालक्ष्मी के भैरव — विष्णु।

सूर्यार्घ्य—तान्त्रिक सन्ध्या सूर्यार्घ्य के बिना सम्पन्न नहीं होती। उनमें ही प्रातः, मध्याह्न तथा सायाह्नभेद से उनकी ब्रह्मशक्ति गायत्री के (उनकी अर्थात् ब्रह्म की शक्ति। यहाँ स्मरण रखना होगा कि सूर्य ही ब्रह्म की सर्वश्रेष्ठ विभूति हैं) तीन रूप सावित्री, गायत्री तथा सरस्वती की उपासना की जाती है। इन त्रिकाल सन्ध्या के अतिरिक्त भी एक सन्ध्या होती है और वह है—तान्त्रिकों की निशासन्ध्या। इस प्रकार से तान्त्रिकों की चार सन्ध्या होती है। अब 'ॐ ह्रीं हंसः मार्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय एषः अर्घ्य श्रीमत्सूर्याय स्वाहा' से सूर्यार्घ्य प्रदान करना चाहिये। काली, तारा आदि दस महाविद्याओं के उपासक को ही उपरोक्त अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। अन्य देवों-देवियों के पूजक हेतु मन्त्र है— 'ऐं ह्रीं हंसः इदमर्घ्यं ॐ श्रीसूर्याय स्वाहा'।

ऐसे ही प्रत्येक सन्ध्याकाल में अर्घ्यदान करना चाहिये। जिनका अभिषेक नहीं हो सका है, उनको 'ॐ नमो घृणिः सूर्य आदित्य इदमर्घ्यं सूर्याय नमः' कहकर अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर सूर्यमण्डलान्तर्गत इष्टदेव को अर्घ्य देना चाहिये; एतदर्थ मन्त्र है—'इदमर्घ्यं सूर्यमण्डलसंस्थायै (अमुक) देवतायै नमः' (अमुक के स्थान पर देवता का नाम कहे)। यहाँ स्मरण रखना चाहिये कि सन्ध्या का अर्थ है—सम् + ध्या = सम्यक् ध्यान। काली के उपासक को पहले अपने देवी काली की गायत्री का उच्चारण करना चाहिये। तदनन्तर कहना चाहिये—'ॐ उद्यदादित्यमण्डलमध्यवर्त्तिन्यै नित्यचैतन्यादित्यायै एषः अर्घ्य श्रीमद्दक्षिणकालिकायै स्वाहा' (सामवेदीगण यहाँ 'एषः अर्घ्यः' के स्थान पर 'इदमर्घ्यं' कहें)। इस मन्त्र से दूर्वा, बिल्वपत्र, रक्तचन्दन, जपापुष्प, अपराजिता पुष्प आदि से जल देकर अर्घ्यः प्रदान करना चाहिये। तारा के उपासक को 'दक्षिणकालिकायै' के स्थान पर 'श्रीमदेकजटायै' कहना चाहिये। अर्थात् जिसकी जो इष्ट देवी हैं, उनका नाम कहकर (दक्षिणकालिकायै के स्थान पर) अर्घ्य प्रदान करना चाहिये।

इस अर्घ्यमन्त्र का तात्पर्य यह है कि जो उदीयमान आदित्य है, उसके मण्डल मध्य-स्थित नित्य चैतन्यरूपा महाशक्ति (देवी का नाम) सतत् विराजिता रहती हैं, मैं उनको ही यह अर्घ्य प्रदान करता हूँ।

तदनन्तर १०८ बार अथवा असमर्थ होने पर १० बार गायत्री मन्त्र का जप करना चाहिये। सभी देवताओं की पृथक्-पृथक् गायत्री होती है। सभी गायत्री में प्रथमतः है— 'विद्महे', द्वितीयतः है—'धीमहि', तृतीयतः है—'प्रचोदयात्'। प्रथम का अर्थ है—जानना अथवा ज्ञान, द्वितीय का अर्थ है—चिन्तन तथा तृतीय का अर्थ है—प्रेरण करना.

परिचालित करना। अर्थात् साधक पहले अपने इष्टदेवता को गुरुमुखादि से जाने, यही है—परोक्ष ज्ञान। द्वितीय अवस्था में उसका चिन्तन करे। तृतीय अवस्था में अपरोक्ष ज्ञानानुभूति हेतु 'प्रचोदयात्' द्वारा सकातर प्रार्थना करे। यही है—शान्ति का उपादानरूप।

जप-समर्पण—जो भी जप किया जाता है, उसे देवी को (इष्ट को) समर्पित कर देना चाहिये; एतदर्थ मन्त्र है—

ॐ गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत् कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादात् महेश्वरि॥

तदनन्तर मूल मन्त्र से प्राणायाम करके उसका यथाशक्ति जप करना चाहिये। गुरु तथा देवता को प्रणाम करके गणेशादि पञ्चदेव का पूजन करना चाहिये। यही है—नित्यपूजा।

पूजा तथा उपासना में भेद

त्रिगुणात्मिका महाप्रकृति में गुणवैषम्य से विश्व-संसार की सभी वस्तु, समस्त भाव, समस्त क्रिया, समुदय घटना अनादि काल से परिगणित तथा परिस्फुटित होती रहती है। उनकी ज्ञान, इच्छा, क्रिया के भेद से अथवा उनके सत्त्व, रज, तम के विभेद से पृथक्-पृथक् भावों के मिलन के अनुसार तथा तदनुगत विभिन्न त्रिविध कर्म के विभिन्न विभाग के द्वारा ही जैसे जीव के चतुर्विध जाति, वर्ण तथा आश्रमादि सृष्ट हुये हैं, तप, कर्म भक्ति उपासना योग तथा ज्ञानादिमूलक साधना भी इसी प्रकार चार-चार श्रेणी में विभागीकृत हुई है। पूजा भी इसी कारण तम, रज तथा सत्त्वगुण के विभेदानुसार त्रिभावयुक्त होकर अर्थात् आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक भाव अथवा लक्ष्य से युक्त होकर यथाक्रमेण पशुभाव, वीरभाव तथा दिव्यभाव की त्रिविध उपासना विधि का प्रथम विकास हो सका है।

हमारे अनादि औपपत्तिक शास्त्र आदि वेदप्रसू त्रिगुणात्मिका ब्रह्मशक्ति महामाया के मुखकमल से निःसृत निगम अथवा वेद भी इसी कारण त्रयी कहलाते हैं। वे गद्य, पद्य तथा गीतिरूपेण प्रकाशित होने के कारण भी त्रयी कहे गये हैं। साथ ही कर्मकाण्ड, उपासना एवं ज्ञानकाण्ड के कारण भी इनको त्रयी कहा जाता है। कर्मकाण्ड का नाम है—वेदब्राह्मण, उपासना काण्ड का नाम है—वेदसंहिता तथा ज्ञानकाण्ड का नाम है—आरण्यक अथवा वेद उपनिषद्। उस वेद का ही क्रियासिद्ध शास्त्र आगम अथवा शम्भुप्रोक्त शाम्भवी विद्यारूपी तन्त्र अर्थात् साधन विज्ञान है, वही है त्रयी अथवा त्रिभावात्मक। निम्न, मध्य, उच्च अथवा तम, रज एवं सत्त्व गुणभेद से इन तीन भावों के शुद्ध एवं मिश्र योगानुसार ही चार प्रकार की पूजा-अर्चना का भेद हो सका है।

वह है यथाक्रमेण तमःगुण अथवा पशुभाव-प्रधान होकर पश्चाचारी पूजा। द्वितीय है—तम-रज-गुणयुक्त अथवा पशु एवं वीर-मिश्रित दक्षिणाचारी पूजा। तृतीय है—रज-

सत्त्वगुण अथवा वीर एवं दिव्य इस मिश्रभाव-प्रधान वामाचारी पूजा। चतुर्थ है—शुद्ध सत्त्वगुण अथवा दिव्यभाव-प्रधान दिव्याचारी पूजा।

यहाँ पूजा में उपासनासमूह का मूल आधार है—पश्वाचार पूजा। यह तमोगुण-प्रधान होकर भी पूर्णत: तमोगुणयुक्त नहीं है। यह उन्नति सत्त्वगुण के ही अन्तर्गत है। अर्थात् यह सत्त्वगुण में आंशिक तमोगुण-प्रधान है अथवा निम्नाधिकार-युक्त है। दक्षिणाचार पूजा तम एवं रज गुणप्रधान होने पर भी सत्त्वगुण के ही अन्तर्गत है। यही नियम वामाचारी तथा दिव्याचारी पूजन में भी समझना चाहिये। यहाँ पूर्ववर्णित नवधा आचार का भी स्मरण करना चाहिये। इस सम्बन्ध में वेदाचार, वैष्णवाचार आदि नव आचारों की विवेचना इस ग्रन्थ में हो चुकी है। तथापि उनका सङ्क्षेप में यहाँ भी वर्णन करना उचित प्रतीत हो रहा है। पशुभावान्तर्गत हैं—वेदाचार, वैष्णवाचार तथा शैवाचार। वीरभावान्तर्गत हैं—दक्षिणाचार (प्रारम्भिक वीराचार), सिद्धान्ताचार तथा वामाचार (अन्तिम वीराचार)। दिव्यभावान्तर्गत हैं—अघोराचार अथवा चीनाचार, योगाचार तथा कौलाचार अर्थात् अवधूताचार।

पशुभाव को अधम मानना कदापि उचित नहीं है। इनकी भी महत्ता है, जिसे पहले कहा जा चुका है। इनका अब पुन: वर्णन समीचीन प्रतीत नहीं होता। यहाँ यह कहना है कि सनातन धर्मावलम्बी साधकगण उपास्य वस्तु को पाँच भागों में विभक्त करते हैं—

१. सच्चिदानन्दमय परब्रह्म—वह शुद्ध सत्त्वगुणप्रधान व्यक्ति के ही एकमात्र अनुभाव्य है।
२. सत्त्वयुक्त रजोगुण-प्रधान के उपास्य अर्थात् देवता, ऋषि तथा पितृगण।
३. सत्त्व एवं रजोगुण-प्राधान्य। सामान्य तमोगुणयुक्त साधक के उपास्य हैं, उन देवताओं के अवतार एवं द्वितीय स्तर के पूर्वकथित ऋषि एवं पितृगण।
४. तमोगुण-प्रधान साधक के उपास्य विषय हैं—भगवान् की क्षुद्र-क्षुद्र शक्तियाँ; जैसे उपदेवता, यक्ष, राक्षस, नायिका आदि।
५. पूर्ववर्णित चारो स्तरों से अतिनिम्नस्तरीय स्थूल, जड़ वस्तु ही तामसिक अधिकारी के उपास्य हैं। वे हैं—औपदैवी शक्ति। इनकी ही प्रच्छन्न लीला उनकी लक्ष्य वस्तु है।

प्रथम श्रेणी के उच्चतम सत्त्वगुण-प्रधान साधक की उपास्य वस्तु जो ब्रह्मवस्तु है, वही सत्त्वगुण के अन्तर्गत त्रिविध अणु-विभाग के अनुसार यथाक्रमेण प्रथम, द्वितीय, तृतीय स्तर के भागत्रय में विभक्त है। प्रथम श्रेणी के उच्चतम साधक के लिये उनके शुद्धसत्त्वगुण की प्रधानता के कारण निर्गुण ब्रह्म ही एकमात्र उपास्य हैं। लेकिन जब तक इतना उच्चाधिकार नहीं हो जाता, तब तक निर्गुण ब्रह्म की उपासना नहीं की जा सकती। इसीलिये द्वितीय श्रेणी के साधक-हेतु जो सत्त्वगुण के साथ सामान्य रज:युक्त (रजोगुण-

युक्त) होते हैं, ऐसे उच्चस्तरीय साधक हेतु सगुण ब्रह्म की उपासना का निर्धारण किया गया है। उससे भी निम्न में तृतीय श्रेणी का ऊपर वर्णन किया गया है। इस श्रेणी के साधक में सत्त्वगुण तथा रजोगुण के साथ किञ्चित् तमः युक्त रहता है। ये तृतीय श्रेणी के अर्थात् उच्च साधक होते हैं (प्रथम श्रेणी वाले उच्चतम, द्वितीय श्रेणी वाले उच्चतर तथा तृतीय श्रेणी वाले उच्च कहे गये हैं)। ये भगवान् के सगुण रूप के अवतार अथवा लीला-विग्रह की उपासना करते हैं (Direct भगवान् के शुद्ध सगुण रूप की उपासना नहीं कर पाते; अतः अवतार एवं लीलाविग्रह ही इनके उपास्य होते हैं)।

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि जो प्रथम श्रेणी वाले उच्चतम उपासक होते हैं, उनके लिये साधारण पूजा-विधान नहीं है। वे पूजा-विधान से अतीत हैं। द्वितीय श्रेणी तथा तृतीय श्रेणी के साधक ही श्रेष्ठ उपासक (पूजा विधान द्वारा) माने गये हैं।

●

पञ्चदेवता-रहस्य

निर्गुण निराकार परब्रह्म ने भक्त साधकों के हितार्थ साधन को सुकर बनाने के लिये सृष्टि-कर्मात्मक रूप से साकार एवं सगुण पञ्चमूर्त्ति में स्वयं को प्रकाशित किया है। वे हैं—सूर्य, गणपति, विष्णु, महेश्वर तथा शक्ति। इनका उल्लेख वेदों में भी उपलब्ध है। बृहदारण्यक में भी यही कहा गया है कि ब्रह्म मूर्त्त एवं अमूर्त्तरूपेण द्विविध हैं—

द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्त्त चामूर्त्त एव च।

पञ्चदेवता ब्रह्म के मूर्त्त रूप हैं। उनकी अर्चना शास्त्र-विहित है। इनमें से गुरु के निर्णय के अनुसार (किसी एक को) इष्ट बनाना चाहिये। प्रपञ्चमय जगत् में जीव में पञ्चभूतों की मात्रा के तारतम्य के अनुसार जीव की प्रकृति तथा साधक के उपास्य का निर्धारण किया जाता है। इस सम्बन्ध में सगुण ब्रह्म-विश्लेषण के द्वारा पूज्य ऋषिगण ने जिस गम्भीर गवेषणा का तथा ज्ञान-विज्ञान का परिचय दिया है, वह बुद्धि को स्तम्भित कर देता है। संसार से मोह-विरहित होकर तथा सम्पूर्ण अनासक्त भाव से उन्होंने जिस अनिर्वचनीय साधनसिद्धान्त का आविष्कार किया है, उसके सम्बन्ध में आज चिन्तन की भी शक्ति शेष नहीं रह गयी है। मनुष्य में कब यह योग्यता आ सकेगी, कोई नहीं कह सकता। जगत् सृष्टि तथा क्रमोन्नति के पथ पर पञ्चतत्त्व की परिपुष्टि के प्रभाव में सर्वत्र पञ्चतत्त्व ही आधार है। समय पर ये पञ्चतत्त्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश) जब लय को प्राप्त हो जाते हैं, तब सृष्टि विलीन हो जाती है।

जीव लौकिक जगत् में स्थूल पञ्चतत्त्व में ही जन्म लेता है। जब पञ्चतत्त्व-प्राप्ति हो जाती है तब उसकी मृत्यु हो जाती है। जीव के जन्म लेकर भूमिष्ठ होने पर उसे मातृस्तन से जिस अमृतमय रसबिन्दु का पान करने को मिलता है, वह भी पञ्चतत्त्व-युक्त है। यहाँ तक कि प्रपञ्चमय मानव देह में हाथों द्वारा ही समस्त वस्तु-ग्रहण का कार्य होता है, वह भी पञ्च अङ्गुलियुक्त है। जिन पैरों से दिग्दिगन्त में विचरण किया जाता है, उसमें भी पाँच ही अङ्गुलियाँ हैं। कर्म इन्द्रियाँ पाँच हैं, ज्ञानेन्द्रियाँ भी पाँच ही हैं। तन्मात्रा भी पाँच ही हैं। शरीर भी पञ्चकोषयुक्त है। इन सबके कारण हैं—पञ्चतत्त्व के अनुकूल पञ्चदेव। तभी तो पञ्चोपसाधना हेतु पञ्चायतनी दीक्षा के साथ स्थूल पञ्चोपकरणों में आचमन पात्र, पञ्चपल्लव, पञ्चशस्य, पञ्चगव्य, पञ्चरत्न तथा पञ्चोपचार, पञ्चग्रासादि मुद्रा द्वारा नैवेद्य दान, शङ्खादि पञ्चवाद्य पूजान्त में बजाना, उन्हें पञ्चघोष के साथ बजाना, पञ्चप्रदीप आदि से उनकी (देवता) आरती—सभी में पञ्च का समावेश है। मन्त्रसिद्धि-हेतु जपादि पञ्चाङ्ग पुरश्चरण भी निर्दिष्ट है। उच्चावस्था में तो पञ्चाङ्गसेवन, पञ्चाङ्गपुरश्चरण भी कहा जाता है। पञ्चऋक्, पञ्चमहायज्ञ, पञ्चाहुति, योग के पाँच-पाँच अङ्गयुक्त यम-नियम, तपस्या में

पञ्चतप, पञ्चकोश-धारण, तन्त्रसाधना की गुप्त साधना में आसनादि पञ्चशुद्धि, पञ्चपर्व, पञ्चकल्प, पञ्चभूतशुद्धि, पञ्चमकार, पञ्चमुण्ड आसनादि विविध उपाय का उपदेश सदाशिव ने पञ्चानन से दिया है। पञ्चतत्त्व-ज्ञान का विकास होने पर वह साधक को अपरिज्ञात नहीं रहता। यह पञ्च का भारतीय साधना में अपूर्व उदाहरण है।

इसी कारण उपासना में भी पञ्चोपासना का सर्वाधिक महत्त्व है। पञ्चतत्त्व के साधक देह में तारतम्य के कारण ही तदनुकूल पञ्चदेवता में से किसी का वरण करने के अधिकारी हो जाते हैं। यथा—

नभसोऽधिपतिः विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः॥

अर्थात् आकाशतत्त्व-प्रधान साधक के अधिपति विष्णु हैं। अग्नितत्त्व के अधिपति अथवा इष्टदेवता होते हैं—महेश्वरी अथवा शक्ति। अर्थात् जिस साधक में अग्नितत्त्व का आधिक्य होता है, उसके लिये गुरु शक्ति की आराधना का उपदेश देते हैं। वायुतत्त्व का जिस साधक में आधिक्य होता है, उसके लिये सूर्योपासना का नियम कहा गया है। जिस साधक की प्रवृत्ति क्षितितत्त्व-प्रधान होती है, उसके उपास्य हैं—शिव तथा जलतत्त्व-प्रधान वाले के लिये गणपति को इष्ट कहा गया है। इस इष्टविधान द्वारा साधक शीघ्रता से साधनपथ पर अग्रसर हो जाता है।

यहाँ यह कहना है कि पञ्चतत्त्व में से तेज:तत्त्व आनन्द की प्रधानता के कारण सबका केन्द्र कहा गया है। इसीलिये उच्चाधिकारी ब्रह्मज्ञ गुरु किसी भी अधिकार (किसी भी तत्त्व की प्रधानता वाले) युक्त शिष्य को अलौकिक सावित्री मन्त्रस्वरूपा इस आनन्दकेन्द्र से उभय प्रान्त में परिचालित करके तत्त्वातीत परम वस्तु में पहुँचा देते हैं। तेज अथवा शक्ति सभी तत्त्वों में सूक्ष्म अथवा स्थूलभावेन सतत् विद्यमान रहती है। अत: पञ्चदेवों में से चार पुरुषदेवता होने पर भी सभी में शक्तिस्वरूप स्त्री-देवता अद्वितीय रूप से प्रकट रहती हैं। वे ही परब्रह्म की परा प्रकृतिरूप में विश्व में अथवा सर्वदेवताओं में अभिन्नरूपेण एवं ओत-प्रोतभावेन सतत् विराजित रहती हैं। इसीलिये सभी देवताओं का पूजन, यहाँ तक कि साक्षात् मूर्त्त देवता गुरुदेव का पूजन एवं ध्यान सशक्तिक करना पड़ता है। प्रकृत उच्च साधना में सभी को ब्रह्मशक्ति की सहायता से अग्रसर होना पड़ता है। तभी सभी साधक मार्ग वाले शाक्तोपाय का आश्रय लेते हैं। यहाँ तक कि गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय में भी यही तथ्य स्पष्ट होता है—

शाक्त एव द्विजाः सर्वे न शैवा न च वैष्णवा।
उपासते यतस्ते तु गायत्रीं वेदमातरः॥

यह गौड़ीय वैष्णव ग्रन्थ 'हरिभक्ति-विलास' का उद्धरण है। इसका अर्थ है कि सभी द्विज संस्कारयुक्त वेदमाता गायत्री की आराधना करते हैं। प्रत्येक साधक के लिये सन्ध्या

उपासना अपरित्याज्य क्रिया है; क्योंकि यह गायत्री देवी ही प्रत्येक साधक के अभीष्ट देवता का रूप हैं। तभी सृष्टि-स्थिति-लयात्मक देवताओं का अलग-अलग ध्यान न करके उनकी देवशक्ति का ही ध्यान प्रातः, मध्याह्न एवं सायंसन्ध्या में किया जाता है। इसलिये उपासना चाहे जिस किसी से क्यों न की जाय, सभी शाक्तोपासना है। कोई भी केवल शैव नहीं है, केवल सौर नहीं है, केवल वैष्णवादि भी नहीं है।

इसीलिये साधारण दीक्षा अथवा शाक्तादि प्राथमिक अभिषेक प्रदान-काल में भी यही नियम प्रयुक्त होता रहता है। जो भी हो, पञ्चदेवतानुकूल उक्त पञ्चदेवताओं में जो साधक जब अपने द्वारा चुने गये अपने इष्ट की उपासना में प्रवृत्त होता है, तब उसे अपने द्वारा चुने गये इष्ट की विशेष पूजा करने के पूर्व शेष चारो देवताओं की पूजा करके ही इष्टविशेष का पूजन करना चाहिये। ऐसी शास्त्र की व्यवस्था है। यह व्यवस्था न जानने के कारण ही हमारे देश में बहुत दिनों से भीषण साम्प्रदायिक मतद्वन्द्व चला आ रहा है, जो पूर्णतः आधारहीन तथा व्यर्थ है। यह धर्मपथ पर विष का कार्य कर रहा है।

पूर्व में जिस प्रकार से उपासना तथा उपास्य भेद-विषय में जैसे कहा है, वैसे ही मन्त्रयोगी साधक में भी मध्य-निम्न-मध्य तथा उच्च अधिकारभेद से भी श्रेणीविभाग परिलक्षित होता है। आजकल साधक अपने पञ्चतत्त्व के अनुसार निर्णीत इष्टदेवता को शेष चारो देवताओं से श्रेष्ठ मानता है तथा अन्य देताओं को अप्रधान मानते हुये उनकी निन्दा भी करता है। यद्यपि साधना की प्राथमिक स्थिति में अपने इष्ट के प्रति निष्ठा-वृद्धि के लिये अपने इष्ट को श्रेष्ठ माने—ऐसा शास्त्रादेश है, किन्तु यथार्थ शिक्षा तथा उदार उपदेशों के अभाव में साम्प्रदायिक द्वेष ही बढ़ रहा है। जो यथार्थ गुरु के शरणागत शिष्य हैं, वे उक्त साम्प्रदायिक निन्दावाद से दूर रहकर साधन-सोपान पर आरोहण करते रहते हैं। ऐसे साधक बुद्धि (ज्ञान), तेज (प्रकाश), सत् (सत्य), चित् (चैतन्य), आनन्दरूप पञ्चसत्ता का आश्रय लेकर उक्त पञ्चदेवता गणेश, सूर्य, शिव, विष्णु तथा शक्तिरूप मूर्त्तियों में अभिन्नता का अनुभव करते रहते हैं। ऐसे साधक इन सभी देवताओं में से प्रत्येक में अपनी ही इष्टदेवता की शक्ति अथवा प्रभाव का कुछ न कुछ अनुभव कर ही लेते हैं। उनके लिये कोई भी देवता निन्दनीय नहीं होता।

सगुण ब्रह्मोपासना (पञ्चदेवोपासना) भी निर्गुण उपासना का ही क्रमोन्नत सोपान है। यदि कोई तत्त्वप्रधान साधक अपने प्रथम इष्ट-साधना काल में उक्त पञ्चदेवताओं में से एक का प्रधान अथवा मुख्य रूप से वरण करता है तब भी उसे अन्य की गौण रूप से पूजा अवश्य करनी चाहिये; यही नियम है; क्योंकि साधकदेह का भी यही नियम है अथवा सभी देहों का यही नियम है। जैसे जो देह अग्नितत्त्व-प्रधान है, उसमें अग्नितत्त्व मुख्य होगा, लेकिन शेष चारो तत्त्व भी अप्रधानरूपेण उस देह में कार्य करेंगे; अन्यथा शरीर नष्ट हो जायेगा। अतः एक देवता की प्रधानरूपेण पूजा करके शेष चार की भी गौण पूजा करनी

ही होगी। उसे एक मुख्य देवता को केन्द्र में रखकर अन्य को भी समसूत्र में समीपवर्ती करना ही होगा। तभी सगुण ब्रह्म-निर्दिष्ट देवतापञ्चक की साम्यावस्था साधित होगी। जिसे जिस वस्तु का जितना अभाव है, उसे वह उतना पूरा करना ही होगा। अत: जिसमें जो तत्त्व प्रधान है, उसकी समता साधित करने के लिये तदनुगत निर्दिष्ट दैवी शक्ति द्वारा उसे दमित करके अन्य साधारण के साथ समान कर ही लेना होगा। तभी साधक को इन पाँचों में से एक का इष्टरूपेण वरण करके अन्य चारो के साथ उसका समता-साधन करने के लिये तदनुगत दैवी शक्ति द्वारा उसका सामरस्य साधित करना होगा। यही सनातन साधना का गूढ़ रहस्य है। इससे साधक के सूक्ष्म शरीर में पञ्चतत्त्वों की साम्यावस्था होती है। तभी साधक कारण-शरीर के स्वरूप को प्रत्यय कर सकेगा और तभी उसकी निर्गुण उपासना का द्वार उन्मुक्त होगा।

इसी कारण शास्त्रों में पञ्चायतनी दीक्षा की अपूर्व व्यवस्था कही गयी है। पञ्च-देवताओं में से जिस देवता को गुरु साधक को इष्टरूप में वरण कराते हैं, उस देवता के यन्त्र का अङ्कन करके, उस यन्त्र पर उस देवता की घट-स्थापना की जाती है तथा चतुर्दिक् अन्य चारो देवताओं का यन्त्र अङ्कन करते हैं। इसी घट में पाँचों देवताओं की पूजा करनी पड़ती है। तदनन्तर घट-मध्य में मुख्य इष्टदेवता की पूजा करते हैं। यथा—
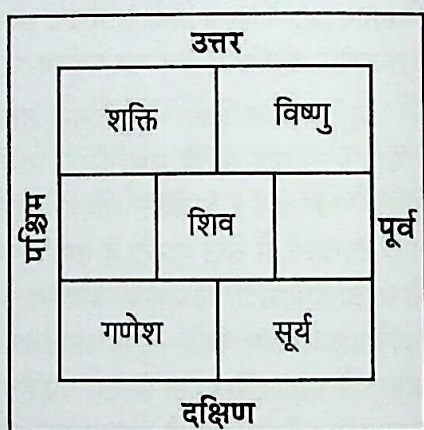
यहाँ शिव मुख्य देवता हैं।
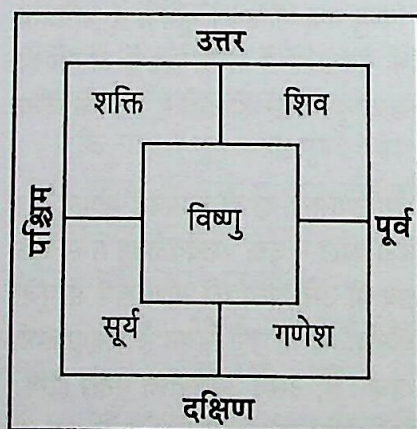
यहाँ विष्णु मुख्य देवता हैं।
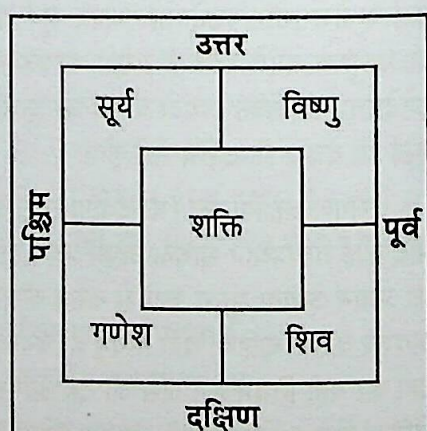
यहाँ शक्ति प्रधान देवता हैं।
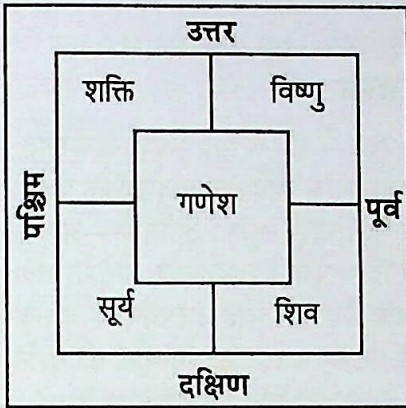
यहाँ गणेश प्रधान देवता हैं ।
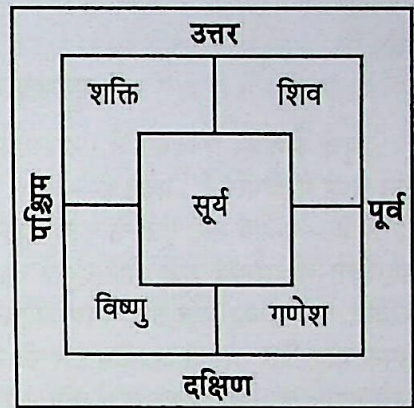
यहाँ सूर्य प्रधान देवता हैं ।

इस प्रकार से साधकगण को अपने मुख्य इष्टदेव को बीच में रखकर चारो ओर अन्य (पञ्चदेव में से) देवताओं को स्थापित करके पूजन करना चाहिये । ऐसा करके ही धीरे-धीरे क्रमोन्नत होने पर वे इनके अभेद को समझ सकेंगे । यदि साधक के इष्टदेवता इनसे अतिरिक्त हैं, तब भी उसे इनका पूजन करना ही चाहिये ।

पूजाक्रम-रहस्य

पूजा श्रेणीत्रय में विभक्त है। मन्त्रसाधना में प्रथम से शेष-पर्यन्त पूजांश साधारणत: तीन श्रेणी में विभक्त है। प्रथम है—केवल मन्त्रोच्चारण से साधारण आनुष्ठानिक पूजा। द्वितीय है—मन्त्रार्थ तथा पूजा के तात्पर्य ज्ञानयुक्त सूक्ष्म रहस्य-पूजा। तृतीय है—अव्यक्त सत्-चित्-भावसम्पन्न शुद्ध आनन्दयुक्त सूक्ष्मतम दिव्य पूजा। साधकमात्र क्रमोन्नत तथा अविरत साधना का फल उस समय अनुभव करता है। जैसे कोई अल्पवयस्क बालक अपने माता-पिता अथवा आत्मीय गण की गोद में बैठकर कालीघाट जगन्माता का दर्शन करने गया। तब उसे अधिक बुद्धि वृत्ति नहीं थी। उसने देखी मूर्त्ति। नाम सुना माँ काली। उसके कोमल हृदय में माँ का विकराल रूप अङ्कित हो गया। इससे अधिक कोई तत्त्व वह नहीं समझ सका। जब बड़ा हो गया, तब अपने बन्धु-बान्धवों के साथ कालीघाट गया। उसकी बाल्यवृत्ति जाग्रत हो उठी। इस बार भी माँ को देखा। पूजा-भोगादि, बलिदान स्थल, बाजार, गङ्गाघाट, पुजारी-पण्डा, ब्राह्मण, भिखारी को देखा। तब उसके मन में देवी का माहात्म्य सुनकर उसका हृदयाकाश उद्भासित हो उठा। तृतीय बार वह माँ के दर्शनार्थ गया। तब तक और प्रौढ़ मस्तिष्क हो गया था। माँ का करालवदन, खड्ग व मुण्डादि सब देखा। अब माँ के वराभय-युक्त करद्वय के ऊपर एक नूतन भाव पर सहसा उसकी दृष्टि पड़ी। उसे प्रतीत होने लगा कि माँ केवल भयावह स्थूलरूपेण विराजिता नहीं हैं। वे अपने शरणागत, दीन, आर्त्त भक्तगण के प्रति करुणामयी हैं। उनके लिये सर्वदा तत्पर हैं। वे स्नेहभरे स्वर में अपने पास आने के लिये आह्वान कर रही हैं। संसार-पीड़ा से परित्राणार्थ अभय प्रदान कर रही हैं।

इस प्रकार वह माँ के बाह्य रूप के अन्तराल में न जाने कितने प्रकार की अलौकिक अभिव्यक्ति का अनुभव करने लगा। उसने बाल्य, यौवन तथा प्रौढ़ अवस्था के त्रिविध भाव के जो दर्शन किये थे, उससे उसे तीन प्रकार की विभिन्न अभिज्ञता का लाभ मिला था। यही हैं—मन्त्रयोग के क्रमोन्नत साधना के तीन सरल पथ। इन त्रिविध श्रेणी की पूजा के प्रति लक्ष्य रखकर अब पूजाविधि को समझकर अपने अधिकार के अनुसार कार्य करना चाहिये।

पूजा साधारणत: तीन प्रकार की होती है—नित्य पूजा, नैमित्तिक पूजा तथा काम्य पूजा। दीक्षा के उपरान्त साधकमात्र यथाशक्ति इष्टदेव का पूजन करते हैं। वह है—नित्य पूजा। यहाँ यह कहना है कि अभिषिक्त साधकों की तान्त्रिक सन्ध्या के ही समान काली आदि देवता की पूजा में भी अशौचादि प्रतिबन्ध नहीं होता (मन्त्रों का जननाशौच-मरणाशौच नहीं होता)। इसका कारण यह है कि अब साधक उन्नत-ज्ञान प्राप्त होता है। उसके हृदय में अशौच-भाव का स्थान ही नहीं होता।

नित्यपूजा—पूर्व में उपासनाभेद से पूजा के त्रिविध भाव का क्रम कहा गया है।

जैसे—पशुभाव, वीरभाव, दिव्यभाव। इन तीन भावों से नित्यपूजा की जाती है। पश्वाचारी को दिन में ही सामान्यतः पूजन करना चाहिये। अर्थात् रात्रि में पूजा का अनुष्ठान नहीं करना चाहिये। तब भी नैमित्तिक आदि पूजा अथवा नित्य पूजा दिन में करने में असमर्थ होने पर रात्रि के प्रथम प्रहर में उसकी व्यवस्था कर सकते हैं। वीरभाव की नित्यपूजा रात्रि में ही प्रशस्त होती है। दिव्य भाव की नित्यपूजा भी रात्रि में ही उचित होती है।

नैमित्तिक पूजा—विशेष-विशेष समय में जैसे प्रत्येक वर्ष में कार्त्तिकी अमावस्या तिथि में रात्रि के समय महानिशा में माँ की नैमित्तिक पूजा की जाती है। इस तरह की श्रीकृष्ण अष्टमी, शिवरात्रि, दुर्गापूजा, चैत्र नवरात्रपूजा, गणेशचतुर्दशी पूजा आदि पूजा को नैमित्तिक पूजा कहते हैं।

काम्य पूजा—रोग, शोक, दुःख, दरिद्रता, भय, विपत्, आपद तथा ग्रहदोष-शान्ति, लौकिक उन्नति अथवा विपदा-मुक्ति हेतु जो पूजा की जाती है, वही होती है—काम्य पूजा। साधकगण किसी कामना के लिये जो पूजा करते हैं, वह काम्य पूजा कहलाती है।

नित्य, नैमित्तिक, काम्य—इन सबमें आचमनादि प्रथम कर्त्तव्य होता है। तदनन्तर 'जलशुद्धि' अथवा सामान्यार्घ्य-स्थापन, आसनशुद्धि, गुरु-प्रणाम, विघ्नापसारण, प्राणायाम, करन्यास, अङ्गन्यास, गन्धादि-अर्चन, शिव तथा गणेशादि पञ्चावतार-अर्चन, नवग्रह एवं दिक्पालादि सर्वदेव-देवी का पूजन करना होता है। पूजक इसे अपने सामर्थ्यानुसार सङ्क्षेप अथवा विस्तार से कर सकता है। जैसे आचमन से आसनशुद्धि, तदनन्तर वाम में गुरुमण्डली, दक्षिण में गणेश, ऊर्ध्व में ब्रह्मा, अधोदिक् में अनन्त, पीछे क्षेत्रपाल, दिक्पालगण, योगिनीगण, सम्मुख में गणेशादि पञ्च उपास्य देवता, अन्त में इष्टगुरु अथवा अभीष्ट देवता तथा सामने गणेशादि पञ्चदेवता, अन्तर में इष्टगुरु तथा सर्वत्र परमात्मदेवता की मन ही मन स्थापना करनी चाहिये। यही मन्त्रयोगी साधक के साधनसमर की व्यूहरचना या साधनचक्र की स्थापना होती है। तत्पश्चात् विघ्नापसारण एवं दिग्बन्धन कार्य से आत्मदुर्ग के दृढ़ता की स्थापना की जाती है। अब साधक को प्रत्येक कार्य अधिक मनोयोग से करना चाहिये। अब भी किसी प्रकार का साधन-विघ्न होने पर गुरु तथा देवता से सकातर सहायता की प्रार्थना करनी चाहिये।

साधक को कभी भी भक्ति-विश्वासरहित नहीं होना चाहिये। शिववाक्य के प्रति संदिग्ध नहीं होना चाहिये। साधक कभी भी भक्ति-विश्वासरहित न हो। इससे वह साधन-समर में विजयलाभ कर लेगा। कठोर साधनाभिलाषी साधकगण में से कोई-कोई देवीपूजन तीन बार करते हैं। जो इतना नहीं कर सकते, वे दो बार पूजन करते हैं। अथवा जो इतना भी नहीं कर सकते, उन्हें कम से कम नित्य एक बार मात्र पञ्चोपचार से पूजा करनी चाहिये। संक्रान्ति, अमावस्या-प्रभृति पर्वों पर अवश्य पूजा करनी चाहिये। जो स्वयं पूजा में असमर्थ हो, उसे चाहिये कि पूजा में यथासाध्य पुष्पादि का संग्रह करके पूजा के आयोजन में सहायता करे। इसमें भी असमर्थ होने पर अन्य की पूजा का दर्शन करने पर

भी वह पूजाफल पा जाता है। असमर्थ होने पर पाँच प्रकार पूजन की शास्त्रविधि है। यथा—साधनाभाविनी, त्रासी, दौर्विधी, सौतकी, आतुरी।

साधनाभाविनी पूजा—यदि पूजाद्रव्य का अभाव हो तब केवल जल से ही मन ही मन पूजा के वस्तु की भावना करके पूजा करनी चाहिये।

त्रासी पूजा—किसी प्रकार का भय होने पर यथालब्ध, जो कुछ मिल जाय उसी से अथवा मन ही मन अभीष्ट देवता का पूजन करना चाहिये।

दौर्विधी पूजा—पूजादि का ज्ञान न होने पर जैसे बोधहीन बालक, अज्ञ वृद्ध अथवा कोई भी नर-नारी जैसे भी हो, भक्ति से अभीष्ट देवता का पूजन करे।

सौतकी पूजा—अशौचावस्था होने पर मन ही मन स्नानोपरान्त सन्ध्या करके मन ही मन पूजन करना चाहिये; लेकिन अभिषिक्त साधक के लिये तो कभी भी अशौच नहीं होता। उसके लिये सौतकी पूजा विहित नहीं है।

आतुरी पूजा—पीड़ित-आतुर व्यक्ति के लिये स्नान-पूजा करना सम्भव ही नहीं होता। उसके लिये देवमूर्त्ति अथवा सूर्यमण्डल की ओर देखकर मात्र एक पुष्प निवेदन करना ही यथेष्ट होता है।

सन्ध्या-पूजादि में असमर्थ होने पर नित्य मूल मन्त्र का १०८ बार जप करना चाहिये। बहुत दिन व्यवधान हो जाने पर १००८ बार मूल मन्त्र जप द्वारा प्रायश्चित्त करना चाहिये।

पूजागृह-प्रवेश—शिव द्वारा कही गयी पूजा-विधि में देखा जाता है कि पूजक देवमन्दिर, पूजास्थान अथवा पूजागृह में प्रवेश के पूर्व जलपूर्ण एक पात्र हाथ में लेकर एकाग्र होकर श्रीगुरु अथवा इष्टदेवता का स्तव किंवा इष्टमन्त्र अथवा श्रीगुरुपादुका मन्त्र का जप करते-करते जलशोधन तथा उससे पूजा-हेतु प्रोक्षणीपात्र को जलपूर्ण करता है। शेष जल द्वारा अपने हस्त-पादादि का प्रक्षालन करता है। तदनन्तर द्वार पर ही सामानार्घ्य-स्थापन करके द्वारदेवता का पूजन करता है। तदनन्तर उस पात्र को हाथ में लेकर यथाविधि गृहप्रवेश करके भूतापसारण एवं पञ्चशुद्धि (पञ्चशुद्धि अर्थात् आत्म, स्थान, मन्त्र, द्रव्य तथा देवशुद्धि) करने के उपरान्त पूजन करता है।

पहले कहा गया है कि स्नान तथा सन्ध्या के पश्चात् पूजा-कार्य प्रारम्भ करे। यदि साधक जलाशय में स्नान करके वहाँ सन्ध्या की सुविधा न होने पर देवगृह अथवा पूजागृह में आकर पूर्वोक्त भाव से प्रात:सन्ध्या एवं मध्याह्न सन्ध्या करता है तब सन्ध्या-हेतु पहले ही से जलशुद्धि, सामान्यार्घ्य-स्थापन, आसनशुद्धि तथा गुरुपूजादि पूर्वानुष्ठान कर लेता है। उसे अब पूजाकार्य-हेतु उन सबका पुन: अनुष्ठान नहीं करना होता। लेकिन पञ्चदेवता का पूजन पूजा प्रारम्भ करते ही पहले सम्पन्न कर लेना चाहिये। अन्यथा उसे इष्टपूजा का अधिकार नहीं होता। साधक के इष्टदेवता चाहे कोई हों, उसे पञ्चदेवपूजन करना ही चाहिये। गन्धर्वतन्त्र में कहते हैं कि साधक यदि असमर्थ है, तब उसे कोई दोष नहीं है। श्रीगुरु तथा इष्ट का स्मरण करने से सभी साधनदोष नष्ट हो जाते हैं।

●

कुण्डलिनी पूजा-रहस्य तथा अजपा-रहस्य

षट्चक्रों में मूलाधार ही सर्वनिम्न चक्र है। यही साधना का प्रथम चक्र कहा गया है। सहस्त्रार चक्र से अनुलोम गति द्वारा जो अलौकिक ज्ञानधारा सदा प्रवाहित हो रही है, वह मूलाधार में आकर लौकिक ज्ञानात्मक हो जाती है। साधक गुरु-दत्त कौशल द्वारा उसे पुन: परिवर्त्तित करके प्रतिलोम गति द्वारा अलौकिक ज्ञानमार्ग सुषुम्ना पथ से ऊर्ध्वोत्थित करता है। यह ज्ञानमार्ग जीव के मेरुदण्ड का आश्रय लेकर सतत् विद्यमान रहता है। मेरुदण्ड के बहिर्देश में बाँयीं ओर इड़ा नाड़ी तथा दाहिनी ओर सूर्याधिष्ठिता पिङ्गला नाड़ी स्थित है तथा मेरुदण्ड मध्यवर्त्तिनी सुषुम्ना नाड़ी त्रिकोणमार्ग तथा त्रितय गुणमयी होकर (सत्त्व, रज: तथा तमोगुणयुक्त होकर) चन्द्र, सूर्य, अग्निमयी त्रिशिरारूपेण अवस्थित रहती है। यह सुषुम्ना नाड़ी प्रस्फुटित धत्तूर-फल के समान शुभ्रवर्ण प्रभा-युक्त होकर मूलाधार पद्ममध्यस्थ त्रिकोण यन्त्र के पीछे किसी बिन्दु से सरलरूपेण मेरुदण्ड के अन्तर्गत मज्जा के मध्य सरस्वती नदी के समान अन्त:सलिला होकर ऊर्ध्व-लम्ब रेखाकार मस्तक-पर्यन्त विस्तृत हो जाती है।

इसके अन्तर्गत वज्रा नामक एक और नाड़ी है, वह स्वाधिष्ठान कमल से सिर-पर्यन्त रहती है। इस वज्रा के मध्य में चित्रा नामक प्रणवयुक्तरूप लूतातन्तु के समान अति-सूक्ष्मा नाड़ी है। यह भी पूर्वोक्त मेरुदण्ड-मध्यस्था सुषुम्ना नाड़ी है, जिससे षट्चक्ररूप साधन पद्म ग्रथित रहते हैं। यह उसी के मध्य वाले छिद्र का भेदन करती हुई ऊर्ध्वोन्मुखीरूपेण दीप्तिमान रहती है। यह ब्रह्मनाड़ी (सुषुम्ना) ही मूलाधार पद्मस्थ स्वयम्भू लिङ्ग के मुख-कुहर से शिरस्थ सहस्त्र दलान्तर्गत परमशिव स्थान-पर्यन्त विस्तृत है। यह विद्युत् माला के समान उज्ज्वल, पूर्ण सुखमयी तथा योगीगण के लिये ब्रह्मसूत्र के समान भासमान रहती है। इसका ध्यान करने से आत्मचिन्ता सिद्ध हो जाती है। इसके मुख को ही योगीवृन्द ब्रह्मद्वार कहते हैं।

मूलाधार कमल शोणपुष्प के समान पीताभ रक्तवर्ण तथा चतुर्दलयुक्त है। इसके चार दल यथाक्रमेण व, श, ष, स अक्षरयुक्त हैं। वे स्वर्ण के समान आभायुक्त हैं। इसके बीच पीतवर्ण चतुष्कोण चक्ररूप पृथ्वीतत्त्व है। वह आठ त्रिशूलों से चतुर्दिक् आवेष्टित है। यहीं से पृथिवी तत्त्व की उत्पत्ति है। इसी कारण इसे वसुमति अथवा लक्ष्मीबीज (लं) का केन्द्र कहा गया है। इस चतुरस्त्र क्षेत्र में ही ऐरावत पर आसीन इन्द्रदेवतात्मक भगवान् अपनी गोद में बालकरूप चतुर्भुज चतुरानन ब्रह्मा को लिये बैठे हैं। ब्रह्मा यहीं स्थित रहकर (व्यष्टि जगत् में) सृष्टिकार्य करते रहते हैं। उनके चतु:शिर से ऋक्, यजु:, साम, अथर्व वेद अथवा तदात्मक वेदप्रसू आदि शब्दब्रह्म 'प्रणव' ध्वनि अविरत प्रकाशित होती रहती

है। यहीं उनकी डाकिनी नामक दैवी शक्ति विद्यमान रहती है। यह योगीगण को अभीष्ट फल प्रदान करती है।

वज्रा नाड़ी मूलाधार कमल की कर्णिका में त्रिकोण यन्त्र 'त्रिपुरा' नाम वाली होकर रक्ताभ तड़ित् वल्लरी के समान उज्ज्वला रहती है। यह अति मनोज्ञ कामरूप विलासप्रद है। इसके मध्य स्थित कन्दर्प नामक वायु, जो रक्तवर्णयुक्त है, सर्वत्र प्रकाशित रहकर जीवात्मा को अपने अधीन किये रहता है। इसके ऊपरी भाग में मृणालतन्तु-सदृश अतीव सूक्ष्म कुण्डलिनी महामाया जगन्मोहिनी रूप से स्वयम्भू शिव को (जो मूलाधार में स्थित है) साढ़े तीन फेरा देकर सर्प के समान पड़ी रहती है। यह यद्यपि विद्युत् के समान उज्ज्वल है, तथापि सर्वदा निद्रित रहती है। लेकिन अपने मुख से पूर्वकथित ब्रह्मद्वार का मुख (प्रवेशद्वार) आवृत किये रहती है और वहाँ से क्षरित अमृतधारा का सतत् पान करती है। यह ही (कुण्डलिनी) तेजस्वती है। यह मूलाधार कमल में रहकर व्यक्त शब्दकरणकारी होकर जीव के प्राणों की रक्षा करती है। यह आत्मप्रवर्त्तिनी होकर परमाकलारूपेण उज्ज्वला है। यही कृपापरवश होकर तत्त्वज्ञानी के समान ज्ञान का विकास कर देती है, उसी प्रकार यह भोगदायिनी होकर भी सर्वोपरि ज्ञानरूप होकर विराजित रहती है।

यहाँ कुलकुण्डलिनी तथा कुण्डलिनी शब्दद्वय में उनके स्वरूप के सम्बन्ध में विशेष भेद है। पद्मवाहिनी तन्त्र में सदाशिव कहते हैं—

कुलं शिव इति प्रोक्तं शक्तिः कुण्डलिनी शिवा।
उभयोः सङ्गमो यत्र कुलकुण्डलिनी तु सा॥

अर्थात् 'कुल' शब्द का अर्थ है—परशिव अथवा शक्तियुक्त परमशिव अथवा शिव-शक्ति। ये हैं—योगशास्त्र-निर्दिष्ट प्रकृतियुक्त अकुल शिव। कुण्डलिनी का अर्थ है—केवल शक्ति अथवा जीव-शिव की शक्ति अथवा जीवनशक्ति। तभी ये शिवा कहलाती हैं। ये मूलाधार-स्थित प्रथम शिव की ही शक्ति हैं। लेकिन जब ये सभी चक्रों का भेदन करके उन्नत भाव से सहस्त्रार-मध्य में परमशिव के साथ सङ्गम करती हैं, तभी ये कुलकुण्डलिनी कहलाती हैं अर्थात् जब ये अकेली हैं, तब कुण्डलिनी हैं। जब शिव के साथ मिलित होती हैं, तब वे कुल-कुण्डलिनी होती हैं।

मूलाधारस्थ कोटिसूर्यवत् दीप्तिशाली उक्त चतुर्दल तथा चतुरस्त्ररूप पृथ्वीचक्र का ध्यान करना चाहिये। इससे साधक बृहस्पति-स्वरूप ज्ञानी तथा सर्वविद्याविनोदित्व प्राप्त करके अरोगी होकर सतत् महानन्दचित्त से अपने काव्यमय वाक्य द्वारा इष्ट तथा गुरुमण्डली का प्रीति-विधान करके उनका आशीर्वाद प्राप्त करता है। तदनन्तर कुण्डलिनी देवी का ध्यान करना चाहिये। यथा—

ॐ ध्यायेत् कुण्डलिनीं सूक्ष्मां मूलाधारनिवासिनीम्।
तामिष्टदेवतारूपां सार्द्धत्रिवलयान्विताम्॥

प्रसुप्तां भुजगाकारां देवीं विचित्रवसनान्विताम्।
शृङ्गारादिरसोल्लासां सर्वदा कारणप्रियाम्॥

आशय यह है कि मूलालाधरस्थ कुण्डलिनी का ध्यान करना चाहिये, जो अतीव सूक्ष्मा, इष्टदेवरूपिणी, निद्रित सर्पिणी के आकार वाली होकर साढ़े तीन फेरों से स्वयम्भू लिङ्ग का वेष्टन करके स्थित हैं। वे करोड़ों विद्युत् प्रभा वाली तथा विचित्र वसन-धारिणी हैं। वे शृङ्गारादि रस से उल्लासयुत तथा सतत् कारणपान करने वाली (कारण = अमृत) तथा उस पान से उल्लसित हैं।

'यं रं' बीज से पवन एवं दहन योग द्वारा 'हुं'कार बीज से गुरूपदिष्ट विधि के अनुसार कुण्डलिनी को चैतन्य करना चाहिये। अर्थात् 'यं' रूप पवनबीज का उच्चारण करके वाम नासिका से वायु को अन्दर खींचकर मूलाधार के निम्न तल में स्थित कन्दर्प वायु को उद्दीपित करना चाहिये। तब यह चिन्तन करना चाहिये कि वायु उद्दीपित हो रही है। तत्पश्चात् 'रं' का उच्चारण करके दाहिने नासारन्ध्र से प्राणवायु को भीतर खींचकर वहाँ पहले से 'यं' बीज द्वारा आकर्षित वायु की सहायता से अग्नि को 'रं' बीज से प्रज्वलित करके वहाँ यही भावना करनी चाहिये।

जो शीतली आदि प्राणायाम के अभ्यस्त हैं, उन्हें इसी प्रकार 'यं रं' बीज का मन ही मन उच्चारण करके वायु का आकर्षण करना चाहिये। वहाँ से वायु उत्तप्त होकर नाभिदेश में जाती है। कुम्भक क्रिया द्वारा उसे कण्ठदेश में बद्ध करने के लिये अपनी ठोढी का स्पर्श वक्ष में (सिर झुकाकर) कराना चाहिये। यही है—जालन्धर मुद्रा। अब वायु अग्निबीज से उत्तप्त होकर नाभि में रक्षित हो जाती है (यही नाभिकमल मणिपूर है)। अब उदर को भीतर की ओर खींचना चाहिये। इससे वायु नीचे मूलाधार में पहुँच जाती है। वहाँ इस उत्तप्त वायु के सम्पर्क के कारण कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत हो उठती है। अब मूलाधार का सङ्कुचन करने के लिये मलद्वार तथा मूत्रद्वार को भीरत की ओर खींचना चाहिये। इससे अपान वायु भी ऊपर की ओर सञ्चरणशील हो जाती है। तभी 'हुं' बीज का उच्चारण करना चाहिये। इससे जागरित कुण्डलिनी ऊपर उठ रही है, यह भावना करनी चाहिये। विश्वास-भक्तियुक्त दृढ़व्रत साधक कुछ दिन की साधना में यह अनुभव प्राप्त कर लेता है कि कुण्डलिनी जागरित हो गयी है। उसने अब ब्रह्मद्वार के मुख का अपना आवरण हटा दिया है। अब गुरु से उपदेश-प्राप्त साधक क्रम से एक-एक चक्र का भेदन करता है और सुषुम्ना ऊपर की ओर यात्रा प्रारम्भ कर देती है।

इसके पश्चात् सहस्रार के अन्तर्गत परमशिव के साथ उसका मिलन हो रहा है, यह सामरस्यपूर्ण भावना करनी चाहिये। इनके सामरस्य से साधक को स्वयं की तेजोमय रूप में भावना करनी चाहिये। इस कुण्डलिनी के ही कारण साधक सोमरस (अमृत) का पान करके सोऽहं मन्त्र से पुनः मूलाधार में कुण्डलिनी को स्थापित करके, वायु-रेचन द्वारा

कुण्डलिनी की भावना इष्टदेवता रूप में करके उसका भावना द्वारा पूजन करता है।

जो अभिषिक्त साधक है, उसके लिये कुण्डलिनी-जागरण तथा उसका पूजन ही है यथेष्ट कार्य। यह सब गुरु के निर्देशानुसार ही करना उचित है। षट्चक्र-भेदन कठिन कार्य है। यह लययोग के ही अन्तर्गत है। यह गुरुकृपा, अपने प्रारब्ध तथा दृढ़सङ्कल्प-युक्त अदम्य साधन द्वारा ही साधित होता है। अपने ज्ञानाभिमान से यह कदापि सम्पन्न नहीं होता। जो भी हो, कुण्डलिनी शक्ति को जागरित करके 'ऐं' मन्त्र द्वारा भावना से मन ही मन गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, पानीय जल, ताम्बूलादि का निवेदन करना चाहिये। यही है—साधारण पूजा।

अतएव 'ऐं' बीज का १०८ बार जप करके यह जप भी कुण्डलिनी देवी को ही समर्पित करना चाहिये। तभी कुडलिनी स्तोत्र को पढ़ना भी लाभप्रद बतलाया गया है। यथा—

ॐ नमस्ते देवदेवेशि योगीशप्राणवल्लभे।
सिद्धिदे वरदे मातः स्वयम्भूलिङ्गवेष्टिते॥
ॐ प्रसुप्ता भुजगाकारे सर्वदा कारणप्रिये।
कामकलान्विते देवि ममाभीष्टं कुरुष्व मे॥
असारे घोरसंसारे भवरोगात् कुलेश्वरि।
सर्वदा रक्ष मां देवि जन्मसंसारबन्धनात्॥

तदनन्तर इस मन्त्र से उन्हें प्रणाम करना चाहिये—

आनन्दरूपां प्रथमप्रयाणे प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमाना।
अन्तःपदव्यामनुसञ्चरन्तीमानन्दरूपामबलां प्रपद्ये॥

चौरगणेश न्यास—गणेश हैं सिद्धिदाता, ज्ञानशक्तिरूप। उनकी पूजा सबसे प्रथम करनी चाहिये। चाहे जो पूजा अथवा उपासना की जाय, सबसे पहले गणेश-पूजन आवश्यक कहा जाता है। गणेश की विमर्शिनी अथवा चौर-नाम्नी शक्ति की सहायता से साधना के विघ्न समाप्त हो जाते हैं। इनके न्यास से इनकी कृपा द्वारा दस अङ्ग शुद्ध हो जाते हैं। यथा—

हृदय पर—	'क्रौं'	बीजमन्त्र का १० बार जप।
दक्षिण नेत्र पर—	ह्रीं ह्रीं	बीजमन्त्र का १० बार जप।
वामनेत्र पर—	ह्रीं ह्रीं	बीजमन्त्र का १० बार जप।
दक्षिणकर्ण—	ह्रीं ह्रीं	बीजमन्त्र का १० बार जप।
वाम कर्ण पर—	ह्रीं ह्रीं	बीजमन्त्र का १० बार जप।
दक्षनासापुट पर—	हुं हुं	बीजमन्त्र का १० बार जप।

वाम नासापुट पर—	हुं हुं	बीजमन्त्र का १० बार जप।
मुखविवर में—	स्त्रीं स्त्रीं	बीजमन्त्र का १० बार जप।
नाभिस्थल पर—	क्लीं	बीजमन्त्र का १० बार जप।
लिङ्गमूल में—	हेसौ:	बीजमन्त्र का १० बार जप।
गुह्य में—	ब्लूं	बीजमन्त्र का १० बार जप।
भ्रूमध्य में—	हुं	बीजमन्त्र का १० बार जप।

इसके अतिरिक्त शिर:प्रदेश में 'ह्रीं स्त्रीं क्लीं' का भी दस बार जप करने का विधान किसी-किसी परम्परा में मिलता है। अब अजपा का विधान है, लेकिन यह अभिषिक्त होने पर भी साधारण स्थिति वाले साधक के लिये नहीं है। यह लययोग के अधिकारी के लिये ही विहित है। तब भी यहाँ अजपा-विधि का वर्णन किया जा रहा है।

अजपामन्त्र-साधन—'हंस:' ही अजपामन्त्र है। इसके सम्बन्ध में सदाशिव कहते हैं—

हंकारः शिवरूपेण सःकारः शक्तिरुच्यते।
हंसो हंसेति यो मन्त्रो जीवो जपति सर्वदा॥
हंकारो निर्गमे प्रोक्तः सःकारस्तु प्रवेशने।
हंकारः शिवरूपेण सःकारः शक्तिरुच्यते।
सोऽहं हंसःपदेनैव जीवो जपति सर्वदा।

हंकार शिवबीज है। स:कार शक्तिबीज है। हंकार से श्वास बाहर जाती है और स:कार से नि:श्वास भीतर प्रवेश करती है। हंस: का परिवर्त्तन करने पर हो जाता है—सोऽहं। यह प्रकृति-पुरुषात्मक मन्त्र है। यह परमशिव तथा पराप्रकृति के समन्वय के कारण 'अर्द्धनारीश्वर' रूप है। हंस: में शक्ति (प्रकृति) की प्रधानता है। सोऽहं में पुरुष की प्रधानता रहती है। प्राणवायु इस मन्त्र का सदैव जप करता रहता है। तभी इसका नाम है—अजपाजप। इसमें 'स:' तथा 'हं' का लोप हो जाने पर केवल 'ॐ' रह जाता है।

हंस: का अर्थ आत्मा माना जाता है। यह आत्मा हृदयसरोवरस्थ आनन्दरूप मीन को खाकर वहीं विचरण करता रहता है, तभी वह है—हंस:। हंसोपनिषद् में सनत्कुमार भी यही मानते हैं। उच्चाधिकार-युक्त अजपा मन्त्रज्ञ साधक को पूर्वोक्त विधि के अनुसार कुण्डलिनी-जागरण तथा उनकी पूजा के समापन के अनन्तर अजपा मन्त्र का चिन्तन करना चाहिये तथा उनके अधिष्ठातृ देवता अर्द्धनारीश्वर का ध्यान करना चाहिये। महासाम्राज्य-दीक्षा अभिषेक-काल में साधक यथाविधि प्राप्त करते हैं। अब अर्द्धनारीश्वर का ध्यान करना चाहिये। ध्यानान्त में 'रं क्षं मं रं यं औं ङं अर्द्धनारीश्वरशिवाय नम:' मन्त्र का जप करके अर्द्धनारीश्वर स्तोत्र का पाठ करना चाहिये। यह स्तोत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। वह सर्वत्र उपलब्ध है।

अजपामन्त्र का ऋषिन्यास—अस्य अजपागायत्रीमन्त्रस्य हंसः ऋषिः अव्यक्तगायत्री छन्दः परमहंसो देवता हं बीजं सः शक्ति सोऽहं कीलकं परमात्मप्रीतये उच्छ्वासनिःश्वासाभ्यां षट्शताधिकैकविंशतिसहस्र अजपाजपसमर्पणेन मोक्षप्राप्तये विनियोगः।

अथ न्यासः— मस्तके — हंसः ऋषये नमः।
मुखे — अव्यक्तगायत्रीछन्दसे नमः।
हृदि — परमहंसदेवतायै नमः।
मूलाधारे — हं बीजाय नमः।
पादयोः — सः शक्तये नमः।
सर्वाङ्गे — सोऽहं कीलकाय नमः।

षडङ्गन्यासः— ॐ हंसां सूर्यात्मने तेजोवत्यै शक्तये हृदयाय नमः।
ॐ हंसीं सोमात्मने प्रभाशक्तये शिरसे स्वाहा।
ॐ हंसूं निरञ्जनात्मने अविद्याशक्तये शिखायै वषट्।
ॐ हंसैं निराभासात्मने मायाशक्तये कवचाय हुं।
ॐ हंसौं अनुसूक्षात्मने ईक्षणशक्ते नेत्राभ्यां वौषट्।
ॐ हंसः अव्यक्तात्मने ज्ञानशक्तये अस्त्राय फट्।

हंस-ध्यानम्—अब हंस का ध्यान करना चाहिये—

गमागमस्थं गमनादिशून्यं चिद्रूपरूपं तिमिरान्तकारम्।
पश्यामि तं सर्वजनप्रधानं नमामि हंसं परमार्थरूपम्॥

उच्च साधक का जो अजपाजप पहले दिवा-रात्रि में साधित हुआ है, वही अब सूर्योदय के पूर्व अजपाधिपति अथवा हंस एवं ब्रह्मशक्ति के एकीभूत अर्द्धनारीश्वर के साथ में समर्पण के द्वारा नूतन उद्यम में पुनः अजपाजप का सङ्कल्प करता है। अजपाजप-समर्पण कार्य मूलाधार से धीरे-धीरे स्वाधिष्ठानादि सभी चक्र में सम्पन्न करना पड़ता है। मूलाधार का वर्णन पहले किया जा चुका है। साधक योगी को मूलाधार-चिन्तन करके निम्नलिखित मन्त्र के साथ सर्वप्रथम क्रिया सम्पन्न करनी चाहिये।

मूलाधारे—'सर्ववर्णचतुर्दले द्रुतसौवर्णवर्णवादिसान्तचतुर्वर्णान्विते षट्शतं अजपाजपं सशक्तिगणेशाय समर्पयामि नमः'।

मूलाधारचक्र में चतुर्वर्ण व श ष स स्वर्णवर्ण वाले चतुर्दल कमल में विद्यमान रहते हैं। उसमें गायत्रीरूप अपनी शक्ति से युक्त होकर गणनाथ अवस्थित रहते हैं। साधक को इस अजपाजप-समर्पण काल में यही ध्यान करके मन ही मन चिन्तन करना चाहिये कि मैं छः सौ सङ्ख्यक जप उनके हाथों में समर्पित कर रहा हूँ।

स्वाधिष्ठाने—विद्रुममणिभे विद्युत्पुञ्जप्रभाभबादिलान्तषड्वर्णान्विते षड्दले सहस्त्रं अजपाजपं सावित्रीसहिताय ब्रह्मणे समर्पयामि नमः ।

स्वाधिष्ठान मण्डल में विद्युत्पुञ्ज-प्रभायुक्त ब, भ, म, य, र, ल इन छः वर्णयुक्त रक्ताभ षड्दलपद्म में सावित्री शक्ति के साथ ब्रह्मा अवस्थान करते हैं। मैं उनके हाथ में १००० अजपाजप समर्पण करता हूँ—ऐसा ध्यान करना चाहिये।

मणिपूरे—नीलोत्पलमेघनिभे डादिफान्तदशवर्णान्विते दशदले षट्सहस्त्रं अजपाजपं लक्ष्मीसहिताय नारायणाय समर्पयामि नमः ।

मणिपूर चक्र में नीले मेघ के समान वर्ण वाले 'ड ढ ण त थ द ध न प फ' इन दस अक्षरों से शोभित नीलाभ दशदल कमल में लक्ष्मी-सहित नारायण स्थित रहते हैं। उन्हें मैं छः हजार सङ्ख्यक अजपा जप अर्पित करता हूँ।

अनाहते—'तरुणविनिभेकादिठान्तद्वादशवर्णयुते द्वादशदले षट्सहस्त्रं अजपाजपं सशक्तिशिवाय समर्पयामि नमः'।

विशुद्ध मण्डल में धूम्रवर्ण षोडशदल कमल में रक्तवर्ण क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ–१२ वर्णयुक्त तरुण सूर्यकिरणसम उज्ज्वल द्वादशदल पद्म में ६००० सङ्ख्यक अजपाजप गौरी-सहित शिव के हाथों में समर्पित करता हूँ।

विशुद्धे—धूम्रवर्णे षोडशदले रक्तवर्ण अकारादि अःकारान्ते षोडशस्वरान्विते षट्सहस्त्र अजपाजपं प्राणधारिणीशक्तिसहितजीवपुरुषाय समर्पयामि नमः ।

विशुद्ध चक्र में १६ दल कमल में रक्तवर्ण अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः–ये १६ अक्षर रहते हैं। यहीं प्राणशक्ति-युक्त जीवात्मा भी विराजित है। इसमें ६००० अजपाजप समर्पित करता हूँ।

आज्ञाख्ये—'श्रीचन्द्रप्रभे विमले ह-क्षवर्णान्विते सहस्त्र अजपाजपं अर्द्धनारीश्वराय मायासहितगुरुमूर्त्तये समर्पयामि नमः'।

चन्द्रप्रभायुक्त द्विदल में शुभ्र-उज्ज्वल ह क्ष–ये दो अक्षर विराजित रहते हैं। वहाँ माया तथा प्रकृति के साथ गुरुमूर्त्तिस्वरूप ब्रह्म एवं ब्रह्मशक्ति के समाहाररूप भगवान् अर्धनारीश्वर अवस्थान करते हैं। इन्हें भी एक हजार सङ्ख्यक अजपा-जप समर्पण करना चाहिये।

सहस्त्रारे—'नानावर्णोज्ज्वले सहस्त्रदले अकारादिक्षकारान्तवर्णसमुदयोज्वले सहस्त्रं अजपाजपं सशक्तिगुरवे समर्पयामि नमः'।

सहस्त्रवर्णोज्ज्वल सहस्त्रदल कमल में नानावर्ण समुज्ज्वल 'अ' से 'अः' रूप १६

स्वर तथा 'क' से 'क्ष' पर्यन्त ३२ वर्ण एवं त्र एवं ज्ञ—सब मिलाकर ५० वर्ण इसके बीस स्तरों में से प्रत्येक में विराजित रहते हैं। सब ५० × २० = १००० हो गये, मैं अवशिष्ट १००० जप का समर्पण करता हूँ। तत्पश्चात् पवित्र मन से इष्टदेव को प्रणाम करना चाहिये। अब इस प्रकार चिन्तन करना चाहिये—

परदेव्या हृदिस्थेन प्रेरितेन करोम्यहम्।
न मे किञ्चित् क्वचिद्वापि कृत्यमस्ति जगत्त्रये॥
षट्शताधिकैकविंशतिसहस्रजपेन परदेवतारूपश्रीपरमेश्वरः प्रीयताम्।

अर्थात् परदेवतारूप श्रीपरमेश्वर की प्रीति के लिये पुनः अगले दिन के निमित्त मन ही मन २१६०० जप का सङ्कल्प करता हूँ—यह भावना कर निम्नलिखितरूपेण हंस का ध्यान करना चाहिये—

आराधयामि मणिसन्निभमात्मलिङ्गं
मायापुरीहृदयपङ्कजसन्निविष्टाम्।
श्रद्धानदीविमलचित्तजलावगाहं
नित्यं समाधिकुसुमैव पुनर्भवाय॥

श्रद्धारूप पवित्र नदी-स्थित निर्मल चित्तरूप शुद्ध जल में अवगाहन-पूर्वक मैं मायापुरी अथवा प्रकृतिमन्दिररूप हृदयकमल में उज्ज्वल मणिसदृश आत्मलिङ्ग की नित्य आराधना करता हूँ। वे समाधि पुष्परूप पुनः विकसित होकर मुझे कृतार्थ करें।

तदनन्तर यथाशक्ति प्राणायाम करना चाहिये। 'हुं' मन्त्र से पूरक, 'हंसः' मन्त्र द्वारा कुम्भक एवं 'सः' मन्त्र से रेचक करना चाहिये। समर्थ होने पर १०८ बार जप करना चाहिये।

पहले ही कहा गया है कि अजपाजप साधारण अभिषिक्त साधकों से करणीय नहीं है। इसे उच्चाधिकारी लययोगी साधक को ही करना चाहिये। अन्यान्य साधकों को पूर्वकथित कुण्डलिनी-पूजन के पश्चात् ही इष्टदेव का मानस-पूजन करके ब्राह्ममुहूर्त्त कृत्य का समापन करना चाहिये।

अजपा-साधना व्यक्त एवं गुप्त भेद से द्विविध होती है। व्यक्त अजपा भी शब्दस्वरूपा तथा ज्योतिःस्वरूपा रूप से पुनः द्विविध होती है। इस प्रकार अजपा क्रिया तीन तरह की हो जाती है—(१) शब्दस्वरूपा व्यक्तरूपा, (२) ज्योतिःस्वरूपा व्यक्तरूपा, (३) गुप्तरूपा। शब्दस्वरूपा व्यक्तरूपा अजपा मन्त्रात्मक है अर्थात् 'हंसः' मन्त्र की सहायता से ही वह करणीय है। लययोगी साधक अहरहः इस मन्त्र के साथ वाली अजपा क्रिया सम्पन्न करते हैं। वे प्रत्येक श्वास-प्रश्वास के साथ उक्त शब्दात्मक मन्त्र के प्रति लक्ष्य रखते हैं। इसे ही 'शब्दस्वरूपा व्यक्ता अजपा' कहते हैं। यह है—मन्त्रात्मक लययोग के अन्तर्गत। जो

मन्त्रयोगी हैं, वे अपनी-अपनी साधना (मन्त्रसाधना) की उन्नति अवस्था में श्रीगुरु की कृपा से लययोग का क्रियोपदेश पाकर इसी मन्त्रात्मक अजपा-साधना को करते हैं। इससे नादलय सिद्ध हो जाता है।

ज्योति:स्वरूपा व्यक्ता अजपा और भी कठिन है। यह हठयोग की प्रधानता वाले लययोग के अन्तर्गत है। साधक को अधिकतर उच्चावस्था में ज्योतिर्ध्यान का अभ्यस्त होने पर श्रीगुरु की कृपा से इसका उपदेश प्राप्त हो जाता है। जब उसे शब्दानुभव नहीं रह जाता तब साधक प्रत्येक श्वास-क्रिया में अपूर्व तथा आनन्दप्रद आत्मज्योति प्रत्यक्ष करके स्थित रहते हैं। फलस्वरूप साधक की ज्योतिर्मय अथवा ध्यानलय क्रिया सिद्ध हो जाती है। यह अजपा की अधिकतर गोपनीय अथवा कठिनतर साधना का सङ्केतमात्र है। साधना की उच्चावस्था के अभाव में इसका मर्मानुभव नहीं होता।

अन्त में गुप्त अजपा क्रिया यथार्थत: साधना का विषय है। जो लययोग की उच्चतम साधना में उन्नति-लाभ करते हैं, जो श्रीगुरु की कृपा से अपने साधन बल से आत्मबिन्दु अथवा आत्मचैतन्य केन्द्र का यथार्थ अनुभव करते हैं, वे परम पूज्य गुरुदेव की कृपा से इस गुप्त अजपा का उपदेश पाकर धन्य हो जाते हैं।

●

बलिदान-रहस्य

बलि का अर्थ है—विशेष पूजा का उपकरण। दान का तात्पर्य है—त्याग। अर्थात् देवता के उद्देश्य से विशेष भाव द्वारा कुछ दान करना ही बलिदान कहा जाता है। उपासक-भेद से बलिदान के विभिन्न उपकरण निर्दिष्ट किये गये हैं। ब्राह्मण गुण-सम्पन्न (सत्त्वगुण-प्रधान) उपासक उच्चस्थानीय होते हैं। क्षत्रिय गुण-सम्पन्न (रज + सत्त्वयुक्त मिश्र गुण-प्रधान) उपासक मध्यम स्थानीय होते हैं। वैश्य गुण-सम्पन्न (रज + तम:युक्त) साधक मध्यनिम्न स्थानीय होते हैं। इसलिये उपासना भी भिन्न-भिन्न हो जाती है। साधक की अवस्था अथवा अधिकार के अनुसार बलिदान के जो भिन्न-भिन्न उपकरण कहे गये हैं, अब उनका विवेचन आवश्यक है।

१. दिव्याचारी का बलिदान—जो ब्रह्मशक्ति के अनुभव से सम्पन्न तथा सत्त्व-गुण-पुष्ट हैं, वे हैं उच्चाधिकारी। वे अन्त:करणयोग से स्व-स्व साधना क्रिया सम्पन्न करते हैं। अन्त:करण के चार विभाग होते हैं। उनमें मन सबसे निम्न अवस्था है अर्थात् अन्त:करण की साधारण अवस्था है—मन। वही बुद्धि, चित्त तथा अहङ्काररूपेण जीव के अन्त: में विकसित होता है। अत: उच्च साधनावस्था मनोमय-कोष से प्रारम्भ होती है तथा विज्ञानमय एवं आनन्दमय कोष-पर्यन्त परिचालित हो जाती है। अतएव ऐसी उच्च साधना की प्रथमावस्था में मानसिक पूजा ही अवलम्बनीय कही गयी है। बाह्य पूजा में स्थूल उपकरणादि द्वारा ही पूजाकार्य सम्पन्न किया जाता है; लेकिन उच्चाधिकारीगण बलिदान के उद्देश्य से मानसिक दुर्जेय वृत्तियों की बलि देते हैं, यथा—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य। उच्चाधिकारी मोक्षाभिलाषी अपनी मन्त्रयोग-साधना के प्रथम स्तर में ही इन छ: भीषण असुररूपी रिपुगण का बलिदान देने के लिये अभीष्ट देवता के चरण में आत्मसमर्पण कर देते हैं। वे माँ के श्रीचरणतल में पूर्ण शरणागत होकर अतिदीन तथा नितान्त आर्त्तभाव से इन भीषण असुरों के विनाशार्थ वराभय की प्रार्थना करते रहते हैं। इसी कारण दिव्याचारी गण पञ्चमकार-साधन में भी जिस तत्त्वपञ्चक का व्यवहार करते हैं, वह केवल योगसाधना की ही वस्तु है। यथा—

(क) आद्य अथवा प्रथमतत्त्व (मद्य)—ब्रह्मरन्ध्र-स्थित सहस्रदल कमल के अन्तर्गत सोमचक्र से नि:सृत जो ब्रह्माण्ड-तृप्तिदायक सुधा है, जो मन्त्रयोग-समाधि के पूर्व साधनानन्दरूपेण तथा तन्मयतारूपेण प्राप्त होती है, वही है—पञ्चमकार का प्रकृत मद्य।

(ख) ज्ञान-खड्ग द्वारा छेदित तथा बलिदान एवं समांसकृत उक्त कामादि रिपुरूप छ: पशुगण के मांस से ही ब्रह्मानन्दप्रद निर्विशेषत्व मिलता है। यहाँ मांस का अर्थ भगवान् सदाशिव यह कहते हैं कि 'मा' अर्थात् रसना, उसका अंश अर्थात् मा + अंश = मांस

अथवा वाक्य एवं वासना। उसका भक्षण अथवा संयम करना ही पञ्चमकार की द्वितीय वस्तु अथवा तत्त्व है मांस।

(ग) इसी प्रकार अहङ्कार, दम्भ, खलता तथा हिंसा—ये चार मत्स्य कहे गये हैं। ये हैं मानसिक नदी में रहने वाले मत्स्यरूप। इन्हें देवी को अर्पित करना चाहिये। मतान्तर से इड़ा नाड़ी गङ्गा है। पिङ्गला नाड़ी यमुना है। इनमें श्वास-प्रश्वासरूप जो दो मछलियाँ सतत् विचरणशील हैं, वायुसंयम द्वारा इनका ब्रह्मार्पण ही मत्स्य है। जो तृतीय मकार है।

(घ) अब चौथा मकार है—मुद्रा मकार। जीव की आशा, तृष्णा, परनिन्दा, भय, घृणा, मान, लज्जा तथा क्रोध—ये आठ मुद्रायें हैं। मुद्रा स्थूलतः भूजा हुआ चना इत्यादि होता है। वैसे ही इन आठो को साधनाजनित तपस्या के ताप से भूंजकर निर्बीज करना चाहिये; क्योंकि भुने बीज से पुनः पौधा नहीं होता। अतः तपताप-जनित इन्हें भूजना ही मुद्रा मकार है।

मतान्तर से सहस्रदल कमलान्तर्गत कर्णिका-मध्य में पारद के समान निर्मल श्वेतवर्ण कोटिसूर्यसमप्रभ कोटिचन्द्रवत् सुशीतल अतीव कमनीय, महाकुण्डलीयुक्त जो ब्रह्मबिन्दु-युक्त आत्मा है, उसे जो साधक जान लेते हैं, वे ही हैं यथार्थ मुद्रा-साधक।

(ङ) सूक्ष्मा सुषुम्ना नाड़ी मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त प्रवाहित है। उसमें इड़ा तथा पिङ्गला नाड़ी से प्रवहणशील वायु-संयम ही मैथुन है। मतान्तर से सहस्रारस्थ परमात्मा अथवा परमपुरुष से जीवात्मा शुद्ध प्रकृतिरूपेण परिपुष्ट होकर लययोग-साधना में रमण अथवा आत्मालयानंद भोग ही पञ्चमकार साधनान्तर्गत पञ्चमतत्त्व मैथुन है।

२. वीराचारीगण का बलिदान-विधान—जो साधक वीराचार-परायण हैं, रजः + सत्त्व मिश्रगुण-युक्त हैं, मध्योच्चाधिकारी हैं, वे प्राणयोग से ही अपनी साधना सम्पन्न करते हैं। अन्तःकरणान्तर्गत मनोमय कोष की साधना में प्रवृत्त होने के पहले प्राणमय कोष-साधना करना कर्त्तव्य है। प्राण ही स्थूल-सूक्ष्म के बीच का सेतु भी है। सर्वदा वीरोचित समर-साधना के लिये अस्त्र-शस्त्रादि का अभ्यास, व्यायाम क्रीड़ा, शस्त्रशोणित देखकर भय का सञ्चार न होना, निज बल द्वारा अर्जित प्राणयुक्त देहों का (पशु का) अभीष्ट देवता के लिये अर्पण करना ही इनका कार्य है। इस देवार्पित बचे मांस का भक्षण करने से ये मांस-भक्षण दोष से प्रभावित नहीं होते। तदनन्तर बाह्य पञ्चमकार के अनन्तर ये सूक्ष्म पञ्चमकार का सेवन मोक्षार्थी होकर करते हैं। यद्यपि ये दिव्याचारी साधक के समान मानसिक प्रवृत्ति के बलिदान में पूर्ण समर्थ नहीं हो पाते; फिर भी वे इसके अनुकल्प में प्राणयुक्त पशु-पक्षी के बलिदान का आयोजन करते हैं। वे कामवासना का प्रतीक बकरा, क्रोध का प्रतीक भैंसा, लोभ का प्रतीक भेंड़ा, मोह का प्रतीक हंस, मद का प्रतीक शूकर तथा मात्सर्य का प्रतीक मुर्गा मानते हैं और इनका बलिदान करते हैं।

प्राथमिक वीराचारी अथवा दक्षिणाचारी के बलिदान—जो वीराचार के अन्तर्गत अभी प्राथमिक स्तर पर हैं, वे अभी रज: + तम: मिश्रण वाले हैं। मनोमय कोष का संस्कार-जनित धर्म है—कुप्रवृत्ति। अभी ये साधक प्राणमय कोष-साधन भी पूर्ण नहीं कर सके हैं। इनके लिये बलि का अन्य विधान है। कूष्माण्ड काम का प्रतीक है। शशा नामक वनस्पति क्रोध का, केला लोभ का, सुपारी मोह का और जम्बीरी नीबू मद का प्रतीक है। मात्सर्य का प्रतीक है—आक। इनकी बलि प्रदान करनी चाहिये।

३. पश्चाचारी का बलिदान—ये शुद्धतमोगुण से पुष्ट होते हैं। ये उच्च मानस पूजा में समर्थ नहीं होते। इनके लिये बलि-हेतु अन्य विधान है। अपक्व अन्नबलि काम का प्रतीक है। घृत क्रोध का, दुग्ध लोभ का, मधु मोह का, चीनी अथवा बताशा मात्सर्य का प्रतीक है।

इसी प्रसङ्ग में मैथुन के अन्तस्तत्त्व का वर्णन करना भी प्रासङ्गिक प्रतीत हो रहा है। मैथुन का अर्थ है—मन्थन। घोर देवासुर संग्राम में जिस अनन्त सागर का मन्थन किया गया था, वही मैथुन का चरम आदर्श है। इसी मन्थन से सागर से अमृत तथा विष उत्थित हुये थे। दैवी सम्पदा अमृत का पान करके देवगण को चिर अमृतत्व मिला; लेकिन आसुरी सम्पदा अमृत-पान के अभाव में अमरत्व से वञ्चित ही रह गयी। वे दैवी सम्पत्ति-युक्त शुक्राचार्य के सञ्जीवनी मन्त्र से ही मृत्यु से लड़ सके। भगवान् शिव अद्वैत होकर भी द्वैतरूपेण देवों एवं असुरों के मध्य सदैव विराजित रहते हैं। उनका यही अव्यक्त द्वैत भाव ही संसार में आकर्षण-विकर्षणात्मक नित्य मन्थनरूप (मैथुन) क्रिया का मूलाधार है।

यह परस्परत: विभिन्नमुखी भाव-प्रवाह ही स्थूल, सूक्ष्म तथा कारणरूपी सागर में अविरत मन्थन क्रिया का सङ्घटन करता रहता है। उनमें ही स्थूल सागर-मन्थन, सूक्ष्म सागर-मन्थन तथा कारण सागर-मन्थनरूप तीन क्रिया चलती रहती है। प्रत्येक जीव अपनी नित्य साधना में स्थूल मन्थन में आधिभौतिक, सूक्ष्म मन्थन में आधिदैविक तथा कारण-मन्थन में आध्यात्मिक फलावाप्ति करता है। जीव के स्थूल-सूक्ष्म तथा कारणशरीर ही यथाक्रमेण स्थूल सागर, सूक्ष्म सागर एवं कारण सागर में द्वीपरूप हैं। स्थूल शरीर है—अन्नमय कोष, सूक्ष्म शरीर है—प्राणमय, मनोमय एवं विज्ञानमय कोष। कारणशरीर है—आनन्दमय कोष। स्थूल तथा सूक्ष्म देह परस्परत: प्राणमय द्वारा ही संयुक्त है। सूक्ष्म तथा कारण देह परस्परत: चित्तमय मध्य स्तर द्वारा संयुक्त है। अत: जीवदेह (स्थूल देह) के आधारभूत स्थूल सागर के मन्थन से स्थूल अमृत के अनुरूप भावात्मक ब्रह्मचर्य भी निकल सकता है अथवा विषरूप व्यभिचर्य भी निकल सकता है। इनमें से ब्रह्मचर्यरूप अमृत का वरण करके साधक भगवत् शक्ति की पूजा, अर्चना और शुद्धकर्मानुष्ठान करके परिक्षोत्तीर्ण हो जाता है; लेकिन जो इस मन्थन के विष व्यभिचर्य का वरण करते हैं, उनकी गति तो सभी जानते हैं। वे ही असुर होते हैं। सङ्क्षेप में यही प्रकृत मैथुन तत्त्व है।

अब सूक्ष्मसागरान्तर्गत (सूक्ष्मदेह) सागर-मन्थन करने से गार्हस्थ्यरूपी अमृत निकलता है। इसमें (सूक्ष्म सागर में) मन्थन करने से प्राणायाम तथा नाद शुद्ध होता है। उसमें वास्तविक सत्यप्रतिष्ठा होती है। इसी प्रकार यह मनमन्थन जीव तथा ईश्वर के मिलनरूप मैथुन क्रिया का प्रवर्त्तक है। इसी सागर में विज्ञानमय कोष का भी मन्थन साधित होता है। इसका अमृत है—देवी तेज-सम्भूत चैतन्य ज्योति का साधक में अवतरण।

तदनन्तर होता है—कारण समुद्र (कारणदेह) का मन्थन। इससे आनन्दरूप प्राज्ञबोध-सिद्धि-रूप अमृत प्राप्त होता है। अपरोक्ष ज्ञानानुभूति प्राप्त करके वह ब्रह्मानन्द रसभोग करता है।

●

मुद्रा-रहस्य

१. तत्त्वमुद्रा—दाहिने हाथ की अनामिका के अग्र भाग से अङ्गुष्ठ को जोड़ने पर तत्त्वमुद्रा बनती है। तर्पण-काल में बाँयें हाथ के अङ्गूठा तथा अनामिका को जोड़ना चाहिये, जो जलतत्त्वमुद्रा है। इसी प्रकार अङ्गूठा तथा मध्यमा को जोड़ने से अग्नितत्त्व मुद्रा, अङ्गुष्ठ तथा तर्जनी को जोड़ने से (सभी का अग्रभाग ही जोड़े) वायुतत्त्वमुद्रा (नाराच मुद्रा) भी गठित होती है। अङ्गुष्ठ तथा कनिष्ठा को जोड़ने से पृथिवीतत्त्व मुद्रा बनती है। इस प्रकार पाँचों तत्त्व की मुद्रा बनानी चाहिये।

२. धेनुमुद्रा (अमृतीकरणमुद्रा)—हाथों को जोड़कर बाँयीं अङ्गुलियों को दाहिने हाथ की अङ्गुलियों में प्रवेश कराये। तब दाहिने हाथ की तर्जनी को बाँयें हाथ की मध्यमा से तथा बाँयें हाथ की तर्जनी को दक्षिण (दाहिने) हाथ की मध्यमा से तथा बाँयें हाथ की कनिष्ठा को दाहिने हाथ की अनामा से तथा दाहिने हाथ की कनिष्ठा को बाँयीं अनामा से जोड़ने पर धेनुमुद्रा बनती है।

३ अवगुण्ठन मुद्रा—दाहिने हाथ की मुट्ठी बनाकर उसे अधोमुखी करे। तर्जनी अङ्गुली को कुछ सीधी करके उसे 'हुं' मन्त्र पढ़ते हुये दक्षिणावर्त्त घुमाने से अवगुण्ठन मुद्रा होती है।

४. अङ्कुशमुद्रा—दाहिने हाथ को उलटा करके मध्यमा अङ्गुली को सीधी करके तर्जनी को उसके बगल में अङ्कुशवत् टेढ़ा करने पर अङ्कुश मुद्रा होती है।
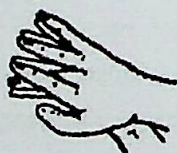
५. भूतिनी मुद्रा—हाथों को जोड़कर वाम कराङ्गुलियों को चौड़ा करके उस बीच के विवर में दाहिने हाथ की तर्जनी आदि चार अङ्गुली को प्रवेश कराये। तदनन्तर दोनों हाथ की तर्जनियों को खोलकर चित्त करके कुछ वक्र करके वाम कर की अनामा अङ्गुली के पीछे दाहिनी तर्जनी का योग करने पर तथा दाहिने हाथ की अनामा अङ्गुली के पीछे वाम कर की तर्जनी का योग करके शेष बची अङ्गुलियों को दूसरे हाथ की उन-उन अङ्गुलियों के पृष्ठ पर युक्त करे। सबके ऊपर दोनों अङ्गूठों को अधोमुख स्थापित करे। यह भूतिनी मुद्रा होती है।

६. योनिमुद्रा—उक्त भूतिनी मुद्रा की तरह करके केवल दोनों हाथों की कनिष्ठा अङ्गुलिद्वय को सम्मुखीन दोनों अङ्गूठे के नीचे स्थापित करे। एक और योनिमुद्रा है, जिसका चित्र संलग्न है।

७. मत्स्यमुद्रा—अधोमुख दाहिनी हथेली के पृष्ठ के ऊपर वाम कर को स्थापित करके दोनों अङ्गूठों को जल में भाग रही मछली के समान दोनों ओर बाहर करके सञ्चालन करे।

८. नाराचमुद्रा—इसे बाणास्त्र मुद्रा अथवा छोटिका मुद्रा भी कहते हैं। दाहिनी हथेली के अङ्गूठे तथा तर्जनी को संयुक्त करके अन्य अङ्गुलियों को वक्रभाव से अधोमुख रखे। इसके द्वारा दसों दिशाओं की ओर चुटकी दी जाती है। यही है—अस्त्रमुद्रा।
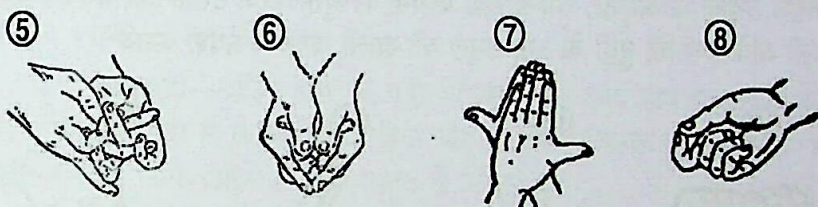
९. आवाहनी मुद्रा—दोनों हथेली को अञ्जलिवत् करके दोनों अङ्गूठों को अनामा की जड़ पर स्पर्श करे, जिस देवता की पूजा करनी है उनका नाम लेकर 'इहागच्छ' कहकर ऊपर से लाये।

१०. स्थापनीमुद्रा—आवाहनी मुद्रा को उलटा करे। आवाहनीय देवता का नाम लेकर 'इह तिष्ठ इह तिष्ठ' कहे।

११. सन्निधापनीमुद्रा—दोनों हथेली की मुट्ठी संलग्न करे तथा दोनों अङ्गूठों को उन्नत (ऊर्ध्व) करके देवता का नाम लेकर 'इह सन्निधेहि' कहे।

१२. संरोधिनीमुद्रा (सन्निरोधनी मुद्रा)—यह सन्निधापनी मुद्रा जैसी है। केवल दोनों अङ्गूठों को भीतर प्रवेश कराकर देवता का नाम लेकर कहे—'इह सन्निरुध्यस्य'।
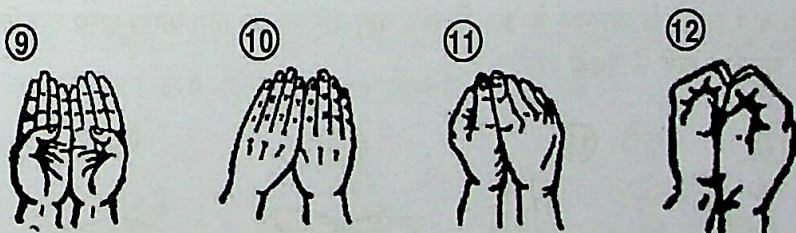
१३. सम्मुखीकरणी मुद्रा—उक्त मुष्टिकृत हथेलियों को तथा मुष्टिका को सटाकर देवता का नाम लेकर कहे—'अत्राधिठानं कुरु मम पूजां गृहाण'।

१४. कूर्ममुद्रा—बाँयें करतल को चित्त करके अङ्गुष्ठ तथा तर्जनी के मध्य में दाहिनी मध्यमा एवं अनामिका को अधोमुखी रखना चाहिये। अब दाहिनी हथेली के अग्रभाग का वाम कर के अङ्गुष्ठ के अग्र से योग करे तथा दाहिने कनिष्ठाग्र को वाम कर की तर्जनी से जोड़े। तदनन्तर वाम कर की मध्यमा एवं अनामिका को दाहिनी कनिष्ठा की जड़ से जोड़े।

१५. खड्गमुद्रा—दाहिने हाथ की मुट्ठी से तर्जनी तथा मध्यमा को सीधा रखे तथा कनिष्ठा और अनामिका के ऊपर अङ्गूठा रखे।

१६. मुण्डमुद्रा—अङ्गूठे को भीतर करके बाँयें हाथ की मुट्ठी को बन्द करे एवं दाहिनी हथेली के अङ्गूठा, तर्जनी तथा मध्यमा को युक्त करके उसके अग्रभाग को पहले वाली बाँयें हाथ की मुट्ठी के अङ्गुष्ठमूल की खाली जगह में प्रवेश कराये।

१७. वरमुद्रा—दाहिने हाथ के करतल को चित्त करके अनामिका की जड़ में अङ्गूठे के अग्र को रखे तथा बाँयीं हथेली को उससे दूर अधोमुख रखे।

१८. अभयमुद्रा—यह वरमुद्रा के ठीक विपरीत होती है (चित्र देंखे)।

१९. लेलिहानमुद्रा—दाहिने हाथ की तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका अङ्गुली को युक्त करे तथा अधोमुखी करे। अङ्गूठा अनामा के पर्व को युक्त करके अनामा को अलग करके सरल रखे।

२०. गालिनी मुद्रा—वाम करतल के ऊपर दूसरी ओर घुमाकर दाहिनी स्थेली रखे तथा बाँयें अङ्गूठे के अग्रभाग के अग्र के साथ वाम कनिष्ठा का योग करके अन्य अङ्गुलियों को सामान्य रूप से पृथक् रखे।

२१. प्रार्थनामुद्रा—बायीं हथेली पर विपरीत भाव से दाहिनी हथेली को चित्त करके वक्ष के समीप रखे।

२२. गो-योनिमुद्रा—दाहिनी हथेली की मुष्टिका बनाकर उसे कनिष्ठामूल पर गोयोनि के आकार में स्थापित करे।

२३. संहारमुद्रा—वाम करतल को अधोमुख करके उसके ऊपर दक्षिण करतल को ऊर्ध्वमुख करे तथा एक हाथ की अङ्गुलियों को अन्य हाथ की अङ्गुलियों में परस्पर प्रवेश कराये। सभी अङ्गुलियों को एक-दूसरे में पकड़ कर दोनों हथेली को वक्ष के पास लाकर उसे ऊर्ध्वमुखी करे तथा दोनों हाथों की तर्जनी को परस्पर अग्रभाग से युक्त करके ऊपर उठाये। अब दोनों तर्जनी द्वारा इसी मुद्रा से पूजास्थान से एक निर्माल्य पुष्प लेकर सूंघे तथा हृदय में देवता की भावना करे।

२४. शङ्खमुद्रा—दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँधकर उसमें बाँयें हाथ के अङ्गूठे को पकड़े। तब इस मुट्ठी में से उर्ध्वमुख दाहिना अङ्गूठा प्रसारित करके वाम हाथ की ४ अङ्गुलियाँ एकत्र करके दाहिने हाथ के अङ्गुष्ठ से मिलाये।

२५. चक्रमुद्रा—हस्तद्वय को परस्पर सम्मुखीन करके अङ्गुष्ठ तथा कनिष्ठा को प्रसारित करके वक्रभाव से संलग्न करे। चित्र में ठीक से नहीं दिखाया गया है। लिखित से देखें।

२६. गदामुद्रा—दोनों हाथों की अङ्गुलियाँ ग्रथित करके केवल मध्यमाद्वय को बाहर करके परस्परतः दीर्घभावेन युक्त करे।

२७. पद्ममुद्रा—हस्तद्वय को परस्परतः सम्मुखीन करके अङ्गुलियों को तनिक वक्र तथा उन्नत करे एवं दोनों अङ्गूठों को करतलद्वय के मध्य में रखे।

२८. त्रिशूलमुद्रा—दाहिने हाथ की कनिष्ठा पर अङ्गुष्ठ रखे तथा तर्जनी, मध्यमा एवं अनामिका को उर्ध्वमुखी करके परस्परतः विश्लिष्ट करे।

२९. मृगमुद्रा—दाहिने हाथ की अनामिका, मध्यमा तथा अङ्गुष्ठ के अग्रभाग को युक्त करके तर्जनी और कनिष्ठा को ऊर्ध्वमुखीन करके रखे।

इस प्रकार अनेक मुद्रायें होती हैं। स्थानाभाव के कारण यहाँ कुछ मुख्य मुद्राओं का ही विवरण दिया गया है।

दक्षिणकालिका पुरश्चरण-रहस्य

इसका सङ्क्षेप में वर्णन किया जा रहा है। 'ॐ नमः दक्षिणकालिकायै' से साधक देवी को प्रणाम करे (मन ही मन देवी को प्रणाम करे)। यह चिन्तन करे कि मानो देहगृह में प्रवेश कर रहा है। अब 'ॐ ह्रीं विशुद्धिसर्वपापानि समयाशेषविकल्पमपनय हूं' इस मन्त्र से हाथ-पैर पर जल छिड़के। यह पूर्वकथित हस्त-पादादि प्रक्षालन का अनुकल्प है। अपना पाप अपनोदन करने के लिये अञ्जलिबद्ध होकर कहे—

ॐ देवि तत्प्राकृतं चित्तं पापाक्रान्तमभून्मम।
तन्निःसारय चित्तान्मे पापं हुं फट् च ते नमः॥
ॐ सूर्यः सोमो यमः कालो महाभूतानि पञ्च च।
एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नव साक्षिणः॥

कामिनीदेवी का ध्यान—जप अथवा पूजा के पूर्व साधक को अपने मन में अङ्कुश बीज (क्रों) का दस बार जप करके रक्तवर्ण नाभिकमल पर सर्वकामसिद्धिप्रदा श्री कामिनी देवी का निम्नलिखित रूप में ध्यान करना चाहिये—

सिंहस्कन्धसमारूढां रक्तवर्णां चतुर्भुजाम्।
नानालङ्कारभूषाढ्यां रक्तवस्त्रविभूषिताम्॥
शङ्खचक्रधनुर्बाण विराजितकराम्बुजाम्।
कामिनीं प्रथमं ध्यात्वा जपपूजासमाचरेत्॥

अर्थात् कामिनी देवी रक्त वस्त्र तथा नानालङ्कार-भूषिता, रक्तवर्णा, चार हाथ वाली हैं एवं उनके चारो हाथों में शङ्ख, चक्र, धनुष तथा बाण विराजित हैं। वे सिंह पर बैठी हैं। वे जगद्धात्री देवी के समान आकार वाली हैं। साधक को सर्वप्रथम अपने रक्तवर्ण नाभिकमल के ऊपर उनका ध्यान करना चाहिये। इससे चित्त शुद्ध होता है तथा मन की सभी कामनायें सहज ही पूर्ण हो जाती हैं। ध्यानोपरान्त मन ही मन पूजा करते-करते दस बार बीजमन्त्र का जप करना चाहिये।

साधक की सभी कामनाओं को पूर्ण करने के कारण ही इन्हें कामिनी नाम दिया गया है। मूलाधारस्था कुण्डलिनी ही मणिपूर चक्र में आकर कामिनी-मूर्त्ति धारण करती है। मणिपूर चक्र है—तेज:केन्द्र। उसका मध्यस्थल रक्तारुण वर्णमय है। उसमें जब साधक पूर्व-वर्णितरूपेण माँ का ध्यान करता है, तब देवी के कमल आसन से लेकर उनका वाहन एवं समस्त अङ्ग ही तेजोरश्मि मध्यगत होने के कारण लोहितवर्ण दीखते हैं। कुण्डलिनी मूलाधारस्था है। वह अभीष्टस्वरूपा है अर्थात् अभीष्ट-प्रतिबिम्ब शक्तिरूपा है। साधक इसे लक्ष्य करके उनके बिम्बरूप मूल में स्थान पाता है। ये कामिनी देवी ही जप-समापन पर

सहस्रार चक्रान्तर्गत अपूर्व ज्योतिस्तत्त्व में एकीभूत हो जाती हैं।

मन्त्राचमन—आत्मतत्त्वादि आचमनत्रय को पहले कहा जा चुका है। उन साधारण कार्य को पहले कर लेना चाहिये। दक्षिणकालिका-पूजनार्थ विशेष आचमन करना चाहिये। उसे अब यहाँ कहा जा रहा है।

'क्रीं' मन्त्र से तीन बार आचमन करे। ओष्ठ तथा अधर का दो बार मार्जन करते-करते 'ॐ काल्यै नमः, ॐ कपालिन्यै नमः' कहे। हस्तप्रक्षालन करते-करते कहे—'ॐ कुल्लायै नमः'। अब तत्त्वमुद्रा से मुखस्पर्श करते-करते कहे—'ॐ कुरुकुल्लायै नमः'। अब दक्षिण नासिका एवं वाम नासिका का स्पर्श करते-करते कहे—'ॐ विरोधिन्यै नमः' (दक्षिण नासा)। 'ॐ विप्रचित्तायै नमः' (वाम नासा)। दाहिने कर्ण का स्पर्श करके कहे—'ॐ दीप्तायै नमः'। वाम कर्ण का स्पर्श करके कहे—'ॐ नीलायै नमः'। दाहिने चक्षु का स्पर्श करके कहे—'ॐ उग्रायै नमः'। वाम चक्षु का स्पर्श करके कहे—'ॐ उग्रप्रभायै नमः'। नाभि का स्पर्श करके कहे—'ॐ घनायै नमः'। वक्ष का स्पर्श करके कहे—'ॐ बलाकायै नमः'। शिरोदेश का स्पर्श करके कहे—'ॐ मात्रायै नमः'। दाहिने स्कन्ध का स्पर्श करके कहे—'ॐ मुद्रायै नमः'। वाम स्कन्ध का स्पर्श करके कहे—'ॐ मितायै नमः'।

सामान्यार्घ्य-स्थापन—अङ्गुली के अग्रभाग से अपने सामने से कुछ बाँयीं ओर पार्श्वाङ्कित मण्डल भूमि पर बनाये। इसे चन्दन से बनाये। इसके ऊपर 'एते गन्धपुष्पे आधारशक्तये नमः' कहकर पूजन करना चाहिये। फट् मन्त्र से इस पर धुला पात्र रखे। उसे 'नमः' कहकर जल से भरे। इसके मुख पर बिल्वपत्र, दूर्वा, आतपतण्डुल तथा चन्दन-युक्त पुष्प रखकर सजाये। यही है—सामान्यार्घ्य-स्थापन।
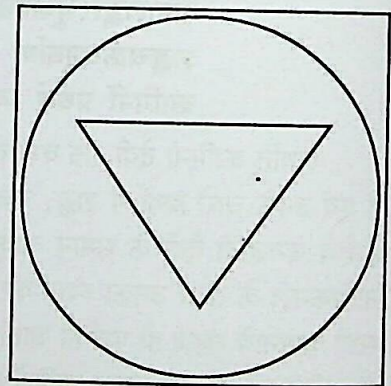
इसमें पूर्ववर्णित अङ्कुश मुद्रा बनाकर 'ॐ क्रों गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति, नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु' मन्त्र से जलशुद्धि एवं सूर्यमण्डल से तीर्थ आवाहन आदि का पञ्चमुद्रा द्वारा समापन करके 'हुं' मन्त्र से अवगुण्ठन मुद्रा द्वारा, 'वं' मन्त्र से धेनुमुद्रा बनाकर अमृतीकृत करे तथा योनिमुद्रा प्रदर्शन-पूर्वक मत्स्यमुद्रा द्वारा इस जल का आच्छादन करे तथा दस बार 'ॐ' मन्त्र का जप करे।

तदनन्तर समुपस्थित कल्पित द्वार पर इस जल को छिड़के। तत्पश्चात् 'ॐ एते गन्धपुष्पे श्रीमद्दक्षिणकालिकाया द्वारदेवताभ्यो नमः' कहकर द्वारदेवताओं का पूजन सङ्क्षेप

में सम्पन्न करे। प्रत्येक द्वारदेवता का नामोल्लेख करते हुये भी पूजा का विधान परिलक्षित होता है। यथा—ॐ एते गन्धपुष्पे (उर्ध्वोडुम्बरे), ॐ ह्रीं विघ्नेशाय नमः (दक्षिण में), ॐ ह्रीं महालक्ष्म्यै नमः (वाम में), ॐ ह्रीं सरस्वत्यै नमः (मध्ये), ॐ ह्रीं द्वारश्रियै नमः (दक्षिण शाखा पर), ॐ ह्रीं गणेशाय नमः (वाम शाखा पर), ॐ ह्रीं क्षेत्रपालाय नमः (उसके पार्श्वद्वय में), ॐ ह्रीं शङ्खनिधये नमः, ॐ ह्रीं पद्मनिधये नमः, उसके पश्चात् ॐ ह्रीं मायाशक्तये नमः, ॐ ह्रीं चिच्छक्तये नमः, ॐ ह्रीं धात्रे नमः, ॐ ह्रीं विधात्रे नमः, ॐ ह्रीं गङ्गायै नमः, ॐ ह्रीं यमुनायै नमः, (देहली पर) ॐ ह्रीं अस्त्राय नमः।

गृहप्रवेश—मन ही मन चिन्तन करे कि वाम अङ्ग को सङ्कुचित करके अथवा बाँयाँ पैर आगे करके देवीगृह में प्रवेश कर रहा हूँ (यहाँ यह ज्ञातव्य है कि पुरुषदेवता के यहाँ दाहिना पैर आगे करके जाते हैं। जो देवी दक्षिण पद अग्रवर्त्ती हैं, उनके यहाँ भी दाहिना पैर आगे करके प्रवेश करते हैं)। गृह में प्रवेश करके नैर्ऋत्यकोण में 'ॐ एते गन्धपुष्पे ब्रह्मणे नमः, ॐ वास्तुपुरुषाय नमः' कहकर पूजन करे।

विघ्नापसारणादि—यह पहले कह दिया गया है। इसी ग्रन्थ में देखें।

भूमि-शोधन—'ॐ पवित्र वज्रभूमे हूं हूं फट् स्वाहा' कहकर योनिमुद्रा द्वारा भूमि का स्पर्श करे। वहाँ त्रिकोण-वृत्त-चतुष्कोण मण्डल बनाये, जैसा कि ऊपर बनाया गया है। 'ॐ ह्रीं एते गन्धपुष्पे आधारशक्त्यादिभ्यो नमः' कहकर गन्ध-पुष्पादि से आसन मण्डल का पूजन करना चाहिये।

आसनशुद्धि—पूजक स्वस्तिकासन, पद्मासन, सिद्धासन अथवा वीरासन आदि अभ्यस्त आसन पर बैठकर दोनों हाथों से आसन का स्पर्श करे। आसनशुद्धि का इसी ग्रन्थ में पहले अङ्कन किया गया है।

गुरुप्रणाम—यह प्रसङ्ग भी इस ग्रन्थ में वर्णित है। वहाँ देखें।

स्वस्तिवाचन—इसका अर्थ है—मङ्गलवाचन। इन तीन मन्त्रों द्वारा देवता, गुरु, पुरोहित तथा महात्मा आदि से निवेदन किया जाता है कि यह मेरा कर्त्तव्य है। आप आशीर्वाद प्रदान करें कि यह पूजाकार्य पुण्याह, ऋद्धिप्रद तथा मङ्गलप्रद हो। 'ॐ कर्त्तव्येऽस्मिन् श्रीमद्दक्षिणकालिकापूजाकर्मणि पुण्याहं भवन्तोऽधिब्रुवन्तु ॐ पुण्याहं ॐ पुण्याहं ॐ पुण्याहम्'।

'ॐ कर्त्तव्येऽस्मिन् श्रीमद्दक्षिणकालिकापूजाकर्मणि ऋद्धिं भवन्तोऽधिब्रुवन्तु ॐ ऋध्यतां ॐ ऋध्यतां ॐ ऋध्यताम्'।

'ॐ कर्त्तव्येऽस्मिन् श्रीमद्दक्षिणकालिकापूजाकर्मणि स्वस्ति भवन्तोऽधिब्रुवन्तु ॐ स्वस्ति ॐ स्वस्ति ॐ स्वस्ति'।

यह तीनों मन्त्र एक-एक बार कहकर (प्रत्येक को मात्र एक बार कहे) तथा आतप-तण्डुल विकीर्ण करके घण्टा-ध्वनि करे।

अब हाथ जोड़कर मन्त्र पढ़े—'ॐ सूर्यः सोमो यमः कालः सन्ध्ये भूतान्यहः क्षपा। पवनो दिक्पतिर्भूमिराकाशं खचरामराः, ब्राह्मं शासनमास्थाय कल्पध्वमिह सन्निधिम्।

सङ्कल्प—वाम करतल में ताम्रपात्र में जल, त्रिपत्र, कुश, तिल, फूल तथा हरीतकी फलादि लेकर उसे दाहिने करतल से दक्षिण जानु को भूमि पर नत करके वीरासन में उत्तरमुख करके बैठ जाय तथा भक्तियुक्त चित्त द्वारा यह मन्त्र पढ़े—

'विष्णुरोम् तत्सत् अद्य अमुकमासि अमुकराशीस्थभास्करे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा सर्वापच्छान्तिपूर्वक (अथवा अमुक कामनापूरक)-श्रीमद्दक्षिण-कालिकाप्रीतिकामः श्रीमद्दक्षिणकालिकापूजनकर्माहं करिष्ये' (अमुक के स्थान पर यथोचित लगाये)।

तदनन्तर ईशान कोण की ओर भूमि में इस सङ्कल्पित जल का किञ्चित् त्याग करके सम्मुखस्थ ताम्रकुण्ड या पूजापात्र को उलट कर रखे तथा निम्नलिखित वैदिक सङ्कल्प-सूक्त बोले—

'ॐ देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विष्ट्यासिचम् उद् वा सिञ्चध्वमुपरा, पृणध्वमादिद वो देवत्तहस्ते' इस मन्त्र से जलपात्र पर अक्षत प्रदान करे और कहे—'सङ्कल्पितार्थाः सिद्धयः सन्तु मनोरथाः शत्रूणां बुद्धिनाशाय मित्राणामुदयाय च अयमारम्भः शुभाय भवतु। ॐ तत्सत् ॐ'। अनभिषिक्तगण शूद्रादि वर्ण के होने पर इस मन्त्र के स्थान पर 'नमो नमः' कहें। घण्टा-ध्वनि करें।

ग्रन्थिबन्धन—ॐ मणिधरि वज्रिणि महाप्रतिसरे रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा' इस मन्त्र से उत्तरीय को यज्ञोपवीत की तरह वाम स्कन्ध से दाहिनी ओर लटकाये तथा दोनों सिराओं पर गाँठ बाँधे। यह आत्मरक्षा-बन्धन कहलाता है।

करशोधन—'आं हुं फट् स्वाहा' कहकर एक पुष्प चन्दन के साथ लेकर दोनों ओर किञ्चित् पेषणपूर्वक वाम कर में 'क्लीं' मन्त्र द्वारा ग्रहण करे तथा 'ऐं' मन्त्र द्वारा उसे सूंघकर 'फट्' मन्त्र द्वारा दाहिने हाथ में नाराचमुद्रा से ग्रहण करके उसे 'हेसौः' मन्त्र से ईशान कोण में फेंके।

पुष्पशोधन—'ॐ शताभिषेक हुं फट् स्वाहा' कहकर पुष्पपात्र पर जल छिड़के। 'ॐ पुष्पकेतु राजार्हते शताय सम्यक् सम्बन्धाय हुं' इस मन्त्र से पुष्प का स्पर्श करे। 'ॐ पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पसम्भवे, पुष्पचयावकीर्णे हुं फट् स्वाहा' यह पुष्पशोधन मन्त्र कहा गया है।

पूजाद्रव्यादि-शोधन—पूजाद्रव्य पर 'फट्' मन्त्र से जल छिड़के तथा धेनुमुद्रा द्वारा देवी को सभी द्रव्य दिखाये।

शुद्धिक्रिया—शुद्धि अर्थात् आत्मशुद्धि, स्थानशुद्धि, मन्त्रशुद्धि, द्रव्यशुद्धि, देवता-शुद्धि के विना पूजा सिद्ध नहीं होती।

आत्मरक्षा—'रं' अग्निबीज का उच्चारण करके चारो ओर जलधारा दे तथा मन ही मन चिन्ता करे कि गलित अग्निप्रवाह द्वारा वह मेरे चारो ओर वेष्टित है। अथवा मानो चारो ओर ज्वलन्त अग्नि है और इस पर भी मुझे भय नहीं है। कोई विघ्न मेरा स्पर्श नहीं कर पाता। मेरी रक्षा हो रही है। मैं निर्विघ्न पूजा कर रहा हूँ। ऐसे दृढ़ विश्वास तथा भक्ति से भर कर मूल मन्त्र अथवा इष्ट मन्त्र से अपना सर्वाङ्ग-मार्जन करे। तत्पश्चात् हृदय पर हाथ रखकर कहे—'ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा ॐ आं हुं फट् स्वाहा'। यह आत्मरक्षा मन्त्र है। इससे आत्मरक्षा करे।

घट-स्थापन—पूजा के लिये नूतन घट स्थापित करे; अन्यथा पूर्वप्रतिष्ठित घट, त्रिशूल, यन्त्र, पट, शिवालय अथवा शिवलिङ्ग आदि पर पूजा करे। विशेष नित्य पूजा काल में स्वतन्त्र घटस्थापन का प्रयोजन नहीं होता। पूजाकाल में घटस्थापन कर्त्तव्य है। अनेक बाद में यन्त्र के ऊपर घट को स्थापित करते हैं। इसके लिये सर्वतोभद्र मण्डल, नवनाभमण्डल, स्वल्पसर्वतोभद्रमण्डल अथवा पञ्चाजमण्डल की रचना करते हैं। आनन्द मठाधीश आचार्यगण गुरु-परम्परा के आधार पर यन्त्रासन के ऊपर अभिषेकादि घट-स्थापन करते हैं। यन्त्रासन अथवा पीठासन की प्रस्तुति विधि पश्चात् में पीठपूजा अंश में कही जायेगी। तदनुसार षट्कोणादि-युक्त यन्त्र-रचना करे। यन्त्र-मध्य में बीजमन्त्र लिखे। घट के नीचे जौ, धान्य, मूँग, तिल तथा उड़द देने की विधि है। मध्य घट के जल में अष्टगन्धादि भी मिलाये। घट के मुख पर पञ्चपल्लव रखे। अश्वत्थ, वट, आम, कटहल तथा बकुल ही तान्त्रिक पञ्चपल्लव होता है। इसके अतिरिक्त सामान्य पञ्चपल्लव हैं—पीपल, वट, आम, पाकड़ तथा यज्ञ-उडुम्बर। घट में पञ्चरत्न (प्रवाल, हीरक, नीलकान्तमणि, पद्मरागमणि तथा मुक्ता) अथवा एक तोला सुवर्ण रखे।

घट-प्रमाण आदि प्रत्येक विषय-हेतु 'आगमतत्त्वविलास ग्रन्थ' देखें। अष्टगन्धादि यदि उपलब्ध न हो तब चन्दन में चावल मिलाकर उसमें छोड़े। घटस्थापना की साधारण विधि यह है कि घट को सजाकर उसके ऊपर पल्लव तथा फल रखे।

'क्लीं' मन्त्र से घट को धोये। पहले धुला हो तब केवल मन्त्र 'क्लीं' पढ़कर घट का स्पर्श करने से भी यह कार्य हो जाता है। 'ऐं' मन्त्र से उसका संशोधन करे। 'ह्रीं' मन्त्र से इसका यथास्थान स्थापन करे तथा 'ह्रां' मन्त्र से घट को जलपूर्ण करे। यदि पहले से जल भरा हो तब घट-स्पर्श करके मन्त्र कह दे।

अब इस मन्त्र द्वारा अङ्कुशमुद्रा द्वारा सूर्यमण्डल से तीर्थजल का आवाहन करे। मन्त्र है—

ॐ गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः समुद्राश्च सरांसि च ।
ह्रदाः प्रस्रवणाः पुण्याः स्वर्गपातालभूगताः ।
सर्वतीर्थानि पुण्यानि घटे कुर्वन्तु सन्निधिम् ॥

इस मन्त्र से अङ्कुशमुद्रा द्वारा सूर्यमण्डल से तीर्थावाहन के उपरान्त कुशत्रितय से (अभाव में बिल्वपत्र अथवा दूर्वागुच्छ से) 'श्रीं' कहकर पल्लव, 'हुं' द्वारा फल, 'स्त्रीं' कहकर घटस्थिरीकरण, 'रं' मन्त्र से सिन्दूर, 'यं' मन्त्र से पुष्प, मूलमन्त्र अथवा इष्टमन्त्र से दूर्वा तथा 'ॐ हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से घट-स्पर्श करे । घट के चतुर्दिक् मूल मन्त्र का जप करे । अब घट तथा उपास्य देवता के ऐक्य का चिन्तन करके उस घट पर दस बार मूलबीज का जप करे ।

अब 'ॐ वह्नेर्धूम्रार्चिषादिदशकलाभ्यो नमः । ॐ सूर्याय तपिन्यादि द्वादशकलाभ्यो नमः । ॐ चन्द्रस्य अमृतादिषोडशकलाभ्यो नमः । ॐ स्थां स्त्रीं स्थिरा भव' कहकर आवाहनादि पञ्चमुद्रा-प्रदर्शन द्वारा देवता का आवाहन करे (चित्रों द्वारा इस ग्रन्थ में इन मुद्रा तथा मन्त्र का उल्लेख है)। इस प्रकार आवाहन, स्थापन, सन्निधापन, सन्निरोधन, सम्मुखीकरण विधि सम्पन्न करे ।

अन्त में घट में 'एते गन्धपुष्पे गणेशादिपञ्चदेवताभ्यो नमः, ॐ आदित्यादि-नवग्रहेभ्यो नमः, ॐ गुरवे नमः' से पूजा करे । तदनन्तर शिव की पूजा करे । साधक के उपास्य चाहे जो हों, आदिनाथ शिव का पूजन अत्यन्त आवश्यक है ।

अब— एते गन्धपुष्पे ॐ सूर्याय नमः से सूर्य की पूजा करे ।
एते गन्धपुष्पे ॐ दुर्गायै नमः से दुर्गा की पूजा करे ।
एते गन्धपुष्पे ॐ शिवाय नमः से शिव की पूजा करे ।
एते गन्धपुष्पे ॐ नारायणाय नमः से नारायण की पूजा करे ।
एते गन्धपुष्पे ॐ लक्ष्म्यै नमः से लक्ष्मी की पूजा करे ।
एते गन्धपुष्पे ॐ सरस्वत्यै नमः से सरस्वती की पूजा करे ।
एते गन्धपुष्पे ॐ गङ्गायै नमः से गङ्गा की पूजा करे ।
एते गन्धपुष्पे ॐ यमुनायै नमः से यमुना की पूजा करे ।
एते गन्धपुष्पे ॐ दिक्पालेभ्यो नमः से दिक्पाल की पूजा करे ।
एते गन्धपुष्पे ॐ दिग्गजेभ्यः नमः से दिग्गज की पूजा करे ।
एते गन्धपुष्पे ॐ देवेभ्यः नमः से देवों की पूजा करे ।
एते गन्धपुष्पे ॐ देवीभ्यः नमः से देवियों की पूजा करे ।
एते गन्धपुष्पे ॐ ऋषिभ्यः नमः से ऋषियों की पूजा करे ।
एते गन्धपुष्पे ॐ मासेभ्यः नमः से मास की पूजा करे ।

एते गन्धपुष्पे ॐ तिथिभ्य: नमः से तिथि की पूजा करे।
एते गन्धपुष्पे ॐ योगेभ्य: नमः से योग की पूजा करे।
एते गन्धपुष्पे ॐ करणेभ्य: नमः से करण की पूजा करे।

पूजान्त में प्राणायाम करे।

प्राणायाम—गुरु के आदेशानुसार यथाविधि प्राणायाम करे।

भूतशुद्धि—इस पर इस ग्रन्थ में पहले लिखा गया है, वहाँ देखें।

मातृकान्यास—ॐ अस्य मातृकामन्त्रस्य ब्रह्म ऋषिर्गायत्रीच्छन्दो देवीमातृकासरस्वती देवता हलो बीजानि स्वराः शक्तयः अव्यक्तं कीलकं सर्वाभीष्टसिद्धये लिपिन्यासे विनियोगः। शिरसि—ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे—गायत्रीच्छन्दसे नमः। हृदि—मातृकासरस्वत्यै देवतायै नमः। मूलाधारे—हल्भ्यो बीजेभ्यो नमः। पादयोः—स्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः। सर्वाङ्गे—अव्यक्तकीलकाय नमः। यह कहकर उन-उन स्थान का स्पर्श करे।

कराङ्गन्यास—

अं कं खं गं घं ङं आं — अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।
इं चं छं जं झं ञं ईं — तर्जनीभ्यां स्वाहा।
उं टं ठं डं ढं णं ऊं — मध्यमाभ्यां वषट्।
एं तं थं दं धं नं ऐं — अनामिकाभ्यां हुं।
ओं पं फं बं भं मं औं — कनिष्ठाभ्यां वौषट्।
अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अः— करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्।

षडङ्गन्यास—

अं कं खं गं घं ङं आं — हृदयाय नमः।
इं चं छं जं झं ञं ईं — शिरसे स्वाहा।
उं टं ठं डं ढं णं ऊं — शिखायै वषट्।
एं तं थं दं धं नं ऐं — कवचाय हुं।
ओं पं फं बं भं मं औं — नेत्रत्रयाय वौषट्।
अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अः— करपृष्ठकरतलाभ्यां अस्त्राय फट्।

अन्तर्मातृकान्यास—एक पुष्प लेकर अनामिका तथा वृद्धाङ्गुलि का यथायथ भाव से स्पर्श करके निम्नलिखित मातृका वर्ण का उच्चारण करना चाहिये। यथा—कण्ठ अथवा कण्ठ-स्थित विशुद्ध चक्र के सोलह दल हैं। उसमें अङ्कित एक-एक वर्ण का चिन्तन करे—अं नमः। आं नमः। इं नमः। ईं नमः। उं नमः। ऊं नमः। ऋं नमः। ॠं नमः। ऌं नमः। ॡं नमः। एं नमः। ऐं नमः। ओं नमः। औं नमः। अं नमः। अः नमः।

हृदय-स्थित अनाहत चक्र में बारह दल हैं। उसमें स्थित एक-एक वर्ण का चिन्तन

करे—कं नमः । खं नमः । गं नमः । घं नमः । ङं नमः । चं नमः । छं नमः । जं नमः । झं नमः । ञं नमः । टं नमः । ठं नमः ।

नाभि-स्थित मणिपूर चक्र के दस दल हैं । उसके प्रत्येक वर्ण का चिन्तन करे—डं नमः । ढं नमः । णं नमः । तं नमः । थं नमः । दं नमः । धं नमः । नं नमः । पं नमः । फं नमः ।

स्वाधिष्ठान चक्र के छः दल हैं । उसके प्रत्येक वर्ण का चिन्तन करे—बं नमः । भं नमः । मं नमः । यं नमः । रं नमः । लं नमः ।

मूलाधार चक्र में चार दल हैं । उसके प्रत्येक वर्ण का चिन्तर करे—वं नमः । शं नमः । षं नमः । सं नमः ।

भ्रूध्यस्थ आज्ञाचक्र के दो दल हैं । उनका चिन्तन करे—हं नमः । क्षं नमः ।

बाह्यमातृकान्यास—एक पुष्प अपने मस्तक पर रखकर बाह्यमातृका का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—

ॐ पञ्चाशल्लिपिभिर्विभक्तमुखदोः पन्मध्यवक्षस्थलां
भास्वन्मौलिनिबद्धचन्द्रशकलामापीनतुङ्गस्तनीम् ।
मुद्रामक्षगुणं सुधाढ्यकलशं विद्याञ्च हस्ताम्बुजै-
र्बिभ्राणां वियदप्रभां त्रिनयनां वाग्देवतामाश्रये ॥

अर्थात् पचास मातृकावर्ण जिसके मुख, बाहु, कटि, वक्षःस्थल में विभक्त हैं, जिसके मस्तक पर दीप्त चन्द्रकलायुक्त मौलि निबद्ध रहती है, जो पीनोन्नत स्तनयुगल से युक्त हैं, जो अपने चार हाथों में मुद्रा अथवा वर्णमाला, अक्षसूत्र, ज्ञानसुधा-भरा अपूर्व कलश तथा विद्या धारण करती हैं, जो श्वेतवर्णा, त्रिनयना हैं; मैं उन सरस्वतीरूपा वाग्देवता का आश्रय लेता हूँ। वे कृपा करके मातृकामन्त्र-न्यास की सिद्धि प्रदान करें ।

तदनन्तर मध्यमा एवं अनामिका-योग से ललाट का स्पर्श करके 'अं नमः' कहे । तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका के योग से मुखवृत्त का चारो ओर स्पर्श करके 'आं नमः' कहे । अङ्गुष्ठ तथा अनामिकायोग से दक्षिण चक्षु का स्पर्श करके 'इं नमः' कहे । इसी प्रकार से वाम चक्षु का स्पर्श करके 'ईं नमः' कहे । दक्षिण कर्ण का स्पर्श करके 'उं नमः' कहे । वाम कर्ण का स्पर्श करके 'ऊं नमः' कहे । कनिष्ठा अङ्गुलि से दक्षिण नासिका का स्पर्श करके 'ऋं नमः' कहे । वाम नासिका का इसी अङ्गुली से स्पर्श करके 'ॠं नमः' कहे । तर्जनी, मध्यमा एवं अनामिका के योग से दक्षिणगण्ड का स्पर्श करके 'ऌं नमः' कहे तथा इसी अङ्गुलि से वामगण्ड का स्पर्श करके 'ॡं नमः' कहे । मध्यमा से ओष्ठ का स्पर्श करके 'एं नमः' कहे तथा अधर का इसी अङ्गुली से स्पर्श करके 'ऐं नमः' कहे । अनामिका के द्वारा ऊर्ध्व दन्तपङ्क्ति को छूकर 'ओं नमः' कहे । इसी अङ्गुली से अधः दन्तपङ्क्ति द्वारा

'औं नमः' कहे। मध्यमा द्वारा मस्तक का स्पर्श करके 'अं नमः' कहे। अनामिका के योग से मुखविवर का स्पर्श करके 'अः नमः' कहे।

वाम हाथ की कनिष्ठा, मध्यमा तथा अनामिका द्वारा दाहिने बाहुमूल का स्पर्श करके 'कं नमः' कहे। इन्हीं अङ्गुलियों से दाहिने कर्पूर का स्पर्श करके 'खं नमः' कहे तथा इन्हीं अङ्गुलियों से मणिबन्ध को छूकर 'गं नमः' कहे। इन्हीं अङ्गुलियों से दाहिने हाथ की अङ्गुलियों के मूल का स्पर्श करके 'घं नमः' कहे। इन्हीं अङ्गुलियों का पूर्ववत् स्पर्श (अग्रभाग पर) करके 'ङं नमः' कहें। अब दाहिने हाथ की कनिष्ठा, मध्यमा तथा अनामिका के योग से वाम बाहु के मूल, कूर्पर, मणिबन्ध, अङ्गुलिमूल, अङ्गुलियों के अग्रभाग का स्पर्श करके क्रमशः वाम बाहुमूल का स्पर्श करके 'चं नमः', कूर्पर का स्पर्श करके 'छं नमः', मणिबन्ध का स्पर्श करके 'जं नमः', अङ्गुलिमूल का स्पर्श करके 'झं नमः' तथा अङ्गुलियों के अग्रभाग का स्पर्श करके 'ञं नमः' कहे।

इसी प्रकार वाम हस्त की कनिष्ठा, मध्यमा तथा अनामिका द्वारा दाहिने पैर की सन्धि को छूकर 'टं नमः' कहे। एड़ी को छूकर 'ठं नमः' कहे। गाँठ को छूकर 'डं नमः' कहे। अङ्गुलिमूल को छूकर 'ढं नमः' कहे। अङ्गुलियों के अग्रभाग को छूकर 'णं नमः' कहे। अब दाहिने हाथ की कनिष्ठा, मध्यमा तथा अनामिका द्वारा दाहिने पैर के इन्हीं स्थानों का स्पर्श करते हुये क्रमशः एक-एक अङ्ग पर एक-एक मन्त्र कहे; यथा—'तं नमः, थं नमः, दं नमः, धं नमः, नं नमः'।

अब समस्त दक्षिण पार्श्व का स्पर्श करते-करते (कनिष्ठा-मध्यमा तथा अनामिका से) पं नमः, वाम पार्श्व का स्पर्श करके कहे फं नमः, पृष्ठ देश का स्पर्श करके कहे 'बं नमः (यह तीनों कनिष्ठा, मध्यमा तथा अनामिका से करना होता है)।

अब अङ्गुष्ठ, अनामिका तथा कनिष्ठा से नामि का स्पर्श करके कहे—'भं नमः'। सभी अङ्गुलियों से जठर का स्पर्श करके 'मं नमः' कहे। दाहिने हाथ की हथेली हृदय पर रखकर कहना चाहिये—'यं त्वगात्मने नमः'। अब बाँयाँ करतल दाहिने कन्धे पर रखकर कहना चाहिये—'रं असृगात्मने नमः'। इसी प्रकार दाहिनी हथेली को ककुद पर रखकर कहे—'लं मांसात्मने नमः'। अब बाँयीं हथेली को बाँयें कन्धे पर रखकर कहे—'वं मेदआत्मने नमः' ऐसे ही बाँयीं हथेली से हृदय से लेकर दाहिनी हथेली की अङ्गुलियों के अग्र तक का स्पर्श करके कहे—'शं अस्थ्यात्मने नमः'। अब दाँयीं हथेली से दाहिनी ओर हृदय से लेकर वामबाहु की अङ्गुलियों के अग्र तक का स्पर्श करके कहे 'षं मज्जात्मने नमः'। अब दाहिनी हथेली से हृदय से लेकर दाहिने पैर की अङ्गुलियों के अग्र-पर्यन्त का स्पर्श करके कहे—'सं शुक्रात्मने नमः'। ऐसे ही दाहिनी हथेली से हृदय से लेकर बाँयें पैर की अङ्गुलियों के अग्र तक का स्पर्श करके कहे—'हं प्राणात्मने नमः'। इसी प्रकार

हृदय से उदर-पर्यन्त 'ळं जीवात्मने नमः' कहकर स्पर्श करे। ऐसे ही हृदय से लेकर मुख के ऊपर तक का स्पर्श करके कहे--'क्षं परमात्मने नमः'।

जो यह कर सकने में असमर्थ हैं, वे केवल पुष्प द्वारा ही स्पर्श करें। इसके अनन्तर कहीं-कहीं विलोममातृका का न्यास करने का भी विधान है। यह ध्यानान्त में 'क्षं' से विलोम रूप से अः पर्यन्त में नमः लगाकर किया जाता है। बहुत से गुरुगण इसे नहीं करते। उनका मत है कि सर्वान्तःकरण से स्वयं को उक्त मातृका वर्ण के सहयोग से देवी-भाव में गठित कर लेना चाहिये।

वर्णन्यास—अनेक स्थल पर मातृकान्यास के अनन्तर तत्त्वमुद्रा से वर्णन्यास करते हैं। जैसे—

हृदय पर—	अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं नमः।
दाहिने बाहु पर—	एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं नमः।
वाम बाहु पर—	ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं नमः।
दाहिने पैर पर—	णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं नमः।
वाम पद पर—	मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं नमः।

पीठन्यास—अपने हृदय में मृगमुद्रा द्वारा 'ॐ ह्रीं पीठदेवताभ्यो नमः' कहे। यही है—पीठदेवता का सङ्क्षेप में न्यास। अब पीठशक्ति का न्यास कहते हैं—ॐ ह्रीं पीठ-शक्तिभ्यो नमः' यह पीठशक्ति का सङ्क्षिप्त न्यास है। समर्थ व्यक्ति को विस्तृत न्यास करना चाहिये। यथा—हृदय में मृगमुद्रा से 'ॐ आधारशक्तये नमः, ॐ प्रकृत्यै नमः'। इसी उदाहरणानुसार कूर्माय, अनन्ताय, पृथिव्यै, सुधाम्बुधये, मणिद्वीपाय, चिन्तामणिगृहाय, श्मशानाय, पारिजाताय, कल्पवृक्षाय, मणिवेदिकायै, रत्नसिंहासनाय, मणिपीठाय। चतुर्दिक् ऐसे करे—'ॐ मुनिभ्यः नमः'। इसी उदाहरणानुसार इनका भी न्यास करना चाहिये—'देवेभ्यः, शवमुण्डेभ्यः, (बहुमांसास्थिमोदमानशिवाभ्यः), (चिताङ्गारास्थिभ्यः)।

अब दक्षिण स्कन्ध में—	ॐ धर्माय नमः।
वाम स्कन्ध में—	ॐ ज्ञानाय नमः।
इसी प्रकार वाम ऊरु में—	ॐ वैराग्याय नमः।
दक्षिण ऊरु में—	ॐ ऐश्वर्याय नमः।
मुख में—	ॐ अधर्माय नमः।
वाम पार्श्व में—	ॐ अज्ञानाय नमः।
नाभि में—	ॐ अवैराग्याय नमः।
दक्षिण पार्श्व में—	ॐ अनैश्वर्याय नमः।

हृदय में—ॐ अं अनन्ताय नमः। ॐ पं पद्माय नमः। ॐ आनन्दकन्दाय नमः।

ॐ संविन्नालाय नमः। ॐ प्रकृतिमयपत्रेभ्यो नमः। ॐ विकारमयकेशरेभ्यो नमः। ॐ तत्त्वमयकर्णिकायै नमः। ॐ अं अर्कमण्डलाय नमः। ॐ द्वादशकलात्मने नमः। ॐ उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः। ॐ मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः। ॐ सं सत्त्वाय नमः। ॐ रं रजसे नमः। ॐ तं तमसे नमः। ॐ आं आत्मने नमः। ॐ अं अन्तरात्मने नमः। ॐ पं परमात्मने नमः। ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि कोष्ठक में जो दिया गया है, वह केवल श्मशानवासी देवता के ही लिये कहा जाता है।

अब पीठशक्तिगण के विस्तृत न्यासार्थ कहा जाता है—हृत्पद्म के पूर्व से लेकर क्रमशः आठ दल की भावना करके अपने हृदय पर हाथ रखकर कहे—ॐ इच्छायै नमः, ॐ ज्ञानायै नमः, ॐ क्रियायै नमः, ॐ कामिन्यै नमः, ॐ कामदायिन्यै नमः, ॐ रत्यै नमः, ॐ रतिप्रियायै नमः, ॐ आनन्दायै नमः।

अब हृत्पद्म के मध्य का चिन्तन करते हुये कहना चाहिये—'ॐ मनोन्मन्यै नमः। ऐं परायै नमः, ॐ अपरायै नमः, ॐ परापरायै नमः'। उसके ऊपर 'ॐ हेसौः सदाशिव-महाप्रेतपद्मासनाय नमः' कहना चाहिये।

ऋष्यादिन्यास—इष्ट बीज से अथवा ह्रां मन्त्र से एक बार प्राणायाम करके इष्ट मन्त्र का उच्चारण करके 'अस्य मन्त्रस्य भैरवऋषिरुष्णिक्छन्दः श्रीमद्दक्षिणकालिकादेवता ह्रीं बीजं, हुं शक्तिः, क्रीं कीलकं पुरुषार्थचतुष्टयसिद्धये विनियोगः' का उच्चारण करना चाहिये। तदनन्तर मुद्रा द्वारा अङ्गुलियों के योग से जैसे पहले कहा गया है, जिस स्थान का वर्णन किया जा रहा है, उसे स्पर्श करके इन मन्त्रों को कहे। यथा—

शिर पर— ॐ भैरवाय ऋषये नमः।
मुख पर— ॐ उष्णिक् छन्दसे नमः।
हृदय पर— ॐ श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः।
पादयोः— ॐ शक्तये नमः।
सर्वाङ्गे— ॐ क्रीं कीलकाय नमः।

अब करन्यास कहते हैं— ॐ क्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।
ॐ क्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा।
ॐ क्रूं मध्यमाभ्यां वषट्।
ॐ क्रैं अनामिकाभ्यां हुं
ॐ क्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्।
ॐ क्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्।

अङ्गन्यास—ॐ क्रां हृदयाय नमः।

ॐ क्रीं शिरसे स्वाहा।

ॐ क्रूं शिखायै वषट्।

ॐ क्रैं कवचाय हुं।

ॐ क्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्।

ॐ क्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्।

सङ्क्षेप में षोढ़ान्यास—तत्त्वमुद्रा से यथायथ स्थान का स्पर्श करते हुये कहे—मस्तक—ॐ नमः, मूलाधार—स्त्रीं नमः, लिङ्ग—एं नमः। नाभि—क्रीं नमः, हृदय—ऐं नमः, कण्ठ—क्लीं नमः। भ्रूमध्य—स्वौं नमः, दक्षिण बाहु—ॐ नमः, वामबाहु—श्रीं नमः। दक्षिणपाद—ह्रीं नमः, वामपाद—क्लीं नमः, पृष्ठ—क्रौं नमः। जो समर्थ हो, उसे विस्तृत न्यास (विस्तृत षोढ़ान्यास) करना चाहिये।

पूर्व में जो मातृका वर्ण का न्यास करना था, ठीक उसी प्रकार से करे; लेकिन प्रत्येक मातृकावर्ण को ॐ से पुटित करना चाहिये; जैसे—'ॐ अं ॐ, ॐ आं ॐ, ॐ इं ॐ'। इसी प्रकार इक्यावन वर्णों का न्यास करे। यह करके अब पुनः ॐ के दोनों ओर मातृका लगाकर इक्यावन वर्णों का न्यास करे; जैसे—अं ॐ अं, आं ॐ आं, इं ॐ इं'। अर्थात् पहले मातृका वर्ण द्वारा बीज अथवा षोढ़ा मन्त्र पुटित करें। ऐसे षोढा-सिद्ध व्यक्ति के शरीर पर कोई पाप नहीं रहता। इस प्रकार विधिपूर्वक एक लाख षोढ़ा करने से साधक को षोढ़ा-सिद्धि हो जाती है।

बीजन्यास—तत्त्वमुद्रा से ब्रह्मरन्ध्र में मूल मन्त्र अथवा इष्टबीज से न्यास करे।

भ्रूमध्य में— मूल मन्त्र अथवा इष्ट बीजमन्त्र से करे।

ललाट में— मूल मन्त्र अथवा बीजमन्त्र से करे।

नाभि में— हुं से न्यास करे।

मुख में— ह्रीं से न्यास करे।

मूलाधार में— हुं से न्यास करे।

सर्वाङ्ग में— मूल मन्त्र अथवा इष्ट बीज से न्यास करे।

तत्त्वन्यास—समस्त देह को तीन खण्डों में बाँटकर भावना करे। प्रथम खण्ड है—पैर के अग्रभाग से नाभि-पर्यन्त। इसे दोनों हाथों की अङ्गुलियों से स्पर्श करते हुये कहना चाहिये—'कं ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा'। देह का द्वितीय खण्ड है—नाभि से हृदय-पर्यन्त। इसे स्पर्श करते हुये 'रं ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा' कहे। देह का तृतीय खण्ड है—हृदय से मस्तक-पर्यन्त। इसे स्पर्श करते हुये 'ईं ॐ शिवतत्त्वाय स्वाहा' कहे।

व्यापकन्यास—इस विषय में 'ॐ क्रीं ॐ' मन्त्र का उच्चारण करते हुये ब्रह्मरन्ध्र से लेकर पैर की अङ्गुलियों तक का स्पर्श किये बिना न्यास करे। पुनः पादाङ्गुलि (पैर की

अङ्गुलियों) से प्रारम्भ करके ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त न्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् नाभि से हृदय-पर्यन्त न्यास करे। इसमें दोनों हाथ की सभी अङ्गुलियों को फैलाकर बिना शरीर से स्पर्श कराये न्यास करे। इसे तीन, पाँच अथवा सात बार करते हैं।

आत्मप्राणप्रतिष्ठा—साधक हृदय पर लेलिहानमुद्रा बनाकर हाथ स्थापित करे (मुद्रा का चित्र ग्रन्थ में दिया गया है) तथा निम्नलिखित मन्त्र से आत्म-प्रतिष्ठा करे—'ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हंसः श्रीमद्दक्षिणकालिकायाः प्राणा इह प्राणाः ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हंसः श्रीमद्दक्षिणकालिकायाः जीव इह स्थितः, ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हंसः श्रीमद्दक्षिणकालिकायाः सर्वेन्द्रियाणि, ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हंसः श्रीमद्दक्षिणकालिकायाः वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा'।

अब कूर्ममुद्रा में एक पुष्प, बिल्वपत्र लेकर उस पर चन्दन लिप्त करके अपने हृदय के समक्ष रखे तथा हृदय-मध्य में पीठासन पर इनका ध्यान करे। यह ध्यान दक्षिणकालिका के किसी स्तोत्र से करना चाहिये। यहाँ देवी का सङ्क्षिप्त ध्यान कहा जा रहा है—

ॐ शवारूढां महाभीमां घोरदंष्ट्रां वरप्रदाम्।
हास्ययुक्तां त्रिनेत्राञ्च कपालकर्तृकाकराम्॥
मुक्तकेशीं ललज्जिह्वां पिबन्तीं रुधिरं मुहुः।
चतुर्बाहुयुतां देवीं वराभयकरां स्मरेत्॥ (सिद्धेश्वरतन्त्र)

यह एकाक्षरी मन्त्रधारकों के लिये शिव ने कहा है। ये प्रथमा महाविद्या दक्षिण-कालिका प्रेममूर्त्ति श्रीराधिका देवी की भी इष्टदेवता हैं। राधातन्त्र में कहा है—

एकाक्षरी महेशानि सा एव परमाक्षरा।
कालिका या महाविद्या पद्मिन्या इष्टदेवता॥

'हे महेशानि! पद्मिनी राधिका कालिका के जिस एकाक्षरी महाविद्या मन्त्र को जपती हैं, वही है—पराक्षरा शक्ति। वही उनकी इष्टदेवी हैं'। कालिकाबीज तथा कृष्णबीज एक ही है।

मानस पूजन—पूजक ध्यानोपरान्त कूर्ममुद्रा में हाथ में लिये गये पुष्प को अपने मस्तक पर रखे; क्योंकि अब साधक ही इष्टमूर्त्ति-स्वरूप हो गया है। अब वह आसनासीन होकर देवी का मानसिक पूजन करे। मानस पूजा ही सर्वश्रेष्ठ पूजा है। मानस पूजा ही श्रेष्ठतम जप है। जो मानस पूजा किये बिना बाह्य पूजा करते हैं, वह पूजा न होकर अभिचार होता है—

मानसी प्रवरा पूजा मानसः प्रवरो जपः।
मानसैश्च विना पूजा त्वभिचाराय कल्प्यते॥

मानसपूजनोपरान्त बाह्यपूजन करना चाहिये—

आराध्य मनसा सम्यक् बाह्यपूजा समाचरेत् ।
पूजाञ्च मानसीं कृत्वा ततोर्घ्यस्थापनञ्चरेत् ॥

बाह्यपूजा—बाह्यपूजन शिवलिङ्ग, स्थण्डिल, अग्नि सूर्यमण्डल, जलघट, पट, मण्डल, यन्त्र, मस्तक अथवा किसी पीठस्थान पर की जा सकती है । बाह्यपूजनार्थ गुरुप्रदत्त विधि का वर्णन इस प्रकार है—

दानार्घ्य अथवा विशेषार्घ्य-स्थापन—अपने सामने कुछ बाँयीं ओर पूर्वस्थापित सामान्यार्घ्य अथवा कोश के किञ्चित् बाँयीं ओर मत्स्यमुद्रा द्वारा चन्दन से स्थूल तेजसात्मक अधोमुख त्रिकोण बनाकर उसके बीच 'हुं' बीज लिखे । त्रिकोण के बाहर जलात्मक वृत्त एवं वृत्त के बाहर पृथ्वीरूप चतुष्कोण मण्डल का अङ्कन करना चाहिये । इस पर घट का जल कुछ छिड़क कर 'ह्रीं एते गन्धपुष्पे आधारशक्तये नमः, कूर्माय नमः, अनन्ताय नमः, पृथिव्यै नमः' कहकर मण्डल-पूजन करना चाहिये । उसके ऊपर तिपाई रखकर उस पर आधारपात्र स्थापित कर 'एते गन्धपुष्पे मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः' कहकर तिपाई की पूजा करनी चाहिये । तदनन्तर उस पर अर्घ्यपात्र (शङ्ख) स्थापित करना चाहिये । यहाँ सुवर्णपात्र, रजतपात्र, ताम्रपात्र अथवा शङ्ख रखा जाता है । अथवा अपने हाथ से बनाये मिट्टी के अर्घ्यपात्र को रख सकते हैं । उसे 'फट्' मन्त्र से धोकर उस तिपाई पर रखकर कहना चाहिये—'ह्रीं एते गन्धपुष्पे अं अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः' ।

अब पात्र की पूजा करके मूल मन्त्र अथवा इष्ट मन्त्र का उच्चारण करते हुये उसके ३/४ भाग को जल से भरना चाहिये । उस पर बिल्वपत्र, चन्दन लगे पुष्प, दूर्वा, तण्डुलादि द्वारा अर्घ्य स्थापित करना चाहिये । आठ प्रकार के द्रव्य इसमें देने की व्यवस्था कही गयी है । यथा—गन्ध (चन्दनादि), पुष्प-बिल्वपत्र, अक्षत, जौ, तिल, सफेद सरसों, दूर्वा, कुश का अग्रभाग । यदि सबका अभाव हो तब तण्डुल अथवा केवल जल देकर मन्त्र पढ़े । इन्हें पूर्वपूजित अर्घ्यपात्र पर रखकर पढ़े—'ह्रीं एते गन्धपुष्पे उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः' तथा पूजा करके 'क्रों गङ्गे च यमुने चैव' इत्यादि (यह इस ग्रन्थ में पूर्ववर्णित है) पढ़कर अङ्कुशमुद्रा से सूर्यमण्डल से तीर्थ का आवाहन करना चाहिये । गन्धपुष्पों से तीर्थसमूह का पूजन करके 'वषट्' कहकर गालिनी मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिये । तत्पश्चात् 'ह्रीं एते गन्धपुष्पे देव्याः षडङ्गदेवताभ्यो नमः' इस मन्त्र से षडङ्गदेवों का पूजन करना चाहिये । यही षडङ्गदेवों की सङ्क्षिप्त पूजा होती है । यदि विस्तृत पूजन करना अभीष्ट हो तो इस प्रकार करना चाहिये—

क्रां हृदयाय नमः, एते गन्धपुष्पे हृदयाङ्गशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
क्रीं शिरसे स्वाहा, एते गन्धपुष्पे शिरोऽङ्गशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
क्रं शिखायै वषट्, एते गन्धपुष्पे शिखाङ्गशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

क्रै कवचाय हुं, एते गन्धपुष्पे कवचाङ्गशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
क्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, एते गन्धपुष्पे नेत्रत्रयाङ्गशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
क्रः करपृष्ठकरतलाभ्यां अस्त्राय फट्, एते गन्धपुष्पे अस्त्राङ्गशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

अब श्रीमद्दक्षिणकालिका का इस अर्घ्यपात्र पर आवाहन करना चाहिये—
आवाहनी मुद्रा-प्रदर्शन करके कहे— श्रीमद्दक्षिणकालिका इहागच्छ इहागच्छ ।
स्थापनी मुद्रा-प्रदर्शन करके कहे— इह तिष्ठ इह तिष्ठ ।
सन्निधापनी मुद्रा-प्रदर्शन करके कहे— इह सन्निधेहि इह सन्निधेहि ।
सन्निरोधिनी मुद्रा-प्रदर्शन करके कहे— इह सम्मुखीभव, इह सम्मुखीभव ।
सम्मुखकरणी मुद्रा-प्रदर्शन करके कहे—अत्राधिष्ठानं कुरु मम पूजां गृहाण ।

इस प्रकार से अर्घ्य पर देवी का आवाहन करके केवल गन्ध-पुष्प से पूजन करने के उपरान्त मत्स्यमुद्रा से आच्छादन करके वहाँ पर दस बार इष्टमन्त्र का जप करना चाहिये ।

बाँयें हाथ के तल में दाहिने हाथ की तर्जनी एवं मध्यमा द्वारा तीन बार 'फट्' मन्त्र से ताली देनी चाहिये और धेनु तथा योनिमुद्रा दिखलाकर इस अर्घ्यपात्र का कुछ जल कोण में छोड़ते हुये इष्ट मन्त्र अथवा मूल मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये तथा इसी जल को अपने मस्तक तथा पूजा के द्रव्यों पर भी छिड़कना चाहिये ।

अर्घ्य-रहस्य—विशेषार्घ्य-स्थापन के सम्बन्ध में उच्च कोटि के साधक जो अनुभव करते हैं, उसका कुछ आभास देना यहाँ आवश्यक है । साधारणतः स्थूल दानार्घ्य अथवा विशेषार्घ्य-स्थापनार्थ भूमि तथा उसकी पूजा, पात्राधार-पूजा, पात्रपूजा, आधेयरूप जल-सहित अर्घ्यपूजा तथा तीर्थावाहन करके उस पर देवता की षडङ्गपूजा के साथ अभीष्ट देवता का आवाहन करते हैं । इसका प्रकृत उद्देश्य है—स्थूलतः अथवा सूक्ष्मतः मानस पूजन का ही समावेश । साधक अथवा पूजक द्वारा मूलाधारस्थ कुण्डलिनी-जागरण, प्राणप्रतिष्ठा तथा देवता की मानस पूजा आदि जो सब क्रिया सूक्ष्म भाव से पहले सम्पन्न की गई थी, स्थूल भाव से उस विधान की पुनः प्रतिष्ठा की जाती है ।

भूमि तथा उसकी पूजा के सम्बन्ध में जो त्रिकोण, वृत्त, चतुष्कोण मण्डल की रचना की गई है, वह इस मूलाधार के अन्तर्गत पृथिव्यात्मक मण्डल के मध्य वृत्ताकार अनन्त जलतत्त्व है तथा उसके अन्तर्गत त्रिकोणमय तेजोधार की प्रतिष्ठामात्र है । यही स्थूल पूजा का मूल आधार है । अर्थात् मूलाधार, स्वाधिष्ठान तथा मणिपूर चक्र का समाहार है अथवा समन्वयभूत इच्छा, क्रिया तथा ज्ञानभावात्मक विचित्र त्रितय का आधार प्रतिष्ठा (तिपाई) है । इसी के ऊपर द्वितीय कार्य है—दश रश्मिकलात्मक (दशदल-युक्त) वह्निचक्र अर्थात् शुद्ध अग्नि के स्थूल आधारस्वरूप 'मणिपूर' मण्डल की बाह्य जगत् में प्रतिष्ठा । उसके

ऊपर बारह दल के आकार का 'द्वादश आदित्य' अथवा उनकी द्वादश रश्मि अर्थात् कलात्मक अर्कमण्डलयुक्त अनाहत चक्र का स्वरूप, जो प्राणमय आधार-स्थापना एवं तदन्तर्गत 'अलक्तक-पूरित' अर्थात् अरुण पीताभ गुप्त अष्टदल कलात्मक (अष्टसखी तथा अष्टशक्ति प्रभायुक्त) निर्वात दीपकालिका के समान सूक्ष्ममुखी अष्टोत्तरशत अथवा अष्टपूर्वा एवं अक्षतादि (मूलशक्ति)-समन्वित दैवी प्राण तथा देवी प्राण का युगल मिलनरूप है।

यही जीवरूपी प्रकृति एवं अभीष्टदेवतारूप पुरुष की अलौकिक रासलीला तथा अपूर्व प्राणप्रतिष्ठा का रूप है। इसी से सोलह कलात्मक सोमरश्मिपूर्ण षोडशदलमय विशुद्धाख्य चक्ररूप से उसकी स्थूल अर्घ्यप्रतिष्ठा है। अब अखण्ड सूर्यमण्डलमय ब्रह्म-शक्ति-स्वरूप अथवा एकीभूत ब्रह्मशक्ति-स्वरूप साधक आज्ञाचक्रस्थ ब्रह्म तथा ब्रह्मशक्ति के द्वैतभावमय रश्मिमय अथवा द्विदल कमल का भेद करके सहस्रार के अन्तर्गत सोमतीर्थ-सम्भूत तीर्थसमूह का आवाहन करके स्थूल अर्घ्य-प्रतिष्ठा कार्य सम्पन्न करता है। उसके ऊपर देवता के षडङ्गादि की आंशिक पूजा के पश्चात् बाह्य भाव में उसकी ही समष्टिभूत पूजा का आयोजन होता है।

अब साधक को बाह्याभ्यन्तर में अपने अभीष्ट देवता की गम्भीर भावपूजा में तन्मय हो जाना चाहिये। जिसे पहले अपने अन्दर अनुभव किया था, इस बार बाहर भी उस अभावनीय वस्तुओं की भाव-प्रतिष्ठा करके स्थूल के मध्य में सूक्ष्म सत्ता का अनुभव करके विश्व के सर्वत्र सर्वभूत में उस अनन्त एवं अखण्ड भाव-समन्वय का अभ्यास करना चाहिये। ऐसा होने पर जब जो भाव रहेगा, वह भाव ही उसके अपार्थिव दैवभाव का प्रत्यक्ष करके आत्मरक्षा करने में समर्थ होगा। इसी प्रकार वह प्रत्यक्ष-स्वरूप दर्शन के पथ पर अग्रसर हो सकेगा। एकान्त विश्वास तथा भक्ति-पुष्टता, धैर्य, स्थैर्य के साथ उपासना न कर सकने पर कभी भी स्वरूपानुभूति नहीं होती। साधक को अपने काय, मन, वाक्य से उनकी पूजा करनी चाहिये।

उनकी यह बाह्यपूजा ही कायपूजा है। उसकी मानस-पूजा ही आन्तर अथवा मनःपूजा है। तन्मय भाव से मन्त्रजप ही उसकी वाक्-पूजा है। अतः कोई भी पूजा अथवा उसके अङ्ग अवज्ञा के विषय नहीं हैं। विशेष अर्घ्य-स्थापन ही बाह्यपूजा का सर्वश्रेष्ठ अनुष्ठान है। घट, पट, प्रतिमा, यन्त्र आदि कोई भी पूजा का आधार क्यों न हो, साधक को अर्घ्यस्थापना करनी ही चाहिये। ऐसा करने से साधक के अभीष्ट देवता का आवाहनादि कार्य सुसम्पन्न होता है।

तदनन्तर पीठासन-प्रतिष्ठा तथा उसकी पूजा के पश्चात् प्रधान अथवा मूलपूजा के मध्य में यथासमय पूर्ववर्णित अर्घ्य अर्पण करना पड़ता है। यह अर्घ्य ही साधक के मानसिक आसन पर भूषित अभीष्ट देवता का सूक्ष्म रूप होता है। अब स्थूलभाव में उसे अतिविचित्ररूपेण पुनः प्रतिष्ठा की जाती है।

किसी-किसी स्थल में अब विलोमार्घ्य-स्थापन की विधि है। यह पूजा के अन्त में आत्मसमर्पणार्थ व्यवहृत होता है, लेकिन सामान्यत: सामान्यार्घ्य अथवा कोश के जल द्वारा ही वह आत्मसमर्पण क्रिया सम्पन्न की जाती है। विलोमार्घ्य-स्थापन की विधि दानार्घ्य-स्थापन के ही अनुरूप है। भेद केवल यही है कि वह पूर्वप्रतिष्ठित दानार्घ्य के बाँईं ओर पूर्वानुरूप भाव से ही स्थापित किया जाता है। उसमें जल देते समय यथाक्रमेण बीजमन्त्र तथा मातृकामन्त्र (विलोम भाव से) अर्थात् क्षं से अं पर्यन्त कहते-कहते जल प्रदान करना चाहिये। वीराचारान्तर्गत 'रहस्यपूजा' में इसका व्यवहार नहीं किया जाता।

पीठपूजा—पीठ का अर्थ है—आसन। पूर्व में पीठन्यास के समय पूजक अपने देह में ही पीठस्थापना कर चुका है। अब देवता की बाह्यपूजा के उपलक्ष्य में यन्त्रासन स्थापित करना चाहिये। देव-देवी की पूजा-हेतु यन्त्रासन ही सर्वत्र प्रशस्त होता है। यन्त्रासन नाना आधार पर गठित किया जाता है। पार्थिव अथवा मृत्तिका-निर्मित शिवलिङ्ग के अतिरिक्त कोई शिवलिङ्ग, प्रतिष्ठित प्रतिमा, मणि, पीठस्थान (सुवर्ण, चाँदी, ताम्र अथवा पीतल का), सुविधा होने पर गभीर विज्ञान-सम्मत (त्रिलौह-मिश्रित धातुपात्र में अथवा फलक में) लिखित अथवा खोदे गये यन्त्र पर, मनुष्य की कपालास्थि पर, श्मशानकाष्ठ पर, शनि अथवा मङ्गल को मृत मानवशरीर के ऊपर अङ्कित यन्त्रपीठ पर अथवा पूर्वस्थापित घट, वेद-तन्त्रादि ग्रन्थ, गङ्गाजल, स्थण्डिल, अग्नि, सूर्य, चित्र, मण्डल, फलक, अपने मस्तक, अपने हृदय, शालग्राम, अपराजिता, कनेर, जपा, द्रोण आदि यन्त्रपुष्प पर, देवता के चरणचिह्न पर, लोहितनद, गङ्गासागर-सङ्गम, तीर्थ, बिल्वमूल, बिल्ववृक्ष, अखण्ड बिल्वपत्र, पर्वतशिखर, पर्वतस्थ काली शिला, गुहा, पर्वत गुहा—इन सभी स्थलों पर साधक को इन सब यन्त्रपीठरूप स्थानों को अभीष्ट देवता मानकर पूजन करना चाहिये। इनमें से किसी एक को यन्त्ररूपेण मानकर आसन-रक्षा करनी चाहिये।

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि ऊपर त्रिलौह का वर्णन किया गया है। दस भाग स्वर्ण, बारह भाग ताम्र, सोलह भाग चाँदी को गलाकर मिलाने से त्रिलौह बनता है। इसका पत्तर बनाकर उस पर यन्त्र लिखते हैं अथवा खुदवा लेते हैं। शिवार्चनचन्द्रिका के अनुसार यह सर्वसिद्धिदायक होता है। शालिग्राम शिला पर शववाहिनी की पूजा नहीं करनी चाहिये।

स्वर्णयन्त्र से राजा वशीभूत होता है। रौप्य यन्त्र आयु, आरोग्य तथा कामप्रद होता है। ताम्रयन्त्र समस्त ऐश्वर्यप्रद होता है। स्फटिकयन्त्र से मन की अभिलाषा पूरी होती है। माणिक्य के यन्त्र से राज्यप्राप्ति एवं मुक्ति मिलती है। मरकत (पन्ना) के यन्त्र से समस्त शत्रु नष्ट होते हैं। त्रिलौह यन्त्र शान्ति, पुष्टि, सर्वशत्रु-विमर्दनकारी, आयु तथा आरोग्य एवं कीर्त्ति तथा पुष्टि प्रदान करने वाला होता है।

यन्त्रपूजन—यदि साधक यन्त्र-लेखनादि न कर सके तब लाल जपापुष्प, कनेर आदि यन्त्रपुष्प अथवा बिल्वपत्र (अखण्ड बिल्वपत्र) को प्रतिमा, घट अथवा किसी घट

या स्थिर आसन पर रखकर उनकी पीठपूजा करनी चाहिये। एतदर्थ यन्त्र है—'ॐ आधारशक्तये नमः, ॐ ह्रीं एते गन्धपुष्पे श्रीमद्दक्षिणकालिकादेव्या पीठदेवताभ्यो नमः, ॐ ह्रीं एते गन्धपुष्पपीठशक्तिभ्यो नमः, ॐ ह्रीं पीठमनुभ्यो नमः'। यह है सङ्क्षिप्त पीठपूजा।

पुनर्ध्यान—अब साधक को अपने हृदय से पीठ-स्थित प्राणशक्तिरूपा तेजोमयी 'ईं'-कारात्मक कामकलारूपा आत्मदेवता को बाह्य पूजनार्थ बाहर लाकर इनका पुनः ध्यान करके भावना से ध्येय देवता के करःस्थित पुष्प को लाना चाहिये अर्थात् तेजोमय करना चाहिये। अर्थात् हाथ में रखे पुष्प में देवतेज की भावना करनी चाहिये। अब पहले (इस ग्रन्थ में वर्णित) कही गई विधि के अनुसार कूर्ममुद्रा में चन्दन-सहित बिल्वपत्र तथा सुवासित मनोहर पुष्प को लेकर हृदय के सामने रखकर काली देवी का ध्यान तथा अभीष्ट-चिन्तन करना चाहिये। ध्यान के पश्चात् 'यं' वायुबीज को कहकर उस प्राणमय देवता को प्रश्वास वायु द्वारा वाम नासारन्ध्र से बाहर लाकर हाथ पर रखे उस पुष्प में अधिष्ठित करके पूर्वरचित घट-प्रतिमा अथवा पीठासन पर रक्षित करना चाहिये। तदनन्तर कृताञ्जलि होकर निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़ना चाहिये (यहाँ यह ज्ञातव्य है कि शालग्राम, शिवलिङ्ग तथा बाणलिङ्ग आदि स्थिर पीठ पर आवाहन अथवा विसर्जन आवश्यक नहीं होता। नैमित्तिक तथा काम्यपूजन की प्रतिमा अथवा घट आदि पर ही यह विधि प्रयुक्त होती है)—

ॐ एह्येहि भगवत्यम्ब भक्तानुग्रहविग्रहे।
योगिनीभिः समं देवि रक्षार्थं मम सर्वदा॥
ॐ महापद्मवनान्तस्थे कारणानन्दविग्रहे।
सर्वभूतहिते मातरेह्येहि परमेश्वरि॥
ॐ देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते।
यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव॥

देवी को चक्षु-दान तथा प्राणप्रतिष्ठा की भी विधि है। जैसे—घृतप्रदीप की शिखा का काजल बनाकर बिल्वपत्र के सिरे से (जहाँ से बिल्वपत्र शाखा से जुड़ा रहता है, उस तिनके से) देवी के नेत्रों में कज्जल लगाना चाहिये तथा देवता की गायत्री पढ़कर चक्षुदान करना चाहिये।

प्राणप्रतिष्ठा—नये देवता तथा प्रतिमा के हृदय पर, जहाँ घट हो अथवा यन्त्र हो, उन्हें लेलिहान मुद्रा द्वारा स्पर्श करना चाहिये (जो पहले से प्राणप्रतिष्ठित हैं, उनकी प्राणप्रतिष्ठा पुनः नहीं होती)। ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हंसः श्रीमद्दक्षिण-कालिकादेवतायाः प्राणा इह प्राणाः। ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हंसः श्रीमद्दक्षिणकालिकादेवतायाः जीव इह स्थितः। ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हं सः श्रीमद्दक्षिणकालिकादेवतायाः सर्वेन्द्रियाणि। ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं

हंस: वाङ्मनश्चक्षु:श्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा' कहकर देवी की प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिये। प्राणप्रतिष्ठा-काल में अभिषिक्त लोग तथा ब्राह्मण साधको की तरह उपस्थित सभी जनों को स्वाहा का उच्चारण करना चाहिये।

अब साधक को पाद्यादि द्वारा देव-देवी का यथासाध्य बाह्य पूजन करना चाहिये।

उपचार—बाह्यपूजन पञ्चोपचार, दशोपचार, षोडशोपचार, अष्टादशोपचार तथा चतु:षष्टिरुपचार रूप पाँच प्रकार का होता है। इसमें पञ्चोपचार प्रशस्त होता है।

पञ्चोपचार—गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य—यह पञ्चोपचार होता है।

दशोपचार—पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, पुनराचमनीय, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य।

षोडशोपचार—आसन, स्वागतप्रश्न, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, पुनराचमनीय, स्नानीय, वस्त्र-सिन्दूर, आंभरण, गन्ध, पुष्प तथा बिल्वपत्र, धूप, दीप, नैवेद्य, पानीय, पुनराचमनीय, ताम्बूल तथा वन्दना प्रणाम।

सम्प्रदानविधि—आसनादि उपचार सम्प्रदान करते समय उन्हें किसी आधार पर संस्थापित करके पहले उसकी पूजा करनी होती है। तदनन्तर मूल मन्त्र उच्चरित करके उन उपचारों को अपने दाहिने हाथ का स्पर्श वाम हाथ से कराकर अर्थात् युग्म हस्त से समुदय वस्तुओं का निवेदन करना चाहिये। निवेदन-काल में हाथ को चित्त करके अर्पण करना चाहिये; ताकि अङ्गुलियों के नख देवताओं को न दिखें।

अब दशोपचार पूजाक्रम कहते हैं—

(बीजमन्त्र लगाकर) एतत् पाद्यं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नम: (देवता के चरणों में छोड़े)।

बीजमन्त्र— इदं अर्घ्यं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै स्वाहा (देवता के मस्तक पर छोड़े)।

बीजमन्त्र— इदं आमचनीयं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै स्वधा (देवता के मुख में छोड़े अर्थात् भावना करे कि मुख में दिया है)।

बीजमन्त्र— इदं स्नानीयं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै निवेदयामि (सर्वाङ्ग पर छोड़े)।

बीजमन्त्र— एष गन्ध: श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नम: (ललाट पर लगाये)।

बीजमन्त्र— इदं सचन्दनपुष्पं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै वौषट् (मस्तक पर छोड़े)।

बीजमन्त्र— इदं सचन्दनपत्रं वा बिल्वपत्रं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै वौषट् (चरण पर छोड़े)।

बीजमन्त्र— एष धूप: श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नम: (नासिकाग्र पर छोड़े)।

बीजमन्त्र— एष दीप: श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नम: (नयनों के आगे)।

बीजमन्त्र— इदं सोपकरणमामान्ननैवेद्यं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै निवेदयामि (मुख के आगे)।

बीजमन्त्र— इदं पानार्थोदकं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नम: (मुख के आगे)।

बीजमन्त्र— इदं पुनराचमनीयं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै स्वधा (मुख के आगे)।

बीजमन्त्र— इदं ताम्बूलं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै निवेदयामि (मुख के आगे)।

षोडशोपचार पूजाक्रम—सङ्क्षेप पूजा तथा नित्य पूजा में पञ्चोपचार अथवा दशोपचार ही प्रयोज्य होता है; लेकिन विशेष अथवा नैमित्तिक पूजनार्थ षोडशोपचार प्रशस्त होता है।

१. आसन—साधारणत: रजतासन (चाँदी का आसन) से इसका तात्पर्य है। यह चतुष्कोण एवं चार अङ्गुल परिमाण का होता है, जिसे किसी पात्र के ऊपर अथवा बिल्वपत्र के ऊपर स्थापित करके इस प्रकार से आराधना की जाती है—

पहले इस पर सामान्यार्घ्य से जल छिड़क कर धेनुमुद्रा प्रदर्शित करते हुये 'एतस्यै रजतासनाय नम:' द्वारा तीन बार जल छिड़कना चाहिये। तदनन्तर इसका पूजन करना चाहिये—

मूलमन्त्र + एते गन्धपुष्पे रजतासनाय नम:।

मूलमन्त्र + एते गन्धपुष्पे एतदधिपतये श्रीविष्णवे नम:।
(सभी देवताओं के विष्णु ही प्रतिनिधि हैं; इसलिये उनका नाम लिया गया)।

मूलमन्त्र + 'एतत् सम्प्रदानं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै नम:' इस प्रकार से आसन पूजनोपरान्त इसे देवता के बाँयें स्थापित करना चाहिये। मन्त्र है—'(मूलमन्त्र लगाकर) इदं रजतासनं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नम:'। यहाँ प्रसङ्गत: यह कहना आवश्यक है कि रजत के देवता हैं—चन्द्र, अन्न के लक्ष्मी, वस्त्र के बृहस्पति, जलादि तरल पेयसमूह के वरुण, आसन के पृथिवी, तिलान्न तथा परमान्न के रमा, घृत-प्रदीप-दधि-क्षीर के देवता हैं विष्णु, पुष्प-तैलप्रदीप के वनस्पति, गन्ध तथा धूप के गन्धर्व, घृत के वैशाली तथा माला आदि के देवता हैं दुर्गा।

२. स्वागत—कृताञ्जलि होकर कहे '(बीज मन्त्र +) श्रीमद्दक्षिणकालिके मात: स्वागतं सुस्वागतम्।

३. पाद्य—कुशी में जल लेकर उसमें रक्तचन्दन, दूर्वा, अपराजिता आदि के पुष्प से पूर्वोक्त रूप से आसन जैसी (जैसा आसन-प्रसङ्ग में कहा गया, वैसी) अर्चना करके मूल मन्त्र का उच्चारण करके कहना चाहिये 'एतत् पाद्यं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नम:' कहकर चरण-युगल में अर्पित करने का मन्त्र है—

पाद्यं गृहाण देवेशि सर्वदुःखापहारकम् ।
त्रायस्व वरदे देवि नमस्ते भगवत् प्रिये ॥

४. अर्घ्य—पूर्वस्थापित दानार्घ्य अथवा विशेषार्घ्य की आसन-प्रसङ्ग में वर्णित रीति के अनुसार अर्चना करके '(बीज मन्त्र +) इदं अर्घ्यं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै स्वाहा' कहते हुये देवता के मस्तक पर अर्घ्य प्रदान करना चाहिये मन्त्र है—

त्रैलोक्योद्धारहेतुत्वमवतीर्णा महीतले ।
मया निवेदितं भक्त्या अर्घ्योऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

५. आचमनीय—कुशी में सामान्य जल में चन्दनादि गन्धद्रव्य मिलाकर '(बीज मन्त्र +) इदं आचमनीयं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै स्वधा' कहकर (देवी के) मुख में प्रदान करना चाहिये । मन्त्र है—

मन्दाकिन्यास्तु यद्वारि सर्वपापहरं शुभम् ।
गृहाणाचमनीयं त्वं मया भक्त्या निवेदितम् ॥

६. मधुपर्क—प्रशस्त कांस्यपात्र में दही, घृत तथा चीनी समान मात्रा में, नारिकेल-जल स्वल्प मात्रा में तथा मधु सर्वापेक्षया अधिक मिलाना चाहिये । नारिकेल उपलब्ध न हो तब शुद्ध जल लिया जा सकता है । इसे अन्य कांस्य पात्र से ढ़क देना चाहिये । इसकी भी अर्चना पूर्ववत् करनी चाहिये । '(बीज मन्त्र +) एष मधुपर्कः श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै स्वधा' मन्त्र से देवता के मुख से इसका स्पर्श कराना चाहिये ।

७. पुनराचमनीय—कुशी में जल लेकर '(बीज मन्त्र +) इदं पुनराचमनीयं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै स्वधा' मन्त्र द्वारा देवता का मुख-स्पर्श कराना चाहिये ।

८. स्नानीय जल—गन्ध, पुष्प, तण्डुल-मिश्रित जल शङ्खपात्र में लेकर '(बीज मन्त्र +) इदं स्नानीयं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः' मन्त्र द्वारा देवता के सर्वाङ्ग में निवेदित करना चाहिये । मन्त्र है—

जलञ्च शीतलं स्वच्छं नित्यं शुद्धं मनोहरम् ।
स्नानार्थं ते प्रयच्छामि सुरेश्वरि गृहाण मे ॥

९. वस्त्र—आसन-अर्चना की तरह वस्त्र भी सामने स्थापित कर वस्त्र से अर्चना करनी चाहिये—'(बीज मन्त्र +) इदं वस्त्रं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै निवेदयामि' मन्त्र से देवी के सर्वाङ्ग का अथवा गात्र का स्पर्श वस्त्र से कराना चाहिये । वस्त्र-प्रकरण में ही सिंदूर, यज्ञोपवीत, कज्जल की भी गणना की जाती है ।

९ (क). सिन्दूर—'(बीज मन्त्र +) इदं सिन्दूरं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः' इस मन्त्र से कनिष्ठा अथवा अनामा से सीमन्त तथा ललाट पर सिन्दूर अर्पित करना चाहिये ।

९ (ख). **यज्ञोपवीत**—इसी प्रकार '(बीज मन्त्र +) इदं यज्ञोपवीतं श्रीमद्दक्षिण-कालिकायै देवतायै नमः' कहकर गले में अर्पित करना चाहिये।

९ (ग). **कज्जल**—प्रदीप से कज्जल लेकर उसे घृत मिश्रित करके देवी के नेत्रों से स्पर्श कराना चाहिये।

१०. **आभरण**—अलङ्कारों को '(बीज मन्त्र +) इदं आभरणं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः' कहकर यथायथ स्थान पर अर्पित करना चाहिये।

११. **गन्ध**—चन्दन आदि को '(बीज मन्त्र +) इदं गन्धं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै स्वधा' कहकर देवमस्तक पर अर्पित करना चाहिये। मन्त्र है—

शरीरन्ते न जानामि चेष्टाश्चैव वरानने।
मां रक्ष सर्वतो देवि गन्धानेतान् गृहाण च॥

१२. **पुष्प**—'(बीज मन्त्र +) इदं सचन्दनपुष्पं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै वौषट्' मन्त्र से देवमस्तक पर पुष्प अर्पित करना चाहिये। इसी में माला की भी गणना की जाती है।

१२ (क). **माला**—बिल्वपत्र चरणों में तथा माला गले में निवेदित करना चाहिये। मन्त्र है—

सूत्रेण ग्रथितं माल्यं नानापुष्पसमन्वितम्।
श्रीयुक्तं सौरभोपेतं गृहाण सुरपूजिते॥

१३. **धूप**—देवता के समक्ष पात्र में (धूपदानी में) धूप रखकर बाँयें हाथ से स्पर्श करके 'फट्' मन्त्र से उस पर जल छिड़कना चाहिये। 'एतस्मै धूपाय नमः' कहकर आसन प्रसङ्गानुसार पूजन करके 'ॐ (बीज मन्त्र +) वनस्पतिरसो दिव्यं गन्धाढ्यः सुमनोहरः। आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्' कहकर 'फट्' मन्त्र से घण्टा पर जल छिड़क कर तर्जनी एवं मध्यमा द्वारा इस मन्त्र से घण्टापूजन करना चाहिये—'ॐ जयध्वनिमन्त्रमातः स्वाहा'। अब बाँयें हाथ से घण्टा बजाते हुए कहना चाहिये—'(बीजमन्त्र +) एष धूपः श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः'। अब दाहिने हाथ की अनामा एवं मध्यमा पर्व को अङ्गूठे से जोड़कर धूपदानी उठाकर बीजमन्त्र के साथ गायत्री पढ़ते-पढ़ते देवता की नासिका पर्यन्त तीन बार घुमाकर उसे देवता के बाँयें रख देना चाहिये।

१४. **दीप**—बाँयें हाथ की मध्यमा से दीपाधार का स्पर्श करके धूप के समान (जैसे धूप के प्रसङ्ग में किया था) अर्चना करनी चाहिये।

ॐ सुप्रकाशो महादीपः सर्वतस्तिमिरापहः।
सबाह्याभ्यन्तरज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

इस मन्त्र से दीप निवेदन करके बाँयें हाथ से घण्टा बजाते-बजाते '(बीज मन्त्र +)

एष दीप: श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नम:' मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये। मन्त्र के पश्चात् बीज के साथ गायत्री-पाठ करते-करते उसे दाहिने हाथ में लेकर देवता के नेत्र-पर्यन्त तीन बार घुमाकर देवता के दाहिने रख देना चाहिये। देवी के पास जो प्रदीप दिया जाय, उसमें यदि तेल पड़ा हो तब बाँयें भाग में तथा घृत पड़ा हो तब उसे दाहिने रक्षित करना चाहिये। उक्त तैल की प्रदीप बत्ती को रक्तवर्ण करके प्रस्तुत करना चाहिये। घृत-प्रदीप की बत्ती को श्वेत ही रखना चाहिये।

१५. नैवेद्य—(इसे देवार्पण के पूर्व तक बराबर आच्छादित रखना चाहिये। देवता के अनुसार इसके ऊपर पुष्प, बेलपत्र अथवा तुलसी रख देना चाहिये)। नैवेद्य पर 'फट्' मन्त्र द्वारा जल छिड़क कर 'हुं' मन्त्र से अवगुण्ठन मुद्रा-प्रदर्शन द्वारा 'चक्रमुद्रा' से अभिरक्षित करना चाहिये। तत्पश्चात् 'यं' मन्त्र पढ़कर नैवेद्य के दोषों का शोधन करके 'रं' मन्त्र द्वारा उन शोधित दोषों का दहन करना चाहिये। अब 'वं' मन्त्र से धेनुमुद्रा का प्रदर्शन करके नैवेद्य का अमृतीकरण करना चाहिये। मत्स्यमुद्रा से नैवेद्य को आच्छादित करके दस बार मूल मन्त्र का जप करना चाहिये। तदनन्तर वाम हस्त की अनामिका एवं अङ्गुष्ठ-योग से तत्त्वमुद्रा द्वारा नैवेद्य पात्र का स्पर्श करके इस प्रकार कहना चाहिये (यदि पात्र दूर हो तब जहाँ साधक बैठा हो, वहीं से दिखलानी चाहिये)—आमान्नं घृतसंयुक्तं नानास्वादु-समन्वितम्। सोपहारफलं देवि प्रगृहाण (सुपूजिते) दिगम्बरि (बीजमन्त्र +) इदं सोपकरण-नैवेद्यं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै निवेदयामि'। इस मन्त्र से दाहिने हाथ की अनामिका एवं अङ्गूठे से कोशा के जल को छिड़क कर निवेदन करना चाहिये।

तदनन्तर हाथ में एक चुल्लू जल लेकर (बीजमन्त्र +) श्रीमद्दक्षिणकालिके देवि एतज्जलं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा' कहने के बाद बाँयें हाथ से ग्रासमुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिये एवं दाहिने हाथ से प्राणमुद्रा, अपानमुद्रा, समानमुद्रा, उदानमुद्रा एवं व्यानमुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये—

प्राणमुद्रा द्वारा कहे— ॐ प्राणाय स्वाहा।
अपानमुद्रा द्वारा कहे— ॐ अपानाय स्वाहा।
समानमुद्रा द्वारा कहे— ॐ समानाय स्वाहा।
उदानमुद्रा द्वारा कहे— ॐ उदानाय स्वाहा।
व्यानमुद्रा द्वारा कहे— ॐ व्यानाय स्वाहा।

मुद्रा विधि—ग्रासमुद्रा—वामहस्त की पाँच अङ्गुलियों को समान करके अनामिका के मध्य में अङ्गुष्ठ का योग करके हाथ को कुछ इस प्रकार वक्र करना चाहिये, जैसे आहार्य वस्तु उठाने के लिये किया जाता है।

प्राणमुद्रा—तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका के योग से।

अपानमुद्रा—मध्यमा, अनामिका एवं अङ्गुष्ठ के योग से।

समानमुद्रा—सभी अङ्गुलियों के अग्रभाग को एकत्र करके।

उदानमुद्रा—तर्जनी को छोड़कर सभी अङ्गुलियों को एकत्र करके।

व्यानमुद्रा—कनिष्ठा, अनामिका तथा अङ्गूठे के योग से।

१५ (क). इसी समय अन्न-व्यञ्जनादि का निवेदन किया जा सकता है, लेकिन प्रचलित प्रथा के अनुसार पूजा के उपरान्त ही भोगान्न को निवेदन करते हैं। उसे 'इदं सोपकरणनैवेद्यं' न कहकर 'इदं सोपकरणमन्नं' कहकर निवेदन करना चाहिये।

१५ (ख). पानार्थ जल—पानपात्र (जलपात्र) रखकर '(बीज मन्त्र +) इदं पानार्थजलं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः' मन्त्र से पानीय जल देवमुख में निवेदित करना चाहिये। मन्त्र है—

जलं सुशोभनं देवि शीतलं सुमनोहरम्।
भूतानां तृप्तिजननं मया दत्तं प्रगृह्यताम्॥

१५ (ग). पुनराचमनीय—'(बीज मन्त्र +) इदं पुनराचमनीयं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै स्वधा' कहकर मुख-प्रक्षालनार्थ जल प्रदान करना चाहिये। मन्त्र है—

उच्छिष्टोऽप्यशुचिर्वापि यस्याः स्मरणमात्रतः।
शुद्धिमाप्नोति तस्यैते पुनराचमनीयकम्॥

१५ (घ). ताम्बूल—किसी पात्र में सामने चूना, कत्था, सुपारी तथा मसाला-युक्त पान रखकर बाँये हाथ के अङ्गूठे से पात्र का स्पर्श करके '(बीज मन्त्र +) एतत् ताम्बूलं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै निवेदयामि' कहकर देवता के मुख के पास पान को लेते हुए यह मन्त्र पढ़ना चाहिये—

ताम्बूलं परमं रम्यं कर्पूरेण सुवासितम्।
मया निवेदितं भक्त्या ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्॥

पूजा-काल में किसी वस्तु का अभाव होने पर अक्षत, सफेद सरसो, दूर्वा अथवा केवल जल से ही यह कार्य '(बीजमन्त्र) इदं ताम्बूलार्थं उदकं वा धूपार्थं जलं अथवा वस्त्रार्थं पुष्पं' कहकर उस वस्तु की कल्पना करके देवता को अर्पित करना चाहिये।

१६. वन्दना-प्रणाम—

महामाये जगन्मातः कालिके घोरदक्षिणे।
गृहाण वन्दनं देवि नमस्ते परमेश्वरि॥

इस मन्त्र से जगन्माता की वन्दना तथा प्रणाम अर्पण करना चाहिये। '(बीज मन्त्र) श्रीमद्दक्षिणकालिकां देवीं तर्पयामि स्वाहा' मन्त्र से तीन बार तर्पण करना चाहिये, जो अनभिषिक्त हैं, वे दाहिने हाथ की तत्त्वमुद्रा द्वारा जलबिन्दु का अमृतमय चिन्तन करके देवता के मुख में उक्त मन्त्र से तीन बार तर्पण कर सकते हैं। तर्पण-काल में वाम हस्त

तथा दक्षिण हस्त को युक्त करना चाहिये। जो समर्थ साधक हैं, वे भोज्य, जल, छत्र तथा पादुकादि का भी उत्सर्ग कर सकते हैं।

पुष्पाञ्जलि—'(बीज मन्त्र +) एष सचन्दनं पुष्पाञ्जलिः श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै वौषट्' मन्त्र से भक्तिपूर्वक पाँच, तीन अथवा एक बार पुष्पाञ्जलि प्रदान करना चाहिये।

आवरणपूजा—योनिमुद्रा-प्रदर्शनपूर्वक अञ्जलिबद्ध होकर इष्टदेवता से आवरण-पूजा की आज्ञा माँगनी चाहिये—'(बीज मन्त्र +) श्रीमद्दक्षिणकालिके देवि आज्ञापय भवत्याः आवरणं (परिवारान्) पूजयामि'। तदनन्तर मन ही मन यह भावना करनी चाहिये कि देवता की आज्ञा मिल गयी है। अब सङ्क्षेप में इस प्रकार पूजा करनी चाहिये—'एते गन्धपुष्पे श्रीमद्दक्षिणकालिकाषडङ्गदेवताश्रीपादुकां पूजयामि नमः'। अब गन्ध-पुष्पादि प्रदान करके इन देवताओं का पूजन करना चाहिये—

ॐ गुरुपङ्क्तिभ्यो नमः।
ॐ गुरुपादुकां पूजयामि नमः।
ॐ श्रीमद्दक्षिणकालिकादेव्यम्बा षडङ्गेभ्यो नमः।
ॐ काल्यादिपञ्चदशविद्याभ्यो नमः।
ॐ ब्रह्माद्यष्टशक्तिभ्यो नमः।
ॐ असिताङ्गाद्यष्टभैरवेभ्यो नमः।
ॐ शवरूपमहादेवाय श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

इस प्रकार से पूजन करके तत्त्वमुद्रा द्वारा ही निम्नलिखित मन्त्र से तर्पण करना चाहिये—'ॐ श्रीमद्दक्षिणकालिकादेव्यम्बा आवरणदेवताश्रीपादुकां तर्पयामि स्वाहा'। यही है—आवरणदेवों की सङ्क्षिप्त पूजा एवं तर्पण-विधि। विस्तृत पूजन में प्रत्येक आवरण देवताओं की अलग से पूजा करनी पड़ती है।

महाकाल-पूजन—अब महाकाल का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—

महाकालं यजेत् पश्चात् विपरीतरतान्तरे।
मुक्तकेशं स्रस्तवेशं दिगम्बरं हसन्मुखम्॥

देवी के पूजनोपरान्त उनके साथ विपरीत क्रियारत होने से स्रस्त, मुक्तकेश, दिगम्बर तथा हास्य मुख वाले महाकाल का पूजन करना चाहिये।

कूर्ममुद्रा में पुष्प लेकर महाकाल का ध्यान करके अपने शिर पर पुष्प रखकर यथाशक्ति मानसोपचार द्वारा पूजन करना चाहिये। तदनन्तर पुनः ध्यान करके यथाशक्ति पूजन करना चाहिये। इनकी पञ्चोपचार पूजा कहते हैं—

१. हुं क्ष्रौं यां रां लां वां आं क्रों महाकालभैरव सर्वविघ्नान् नाशय नाशय ह्रीं श्रीं फट् स्वाहा। एष गन्धः महाकालभैरवाय शिवाय नमः।

२. हुं क्ष्रौं यां रां लां वां आं क्रों महाकालभैरव सर्वविघ्नान् नाशय नाशय ह्रीं श्रीं फट् स्वाहा । इदं सचन्दनपुष्पं महाकालभैरवाय शिवाय नमः ।

३. हुं क्ष्रौं यां रां लां वां आं क्रों महाकालभैरव सर्वविघ्नान् नाशय नाशय ह्रीं श्रीं फट् स्वाहा । एष धूपः महाकालभैरवाय शिवाय नमः ।

४. हुं क्ष्रौं यां रां लां वां आं क्रों महाकालभैरव सर्वविघ्नान् नाशय नाशय ह्रीं श्रीं फट् स्वाहा । एष दीपः महाकालभैरवाय शिवाय नमः ।

५. हुं क्ष्रौं यां रां लां वां आं क्रों महाकालभैरव सर्वविघ्नान् नाशय नाशय ह्रीं श्रीं फट् स्वाहा । इदं सोपकरणनैवेद्यं महाकालभैरवाय शिवाय नमः ।

तर्पण—हुं क्ष्रौं यां रां लां वां आं क्रों महाकालभैरव सर्वविघ्नान् नाशय नाशय ह्रीं श्रीं स्वाहा महाकालभैरवं तर्पयामि स्वाहा ।

बलि—अब महाकाल को बलि देनी चाहिये । किसी पात्र में रम्भा, उड़द तथा दधि मिलाकर प्रदान करना चाहिये । मन्त्र है—हुं क्ष्रौं यां रां लां वां आं क्रों महाकालभैरव सर्वविघ्नान् नाशय नाशय ह्रीं श्रीं फट् स्वाहा, महाकालभैरव श्मशानाधिप इदं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कुरु कुरु सिद्धिं प्रयच्छ मे स्वाहा, इदं बलिं महाकालभैरवाय शिवाय नमः ।

देवी के करमुद्रा की पूजा—देवी के प्रत्येक मुद्राओं की गन्ध-पुष्प से पूजा करनी चाहिये । मन्त्र है—

एते गन्धपुष्पे खड्गाय नमः ।
एते गन्धपुष्पे मुण्डाय नमः ।
एते गन्धपुष्पे अभयमुद्रायै नमः ।
एते गन्धपुष्पे वरमुद्रायै नमः ।

देवी का पुनर्ध्यान—अब देवी का पुनः ध्यान करके यथाशक्ति पूजन करना चाहिये ।

देवी-तर्पण—अब तत्त्वमुद्रा से देवी का पूर्वलिखित (ग्रन्थ में पहले लिखा जा चुका है) नियम से तत्त्वमुद्रा द्वारा तर्पण करना चाहिये, मन्त्र है—'(बीजमन्त्र +) साङ्गायाः सावरणायाः सायुधायाः सपरिवारायाः सवाहनायाः महाकालभैरवसहितायाः श्रीमद्दक्षिण-कालिकायाः देवतयाः श्रीपादुकां तर्पयामि स्वाहा' ।

बलि-प्रदान—देवी की बाँयीं ओर पूर्ववर्णित रूप से त्रिकोण, वृत्त, चतुरस्र मण्डल का अङ्कन करके 'ॐ एते गन्धपुष्पे मण्डलाय नमः' मन्त्र से मण्डल का पूजन करके वहाँ किसी आधार पर बलिपात्र स्थापित करके उसमें रम्भा, उड़द अथवा तण्डुल, दधि, जल, हरिद्रा, लवण तथा आर्द्रक आदि जो कुछ संग्रह हो सके, उसे धेनुमुद्रा से अर्पित करना

चाहिये। मन्त्र है—'ॐ एह्येहि जगतां मातर्जगतां जननिं शुभे। गृह्ण गृह्ण इमं बलिं मम सिद्धिं देहि शत्रुक्षयं कुरु कुरु सर्वतत्त्वं मे कामनाय हुं ह्रीं फट् स्वाहा। ॐ (बीजमन्त्र +) एष: माषभक्तबलि: श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै: नम:।

पुष्पाञ्जलि—एष पुष्पाञ्जलि: (बीजमन्त्र +) सायुध-सवाहन-सपरिवार-महाकालसहिता-श्रीमद्दक्षिणकालिकाश्रीपादुकां पूजयामि नम:—इस मन्त्र से (देवता-गायत्री पढ़ते हुये) तीन बार पुष्पाञ्जलि प्रदान करनी चाहिये।

अन्न भोज्यादि निवेदन—अनेक लोग अन्य अन्न भोज्य निवेदित करते हैं। सुयोग होने पर नैवेद्य निवेदन विधि से ही यह निवेदित करना चाहिये।

सभी देवताओं को पूजान्त में साष्टाङ्ग प्रणाम किया जाता है। न कर सके तब पञ्चाङ्ग प्रणाम अथवा तीन अङ्गों वाला प्रणाम करना चाहिये। प्रणाम के पूर्व प्रदक्षिणा-स्तवपाठ करते-करते देवता के सामने से प्रारम्भ करके अपने वाम ओर आवर्त्त देकर प्रदक्षिणा करनी चाहिये। देवता को प्रदक्षिणा के समय दाहिने रखना चाहिये।

●

होम-रहस्य

होमकार्य कुण्ड अथवा स्थण्डिल पर ही होना चाहिये। सङ्क्षिप्त होम में वेदी का उतना प्रचलन नहीं है। विशेष होम में ही इनका व्यवहार किया जाता है। प्रशस्त होम क्रिया हेतु वेदी प्रस्तुत करना आवश्यक है।

वेदी का प्रमाण—समचतुष्कोण एवं एक हाथ (साधक के अपने हाथ के माप से) उच्च भूमि पर वेदी बनाते हैं। वेदी के दैर्घ्य तथा विस्तार के विषय में उत्तम अथवा श्रेष्ठ कल्प में १६ × १६ हाथ, मध्यम कल्प में १२ × १२ हाथ से लेकर ८ × ८ हाथ तथा सामान्य कल्प में ६ × ६ अथवा ५ × ५ अथवा कम से कम ४ × ४ हाथ का प्रमाण होना चाहिये। वेदी के चतुर्दिक् चतुर्द्वार, तोरण, पताका तथा ऊपर चन्द्रातपादि द्वारा यज्ञभूमि का आच्छादन करना चाहिये। इससे यज्ञमण्डप वेदी में परिणत हो जाता है।

स्थण्डिल-प्रमाण—छिन्नकेश, तुष तथा अङ्गारादि आवर्जना-वर्जित सुपरिष्कृत बालुका द्वारा समचतुष्कोण भाव से व्याप्त करे अथवा बिछा दे। स्थण्डिल साधारणतः एक हाथ लम्बा तथा एक हाथ चौड़ा होता है। विशेष उपलक्ष्य में दैर्घ्य एवं प्रस्थ में चार हाथ परिमाण-पर्यन्त करना चाहिये।

कुण्ड-प्रमाण—उक्त वेदी के मध्य या किसी भी यज्ञमण्डप के मध्य 'मेखला' तथा 'योनि' आदि से युक्त होमकार्योपयोगी शास्त्रोपदिष्ट सुमनोहर गर्त्त का नाम है—कुण्ड। वह साधक के लिये सर्वविध कल्याणकारी होता है। निगमागम-वेद-तन्त्र में कुण्ड-रचना का विशेष उपदेश प्राप्त होता है। कुण्ड जहाँ खोदना हो, वहाँ का भूमि-परीक्षण आवश्यक है। भूमि चार प्रकार की कही गयी है—

ब्राह्मी भूमि—जहाँ की मृत्तिका शुक्लाभ वर्ण हो, वह ब्राह्मी भूमि सर्वार्थसिद्धिप्रदा होती है।

क्षत्रिया भूमि—जहाँ की मृत्तिका रक्ताभ हो, वह क्षत्रिया भूमि राज्यप्रदा होती है।

वैश्या भूमि—जहाँ की मृत्तिका हरिद्राभ (पीली) हो, वह वैश्या भूमि धन-धान्य देने वाली होती है।

शूद्रा भूमि—कृष्णवर्णाभ मृत्तिका वाली शूद्रा भूमि सर्वापेक्षया निन्दित होती है।

भूमि का निर्धारण करके वास्तुशास्त्रज्ञ विद्वान् को वहाँ चार हाथ गहरी भूमि खोदनी चाहिये। वहाँ यदि अस्थि आदि दूषित वस्तु हो तो उसे हटा देना चाहिये। तदनन्तर मृत्तिका का शोधन करके पूर्व, उत्तर अथवा ईशान कोण में उक्त कुण्ड-मण्डल का निर्माण करना चाहिये। भूमि का नाप लेने ले लिये यजमान के हाथ का ही नाप लेना चाहिये। उसके

दाहिने हाथ की मध्य वाली अङ्गुली के मध्यपर्व के नाप को एक अङ्गुल कहते हैं। ऐसे २४ अङ्गुल नाप को एक हाथ कहा जाता है। यजमान के तिर्यक् किये गये अङ्गुष्ठ के परिमाण को एक अङ्गुष्ठ कहते हैं। मुट्ठी बन्द करके हाथ की कलाई तक के नाप को मुष्टि कहते हैं। मुष्टि बन्द करके कनिष्ठा अङ्गुली को सामने फैलाकर इस अङ्गुली के अग्रभाग से लेकर कलाई तक के नाप को एक अरत्नि कहते हैं।

एक हजार होम करने के लिये एक हाथ का कुण्ड, दस हजार होम के लिये दो हाथ का, एक लाख होम-हेतु चार हाथ का, दस लाख होम-हेतु आठ हाथ का, एक करोड़ अथवा उससे अधिक हवनार्थ दस हाथ का कुण्ड बनाना चाहिये। इसे कोई-कोई आठ हाथ का भी कहते हैं। यदि केवल घृत, मधु, दूर्वा तथा कनेरपुष्प आदि से हवन करना हो तब तो एक लाख होमार्थ भी एक हाथ का कुण्ड बनाने से कार्य हो जाता है। शतहोमार्थ अरत्नि के नाप का कुण्ड विहित है। पचास होम के लिये एक मुष्टि का ही कुण्ड कहा गया है।

शास्त्र में कुण्ड-खनन के समय यज्ञभूमि में नागरूपी वास्तुपुरुष के गात्र तथा शिरोदेश का त्याग किया जाता है। नाग के शिरोदेश में खनन करने से साधक की मृत्यु, गात्र में कुण्ड बनाने पर गात्रघात एवं पुच्छस्थान में बनाने से दु:खोत्पत्ति होती है। इसीलिये केवल उसके क्रोड़ में ही कुण्ड बनाना चाहिये। यह सर्वार्थसिद्धिप्रद होता है।

नाग केवल वामपार्श्व में शयन करता है। तीन-तीन मास में वह अपने शिरमुद्रा का परिवर्त्तन करता है। भाद्र, आश्विन, कार्त्तिक मास में नाग पूर्व की ओर शिर करके शयन करता है। इसी प्रकार अग्रहायण, पौष तथा माघ में दक्षिण की ओर शिर करके; फाल्गुन, चैत्र तथा वैशाख में पश्चिम की ओर शिर करके तथा ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण में उत्तर की ओर शिर करके वे शयनरत रहते हैं। इसी हिसाब से शिर का विचार करके जिस महीने में जहाँ नाग का क्रोड़ पड़ता हो, वहीं कुण्ड बनाना चाहिये।

कुण्ड का विस्तार-परिमाण जितना होता है, उसका खनन-परिमाण भी उतना ही होता है। विस्तार की तुलना में गहराई अधिक होने पर होमकर्त्ता रोगी होता है। न्यून होने पर बन्धु-नाश तथा धननाश होता है। कुण्ड वक्र होने पर सन्ताप एवं मेखला अधिक होने पर वित्तक्षय होता है। योनि-विहीन कुण्ड में होम करने पर भार्यानाश निश्चित है। कण्ठविहीन कुण्ड का हवन सन्तान-नाश कराता है।

कुण्डमेखला—यह तीन प्रकार की कही गई है। यथा—सात्विक, राजसी तथा तामसी। इसकी उच्चता के तारतम्य से सात्विकादि का निर्णय करते हैं। मुष्टिमात्र कुण्ड में पहली मेखला दो अङ्गुल की (सात्विकी मेखला) होती है। तदनन्तर होती है—राजसी मेखला, जिसका प्रमाण है एक अङ्गुल। तामसी मेखला आधा अङ्गुल की कही गयी है।

अरत्नि-परिमित कुण्ड की सात्विकी मेखला तीन अङ्गुल, राजसी मेखला दो अङ्गुल एवं तामसी मेखला एक अङ्गुल ऊँची होती है। एक हाथ परिमाण वाले कुण्ड की सात्विकी मेखला चार अङ्गुल, राजसी तीन अङ्गुल तथा तामसी दो अङ्गुल उच्च कही गयी है। दो हाथ वाले कुण्ड में यह क्रमशः छः अङ्गुल, चार अङ्गुल एवं तीन अङ्गुल की होती है। चार हाथ कुण्ड में यह क्रमशः आठ अङ्गुल, छः अङ्गुल एवं चार अङ्गुल उच्च होती है। छः हाथ वाले कुण्ड में दस अङ्गुल, आठ अङ्गुल तथा छः अङ्गुल उच्च होती है। इत्यादि।

कुण्डयोनि—होता के समक्ष मेखलाओं के ऊपरी भाग में पीपल के पत्ते के समान योनि होनी चाहिये। मेखला के मध्य में एक अङ्गुल नाप की नेमि बनानी चाहिये। कुण्ड के अनुसार उसी क्रम से नाप की नेमि बनानी चाहिये। इसके सम्बन्ध में गुरु-प्रदत्त प्रक्रिया से नाप का निर्धारण करना चाहिये। मुष्टि-प्रमाण कुण्ड की दो अङ्गुलि की योनि होती है। इसी प्रकार अरत्नि-प्रमाण कुण्ड की योनि चार अङ्गुल की तथा हस्त-प्रमाण कुण्ड की योनि छः अङ्गुल की होती है। योनि का अग्रभाग एक अङ्गुल रखना चाहिये तथा वह अधोदिक् किञ्चित् ढाल वाली होनी चाहिये। मेखला के बहिःस्थान को स्थल कहते हैं। चतुरस्र के बहिःस्थान से आरम्भ करके मेखला के मध्य भाग में निम्नमुखी एक सरन्ध्र नाल बनानी चाहिये। इस नाल का मूल देश स्थूल तथा अग्रभाग भी स्थूल होना चाहिये। योनि के मध्यदेश-पर्यन्त आज्य (घृत)-ग्रहणार्थ गर्त्त बनाना चाहिये। नाल, मेखला तथा परिधि का अग्रभाग शीर्ण नहीं होना चाहिये।

वेदी के मध्य में नव कुण्ड का क्रम
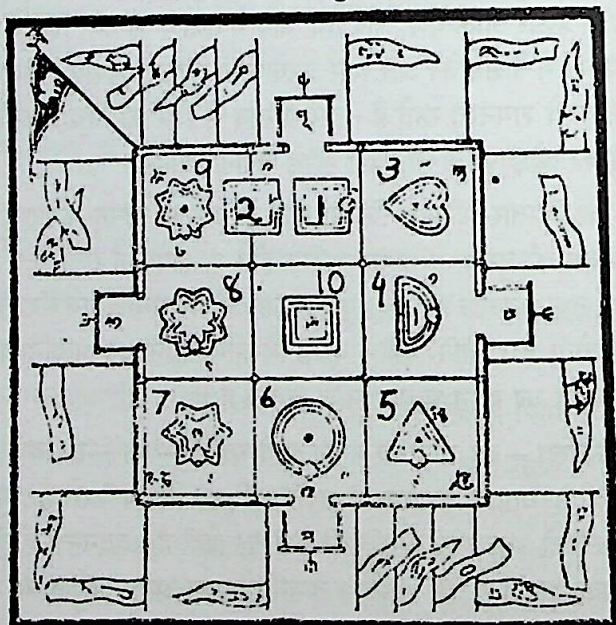
कुण्ड नव प्रकार के कहे गये हैं। यथा—चतुरस्त्र, योनि, अर्द्धचन्द्र, त्र्यस्त्र, वर्त्तुल, षडस्त्र, पद्म, अष्टास्त्र तथा आचार्य कुण्ड। वेदिका-मध्य में नव कुण्ड का क्रम इस प्रकार होता है—

पूर्वकथित प्रणाली से क्रमशः मण्डप बनाकर उसके मध्य वेदिका के बहिर्भाग की भूमि को तीन-तीन भाग में विभक्त करके पूर्वादि दिशा को चिह्नित करना चाहिये। उसके आठो ओर रत्याकार अष्टकुण्ड बनाना चाहिये।

यहाँ एक ही वेदी में नव कुण्ड प्रस्तुत किया गया है। पहले आचार्यकुण्ड बनाना चाहिये, जो चित्र में १ तथा २ है। पहला है—आचार्य कुण्ड, जहाँ आचार्य रहेंगे और दूसरा है—एक हाथ विस्तृत, जहाँ एक वेदी हो, जिस पर घट-कुम्भ स्थापित किया जाता है। इसी घट पर देवता की पूजा करके यथासम्भव पूजन द्वारा होमकार्य देवता के सन्निधान मे किया जाता है।

चित्र में दसवाँ है—चतुरस्त्र, जो एक हाथ परिमित जमीन को नाप कर बनाया जाता है। इसी में होमकार्य सम्भव होता है। चित्र में तीसरा है—योनिकुण्ड। इसमें योनि तथा नाभि नहीं बनानी चाहिये। चित्र में चौथा है—अर्द्धचन्द्र कुण्ड। चित्र में पाँचवाँ है त्रिकोण त्र्यस्त्र कुण्ड। चित्र में छठा है—वृत्तकुण्ड और सातवाँ षडस्त्र कुण्ड है। इसी प्रकार आठवाँ पद्मकुण्ड एवं नवाँ अष्टास्त्रकुण्ड है।

कुण्ड-फल—चतुरस्त्र कुण्ड में होम से सर्वकार्यसिद्धि होती है। योनिकुण्ड से पुत्रप्राप्ति, अर्द्धचन्द्र कुण्ड से शुभ, त्र्यस्त्र कुण्ड से शत्रुविनाश, वृत्त कुण्ड से शान्ति-कार्य, षडस्त्र कुण्ड से छेदन कार्य, पद्मकुण्ड से मारणकार्य तथा अष्टास्त्र कुण्ड से वृष्टिकार्य एवं रोगशमन कार्य किया जाता है। सिद्धसारस्वतग्रन्थ के अनुसार शान्ति, पुष्टि, आरोग्य-साधनार्थ चतुरस्त्र कुण्ड, आकर्षण कार्य-हेतु त्रिकोण कुण्ड एवं उच्चाटन तथा मारणार्थ वर्तुल कुण्ड प्रशस्त होता है। तन्त्रान्तर के अनुसार ब्राह्मण चतुरस्त्र, क्षत्रिय वर्तुल, वैश्य अर्धचन्द्राकृति तथा ब्रह्मचारिणी अथवा स्त्री साधिका एवं गुरु से आदेश प्राप्त उच्चाधिकारी शूद्र हेतु त्रिकोण कुण्ड प्रशस्त होता है।

कुण्ड-हेतु दिशाभेद—पुष्टिकर्म-हेतु उत्तरमुख, शान्तिकर्म-हेतु पश्चिममुख, उच्चाटन-हेतु वायुकोणमुख तथा मारणकार्य-हेतु दक्षिणमुख कुण्ड-खनन करना चाहिये।

सङ्क्षिप्त होमकार्य—एक हाथ परिमित स्थण्डिल ही अधिकतर व्यवहृत किया जाता है। ताम्रादि धातु-निर्मित अथवा मृत्तिका-निर्मित स्थायी कुण्डाकार में विधिवत् स्थण्डिल बनाना चाहिये।

पूजा में कुण्ड तथा स्थण्डिल-स्थापन—कहीं देवता के दक्षिण, कहीं देवता के पूर्व, कहीं ईशानकोण में, कहीं पश्चिम दिक् में, कहीं देवता के सामने अथवा पूजक के

दक्षिण में होम करना चाहिये, ऐसा वचन मिलता है; लेकिन सिद्ध गुरुमण्डली वाले देवता के समक्ष कुण्ड रखते हैं अथवा पूर्वमुख होकर होम करते हैं।

स्थण्डिल-रचना—इसके लिये पहले होमस्थान की मिट्टी को गोबर आदि के लेप से शुद्ध करके उसके ऊपर पवित्र बालू बिछाकर पूर्वोक्त नाप का स्थण्डिल बनाना चाहिये। यह चारो ओर यजमान के एक हाथ नाप का तथा चतुष्कोण होना चाहिये। इसकी ऊँचाई एक अङ्गुल होनी चाहिये। किसी-किसी तन्त्र में आधे हाथ माप के स्थण्डित का भी उल्लेख मिलता है। अङ्गुष्ठ तथा तर्जनी के योग से कुशमूल पकड़ कर उसी से इसका अङ्कन करना चाहिये। अङ्कन-काल में बराबर 'नमः' का उच्चारण करते रहना चाहिये।
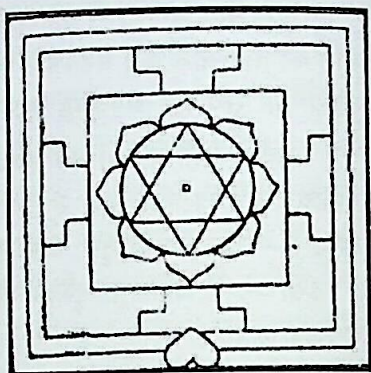
स्थण्डिल-शोधनार्थ पहले इष्ट का बीजमन्त्र पढ़ते हुये स्थण्डिल का निरीक्षण करना चाहिये। 'फट्' मन्त्र से कुशनिर्मित त्रिपत्र से प्रोक्षण कर 'फट्' मन्त्र द्वारा ही कुशत्रिपत्र से उसका ताड़न (परिष्कार) करना चाहिये। 'हुं' मन्त्र द्वारा अभ्युक्षण करके फट् मन्त्र से उस पर तीन बार ताली देकर रक्षण करना चाहिये। अब बीजमन्त्र पढ़ते-पढ़ते पुष्पाञ्जलि प्रदान करना चाहिये।

स्थण्डिल-पूजा—पहले यन्त्र के मध्य में 'ॐ एते गन्धपुष्पे वह्नेर्योगपीठाय नमः' कहकर पूजन करना चाहिये। तब पूर्वाग्र में तीन रेखा पर यथाक्रमेण 'ॐ मुकुन्दाय नमः, ॐ ईशानाय नमः, ॐ पुरन्दराय नमः' से पूजन करना चाहिये। उत्तराग्र में तीनो रेखा के ऊपर 'ॐ ब्रह्मणे नमः, ॐ वैवस्वताय नमः, ॐ इन्दवे नमः' कहकर गन्ध-पुष्प से पूजा करनी चाहिये। यन्त्र के मध्य में '(बीजमन्त्र +) श्रीमद्दक्षिणकालिकादेवतायाः स्थण्डिलाय नमः' कहकर पूजा करके बीजमन्त्र से यन्त्रमध्य में एक पुष्पाञ्जलि प्रदान करनी चाहिये। 'ॐ' कहकर जल छिड़कना चाहिये तथा अग्राङ्कित मन्त्र से वह्नि के योगपीठ की पुनः अर्चना करनी चाहिये। मन्त्र है—'ॐ एते गन्धपुष्पे आधारशक्त्यादिपीठदेवताभ्यो नमः'। इसी प्रकार से पहले 'ॐ एते' कहकर अन्त में नमः कहकर श्वेतायै, अरुणायै, कृष्णायै, धूम्रायै, स्फुलिङ्गिन्यै, रुचिरायै, ज्वालिन्यै, रं वह्न्यासनाय' मन्त्र से तत्तत् देवताओं का पूजन करना चाहिये।

वह्निदेवता वागीश्वरी का ध्यान—

ॐ वागीश्वरीमृतुस्नातां नीलेन्दीवरसन्निभाम्।
वागीश्वरेण संयुक्तां क्रीडाभावसमन्विताम्॥

इस प्रकार ध्यान करके—'ॐ ह्रीं एते गन्धपुष्पे वागीश्वर्यै नमः'। 'ॐ ह्रीं एते गन्धपुष्पे वागीश्वराय नमः' कहकर वागीश्वरी तथा वागीश्वर का पूजन करना चाहिये।

अग्नि-ग्रहण—ताम्रपात्र में साग्निक ब्राह्मण से अग्नि ग्रहण करना चाहिये। नियम तो यह है कि जिनके यहाँ वंशपरम्परा से अनादि काल से अग्निरक्षा की जा रही हो, वहाँ से अग्नि लानी चाहिये; परन्तु आजकल ऐसा सम्भव ही नहीं रहा है। शास्त्र कहते हैं कि अग्निरहित ब्राह्मण के यहाँ से अग्नि लाना (निरग्नि अर्थात् जहाँ वंशपरम्परा से अग्नि रक्षित नहीं है) आधा फल देता है। काल-प्रभाव से सभी कार्यच्युत हैं। अतः वर्तमान में होम के लिये चकमक पत्थर से उत्पन्न, आतसी शीशे से उत्पन्न अथवा अरणिकाष्ठ से उत्पन्न अग्नि ही प्रशस्त होती है।

जो कुछ भी हो, पूजक पूर्ववर्णित अग्नियों में से किसी का भी वरण करके मन्त्र-संस्कृत किसी अग्निशिखा से (चकमक, अरणि आदि से) दाहिने हाथ में लिये गये घृत-सिक्त कुश तथा तिनकों से प्रथम अग्नि को प्रज्वलित करना चाहिये। इस प्रज्वलित अग्नि को बाँयें हाथ से पकड़ कर अन्य एक गुच्छ तृण-कुश (घृतसिक्त) को दाहिने हाथ में लेकर प्रथम अग्नि से द्वितीय अग्नि को प्रज्वलित करना चाहिये। अब बाँयें हाथ में स्थित प्रथम अग्नि का स्थण्डिल के बाँयें पार्श्व में त्याग करके दाहिने हाथ वाली द्वितीय अग्नि को बाँयें हाथ में लेकर दाहिने हाथ में पुनः एक गुच्छ तृण-कुश को घृत-सिक्त करके पकड़ना चाहिये। अब द्वितीय अग्नि से इस तृतीय अग्नि को प्रज्वलित करना चाहिये। अब पूर्ववत् द्वितीय अग्नि का स्थण्डिल के वामपार्श्व की ओर त्याग कर इस तृतीय अग्नि को बाँये हाथ में धारण करके दाहिने हाथ में पुनः एक गुच्छ तृण तथा कुश को घृत-सिक्त करके उस तृतीय अग्नि से चतुर्थ अग्नि को परिशोधित करना चाहिये। अब तृतीय अग्नि का त्याग पूर्ववत् स्थण्डिल के वाम भाग पर कर देना चाहिये। अब यह चतुर्थ अग्नि परिशोधित अग्नि होती है। अब मन्त्र पढ़ना चाहिये—'ॐ (बीजमन्त्र +) वौषट्' अर्थात् एकाग्र भक्तिभाव से दर्शन करूँगा। 'फट्' मन्त्र से कुश द्वारा ताड़न अथवा मार्जन, 'फट्' मन्त्र से ही जल का छींटा देकर प्रोक्षण अथवा शोधन तथा 'हुं' मन्त्र से अवगुण्ठन मुद्रा-प्रदर्शन, वं मन्त्र से धेनुमुद्रा-प्रदर्शन द्वारा अमृतीकरणरूप वह्नि संस्कार द्वारा 'रं' मन्त्र का उच्चारण करके उससे सामान्य अग्नि लेकर 'हुं फट् क्रव्यादेव्यः स्वाहा' कहकर नैर्ऋत्यकोण में राक्षस आदि का प्राप्य अंश प्रदान करना चाहिये।

अग्नि-स्थापन—अब अपने जानु को पृथिवी पर टिकाकर दोनों हाथों से अग्नि को ग्रहण करके उसे स्थण्डिल पर तीन बार घुमाकर उस अग्नि को विपरीत ओर से अपने पास लाना चाहिये। अब स्थण्डिल की ब्रह्मशक्ति को योनि मानते हुये उस अग्नि को ब्रह्मबीज अथवा परशिव का वीर्य समझते हुये वहाँ अग्निस्थापन करना चाहिये। अब 'एते गन्धपुष्पे ह्रीं रं वह्निमूर्तये नमः एते गन्धपुष्पे रं वह्निचैतन्याय नमः' कहकर अग्निपूजनोपरान्त

'ॐ चित्पिङ्गल हन हन दह दह पच पच सर्वं ज्ञापय स्वाहा' मन्त्र द्वारा अग्नि को प्रज्वलित करना चाहिये। अब इसी समय से ही अग्नि की सहधर्मिणी अथवा उनकी प्रकृति स्वाहा की सहायता लेनी चाहिये। इसके पश्चात् हाथ जोड़कर कहना चाहिये—

ॐ अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम्॥

'ॐ अग्ने त्वं श्रीमद्दक्षिणकालिकानामासि' कहकर अग्नि का नामकरण करना चाहिये। अर्थात् अग्नि द्वारा श्रीमद्दक्षिणकालिका का पूजन कर रहे हैं, अत: अग्नि का भी वही नाम है। जिस देवता का पूजन करते हैं, अग्नि का भी वही नाम उस समय हो जाता है।

अब आवाहनी मुद्रा से अग्नि का आवाहन करना चाहिये; एतदर्थ आवाहनी मुद्रा दिखलाकर कहना चाहिये—'ॐ श्रीमद्दक्षिणकालिकाग्नि इहागच्छ इहागच्छ'।

अब स्थापनी मुद्रा द्वारा कहना चाहिये—'इह तिष्ठ इह तिष्ठ'।

अब सन्निधापनी मुद्रा द्वारा कहना चाहिये—'इह सन्निधेहि इह सन्निधेहि'।

अब सन्निरोधिनी मुद्रा प्रदर्शित करके कहना चाहिये—'इह सन्निरुद्धा भव इह सन्निरुद्धा भव'।

अब सम्मुखीकरणीमुद्रा से कहना चाहिये—ॐ सम्मुखीभव, इह सम्मुखीभव, अत्राधिष्ठानं कुरु, मम पूजां गृहाण।

अग्निपूजा—'एते गन्धपुष्पे ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा। ॐ एते गन्धपुष्पे अग्नेर्हिरण्मयादि सप्तजिह्वाभ्यो नम:'। इस प्रकार से गन्ध-पुष्प द्वारा 'ॐ सहस्रार्चिषे हृदयादि अग्निषडङ्गेभ्यो नम:। ॐ अग्नये जातवेदसे इत्याद्यष्टमूर्त्तिभ्यो नम:। ॐ ब्राह्म्याद्यष्टशक्तिभ्यो नम:। ॐ पद्माद्यष्टनिधिभ्यो नम:। ॐ इन्द्रादिलोकपालेभ्यो नम:। ॐ वज्राद्यस्त्रेभ्यो नम:' कहकर पूजन करना चाहिये।

स्रुक् एवं स्रुवा—यह खदिर आदि के काष्ठ का बना पात्रविशेष होता है। दर्वी अर्थात् लकड़ी की वस्तु जिससे अग्नि में घृताहुति दी जाती है। पहले इन्हें अधोमुख करके अग्नि में कुछ गरम करना चाहिये। तब बाहर बाँयें हाथ में लेकर उसके अग्र, मध्य तथा मूल देश को कुश द्वारा मार्जन करके जल से प्रक्षालित करना चाहिये। पुन: उत्तप्त करके उक्त मार्जन वाले कुशों को अग्नि में फेंक देना चाहिये। तदनन्तर इन्हें दाहिनी ओर कुश के ऊपर रख देना चाहिये।

घृतादि होम द्रव्य—होम के लिये घृत ही प्रधान द्रव्य होता है। गव्यघृत सर्वापेक्षया उत्तम होता है। भैंस का घृत मध्यम तथा अन्य दुग्ध से बना घृत सर्वापेक्षया अधम कहा गया है। वह होमार्थ निषिद्ध है। घृत के साथ अन्य द्रव्यों की भी आहुति देते हैं। जैसे—

तिल, मधु, जौ, धान्य, पुष्प, फल, बेलपत्र, अपामार्ग, भृङ्गराज, कनेर के फूल, जपाफूल, अपराजिता, किंशुक, पद्म, कुमुद, कुन्द, नीलपद्म, रक्तपद्म, बन्धूक, केशर, चमेली, मालती, जूही, कदम्ब, द्रोणपुष्प आदि ।

वीराचारीगण मद्य-मांस द्वारा ही होम करते हैं । प्रत्येक बार की आहुति में घृत एक तोला होना चाहिये । प्रत्येक वस्तु कितनी देनी चाहिये, इसके लिये अपने गुरु से निर्देश प्राप्त करना चाहिये । होम के लिये शुद्ध घृतपात्र लेकर उसे कुश पर स्थापित करके 'फट्' मन्त्र से उसका प्रोक्षण करना चाहिये । तब उसमें घृत रखकर बीजमन्त्र पढ़ते हुये उसका वीक्षण (स्थिर नेत्र से देखे), कुशपत्र द्वारा 'फट्' मन्त्र से उसका स्पर्श करके शोधन, 'हुं' मन्त्र से प्रोक्षण, 'फट्' मन्त्र से उसके ऊपर तीन ताली देकर 'रक्षण' तथा 'रं' मन्त्र से योनिमुद्रा-प्रदर्शनपूर्वक अग्नि के उत्ताप द्वारा घृत को गला देना चाहिये । पात्र को पुनः इस कुश के ऊपर रखना चाहिये तथा छः कुश को जलाकर तथा 'हुं' मन्त्र कहकर उसे घृतपात्र के ऊपर घुमाकर अग्नि में फेंक देना चाहिये । अब दो प्रादेश परिमाण (अङ्गूठा को फैलाये हुये तथा तर्जनी के अग्रभाग-पर्यन्त को प्रादेश-परिमाण कहते हैं) नाप के कुशपत्र को घृत के पात्र के ऊपर ऐसे रखना चाहिये कि घृत तीन भाग में विभाजित-सा प्रतीत होने लगे । वाम भाग के घृत की इड़ा, मध्य भागस्थ घृत की सुषुम्ना तथा दाहिने भाग के घृत की पिङ्गला नाड़ी स्वरूप में भावना करके होमकार्य प्रारम्भ करना चाहिये ।

साधक के स्थूल देह में स्थित मूलाधार चक्र ही आत्मघृतपूर्ण घृतपात्र होता है । उसके बाँयीं ओर इड़ा, दाहिनी ओर पिङ्गला तथा मध्य में सुषुम्ना होती है । ऐसा ही अनुकरण बाह्य होम में किया जा रहा है ।

आहुति-प्रदान—उक्त घृतपात्र के दाहिने (पिङ्गला) अंश से स्रुव द्वारा नमः कहकर घृत लेकर अग्नि के दक्षिण नेत्र में (अर्थात् कुण्ड के दाहिनी ओर जहाँ अल्प-अल्प अग्नि जल रही है) 'ॐ अग्नये स्वाहा' कहकर आहुति देनी चाहिये । होम करते समय पूजक को घृतपात्र के दाहिनी ओर एक पात्र रखना चाहिये । उसमें प्रत्येक बार आहुति प्रदान करते समय स्रुव से जो घृतबिन्दु झड़ता है, उस पात्र में झाड लेना चाहिये ।

अब घृतपात्र के बाँयें से (इड़ा अंश से) नमः मन्त्र द्वारा घृत लेकर अग्नि के बाँयें नेत्र में (अर्थात् कुण्ड के बाँयें, जहाँ अल्प-अल्प अग्नि जल रही है) 'ॐ सोमाय स्वाहा' कहकर आहुति प्रदान करनी चाहिये । अब घृतपात्र के मध्य में (सुषुम्ना अंश से) नमः मन्त्र द्वारा घृत लेकर अग्नि के ललाट नेत्र में (अर्थात् स्थण्डिल के ऊपर जहाँ अल्प-अल्प अग्नि जल रही है) 'ॐ अग्निसोमाभ्यां स्वाहा' कहकर घृताहुति प्रदान करनी चाहिये । अब पुनः पिङ्गला भाग से घृत लेकर 'ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' कहकर अग्नि के मुख में (अर्थात् कुण्ड में जहाँ सर्वापेक्षया अधिक अग्नि प्रज्वलित है) आहुति प्रदान करनी चाहिये ।

महाव्याहृति होम—ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा, ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा—इन चार मन्त्रों में से एक-एक का उच्चारण करते हुये प्रत्येक उच्चारण के साथ एक-एक आहुति प्रदान करनी चाहिये। तदनन्तर 'ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा' इस मन्त्र का तीन बार उच्चारण करके प्रत्येक बार 'स्वाहा' के साथ एक आहुति देनी चाहिये।

अग्नि का गर्भाधान संस्कार—'ॐ अग्नेर्गर्भाधानादिसंस्कारं सम्पादयामि स्वाहा' कहकर एक आहुति प्रदान करनी चाहिये।

'एते गन्धपुष्पे पीठादिसहितश्रीमद्दक्षिणकालिकायै नमः' द्वारा पूजा करने के बाद (मूल बीज) के साथ स्वाहा का उच्चारण करके पच्चीस आहुति देनी चाहिये। इसका तात्पर्य यह है कि चौबीस तत्त्व अर्थात् पञ्चमहाभूत + पञ्चप्राण + पञ्चज्ञानेन्द्रिय + पञ्चतन्मात्रा + अन्तः-करणचतुष्टय = २४ तत्त्व तथा अपने अभीष्ट देवतारूप चित्कलारूपिणी ऐश्वरी शक्ति को मिला देने से पच्चीस तत्त्व की प्रतिष्ठा होती है।

पहले कहा गया है कि बहिर्याग के उद्देश्य से होम के घृतपात्र का अन्तर्यागरूप मूलाधार कमल के समान इड़ा, पिङ्गला, सुषुम्नारूप तीन भाग कर लेना चाहिये। इस बार उस बहिर्याग में साधक को पूर्णतः अनुप्रविष्ट होना चाहिये। अपने पञ्चकर्मेन्द्रिय तथा पञ्च-ज्ञानेन्द्रिय के साथ सूक्ष्मेन्द्रियरूपं 'मन' के मिलन से एकादश अवयवरूप अपने साथ वह्नि तथा देवता के ऐक्य का चिन्तन करना चाहिये। अब पूर्ववत् मूल बीज के साथ स्वाहा कहकर ग्यारह बार आहुति देनी चाहिये। अर्थात् गर्भाधान-संस्कारपूत अग्निदेवस्वरूपा अभीष्ट देवता के क्रोड़ में 'ग्यारह अवययरूप' स्वयं को गर्भस्थ शिशु के समान रखना चाहिये अथवा स्वयं की एवं अग्निदेवता की एकीभूत स्थिति में परिणत होने की भावना करते हुये उसमें तन्मय हो जाना चाहिये।

विशेष आहुति का सङ्कल्प—पूर्वोक्त विधानानुसार ताम्रपात्र में फल-पुष्प के साथ यह सङ्कल्प करना चाहिये—'विष्णुरोम् तत्सदद्य अमुके मासि अमुकराशीस्थभास्करे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रे श्रीअमुकदेवशर्मा श्रीमद्दक्षिणकालिकापूजाकर्मणि (बीजमन्त्र कहे) स्वाहेति मन्त्रकरणक अष्टाविंशति (अथवा जितनी आहुति देनी हो, उसका उल्लेख करे) सङ्ख्यक साज्यबिल्वपत्रसमिद्भिर्होममहं करिष्ये' (यहाँ उदाहरणरूपेण ही बिल्वपत्र का उल्लेख है; जो समिधा देनी हो; उसका भी नाम युक्त करना चाहिये)।

इस सङ्कल्प के साथ समिधा को घृत से सिक्त करके प्रत्येक बार '(बीजमन्त्र +) श्रीमद्दक्षिणकालिकायै स्वाहा' मन्त्र से होम करना चाहिये।

तदनन्तर 'हुं क्षौं यां रां लां वां आं क्रों महाकालभैरव सर्वविघ्नान्नाशय ह्रीं श्रीं फट् स्वाहा' मन्त्र से महाकाल के लिये यथाशक्ति आहुति देनी चाहिये। तत्पश्चात् 'ॐ

दक्षिणकालिकाया: अङ्गदेवताभ्य: स्वाहा' से एक आहुति देकर 'ॐ दक्षिणकालिकाया: आवरणदेवताभ्य: स्वाहा' मन्त्र से एक आहुति प्रदान करनी चाहिये ।

पूर्णाहुति—अन्त में ताम्बूल, सुपारी आदि के साथ घृतपूर्ण पात्र लेकर निम्नलिखित मन्त्र द्वारा पूर्णाहुति देनी चाहिये—'(बीजमन्त्र +) इत: पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थाषु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत् कृतं यदुक्तं यत्स्मृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं स्वाहा मां मदीयं सकलं श्रीमद्दक्षिणकालिकाचरणपङ्कजे समर्पये ॐ तत्सत् ॐ' कहकर प्रज्वलित अग्निशिखा के ऊपर धीरे-धीरे अर्पित करना चाहिये ।

अब अपने इष्टदेवता को अग्नि से पृथक् करके अपने हृदय में पुन: प्रतिष्ठित करना चाहिये । इसके लिये अग्नि को संहारमुद्रा प्रदर्शित करके 'देवता अपने हृदय में प्रवेश कर रहे हैं' यह भावना करनी चाहिये तथा 'क्षमस्व' मन्त्र से अग्नि की भावना करनी चाहिये । 'अग्ने तं चन्द्रमण्डलं गच्छ' कहना चाहिये । तदनन्तर अग्नि के ईशानकोण में किञ्चित् दधि अथवा दुग्ध छिड़क कर 'ॐ पृथिवी त्वं शीतला भव' का उच्चारण करना चाहिये ।

कुण्ड के ईशानकोण से होम के अवशेष की किञ्चित् भस्म को स्रुव से उठाकर घृत से मिलाकर निम्नलिखित मन्त्र द्वारा ललाट पर तिलक करना चाहिये । उपस्थित सभी को उसका तिलक करना चाहिये । जो अपना श्राद्ध करके संन्यासी हो गया हो, उसे तथा परमहंस को तिलक नहीं लगाना चाहिये । स्वयं इस मन्त्र से अपना तिलक करना चाहिये—

ॐ यं यं स्पृशामि हस्तेन यं च पश्यामि चक्षुषा ।
स एव दासतां यातु यदि शत्रुसमो भवेत् ॥

अन्य लोगों को इस मन्त्र से तिलक लगाना चाहिये—

ॐ यं यं स्पृशामि हस्तेन यस्त्वां पश्यति चक्षुषा ।
स एव दासतां यातु राजानो दुष्टदस्यव: ॥

महिलाओं के तिलक-हेतु मन्त्र है—

ॐ यं यं स्पृशामि पादेन यञ्च पश्यसि चक्षुषा ।
स एव दासतां यातु यदि शत्रुसमो भवेत् ॥

कोई-कोई स्वयं इस मन्त्र से तिलक करते हैं—

ललाट पर— **ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।**
कण्ठ पर— **ॐ जमदग्नेस्त्र्यायुषम् ।**
दाहिने बाहुमूल पर— **ॐ यद्देवानां त्र्यायुषम् ।**
हृदय पर— **ॐ तत् तेऽस्तु त्र्यायुषम् ।**

पूर्णपात्र-उत्सर्ग—यथाशक्ति जितना व्यय कर सके, उतने का ताम्रपात्र, आतप-

तण्डुल, पान-सुपारी आदि फल-मूल, दक्षिणा-स्वरूप सिक्के देकर इस मन्त्र से उत्सर्ग करना चाहिये—विष्णुरोम् तत्सत् अद्य अमुके मासि अमुकराशीस्थभास्करे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्र श्रीअमुककृतैतत् श्रीदक्षिणकालिकापूजाङ्गीभूतहोमकर्मण: साङ्गतार्थं ब्रह्मदक्षिणामिदं पूर्णपात्रं तस्मै ब्रह्मणेऽहं सम्प्रददे।

जप—पूजान्त में मूल बीज मन्त्र का यथाशक्ति जप करना चाहिये।

जप-समर्पण—जपान्त में पूर्वकथित कामिनीदेवी का पुन: ध्यान करना चाहिये। उनका चिन्तन 'कं' बीजरूप में करना चाहिये। अब साधक को अपने बीजमन्त्र के जितने वर्ण हैं, वे 'कं' बीज में निहित हैं—यह चिन्तन करके प्रत्येक वर्ण के साथ चन्द्रबिन्दु का योग करके अनुलोम एवं विलोम क्रम से दश बार जप करना चाहिये। उदाहरणार्थ जैसे कालीबीज 'क्रीं' है। इसमें तीन वर्ण हैं। क + र + ई। अब यह होगा 'कं, रं, ईं'। इनका अलग-अलग १०-१० बार जप करना चाहिये। तदनन्तर 'ईं, रं, कं' का १०-१० बार जप (विलोमरूपेण) करना चाहिये।

तदनन्तर कामिनीबीज 'कं' के गर्भ में ज्योतिस्तत्त्व 'ह्रौं' मन्त्र का दस बार जप करना चाहिये और यह चिन्तन करना चाहिये कि 'कं' तथा 'ह्रौं' एकीभूत हैं। यही है—जीवनी-शक्ति। यही है—साधक की कुण्डलिनी। अब इस एकीभूता ज्योति:स्वरूपा कामिनी शक्ति को सहस्रार के अन्तर्गत अकुल भूमि में (ऊर्ध्वोत्थित करके) स्थापित करना चाहिये। तभी यह कुलकुण्डलिनीरूप होती है। इस विधि से जप-समर्पण करने पर साधन शक्ति-अभिलाषी साधक का जपफल ब्रह्मशक्ति में लीन हो जाता है। अत: साधक की साधना शक्ति रक्षित नहीं होती। यह मोक्षाभिलाषी हेतु अनुकूल स्थिति होती है। अतएव साधना में उन्नति चाहने वाले साधक को उक्त शिवोक्त विधानानुसार जप का कार्य सम्पन्न करके बाँयें हाथ से घण्टा बजाते-बजाते दाहिने हाथ से गन्ध-पुष्प के साथ सामान्य जल लेकर गो-योनिमुद्रा द्वारा उनके (देवी के) बाँयें हाथ में जप समर्पित कर देना चाहिये। मन्त्र है—

ॐ गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादात् सुरेश्वरि॥

इस प्रकार से जप-समर्पण हो जाने पर तेजोरूप जलफल कामिनी-गर्भ में जीवात्मा की विशुद्धि तथा परिपुष्टि साधित करके यथाविधि इष्टगुरु में सूक्ष्मत: समर्पित हो जाता है।

तदनन्तर स्तवपाठ करके कवचपाठ करना चाहिये। स्तवपाठ करते-करते प्रदक्षिणा भी की जा सकती है। तदनन्तर प्रणाम करके कवच पढ़ना चाहिये; लेकिन दक्षिणकालिका-पूजनार्थ इस समय पहले जगन्मङ्गल नामक कवच पढ़ने के बाद स्तवपाठ करना चाहिये। स्तव का प्रत्येक अक्षर स्पष्टत: उच्चरित होना चाहिये। मन-ही-मन स्तवपाठ उचित नहीं माना जाता। पाठ में बीच-बीच में विराम भी नहीं देना चाहिये। स्तव के आदि में तथा अन्त में प्रणव लगाना चाहिये तथा अन्तिम श्लोक को दो बार पढ़ना चाहिये।

तदनन्तर अष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिये। अब यहाँ चिन्तना करनी चाहिये कि सभी आवरण देवता देवी के अङ्ग में विलीन हो रहे हैं; क्योंकि देवी के पूजन-काल में आवरण देवता उनमें अङ्गीभूत ही थे, किन्तु जब आवरण देवतागण की स्वतन्त्र रूप से पूजा करने का समय आया, तब वे मूलदेवता के अङ्ग से बाहर आकर यथायथ स्थान पर स्थित थे। अब पूजावसान में वे सभी देवी के अङ्ग में विलीन हो जायँ, यह भावना करनी चाहिये।

दक्षिणान्त विधि—पूजान्त में दक्षिणा अवश्य देनी चाहिये, दक्षिणाद्रव्य बाँयें हाथ में रखना चाहिये। दाहिनी हथेली में त्रिपत्र के साथ जल लेकर कहना चाहिये—ॐ एतस्मै काञ्चने मूल्याय नमः। अब पुनः जल लेकर कहना चाहिये—विष्णुरोम् तत्सत् अद्य अमुके मासि अमुकराशीस्थभास्करे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्र अमुक....श्रीमद्दक्षिणकालिका-प्रीतिकामनया मत्सङ्कल्पितं श्रीमद्दक्षिणकालिकापूजनकर्मणि कृतैतत्पूजादिकर्मणः साङ्गतार्थं दक्षिणामिदं रजतमर्चितं श्रीविष्णुदैवतं श्रीमद्दक्षिणकालिकादेवतायै तुभ्यमहं सम्प्रददे।

अच्छिद्रावधारण—हाथ जोड़कर कहे—ॐ कृतैतत् श्रीमद्दक्षिणकालिकापूजन-कर्माच्छिद्रमस्तु।

वैगुण्य-समाधान—दाहिने हाथ में त्रिपत्र के साथ हरीतकी जल में रखकर (बाँयें हाथ को दाहिने से युक्त करके) कहना चाहिये—विष्णुरोम् तत्सदद्य अमुकमासि अमुकराशीस्थभास्करे अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्र श्रीअमुक... कृतेस्मिन् पूजाकर्मणि यद् वैगुण्यं जातं तद्दोषप्रशमनाय श्रीविष्णुस्मरणमहं करिष्ये'। ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम्। अनन्तर 'ॐ विष्णु' का दस जप करना चाहिये।

घटादि-विसर्जन तथा आत्मसमर्पण—नित्य-नैमित्तिकादि पूजन में सामयिकभाव से घटादि प्रतिष्ठित किये जाते हैं। उनका पूजान्त में विजर्सन करना चाहिये—

ॐ आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्।
पूजाञ्चैव न जानामि त्वं गतिः परमेश्वरि॥
ॐ उत्तरे शिखरे देवि भूम्यां पर्वतवासिनि।
ब्रह्मयोनिसमुत्पन्ने गच्छ देवि ममान्तरम्॥

'श्रीमद्दक्षिणकालिके देवि पूजितासि क्षमस्व' कहकर घट को अथवा प्रतिमा को कुछ हिला देना चाहिये (नित्य प्रतिष्ठित घट को अथवा नित्य प्रतिमादि को नहीं हिलाना चाहिये)। तदनन्तर संहारमुद्रा द्वारा एक निर्माल्य पुष्प देवी के आशीर्वादरूप में ग्रहण करके उसे सूँघकर भावना करनी चाहिये कि आराधित देवी, जिनको हृदय से प्रश्वास वायु द्वारा लाकर यहाँ प्रतिष्ठित किया था, वे तेजोमयी देवी निश्वास वायु के सहयोग से पुनः अन्तर में प्रविष्ट हो रही हैं। उन्हें पुनः हृदय में स्थापित करके भक्तिपूर्वक मन ही मन अर्चित करना चाहिये तथा स्वयं की चिन्तना देवीमय रूप से करनी चाहिये। तदनन्तर कृताञ्जलिबद्ध होकर कहना चाहिये—

ॐ गच्छ गच्छ परे स्थाने स्वस्थाने परमेश्वरि ।
यत्र ब्रह्मादयः सर्वे सुरास्तिष्ठन्तु मे हृदि ॥

तदनन्तर अपने देह, प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार सबको उन्हें समर्पित करके यह भावना करनी चाहिये कि उन्हीं की इच्छा से मैं चालित हो रहा हूँ। केवल प्रारब्ध-क्षयार्थ यत्नवान होकर सब कर रहा हूँ।

इन लौकिक घटादि की विसर्जन विधि द्वारा श्री श्रीगुरुमण्डली ने जिस गूढ़ रहस्य को सङ्केतित किया है, वह अलौकिक है। साधक की देह ही घट है। वहाँ सप्तसमुद्र जल है, सात चक्रों से सम्भूत शक्ति। वही अब सहस्रार के अन्तर्गत विसर्जित किया जा रहा है। यह है—समुन्नत आत्मसमर्पण अथवा वास्तविक विसर्जन क्रिया।

उच्छिष्टचाण्डालिनी की पूजा—इन्हें निर्माल्यवासिनी अथवा शेषिका भी कहते हैं। देवीपूजार्थ निवेदित पुष्प द्वारा इनकी पूजा करनी चाहिये। एतदर्थ देवी के बाँयीं ओर अथवा ईशानकोण में एक अधोमुखी त्रिकोण बनाकर वहाँ जल, निर्माल्य पुष्प तथा कुछ नैवेद्य रखकर कहना चाहिये—

लेह्यचोष्यान्नपानादि ताम्बूलमनुलेपनम् ।
निर्माल्यं भोजनं तुभ्यं ददामि श्रीशिवाज्ञया ॥

ऐं ह्रीं क्लीं सौः ऐं ज्येष्ठमातङ्गि नमामि उच्छिष्टचाण्डालिनि त्रैलोक्यवशङ्करि स्वाहा, इदं निर्माल्यपुष्पादिकं उच्छिष्टचाण्डालिन्यै नमः ।

कुमारीपूजनक्रम—विशेष अथवा नैमित्तिक पूजा के पश्चात् कुमारी अविवाहिता कन्या का पूजन विहित है। पूजादि कर्म में पूर्ण फल पाने के लिये यह पूजा करनी चाहिये। पूजक द्वारा सामने कुमारी को इस प्रकार बैठाना चाहिये कि पूजक का मुख उत्तर अथवा पूर्व की ओर हो। सङ्कल्प मन्त्र है—ॐ तत्सत् अद्य अमुकमासि अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रस्य श्री अमुक..... सङ्कल्पितपूजादिकर्मणः परिपूर्णफलप्राप्तिकामः कुमारीपूजनमहं करिष्ये।

पूजा—इनका पूजा-विवरण कुमारीतन्त्रोक्त विधि से जानना चाहिये तथा सर्वान्त में दक्षिणा प्रदान करनी चाहिये।

अच्छिद्रावधारण—ॐ कृतैतत् कुमारीपूजाकर्माच्छिद्रमस्तु ।

●

पुरश्चरण-तत्त्व

दीक्षाग्रहण के उपरान्त सर्वाग्र में किये जाने वाले कार्य को पुरश्चरण कहा गया है। यह मन्त्रयोगी के मन्त्रप्रधान साधन का आदि कृत्य है। इससे क्रमशः जीव की प्राणशक्तिरूपा कुण्डलिनी की उपलब्धि करनी चाहिये। यह तब तक मूलाधारस्था निद्रिता रहती है, जब तक पुरश्चरणमूलक मन्त्र-यन्त्रादि की अर्चना नहीं की जाती। जब यह जाग्रत हो जाती हैं, तभी गुरुकृपा से साधक मुक्तिलाभ करता है। इसकी पृष्ठभूमि में साधक का अपना पुण्यबल कार्यकारी होता है। पुण्यबल से ही गुरुकृपा प्राप्त होती है। गुरुकृपा अर्थात् गुरुदीक्षा। महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—

दर्शनात् स्पर्शनात् शब्दात् कृपया शिष्यदेहके।
जनयेद् यः समावेशं स हि देशिकसत्तमः ।।

जिनकी अपूर्व कृपादृष्टि (दर्शन), स्पर्श, शब्द (अथवा सचेतन मन्त्रोपदेश) द्वारा शिष्यदेह में शाम्भव समावेश का उद्रेक होता है, वे ही यथार्थ गुरु हैं। यह दीक्षा भी दृग्दीक्षा, स्पर्शदीक्षा एवं मानसदीक्षारूप त्रिविध होती है।

गुरुदीक्षा के पश्चात् पुरश्चरण करना ही मुख्य कल्प है। जो असमर्भ हो, उसे शास्त्रज्ञ ब्राह्मण, सद्गुणी मित्र, सुशीला भार्या अथवा गुरु, किंवा पुत्रवती साधिका से पुरश्चरण सम्पन्न कराना चाहिये। पुरश्चरण द्विविध होता है—(१) मुख्य अथवा पञ्चाङ्ग पुरश्चरण एवं (२) गौण (खण्ड) पुरश्चरण। पञ्चाङ्ग पुरश्चरण है—जप, होम, तर्पण, अभिषेक तथा विप्रभोजन। जहाँ जपसङ्ख्या निर्दिष्ट नहीं होती और मूलतः निश्चित समय को ही आधार बनाकर जप-साधन किया जाता है, वही है—गौण अथवा खण्ड पुरश्चरण। जैसे—उदयोदय, उदयास्त, अस्तास्त, अस्तोदय, तिथि, नक्षत्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन तथा वर्षपुरश्चरण। ग्रहणपुरश्चरण भी इसी में आता है। ग्रहणपुरश्चरण ही श्रेष्ठ गौण पुरश्चरण होता है।

यद्यपि जप, होम, तर्पण, अभिषेक एवं ब्राह्मणभोजनरूप विशिष्ट क्रिया को ही पुरश्चरण कहते हैं तथापि ग्रहणादि विशेष अवसर पर केवल जप को ही गौण पुरश्चरण कहा गया है, लेकिन इस ग्रहणादि विशेष अवसर पर हवनादि नहीं किया जाता। अपितु केवल जप ही करना उचित होता है। फिर भी कुछ मत से हवनादि भी करते हैं। यह सब अपने गुरु-सम्प्रदायानुसार करना चाहिये। यह वचन भी मिलता है कि जो अशक्त हैं, उन्हें केवल जप द्वारा ही पुरश्चरण करना चाहिये। शेष तथ्य आगे इसी ग्रन्थ में कहे जायेंगे।

मन्त्रसिद्धि-हेतु द्वादश उपाय कहे गये हैं—भूशय्या, ब्रह्मचारित्व, मौनावलम्बन,

आचार्य-सेवा, नित्यस्नानादि कृत्य, सन्ध्या आह्निक, दान, गुरुदेव तथा देवताओं की स्तुति, नैमित्तिक पूजा, दृढ़ विश्वास, जपयज्ञ के प्रति निष्ठा, हिचकी-जंभाई आदि क्षुद्र कर्म का त्याग। इसके साथ ही सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, ऋजुता, तितिक्षा, धैर्य, मिताहार एवं शौच का भी पालन करना चाहिये। आदियामल में षड्विध यम कहे गये हैं, लेकिन वे उत्तम साधक के लिये हैं। शेष साधकों के लिये इन दस यमों का पालन करना ही श्रेयस्कर होता है। आदियामलोक्त षड्विध यम हैं—शान्ति, सन्तोष, मिताहार, निद्रान्यूनता, चित्तवृत्ति-निरोध तथा अन्त:करणशुद्धि।

नियम अर्थात् शास्त्रविहित कार्य। ये भी दस हैं—तपस्या, अयाचित भाव से प्राप्त वस्तु से सन्तोष, ईश्वर तथा शास्त्र में विश्वास, दान, नित्य-नैमित्तिक पूजा, शास्त्रवाक्य-मनन, श्रवण, निदिध्यासन, ध्यानाभ्यास, कुकर्म में लज्जा, शास्त्रानुष्ठान में श्रद्धा, जप तथा व्रत। आदियामल में उन्नत साधक के लिये षड्विध नियम बतलाये गये हैं, यथा—चपलता का त्याग, मन:स्थैर्य, वासनाओं से वैराग्य, लालसा-रहितता, तुष्टि, परमेश्वर में एकाग्रता तथा निन्दा-स्तुति-प्रभृति पाश से मुक्ति। प्रचलित शास्त्रों में पञ्चविध यम कहे गये हैं। यथा—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह। पञ्चविध नियम इस प्रकार हैं—शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय तथा ईश्वरप्रणिधान।

पुरश्चरण कर्म में कूर्मचक्र का ज्ञान आवश्यक है। यद्यपि ग्रन्थ में आगे इसका प्रभूत वर्णन किया गया है तथापि यहाँ सचित्र वर्णन किया जा रहा है। कूर्मचक्र के ज्ञानाभाव में पुरश्चरण फलप्रद नहीं होता। शास्त्र कहते हैं कि दीपस्थान का आश्रय लेकर कर्म करने से सभी कर्म फलदायी होते हैं। जहाँ पुरुष दीप्यमान हो, वहीं दीपस्थान होता है। जप-पूजादि का उपयुक्त स्थान देखकर वहाँ चतुष्कोण का अङ्कन करना चाहिये। अब इस चतुरस्र (चतुष्कोण) को नव भागों में बाँट देना चाहिये। उसके अन्दर एक कूर्माकार चक्र का निर्माण करना चाहिये। इसे पूर्व से प्रारम्भ करके सात कोष्ठकों में सप्तवर्ग तथा ईशान कोण में ळ क्ष, इन दो वर्णों का विन्यास करना चाहिये। चतुरस्र के मध्यवर्ती नव कोष्ठों में भी पूर्व के समान पूर्व दिशा से प्रारम्भ करके दो-दो करके षोडश स्वरवर्ण का अङ्कन करना चाहिये (देखें चित्र-१)।

इस चक्र में जिस स्थान में क्षेत्र का आद्य अक्षर दृष्ट होता है, वहीं कूर्म का मुख होता है। मुख के उभय पार्श्व में जो दो कोष्ठ होते हैं, वे उस कूर्म के दो हाथ होते हैं। हस्तद्वय के नीचे जो कोष्ठ है, वह है कूर्म की कुक्षि। सबसे नीचे जो तीन कोष्ठ हैं, उसके दो ओर कूर्म के दो पद हैं तथा बचे हुये कोष्ठ में कूर्म का पुच्छ बनाना चाहिये। इस प्रकार से कूर्म का अङ्गविन्यास करके मध्यस्थ नव कोष्ठों में एक ही प्रकार से कूर्म चित्र का अङ्कन करना चाहिये। जप-पूजादि मण्डप में उक्त रूप से कूर्मचक्र द्वारा उपवेशन वाले स्थान को स्थिर करना चाहिये।

मूल कूर्मचक्र–1
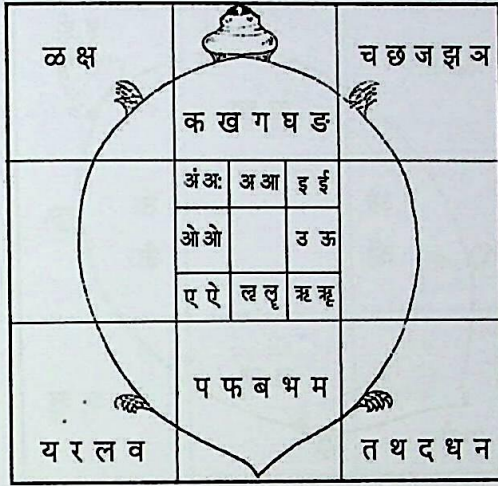
2. पुरश्चरण क्षेत्र का प्रथमाक्षर अ-आ हो तो कूर्मचक्र का स्वरूप
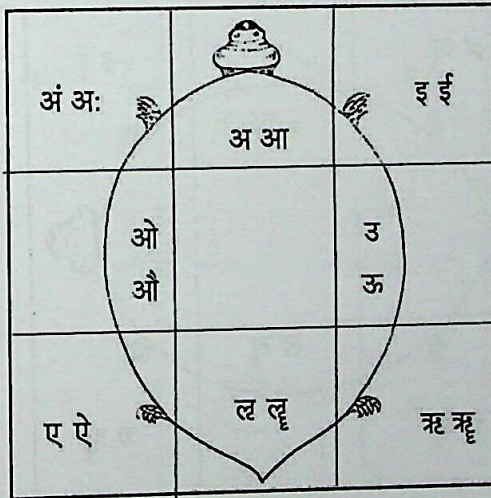
3. क्षेत्र का आद्य अक्षर इ-ई हो तो कूर्मचक्र का स्वरूप
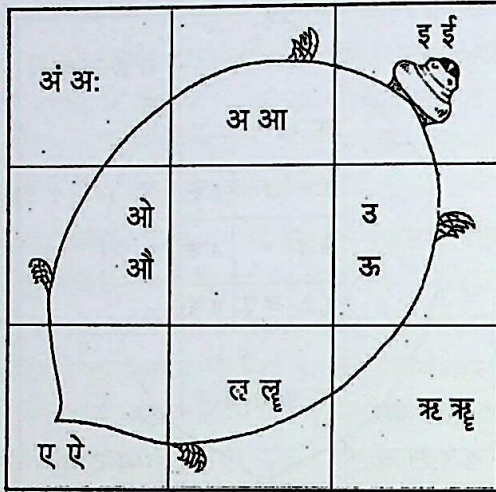
4. क्षेत्र का प्रथमाक्षर उ-ऊ हो तब कूर्मचक्र का स्वरूप
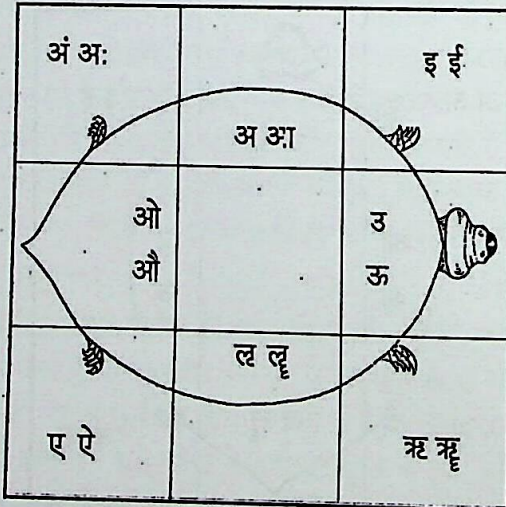
5. क्षेत्र का आद्य अक्षर ऋ-ॠ हो तब कूर्मचक्र का स्वरूप
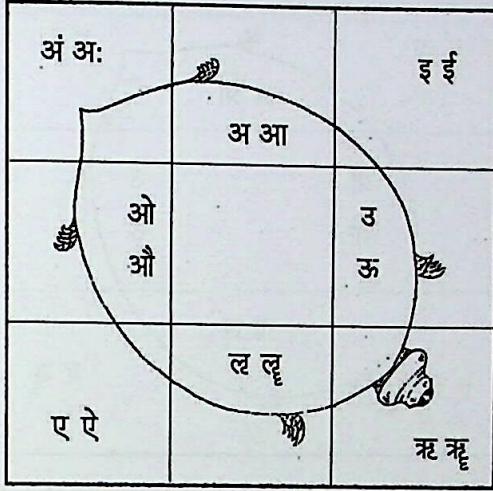
6. क्षेत्र का आद्य अक्षर ऌ-ॡ हो तब कूर्मचक्र का स्वरूप
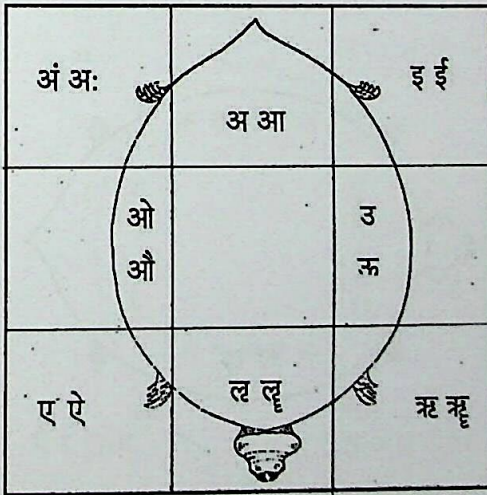
7. क्षेत्र का आद्य अक्षर ए-ऐ हो तब कूर्मचक्र का स्वरूप
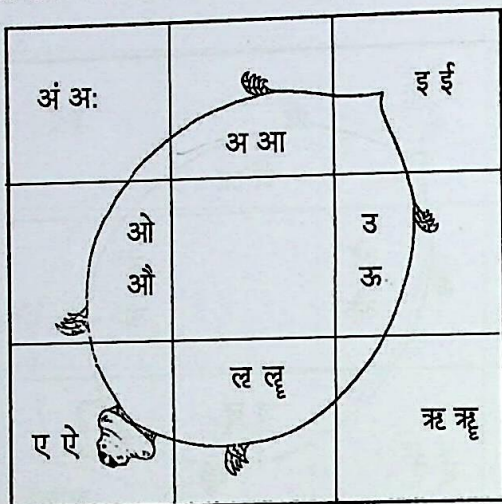
8. क्षेत्र का आद्य अक्षर ओ-औ होने पर कूर्मचक्र का स्वरूप
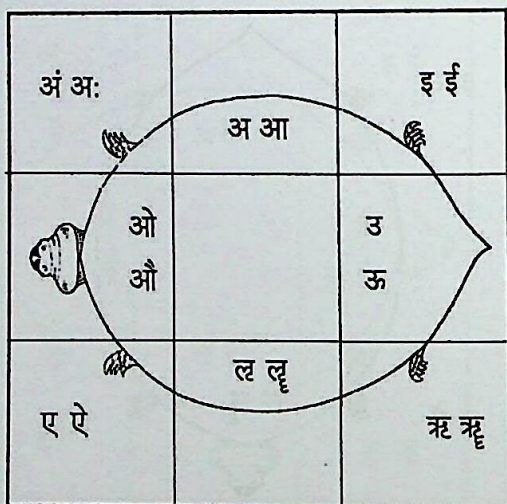
9. क्षेत्र का आद्य अक्षर अं-अः हो तब कूर्मचक्र का स्वरूप
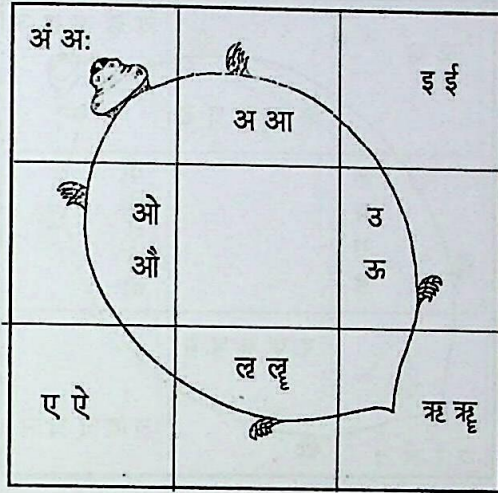
10. क्षेत्र का आद्य अक्षर क ख ग घ ङ हो तब कूर्मचक्र का स्वरूप
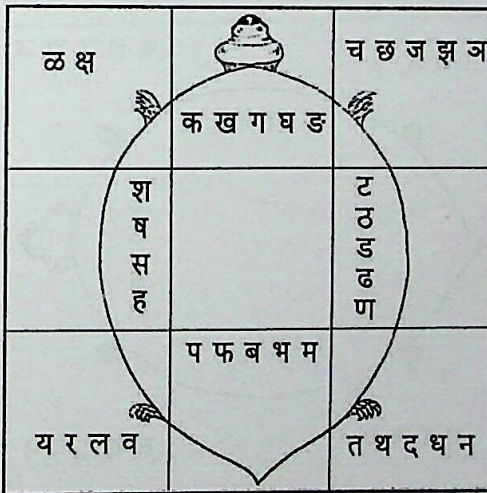
11. क्षेत्र का आद्य अक्षर च छ ज झ ञ हो तब कूर्मचक्र का स्वरूप
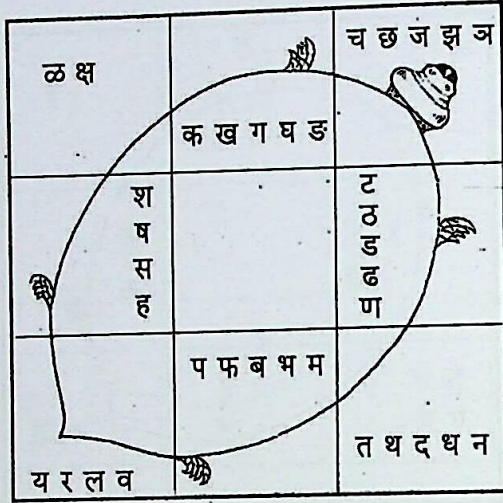
12. क्षेत्र का आद्य अक्षर ट ठ ड ढ ण हो तब कूर्मचक्र का स्वरूप
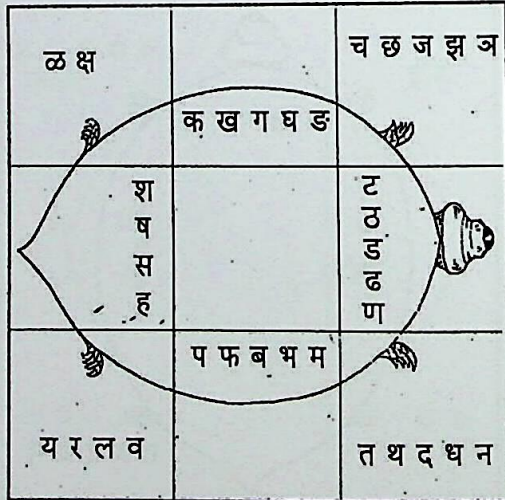
13. क्षेत्र का आद्य अक्षर त थ द ध न हो तब कूर्मचक्र का स्वरूप
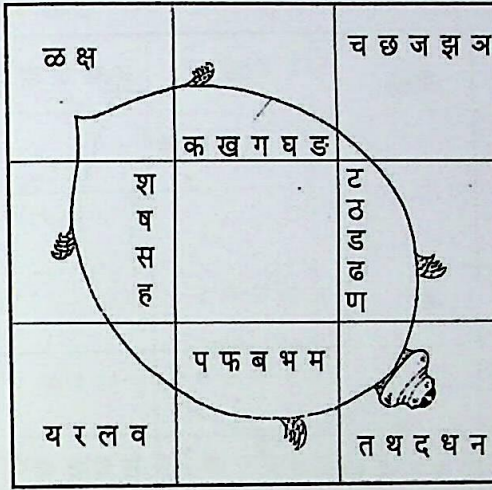
14. क्षेत्र का आद्य अक्षर प फ ब भ म हो तब कूर्मचक्र का स्वरूप
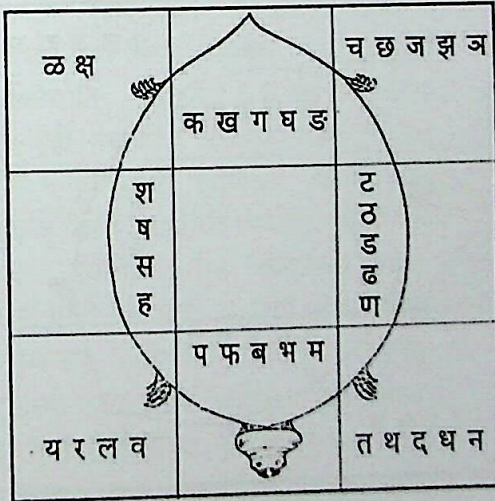
15. क्षेत्र का आद्य अक्षर य र ल व हो तब कूर्मचक्र का स्वरूप
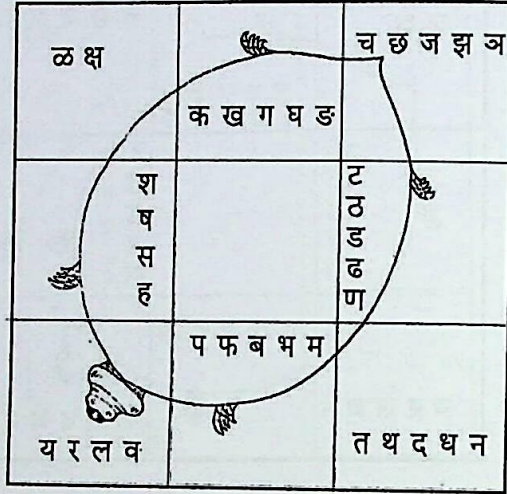
16. क्षेत्र का आद्य अक्षर ल क्ष हो तब कूर्मचक्र का स्वरूप
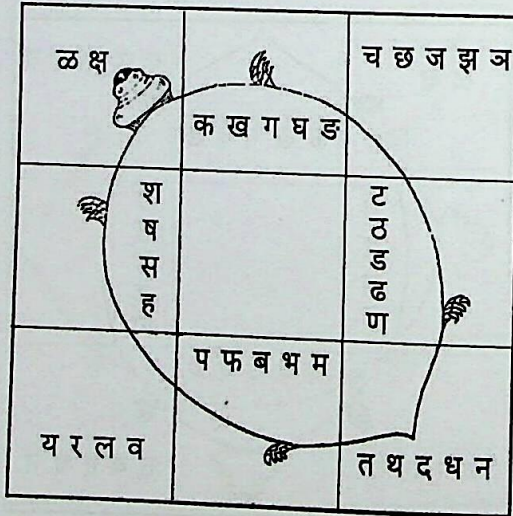
17. क्षेत्र का आद्य अक्षर श ष स ह हो तब कूर्मचक्र का स्वरूप

ळ क्ष	क ख ग घ ङ	च छ ज झ ञ
श ष स ह		ट ठ ड ढ ण
य र ल व	प फ ब भ म	त थ द ध न

मण्डप के जिस स्थान में कूर्म का मस्तक पड़े, वहीं पर पूजा-जप आदि करना चाहिये। मुखस्थ होकर पूजा-जपादि करने से साधक अल्पजीवी होता है। कुक्षिस्थान में बैठकर पूजा करने से उदासीनता, पदस्थ होकर साधन करने से दुःख एवं पुच्छस्थ होकर कार्य करने से बन्धन-उच्चाटनादि कष्ट होता है।

इसका प्रमाण शास्त्रों में इस प्रकार कहा गया है—

दीपस्थानं समाश्रित्य कृतं कर्म फलप्रदम्।
दीप्यते पुरयो यत्र दीपस्थानं तदुच्यते॥
चतुरस्रां भुवं भित्वा कोष्ठानां नवकं लिखेत्।
पूर्वकोष्ठादि विलिखेत् सप्तवर्गाननुक्रमात्॥
ळक्ष्मीशे मध्यकोष्ठे स्वरान् युग्मक्रमांल्लिखेत्।
दिक्षु च पूर्वकोष्ठादि विलिखेत् स्वरसंस्थितिः॥
मुखन्तु तस्य जानीयात् हस्तावुभयतः स्थितौ।
दिक्षु पूर्वादिता यत्र क्षेत्राद्यक्षरसंस्थितिः॥
कोष्ठे कुक्षी उभे पादौ द्वे शिष्टं पुच्छमीरितम्।
क्रमेणानेन विभजेन्मध्यस्थमपि भागतः॥
मुखस्थो लभते सिद्धिं करस्थः स्वल्पजीवनः।
उदासीनः कुक्षिसंस्थः पादस्थो दुःखमाप्नुयात्॥
पुच्छस्थः पीड्यते मन्त्री बन्धनोच्चाटनादिभिः।
कूर्मचक्रमिदं प्रोक्तं मन्त्रिणां सिद्धिदायकम्॥

पिङ्गलातन्त्र में भी कहते हैं—

कूर्मचक्रमविज्ञाय य: कुर्याज्जपयज्ञकम् ।
तस्य यज्ञफलं नास्ति सर्वानर्थाय कल्पते ॥

यदि कोई कूर्मचक्रानुशीलन के अभाव में जप-यज्ञादि कार्य करते हैं, उस यज्ञादि-जपादि से कोई फल नहीं मिलता, प्रत्युत अनिष्ट ही होता है ।

पहले शास्त्रोक्त स्थान का चयन करके उसे स्वच्छ करने के उपरान्त गोमयादि लेपन करना चाहिये । तत्पश्चात् वहाँ पर नव कोष्ठों को बनाना चाहिये । शक्ति, गणपति तथा सूर्यमन्त्र की साधना में रक्त चन्दन, गेरु, रोली का प्रयोग करना चाहिये । शिवमन्त्र में भी इन्हीं वस्तुओं का अथवा श्वेतचन्दन, खड़िया, विभूति का उपयोग करना चाहिये। विष्णुमन्त्र-हेतु श्वेत चंदन, पीली मिट्टी (रामरज मिट्टी), गोपीचन्दन का उपयोग करना चाहिये । सभी देवताओं के लिये केशर, जाफरान-मिश्रित चावल की पोटली द्वारा चक्र-रचना करनी चाहिये ।

जप-पुरश्चरणादि हेतु निश्चित स्थान यदि प्रशस्त हो, तब बड़ा (दीर्घ) मण्डल बनाना चाहिये । प्रशस्त स्थान में साधक को अपने पैरों से लेकर मस्तक-पर्यन्त एक मापदण्ड (नापने का) लेकर उतना ही बड़ा (लम्बा-चौड़ा) मण्डल बनाना चाहिये । इससे छोटा स्थान होने पर साधक को अपने हाथ के नाप से दो हाथ का दण्ड माप हेतु लेना चाहिये । उससे भी छोटा क्षेत्र होने पर साधक को अपने हाथ के नाप का (एक हाथ नाप वाला) दण्ड लेना चाहिये । उस दण्ड से नाप कर एक दण्ड परिमाण का चौकोर मण्डल बनाना चाहिये । अर्थात् वर्गक्षेत्र का अङ्कन करना चाहिये । अब इस वर्गक्षेत्र को समान-समान ९ वर्गक्षेत्रों में बाँट देना चाहिये (देखें चित्र-१) । इस ९ भाग के पूर्वगृह में 'क ख ग घ ङ', अग्निकोण वाले गृह में 'च छ ज झ ञ', दक्षिण वाले गृह में 'ट ठ ड ढ़ ण', नैर्ऋत्य कोण वाले गृह में तवर्ग (त थ द ध न), पश्चिम वाले गृह में 'प फ ब भ म', वायुकोण वाले गृह में 'य र ल व', उत्तर वाले गृह में 'श ष स ह' एवं ईशान कोण वाले गृह में 'ळ क्ष' का अङ्कन करना चाहिये ।

कूर्मस्थ (मध्यस्थ) नवम कोष्ठ को पुन: नौ भाग में बाँटना चाहिये । इस नौ भाग में पूर्वगृह में अ आ, अग्नि गृह में इ ई, दक्षिण गृह में उ ऊ, नैर्ऋत्य गृह में ऋ ॠ, पश्चिम गृह में ऌ ॡ, वायुकोण गृह में ए ऐ, उत्तर गृह में ओ औ, ईशान गृह में अं अ: लिखना चाहिये । व्यञ्जन तथा स्वरवर्ण-युक्त कूर्मचक्र का वर्णसन्निवेशित रूप चित्रसङ्ख्या २ से १७ पर्यन्त अङ्कित कर दिया गया है । इस प्रकार से पुरश्चरण भूमि के प्रथमाक्षर के स्वरवर्ण में पड़ने पर वहाँ केवल स्वरवर्ण का क्षेत्र ही अङ्कित करना पर्याप्त होता है । अर्थात् यदि क्षेत्रभूमि (ग्राम आदि) का नाम स्वरवर्ण के (१६ स्वरों के) अन्तर्गत है, तब वहाँ व्यञ्जन-वर्ण के क्षेत्रों की रचना नहीं की जाती, जैसे कि चित्र सङ्ख्या २ से ९ तक में है । लेकिन जहाँ क्षेत्रभूमि का प्रथमाक्षर व्यञ्जनवर्णान्तर्गत हो, वहाँ पर व्यञ्जन वर्ण अङ्कित करते हैं, जैसे कि चित्र सङ्ख्या १० से १७ पर्यन्त में है । चित्रों के अवलोकन से सभी बातें स्पष्ट हो जायेंगी ।

पुरश्चरण-माहात्म्य तथा प्राणविचार

पुरश्चरण साधकों का सर्वोत्तम साधन है। ऐसा साधक देवताओं के लिये भी श्रद्धा का पात्र होता है। जिन्होंने दीक्षा के उपरान्त भी कभी पुरश्चरण नहीं किया है, उनका मन्त्र कभी भी सिद्ध नहीं हो सकता। वे व्यर्थ कालक्षय करते रहते हैं। केवल पुरश्चरण ही सम्यक् फल नहीं दे सकता। इसकी पूर्णता हेतु श्वास (प्राण)-ज्ञान भी प्रयोज्य है। इड़ा (वाम नासिका) को चन्द्र नाड़ी भी कहते हैं। पिङ्गला (दक्षिण नासिका) को सूर्यनाड़ी कहा गया है। दोनों की साम्यावस्था है—सुषुम्ना (वह्निर्जला नाड़ी)। इन सबके उदय में भिन्न-भिन्न कार्य किये जाते हैं। पुरश्चरण, जपादि में इनका ज्ञान अत्यावश्यक कहा गया है। इसे जान लेने से पुरश्चरण की निःसंदिग्ध रूप से सफलता होती है। वाम नासा उदय काल में जो-जो कर्म करना विहित है, उसके लिये शास्त्रवचन इस प्रकार हैं—

सर्वविध स्थिरकर्म में, नूतन आभूषण-धारण में, दूरपथ-गमन में, ब्रह्मचर्यादि आश्रम-ग्रहण में, मकान-महल-निर्माण, अट्टालिका-मन्दिर-गृहारम्भ-नवीन वस्तु-संग्रह में, वापी-कूप-तड़ाग-देवता-स्तम्भप्रतिष्ठा में, यात्रा-दान तथा विवाहादि कृत्य में, नव वस्त्र पहनने, अलङ्कार भूषण-धारण में, वृष्य-पुष्टिकारी-रसायन-दिव्यौषधि-सेवनार्थ, अपने स्वामी-प्रभु-मित्रदर्शन में, वाणिज्य तथा धनसंग्रह में, गृहप्रवेश, सेवा, कृषिकर्म, बीजवपन, शुभकर्म, सन्धि-निर्गम में चन्द्रनाड़ी (वाम नासिका) का प्रवाह शुभप्रद होता है। कहा भी है—

स्थिरकर्मण्यलङ्कारे दूराध्वगमने तथा।
आश्रमे हर्म्यप्रासादे वस्तूनां संग्रहेऽपि च॥
वापी-कूप-तडागादिप्रतिष्ठास्तम्भदेवयोः।
यात्रादानविवाहे च वस्त्रालङ्कारभूषणे॥
शान्तिकं पौष्टिकं चैव दिव्यौषधिरसायने।
स्वामिदर्शनमैत्रे च वाणिज्ये धनसंग्रहे॥
गृहप्रवेशसेवायां कृष्यां बीजादिवापने।
शुभकर्मणि सन्धौ च निर्गमे च शुभः शशी॥

विद्यारम्भ, दीक्षा, मन्त्रसाधना, जलदान आदि धार्मिक कृत्य, आत्मीय बान्धव-दर्शन, कालविज्ञान, ज्योतिष, सूत्र अथवा दर्शनादि शास्त्र की सङ्क्षिप्त वाक्यावलि का पठन-पाठन, चतुष्पाद गृहागमन अर्थात् गाय-अश्व आदि पशु को घर लाना, गृहदोष-शान्तिकर्म, प्रभुसम्बोधन, धनुर्धारी का नूतन गजाश्वारोहण तथा नूतन गजाश्वबन्धन कार्य, परोपकार, रत्नस्थापन, गीतादि नृत्यक्रिया, गीतशास्त्रालोचन, नगर-ग्रामप्रवेश, तिलक-उपनयनादि कर्म, यज्ञसूत्र-धारण, पुत्रशोक, विषाद, जड़ता तथा मूर्च्छा, स्वजन-स्वामी सम्बन्ध,

धान्यादि तथा काष्ठसंग्रह, स्त्रीलोक का गजदन्तादिभूषण धारण, गुरुपूजा, योगाभ्यास, विषादग्रस्त स्थिति में भी इड़ा (चन्द्रनाड़ी—वाम नासिका) प्राणप्रवाह काल प्रशस्त माना गया है। सभी शुभ कर्म चाहे दिन-रात में जब भी हों, उसे चन्द्रनाड़ी के श्वास-प्रवाह में ही करना चाहिये। ये सब कार्य वायु, तेज अथवा अग्नि एवं आकाश तत्त्व के आविर्भाव काल में नहीं करने चाहिये। श्रीभगवान् कहते हैं कि सर्वत्र सभी प्रकार के शुभकार्य को वाम नासा (इड़ा) प्राण-प्रवाह काल में ही करना चाहिये। वे यह भी आदेश देते हैं कि किसी प्रकार की दैहिक श्रान्ति होने पर, शोक-मूर्च्छा-शरीर की उष्णता होने पर, धातुरूक्षता होने पर व्यक्ति को वाम नासिका से प्राण-प्रवाह कराना चाहिये। तब दक्षिण नासा का प्रवाह होने पर भी उसे गुरुप्रदत्त कौशल से वाम नासाप्रवाह को प्रारम्भ कर देना चाहिये।

अब पिङ्गला (सूर्यनाड़ी—दाहिनी नासिका) से प्राणप्रवाह का फल कहते हैं। श्रीभगवान् कहते हैं कि कठिन तथा क्रूर विद्या पठन-पाठन, स्त्रीसंग, वेश्यागमन, महानौका सवारी, सर्वविध नष्टकर्म, सुरापान, वीराचार की विशेष उपासना, देशादि के ध्वंसकार्य, विष देने आदि रूप शत्रुता का कार्य, शस्त्राभ्यास, शिकार-यात्रा, पशुविक्रय, ईंट-काठ-पाषाण छेदन कार्य, इनका गठन कार्य, रत्नादि घर्षण तथा विदारण, सङ्गीत अभ्यास, तान्त्रिक यन्त्र-निर्माण, दुर्ग-पर्वतारोहण, द्यूत, चोरी, गज-अश्व-रथ-वाहन साधन, व्यायाम, मारण, उच्चाटन, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेषण तथा शान्तिकर्मरूप षट्कर्म, यक्षिणी-यक्ष-वेतालादि विश्वभूत-प्रभृति की सिद्धि, गर्दभ-खच्चर-ऊँट-महिष-गज-अश्वारोहण, नदी तथा जल पार करते समय, भेषजादि संग्रह, लिपि लिखना, प्रेरण-कर्षण-क्षोभ, दानकार्य, क्रय-विक्रय, खड्गहस्त होकर शत्रु से युद्ध, स्नान-भोजनादि समस्त भोगकर्म, राजदर्शन, लौकिक व्यवहार तथा कठिन एवं अशुभ घोर नृशंस कर्म दाहिनी नासिका के श्वासवहन समय में करना उचित होता है। कहा भी है—

कठिनक्रूरविद्यानां पठनं पाठनं तथा।
स्त्रीसङ्गे वेश्यागमने महानौकाधिरोहणे॥
नष्टकार्ये सुरापाने वीरमन्त्राद्युपासने।
बहुलध्वंसदेशादौ विषदानादि वैरिणे॥
शस्त्राभ्यासे च गमने मृगया पशुविक्रये।
इष्टकाकाष्ठपाषाणे रत्नघर्षणदारुणे॥
गीताभ्यासे यन्त्रतन्त्रे दुर्गपर्वतरोहणे।
द्यूते चौर्ये गजाश्वादिरथवाहनसाधने॥
व्यायामे मारणोच्चाटे षट्कर्मादिसाधने।
यक्षिणीयक्षवेतालविश्वभूतादिसंग्रहे ॥

खरोष्ट्रे महिषादीनां गजाश्वारोहणे तथा।
नदीजलौघतरणे भेषजे लिपिलेखने ॥
मारणे मोहने स्तम्भे विद्वेषोच्चाटने वशे।
प्रेरणे कर्षणे क्षोभे दाने च क्रयविक्रये ॥
खड्गहस्ते वैरियुद्धे भोगे च राजदर्शने।
भोज्ये व्यवहारे क्रूरे दीप्ते रविः शुभः ॥

जब सुषुम्ना (सरस्वती—मध्यनाड़ी) का प्रवाह हो, तब ये कर्म करने चाहिये। जब कभी (अल्पकाल) दक्षिण नासा से श्वास प्रवाहित होता हो और कभी वाम नासा से हो तब इसे सुषुम्ना कहते हैं। यह सर्वकार्य-नाशिनी तथा घोर अशुभकारी होती है। यह कालरूपी वह्निज्वाला तथा ध्वंसात्मिका है। लेकिन यह मुक्तिप्रदा है। इसमें ही जीव मोक्ष पाता है। उक्त है—

क्षणं वामे क्षणं दक्षे यदा वहति मारुतः।
सुषुम्ना सा च विज्ञेया सर्वकार्यहराऽशुभा ॥
तस्यां नाभ्यां स्थितो वह्निर्ज्वलन्ति कालरूपिणः।
विषमस्तं विजानीयात् सर्वकार्यविनाशनम् ॥

तन्त्रों में पहले कहा गया है कि जब किसी नासिका में वायु तेजी से प्रवाहित हो, तब अन्य नासा में अत्यन्त मृदु प्रवाह होता है अथवा अन्य नासा बन्द हो जाती है, लेकिन जब एक नासिका का प्रवाह एक घण्टा तक हो जाय तथा अन्य नासिका से वायुप्रवाह आरम्भ होने लगता है, उस (सन्धिक्षण में) समय जब कभी एक नासिका से तो कभी अन्य नासिका से प्राणप्रवाह होने लगता है, वही सुषुम्ना प्रवाह होता है। इसमें सांसारिक कार्यों में, वैषयिक कर्मों में विघ्न, विपत्ति, कलह, क्षति होने लगती है। इस समय कोई कार्य न करके जपादि भगवत् चिन्तन करना चाहिये। मानव जीवन के सभी अमङ्गल इसी काल में होते हैं, लेकिन आत्मज्ञानी की मुक्ति का भी यही क्षण होता है। इस काल को विषुवयोग कहते हैं। इस योग में लौकिक कार्य कदापि नहीं करना चाहिये।

केवल एक बार के पुरश्चरण से सिद्धि नहीं होती। बारम्बार पुरश्चरण द्वारा चित्त की मलिनता दूरीभूत हो जाती है। चित्त में इष्टविग्रह का प्रतिफलन होने लगता है। जो कौल हैं, वे पञ्चाङ्ग पुरश्चरण के स्थान पर सप्ताङ्ग पुरश्चरण करते हैं। कौलगण के लिये पञ्चाङ्ग पुरश्चरण का विधान नहीं है। कर्म के आदि, मध्य, अन्त में कुमारीपूजा तथा शक्तिपूजा कौलगण के लिये आवश्यक है। सब समय कुमारीगण उपलब्ध न हों तब पृथक्-पृथक् घटस्थापना का भी नियम कहा गया है।

●

तान्त्रिक अभिषेक-रहस्य

(शाक्ताभिषेक, पूर्णाभिषेक, क्रमदीक्षाभिषेक, साम्राज्याभिषेक, महासाम्राज्याभिषेक तथा योगदीक्षाभिषेक)

दीक्षा के साथ ही शाक्ताभिषेक का भी ग्रहण किया जाता है। निरुत्तर तथा वामकेश्वर तन्त्र में इसकी महत्ता वर्णित है। वहाँ कहते हैं कि अभिषिक्त हुये विना जो व्यक्ति केवल दीक्षा लेकर कुलधर्म अथवा शास्त्रनिर्दिष्ट पूजार्चना करना प्रारम्भ करते हैं तथा अभिषेक के विना सिद्धविद्या के किसी भी मन्त्र से शिष्य को दीक्षित करते हैं, वे जब तक पृथिवी पर चन्द्र एवं सूर्य हैं, तब तक नरक-यन्त्रणा का भोग करते हैं—

अभिषेकं विना देवि कुलधर्मं करोति यः।
तस्य पूजादिकं कर्म अभिचाराय कल्प्यते॥
अभिषेकं विना देवि सिद्धविद्या ददाति यः।
तावत् कालं वसेद् घोरे यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥

प्राथमिक अभिषेक दो प्रकार का होता है—शाक्ताभिषेक तथा पूर्णाभिषेक। शाक्ताभिषेक को अभिज्ञ व्यक्ति से ही लेना चाहिये। कुलगुरु (कौलज्ञानी गुरु) पहले स्वयं अभिषिक्त होकर शिष्य का अभिषेक करते हैं। स्वयं पूर्णाभिषेक ग्रहण करने के उपरान्त ही गुरु द्वारा शास्त्राभिषेक का उपदेश देना विहित है। तदनन्तर क्रमदीक्षा आदि अभिषेक ग्रहण करना पड़ता है। अभी यहाँ केवल शाक्त तथा पूर्ण अभिषेक का ही विधान कहा जा रहा है। पूर्णाभिषेक के पहले शाक्ताभिषेक की प्रथा सम्प्रदायों में प्रचलित है।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि ब्रह्मानन्द स्वामी से शंकराचार्य ने अद्वैतभाव का उपदेश प्राप्त किया था। वह प्राचीन मठ बंगाल के किसी निभृत स्थान में गंगासागर के समीप अति यत्न से तथा गोपनीयता से रक्षित है। यह भी सुना जाता है कि स्वामी ब्रह्मानन्द वहाँ सूक्ष्म शरीर से आज भी स्थित हैं। जो महापूर्ण दीक्षाभिषेक तथा विरजा को सम्पन्न करके उत्तम एवं उच्चतम ब्रह्मज्ञान तथा अद्वैततत्त्व के अधिकारी हैं, वे ऐसे साधकों को अन्तिम निर्वाणोपदेश प्रदान करते हैं। साधारण साधक उनका दर्शन नहीं पा सकते।

साधारण अभिषेक क्रिया—शास्त्रों में शाक्ताभिषेक को ही अभिषेक कहा गया है, अतः साधक को सर्वप्रथम उसी का आश्रय लेना चाहिये। पूर्णाभिषेक तथा अन्य अभिषेक इसके पश्चात् किये जाते हैं। भगवान् कहते हैं कि सत्य, त्रेता, द्वापर में यह विधान अतिगुप्त था—

विधानमेतत् परमं गुप्तमासीद्युगत्रये ।
गुप्तभावेन कुर्वन्तो नरो मोक्षं ययुः पुरा ॥

लेकिन प्रबल कलिकाल का आविर्भाव होने पर कुलाचारी महात्माओं ने रात्रि में अथवा दिवस में ही प्रकाश्यभाव से अभिषेक की व्यवस्था की है । कहा भी है—

प्रबले कलिकाले तु प्रकाशे कुलवर्तिनः ।
नक्तं वा दिवसे कुर्यात् सप्रकाशाभिषेचनम् ॥

श्रीसदाशिव यह भी कहते हैं कि यदि गुरु (प्राथमिक मन्त्रदाता) पूर्णाभिषिक्त नहीं है, तब किसी अभिषिक्त कौल साधक से उक्त शाक्ताभिषेक करा लेना चाहिये । कोई-कोई साधक अभिषेक के ही दिन गणपति-पूजन तथा शिष्य की अधिवासादि क्रिया सम्पन्न करते हैं ।

अधिवास के उपलक्ष्य में गणपति-पूजन—पहले गुरु को अजिन पर स्थित होकर यथारीति आचमनादि सम्पन्न करके कृताञ्जलि होकर जगन्माता का चरणचिन्तन करना चाहिये—'ॐ तत्सत् ह्रीं देवि तत्प्राकृतं चित्तं पापाक्रान्तमभून्मम । तन्निःसारय चित्तान्मे हुं फट् च ते नमः । ॐ ह्रीं सूर्यः सोमो यमः कालो महाभूतानि पञ्च च । एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नवसाक्षिणः' ।

पहले दिन दीक्षाभिलाषी शिष्य को निरामिष अथवा हविष्यान्नभोजी होकर पूर्णतः संयमी रहना चाहिये । शिष्य यदि पूजादि कर्म नहीं जानता तब उसे स्नानादि प्रातःकृत्य समापनोपरान्त सङ्क्षेप में पञ्चदेवता तथा नवग्रह आदि का पूजन करके स्वस्तिवाचन करना चाहिये ।

स्वस्तिवाचन—(कुशी में आतपतण्डुल लेकर) 'ॐ ह्रीं कर्त्तव्येऽस्मिन् अमुक-गोत्रस्य अमुकस्य (शिष्य का गोत्र तथा नाम अमुक के स्थान पर लगाये) शुभशाक्ता-भिषेककर्माङ्गीभूतगणपत्यादिदेवतापूजाशुभाधिवासनकर्मणि पुण्याहं भवन्तोऽधिब्रुवन्तु ह्रीं पुण्याहम्' । अब नाराचमुद्रा से तीन बार उस पर आतपतण्डुल को छिड़कना चाहिये । अब यह कहना चाहिये—'ह्रीं कर्त्तव्येऽस्मिन् अमुकगोत्रस्य अमुकस्य शुभशाक्ताभिषेककर्माङ्गी-भूतगणपत्यादिदेवपूजाशुभाधिवासनकर्मणि ऋद्धिं भवन्तोऽधिब्रुवन्तु । ह्रीं ऋद्ध्यतां । ह्रीं ऋद्ध्यताम् । ह्रीं ऋद्ध्यतां' । इसी प्रकार से 'ह्रीं कर्त्तव्येऽस्मिन् अमुकगोत्रस्य अमुकस्य शुभशाक्ताभिषेककर्माङ्गभूतगणपत्यादिपूजाशुभाधिवासनकर्मणि स्वस्ति भवन्तोऽधिब्रुवन्तु । ह्रीं स्वस्ति । ह्रीं स्वस्ति । ह्रीं स्वस्ति' । तदनन्तर—

ह्रीं स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्वेदेवा ।
स्वस्ति नस्ताक्ष्योऽरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

ॐ ह्रीं हं स्वस्ति नः कात्यायनी अपर्णश्रवा हुं स्वस्ति नः काली ह्रौं मेघामृतमयीं

हैं स्वस्ति नः प्रत्यङ्गिरा देवता दधातु श्रीं ह्रीं हुं फट् स्वाहा। ह्रीं स्वस्ति। ह्रीं स्वस्ति। ह्रीं स्वस्ति—कहकर पूर्ववत् वही चावल तीन बार छिड़कना चाहिये।

अब सङ्कल्प मन्त्र कहते हैं—'ॐ तत्सत्। ह्रीं अद्य अमुके मासि अमुकराशीस्थे भास्करे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रस्य श्री अमुकस्य (शिष्य का गोत्र तथा नाम कहे) शुभशाक्ताभिषेककर्माङ्गीकृतगणपत्यादिदेवतापूजापूर्वकशुभ अधिवासनकर्माहं करिष्यामि'। तदनन्तर स्वशाखोक्त सङ्कल्पसूक्त यदि ज्ञात हो तो उसका पाठ करना चाहिये। इसके पश्चात् यतः पूजा के अन्यान्य साधारण आनुष्ठानिक क्रिया-कलापों से ब्राह्मणमात्र विशेष रूप से अवगत होते हैं; इसी कारण केवल विशेष मन्त्र के अतिरिक्त अन्य अनुष्ठान का विशेष रूप से यहाँ वर्णन नहीं किया गया है।

इस ग्रन्थ में वर्णित विधि के अनुसार सामान्यार्घ्य तथा विशेषार्घ्य के स्वतन्त्र रूप से यथारीति स्थापित हो जाने पर माषभक्त बलि प्रदान करनी चाहिये। तत्पश्चात् भूतशुद्धि करनी चाहिये। भूतशुद्धि एक कठिन व्यापार है। गुरु-उपदेश के बिना इसे साधक नहीं कर सकता। इसी कारण सामान्य भूतशुद्धि अर्थात् ज्योतिर्मन्त्र (ॐ ह्रौं) का एक सौ आठ बार जप करना चाहिये। इससे यह सिद्ध हो जाता है। तदनन्तर मातृकान्यास, कराङ्गन्यास, अर्द्धमातृकान्यास, बाह्यमातृकान्यास सम्पन्न करके आदित्यादि नवग्रह, इन्द्रादि दस दिक्पाल, गणेशादि पञ्चदेव, सर्वदेवता, सर्वदेवी, अकारादि पचास वर्ण, प्रतिपदादि सभी तिथि, कृष्णपक्ष, शुक्लपक्ष, अमावस्या, पूर्णिमा, गुरु तथा उपस्थित देव-देवी की गन्ध-पुष्पादि से पूजा करने के बाद पीठन्यास करना चाहिये।

विघ्नपति गणेश-पूजन—पहले गणपति का ऋष्यादि न्यास करना चाहिये। जैसे—'अस्य गणपतिबीजमन्त्रस्य गणकऋषिः निवृच्छन्दो विघ्नराजदेवता शुभशाक्ताभिषेककर्मणि विघ्नशान्त्यर्थं जपे विनियोगः'। शिरसि गणकऋषये नमः। मुखे निवृच्छन्दसे नमः। हृदये विघ्नराजाय नमः।

अङ्गुष्ठ-प्रभृति कराङ्गन्यास—गां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, गीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, गूं मध्यमाभ्यां वषट्, गैं अनामिकाभ्यां हुं, गौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्, गः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्।

हृदयादि [illegible]न्यास—गां हृदयाय नमः, गीं शिरसे स्वाहा, गूं शिखायै वषट्, गैं कवचाय हुं, [illegible] नेत्रत्रयाय वौषट्, गः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्।

अब 'गं' बीज से प्राणायाम करके गणेश जी का ध्यान करना चाहिये। ध्यान के पश्चात् मानसोपचार से पूजा करके पूर्वस्थापित गणपति घट के चतुर्दिक् यथाक्रम से पीठशक्तिगण की गन्ध-पुष्पादि से पूजा करनी चाहिये। जैसे कि पूर्व दिक् से प्रारम्भ करके—

पूर्व— एते गन्धपुष्पे ॐ तीव्रायै नमः ।
अग्निकोण— एते गन्धपुष्पे ॐ ज्वालिन्यै नमः ।
दक्षिण— एते गन्धपुष्पे ॐ नन्दायै नमः ।
नैर्ऋत्यकोण— एते गन्धपुष्पे ॐ भोगदायै नमः ।
पश्चिम दिक्— एते गन्धपुष्पे ॐ कामरूपिण्यै नमः ।
वायुकोण— एते गन्धपुष्पे ॐ उग्रायै नमः ।
उत्तर— एते गन्धपुष्पे ॐ तेजस्वत्यै नमः ।
ईशानकोण— एते गन्धपुष्पे ॐ सत्यायै नमः ।
मध्य में— एते गन्धपुष्पे ॐ विघ्नविनाशिन्यै नमः ।

तदनन्तर 'एते गन्धपुष्पे ॐ कमलासनाय नमः' कहकर कमलासन का पूजन करना चाहिये । विघ्नराज का पुनः ध्यान करके यथाशक्ति उपचार से पूजन करना चाहिये (वीरभावापन्न जो साधक बाह्य पञ्चमकार का व्यवहार करते हैं, वे तन्त्रोक्त मन्त्र-शोधित पञ्चतत्त्व के द्वारा पूजा कर सकते हैं) ।

तदनन्तर—'एते गन्धपुष्पे ॐ गणेशाय नमः, एते गन्धपुष्पे ॐ गणनायकाय नमः, एते गन्धपुष्पे ॐ गणनाथाय नमः, एते गन्धपुष्पे ॐ गणक्रीडाय नमः, एते गन्धपुष्पे ॐ एकदन्ताय नमः, एते गन्धपुष्पे ॐ लम्बोदराय नमः, एते गन्धपुष्पे ॐ गजाननाय नमः, एते गन्धपुष्पे ॐ महोदराय नमः, एते गन्धपुष्पे ॐ विकटाय नमः, एते गन्धपुष्पे ॐ धूम्राभाय नमः' कहकर इन सबकी क्रमशः एक-एक करके पूजा करनी चाहिये । अब ब्राह्मी आदि आठ शक्ति तथा इन्द्रादि दस दिक्पालगण का पूजन पूर्ववत् गन्ध-पुष्प से करना चाहिये । इन सभी देवताओं का पूजन सम्पन्न हो जाने पर अधिवासन कार्य सम्पन्न करना चाहिये तथा बाद में उपस्थित साधकों को भी तृप्तिपूर्वक भोजन कराने का विधान है ।

अधिवास—अब तान्त्रिक विधानानुसार अधिवास क्रिया को सम्पन्न करना चाहिये । शिष्य के इस अधिवास-संस्कारार्थ गुरु द्वारा स्वयं उत्तरमुख बैठकर शिष्य को अपने बाँयीं ओर पूर्वमुख बैठाकर पहले हरिद्रा लेकर उसका गणेश-घट से स्पर्श कराकर उस पर अपनी दिव्य दृष्टि डालकर उसे शिष्य के कपाल से स्पर्श कराते हुये गुरु को कहना चाहिये—'ॐ ह्रीं अनया हरिद्रया अस्य (यदि साधक स्त्री हो तब अस्या कहे) शुभाधिवासनमस्तु' ।

इस प्रकार चन्दन लेकर पूर्ववत् गणेश घट से स्पर्श कराकर उसे अपनी दिव्यदृष्टि से देखकर शिष्य के कपाल से उसका स्पर्श कराते हुये कहना चाहिये—'ॐ ह्रीं अनेन गन्धेन अस्य शुभाधिवासनमस्तु' ।

तदनन्तर गङ्गामृत्तिका आदि एक-एक वस्तु लेकर उसका घट से स्पर्श कराकर तथा उसे अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर शक्तियुक्त करके विशेष मन्त्र से उसे शिष्य के कपाल से स्पर्श कराते हुये इस प्रकार कहना चाहिये—

गङ्गामृत्तिका को कपाल से स्पर्श कराकर—ॐ ह्रीं अनया मह्या अस्य शुभाधिवासमस्तु।
शिला को कपाल से स्पर्श कराकर—ॐ ह्रीं अनया शिलया अस्य शुभाधिवासमस्तु।
चन्दन को कपाल से स्पर्श कराकर—ॐ ह्रीं अनेन गन्धेन अस्य शुभाधिवासमस्तु।
धान्य को कपाल से स्पर्श कराकर—ॐ ह्रीं अनेन धान्येन अस्य शुभाधिवासमस्तु।
दूर्वा को कपाल से स्पर्श कराकर—ॐ ह्रीं अनया दूर्वया अस्य शुभाधिवासमस्तु।
पुष्प को कपाल से स्पर्श कराकर—ॐ ह्रीं अनेन पुष्पेण अस्य शुभाधिवासमस्तु।
फल को कपाल से स्पर्श कराकर—ॐ ह्रीं अनेन फलेन अस्य शुभाधिवासमस्तु।
दधि को कपाल से स्पर्श कराकर—ॐ ह्रीं अनेन दध्ना अस्य शुभाधिवासमस्तु।
घृत को कपाल से स्पर्श कराकर—ॐ ह्रीं अनेन घृतेन अस्य शुभाधिवासमस्तु।
स्वस्तिक[१] को कपाल से स्पर्श कराकर—ॐ ह्रीं अनेन स्वस्तिकेन अस्य शुभाधिवासमस्तु।
सिन्दूर को कपाल से स्पर्श कराकर—ॐ ह्रीं अनेन सिन्दूरेण अस्य शुभाधिवासमस्तु।
शङ्ख को कपाल से स्पर्श कराकर—ॐ ह्रीं अनेन शङ्खेन अस्य शुभाधिवासमस्तु।
कज्जल को कपाल से स्पर्श कराकर—ॐ ह्रीं अनेन कज्जलेन अस्य शुभाधिवासमस्तु।
रोचन को कपाल से स्पर्श कराकर—ॐ ह्रीं अनया रोचनया अस्य शुभाधिवासमस्तु।
श्वेतसर्षप (सिद्धार्थ) को कपाल से स्पर्श कराकर—ॐ ह्रीं अनेन सिद्धार्थेन अस्य शुभाधिवासमस्तु।
काञ्चन को कपाल से स्पर्श कराकर—ॐ ह्रीं अनेन काञ्चनेन अस्य शुभाधिवासमस्तु।
रौप्य को कपाल से स्पर्श कराकर—ॐ ह्रीं अनेन रौप्येण अस्य शुभाधिवासमस्तु।
ताम्र को कपाल से स्पर्श कराकर—ॐ ह्रीं अनेन ताम्रेण अस्य शुभाधिवासमस्तु।
चामर को कपाल से स्पर्श कराकर—ॐ ह्रीं अनेन चामरेण अस्य शुभाधिवासमस्तु।
दर्पण को कपाल से स्पर्श कराकर—ॐ ह्रीं अनेन दर्पणेन अस्य शुभाधिवासमस्तु।
दीप को कपाल से स्पर्श कराकर—ॐ ह्रीं अनेन दीपेन अस्य शुभाधिवासमस्तु।
प्रशस्तिपात्र को कपाल से स्पर्श कराकर—ॐ ह्रीं अनेन प्रशस्तिपात्रेण अस्य शुभाधिवासमस्तु।

इन सभी द्रव्यों को पूर्ववर्णित विधि से घट-स्पर्श कराकर शक्तियुक्त करने की प्रक्रिया करके गायत्री-पाठ के साथ (अथवा मन्त्र के साथ) शिष्य के कपाल पर स्पर्श कराना चाहिये।

इसके अतिरिक्त हरिद्राचूर्ण से रंगे गये कच्चे सूत में पाँच अथवा सात दूर्वा बाँधकर माङ्गल्य सूत्र प्रस्तुत करना चाहिये तथा पूर्ववर्णित विधि से घट-स्पर्श कराकर शक्तियुक्त

---

१. पीसे तण्डुल से बना स्वस्तिक।

गायत्री-पाठ के साथ 'ॐ ह्रीं अनेन मङ्गलसूत्रेण अस्य शुभाधिवासमस्तु' पढ़कर उसे शिष्य के दाहिने हाथ में बाँध देना चाहिये। शिष्या के वामहस्त में बाँधना चाहिये। इसके अनन्तर कुछ मङ्गलद्रव्य रहने पर पूर्ववत् विधि के साथ 'ॐ ह्रीं अनेन मङ्गलद्रव्येण शुभाधिवासमस्तु' कहकर कपाल से स्पर्श कराना चाहिये। इन सब द्रव्यों के अभाव में केवल चन्दन, सिन्दूर, दूर्वा से अथवा केवल जल में अक्षत देकर ही सङ्क्षिप्तरूपेण यह प्रक्रिया की जा सकती है।

वसुधारा—द्वार के दक्षिण पार्श्व अथवा दक्षिण प्राचीर में नाभि के समसूत्र में ऊर्ध्व में एक सिन्दूर का बिन्दु बनाकर उसके नीचे हल्दी से एक अर्द्धचन्द्राकार रेखा बनाकर उसके नीचे एक अथवा पाँच सिन्दूर का बिन्दु अङ्कित करके उस बिन्दु से एक-एक घृतधारा का नीचे भित्ति के मूल-पर्यन्त निक्षेप करना चाहिये और उसके साथ प्रत्येक बार यह मन्त्रोच्चारण करना चाहिये—ॐ यद्वर्चो हिरण्यस्य यद् वा वर्चो गवामुत। सत्यस्य ब्रह्मणो वर्च.....इत्यादि।

तदनन्तर उक्त धारा के नीचे भित्तिमूल में चेदिराज वसु का आवाहन करके गन्ध-पुष्प से 'ॐ चेदिराजाय वसवे नमः' कहकर पूजा करके निम्न मन्त्र से प्रणाम करना चाहिये—

ॐ चेदिराज नमस्तुभ्यं शापग्रस्त महामते।
क्षुत्पिपासानुदे दान्त चेदिराज नमोऽस्तु ते॥

तत्पश्चात् 'ॐ चेदिराज क्षमस्व' कहकर विसर्जन करना चाहिये।

भोज्योत्सर्ग—अभिषेक कर्म की अभ्युदय-कामना से अन्न, जल, वस्त्रादि समन्वित भोज्य सामने रखकर शिष्य द्वारा बाँयें हाथ को चित्त करके उसका स्पर्श करके दक्षिण हाथ से कुशादि से जल छिड़ककर इस प्रकार कहना चाहिये—'एते गन्धपुष्पे ॐ एतेभ्यः सोपकरण आमान्नभोज्येभ्यो नमः, एते गन्धपुष्पे एतदधिपतये ॐ विष्णवे नमः एतत् सम्प्रदानेभ्यः ॐ ब्राह्मणादिभ्यो नमः'।

तत्पश्चात् इस मन्त्र से भोज्य का उत्सर्ग करना चाहिये—ॐ तत्सत् ह्रीं अद्य अमुकमासि अमुकराशीस्थभास्करे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रस्य श्री अमुक (शिष्य का गोत्र तथा नाम कहे) शुभशाक्ताभिषेककर्माभ्युदयार्थं अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य पितुः अमुकदेवशर्मणः अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य पितामहस्य अमुकदेवशर्मणः अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य प्रपितामहस्य अमुकदेवशर्मणः अमुकगोत्रस्य मातामहस्य अमुकदेवशर्मणः अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य प्रमातामहस्य अमुकदेवशर्मणः अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य वृद्धप्रमातामहस्य अमुकदेवशर्मणः अक्षयस्वर्ग तथा श्रीभगवती-प्रीतिकामः इदं सघृतं सोपकरणं अन्नजलवस्त्रादिसहितं भोज्यं श्रीविष्णुदैवतं यथासम्भवं गोत्रनाम्ने ब्राह्मणायाहं ददामि। (पिता माता मामा आदि में जो जीवित हों, उनका नामोल्लेख नहीं करना चाहिये। इनमें

से यदि कोई संन्यासी हो गया हो, तो उसका भी नामोल्लेख नहीं करना चाहिये)।

तदनन्तर दक्षिणा-दान करना चाहिये; यथा—'ॐ तत्सत् ह्रीं अद्य अमुकमासि अमुकराशीस्थभास्करे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रस्य श्रीअमुक देवशर्मण: श्रीभगवती प्रीतिकामेन या कृतैतत् सोपकरण आमात्र भोजनदानकर्मण: साङ्गतार्थं दक्षिणामिदं काञ्चनमूल्यं (हरीतकी फलं, बिल्वपत्रं वा पुष्पं) श्रीविष्णुदैवतं अहं सम्प्रददे'।

अच्छिद्रावधारण—'ॐ कृतैतत् सोपकरणं आमान्नभोज्यदानकर्माच्छिद्रमस्तु'—इस प्रकार शिष्य के कहने पर गुरुदेव को कहना चाहिये—'ॐ अस्तु'।

स्नान—अगले दिन प्रात: अथवा उसी दिन अधिवास के अन्त में सर्वौषधि जल से अथवा अमलक जल से 'ॐ प्रलेपोऽखिलसिद्धिदायिन्यै' मन्त्र से शिष्य को स्नान कराकर अन्यान्य नित्यकर्म सम्पादित करना चाहिये।

जगदम्बार्चन—इस समय, बाद में अथवा सबसे पहले सुविधानुसार जगदम्बा का पूजन गुरुनिर्दिष्ट विधि से करना चाहिये। बाह्यपूजन से शिष्य की आन्तरिक शक्ति पुष्ट होती है। तत्पश्चात् गुरु साधनाभिलाषी शिष्य के सभी पापपुञ्ज के क्षयार्थ तल-काञ्चन उत्सर्ग कराते हैं। यही है—गुरु का वास्तविक कर्म। जन्म-जन्मान्तर की अशेष पापराशि के क्षयार्थ कहना चाहिये—'एते गन्धपुष्पे ॐ काञ्चनसहिताय तिलेभ्यो नम: एतदधिपतये ॐ विष्णवे नम: एतत् सम्प्रदानेभ्य: ॐ ब्राह्मणादिभ्यो नम:'।

'ॐ तत्सत् अमुकमासि अमुकराशीस्थभास्करे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्र: श्रीअमुकदेवशर्मा आजन्मकृतज्ञाताज्ञाताशेषदुष्कृतिपुञ्जक्षयकाम: यथासम्भवगोत्रनाम्ने ब्राह्मणाय दातुं काञ्चनसहितान् तिलानहं समुत्सृजे' कहकर इसे गुरुदेव के हाथ में प्रदान करना चाहिये।

पुन: ऐसी ही वाक्यरचना करके भोज्योत्सर्ग के दक्षिणा की तरह तिल-काञ्चन की भी दक्षिणा प्रदान करनी चाहिये। तत्पश्चात् पूर्ववत् गायत्री मन्त्र से सङ्कल्प करना चाहिये। यथा—ॐ तत्सत् अमुकमासि अमुकराशीस्थभास्करे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्र: श्रीअमुकदेवशर्मा आजन्मकृतज्ञाताज्ञाताशेषदुष्कृतिपुञ्जक्षयकाम: गायत्रीजपमहं करिष्ये'।

तदनन्तर यथाविधि गायत्री जप समाप्त होने पर उपस्थित कौलगण की तृप्ति-हेतु भोज्य का उत्सर्ग करना चाहिये। इस समय यह कहना चाहिये—'ॐ तत्सत् अमुकमासि अमुकराशीस्थभास्करे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्र: श्रीअमुकदेवशर्मा कौलपरितृप्ति-काम:' कहकर कौलगण को भोज्य उत्सर्ग (प्रदान) करके पूर्ववत् यथामति दक्षिणा प्रदान करनी चाहिये। यह क्रिया सम्पन्न होने पर अथवा पहले से ही सुविधा के अनुसार गुरुदेव को घट-स्थापनादि करना चाहिये।

घट-परिमाण—'नातिह्रस्वं नातिदीर्घं स्वर्णरौप्यविनिर्मितम्'। तन्त्रान्तर में कहा

गया है कि अभिषेक का घट अधिक उच्च अथवा अत्यन्त निम्न आकार का न हो। स्वर्ण, चाँदी आदि से बना हो। अन्य तन्त्र में कहते हैं कि इसका विस्तार ३६ अङ्गुल अथवा यजमान के हाथ के नाप से १½ हाथ हो। ऊँचाई १६ अङ्गुल, उसका गला ४ अङ्गुल, मुखविस्तार ६ अङ्गुल तथा उसका तल ५ अङ्गुल का हो। यह कलश यजमान के सामर्थ्य के अनुसार स्वर्ण, चाँदी, ताँबा, काँसा, मिट्टी, पाषाण, काठ द्वारा बना हो सकता है। यह कहीं से चिटका न हो, छिद्र वाला न हो। देवता की प्रसन्नता के लिये यह कलश (घट) प्रस्तुत करना हो तो अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार ही इसे बनाना चाहिये, कञ्जूसी नहीं करनी चाहिये—

षट्त्रिंशदङ्गुलायामं षोडशाङ्गुलमुच्चकैः।
चतुरङ्गुलं कण्ठश्च मुखस्तस्य षडङ्गुलम्।
पञ्चाङ्गुल्लिखितं मूलं विधानं घटनिर्मितौ॥
सौवर्णं राजतं ताम्रं कांस्यजं मृत्तिकोद्भवम्।
पाषाणं काचजं वापि घटमक्षतमव्रणम्॥
कारयेद्देवताप्रीत्यै वित्तशाठ्यं विसर्जयेत्॥

तन्त्रों में कलश के गुण-अवगुण का भी वर्णन अङ्कित है। स्वर्णकलश भोगप्रद होता है। रजतकलश मोक्षदायक माना गया है। ताम्रकलश से प्रीतिवृद्धि एवं कांस्यकलश से पुष्टि-वृद्धि कही गयी है। काँच-निर्मित कलश वशीकरण कार्य में प्रशस्त होता है। प्रस्तरकलश स्तम्भन कार्यार्थ उपयोगी माना गया है। मिट्टी का कलश सभी कार्य हेतु उत्तम कहा गया है—

सौवर्णं भोगदं प्रोक्तं राजतं मोक्षदायकम्।
ताम्रं प्रीतिकरं ज्ञेयं कांस्यजं पुष्टिवर्द्धनम्॥
काचं वश्यकरं प्रोक्तं पाषाणं स्तम्भकर्मणि।
मृण्मयं सर्वकार्येषु सुदृश्यं सुपरिष्कृतम्॥

कलश सुन्दर तथा परिष्कृत होना चाहिये। आजकल सिद्ध गुरुमण्डली के उपदेशानुसार ताम्र के स्थान पर पीतल का कलश व्यवहृत किया जा रहा है। उसका भी सामर्थ्य न हो, तब मिट्टी के कलश का व्यवहार विहित है। अभिषेक कलश को आसन वेदिका के ऊपर स्थापित करना चाहिये। अन्यत्र (अपने मठ से अन्यत्र) चार अङ्गुल ऊँची, डेढ़ हाथ नाप की एक मिट्टी की वेदी बनानी चाहिये। उसके ऊपर एक प्रशस्त ताम्रपत्र की स्थापना करके उसके ऊपर अभिषेक घट (कलश) रखने का विधान है। आनन्दमठ की परम्परा में यन्त्राङ्कित ताम्रपत्र व्यवहृत किया जाता है। अथवा वेदी के ऊपर पीत, कृष्ण, रक्त, श्वेत, श्यामलादि पाँच वर्ण के चूर्ण से सर्वतोभद्रमण्डल की रचना तथा अर्चना करके पूर्वोक्त ताम्रपत्र पर यह कलश स्थापित करते हैं। कलश के ऊपर 'श्रीं' मन्त्र पढ़कर

निम्नमुखी त्रिकोणाकृति सिन्दूर-चिह्न अङ्कित करना चाहिये तथा उस चिह्न के मध्य में दक्षिणकालिका का मूलबीज अङ्कित करना चाहिये।

रुद्रयामल का निर्देश है कि जहाँ कहीं भी देवी की आराधना की जाय, वहाँ पर देवी का अधोमुखी त्रिकोण चिह्न अवश्य अङ्कित होना चाहिये। पुरुषदेवता की अर्चना में ऊर्ध्वमुखी त्रिकोण चिह्न अङ्कित करना चाहिये। कहा भी है—

यत्र यत्र महाविद्या भवत्येव उपासिता।
तत्र तत्र त्रिकोणञ्च अधोमुखमुदीरितम्।
देवत्रिकोणं कर्त्तव्यं ऊर्ध्वास्यं परिकीर्तितम्॥

दधि अथवा अक्षत से कलश को चर्चित करने के बाद अनुलोम भाव से 'क्ष' से अ-पर्यन्त ५१ मातृका वर्ण का ('क्ष' से प्रारम्भ करके विपरीत क्रम से 'अ' पर्यन्त) पाठ करके मूल मन्त्र का तीन बार जप करके 'कारणवारि' अथवा तीर्थजल से अथवा अन्य निर्मल जल द्वारा उस घट को भर देना चाहिये। कारणवारि (मद्य) से लेकर तीर्थादि जल तक जैसी गुरुपरम्परा हो, तदनुरूप घट में भरना चाहिये। जहाँ से घट को भरना हो, वहाँ उसमें (घिसा गया) रक्त चन्दन, श्वेत चन्दन, अगुरु, कर्पूर, केशर (जाफरान), गोरोचन छोड़ना चाहिये। सुविधा होने पर तन्त्रोक्त अष्टगन्ध भी छोड़ा जा सकता है।

शारदातिलक के अनुसार गन्धाष्टक त्रिविध हैं। शाक्त, वैष्णव तथा शैव मन्त्रभेदानुसार उसके अलग-अलग नाम हैं। चन्दन, अगुरु, कर्पूर, रक्तचन्दन, कुङ्कुम, गोरोचन, जटामासी, लाक्षा—ये शाक्त गन्धाष्टक होते हैं। कहा भी है—

चन्दनागुरुकर्पूरचोरकुङ्कुमरोचनाः।
जटामांसी कपियुता शक्तेर्गन्धाष्टकं विदुः॥

शैव गन्धाष्टक में चन्दन, अगुरु, कर्पूर, तमाल, बाला, कुङ्कुम, रक्तचन्दन तथा कूठ कहा गया है; जैसा कि कहा है—

चन्दनागुरुकर्पूरतमालजलकुङ्कुमम्।
कुशीतं कुष्ठसंयुक्तं शैवं गन्धाष्टकं स्मृतम्॥

वैष्णव गन्धाष्टक का नाम है—चन्दन, अगुरु, कूठ, बाला, कुङ्कुम, सेव्यक (श्वेत वेणा की जड़), जटामांसी तथा देवदारु।

गुरु अपने शिष्य की अवस्था के अनुसार उसके लिये हितकारी मन्त्र का निर्णय करके इस सब सामग्रियों तथा विधि का निर्णय करते हैं।

तत्पश्चात् कलश में नवरत्नः यथा—मुक्ता, माणिक, नीलम, गोमेद, हीरा, मूँगा, पन्ना, गोमेद, लहसुनियाँ छोड़ना चाहिये। यदि सामर्थ्य न हो तब पाँच रत्न अथवा एक तोला सोना अथवा पूर्ण सामर्थ्यहीन होने पर आतपतण्डुल से भी कार्य सम्पन्न हो जाता

है। 'ऐं' बीज का उच्चारण करके कलश के मुख पर आम, कटहल, पीपल, वट, बकुलरूप पञ्चपल्लव रखना चाहिये। तदनन्तर घट (कलश) पर एक कसोरा (ढ़कना) के रूप में शिखायुक्त नारियल के साथ स्वर्ण, रजत, ताम्र-निर्मित अथवा मिट्टी का कसोरा रख देना चाहिये। यह कार्य 'श्रीं ह्रीं' मन्त्रोच्चार के साथ करना चाहिये। लाल कपड़े की साड़ी से (अभाव में रक्तसूत्र से) कलश को ढँककर रक्तसूत्र को कलश के कण्ठ (गला) पर लपेट देना चाहिये। यह शाक्त मन्त्र के लिये है। लेकिन जहाँ विष्णुमन्त्र अथवा शिवमन्त्र प्रयुक्त हो, वहाँ श्वेत वस्त्र से यह कार्य करना चाहिये। घट पर पूर्वकथित प्रकार से सिन्दूर-चिह्न आदि तथा देवबीज (उपास्य का बीजमन्त्र) अङ्कित करना चाहिये। यह सब कर लेने के उपरान्त घट का स्थिरीकरण इस मन्त्र को पढ़कर करना चाहिये—'स्थां स्थीं ह्रीं श्रीं स्थिरीभव'।

नवपात्र-स्थापन—तन्त्र में इसका विशेष विधान है। इसमें नव पात्रों की स्थापना की जाती है। प्रथम शक्तिपात्र रजत् का होता है। द्वितीय गुरुपात्र स्वर्ण का एवं तृतीय श्रीपात्र नरकपाल अथवा महाशङ्ख का होना चाहिये। चतुर्थ योगिनी-पात्र, पञ्चम वीरपात्र, षष्ठ पाद्यपात्र, सप्तम भोगपात्र, अष्टम बलिपात्र एवं नवम आचमनीय पात्र ताम्र का होना चाहिये। पाषाण, काष्ठ तथा लौह-पात्र वर्जित है। आजकल प्रायः सभी गुरुपरम्परा में सभी पात्र ताम्र के रखे जाते हैं। इन्हें पूर्वकथित चन्दनादि गन्ध से मिश्रित जल द्वारा पूरित कर देना चाहिये। जैसा मन्त्र (शाक्त, वैष्णव, शैव) हो, तदनुरूप गन्ध का व्यवहार करना चाहिये, जो पहले कहा गया है। इन नव पात्रों को मुख्य अभिषेक कलश के चारो ओर मण्डलाकृति में सजा देना चाहिये। किसी-किसी सम्प्रदाय में इसमें विजया (भाँग) भी मिलाने का विधान प्राप्त होता है। इन सबमें एक-एक चाँदी का सिक्का तथा यन्त्रपुष्प रखना चाहिये (यन्त्रपुष्प अपराजिता आदि)। तदनन्तर प्रत्येक पात्र में रखे जल से गुरुगण तथा भगवती का तर्पण करना चाहिये।

अब गुरुचतुष्टय के तर्पणमन्त्र को लिखा जा रहा है—'ऐं सशक्तिक गुरु श्रीमद् अमुकानन्दनाथ अमुकीदेव्यम्बाश्रीपादुकां तर्पयामि नमः। ऐं सशक्तिक परमगुरु श्रीमद् अमुकानन्दनाथ अमुकीदेव्यम्बाश्रीपादुकां तर्पयामि नमः। ऐं सशक्तिक परापरगुरु श्रीमद् अमुकानन्दनाथ अमुकीदेव्यम्बाश्रीपादुकां तर्पयामि नमः। ऐं सशक्तिक परमेष्ठिगुरु श्रीमद् अमुकानन्दनाथ अमुकीदेव्यम्बाश्रीपादुकां तर्पयामि नमः'।

श्री भगवती के तर्पण का विधान इस प्रकार है—'क्रीं श्रीमद्दक्षिणकालिकाश्रीपादुकां तर्पयामि स्वाहा। क्रीं श्रीमद्दक्षिणकालिकाषडङ्गदेवताश्रीपादुकां तर्पयामि स्वाहा। क्रीं श्रीमद्दक्षिणकालिकावरणदेवताश्रीपादुकां तर्पयामि स्वाहा'।

इसके अतिरिक्त स्वतन्त्र ऋषितर्पण, आवरणतर्पण, पञ्चदश योगिनीतर्पण, अष्ट-

शक्तितर्पण, साधारण दश दिक्पाल-तर्पण, षडङ्गतर्पण, अस्त्रादितर्पण, भैरवतर्पण करना चाहिये। इसे इस ग्रन्थ में पहले लिखा गया है। अतः पुनरुक्ति व्यर्थ है।

अभिषेक कलश में (इस ग्रन्थ में पूर्ववर्णित नियम से) मन्त्र तथा देवता का आवाहन करके प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये। घट में ही देवमूर्त्ति की कल्पना करके देवता का ध्यान तथा यथाविधि पूजन करना चाहिये। अभिषेक कलश में तीर्थावाहन का मन्त्र आगे दिया जा रहा है। तीर्थावाहन कार्य को घट में मन्त्र तथा देवता के आवाहनादि से पहले ही करना चाहिये। मन्त्र है—

ॐ गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः समुद्राश्च सरांसि च।
सर्वे समुद्राः सरितः सरांसि जलदा नदाः॥
ह्रदा प्रस्रवणा पुण्याः स्वः पाताल महीगताः।
सर्वतीर्थानि पुण्यानि घटे कुर्वन्तु सन्निधिम्॥

पूर्व-प्रतिष्ठित गणेशघट में गौर्यादि सोलह मातृकागण की पूजा करने के लिये पहले ही कहा जा चुका है। इस घट में पञ्चदेवता की पूजा होती है और अभिषेकान्त में पञ्चदेवों का विसर्जन इस घट में ही सम्पन्न होता है। इन सब अनुष्ठान के सम्पन्न होने पर अभिषेकाभिलाषी शिष्य को गुरु के सन्निधान में उपस्थित होकर प्रणाम करते हुये यह प्रार्थना करनी चाहिये—

त्राहि नाथ कुलाचार नलिनीकुलवल्लभ।
तत्पादाम्भोरुहच्छायां देहि मूर्ध्नि कृपानिधे।
आज्ञां देहि महाभाग शुभपूर्णाभिषेचने।
निर्विघ्नं कर्मणः सिद्धिम् उपैमि त्वत् प्रसादतः॥

अर्थात् हे नाथ! आप मेरा उद्धार कीजिये। आप कौलिकरूप पद्म वन के प्रभाकररूप हैं। हे कृपानिधे! अब कृपा करके मेरे मस्तक पर अपने चरणों की छाया प्रदान कीजिये। महाभाग! मेरे शुभ शाक्ताभिषेक तथा पूर्णाभिषेक के सम्बन्ध में आज्ञा दीजिये। मैं आपकी कृपा से निर्विघ्न साधन कार्य में सिद्धि प्राप्त कर सकूँ, यह कृपा कीजिये।

इसके उत्तर में गुरु को इस प्रकार कहना चाहिये—

शिवशक्त्याज्ञया वत्स कुरु शाक्ताभिषेचनम्।[१]
मनोरथमयी सिद्धि जायतां शिवशासनात्॥

---

(१) इस सम्पूर्ण अभिषेकरहस्य प्रकरण में यह याद रखना चाहिये कि यह विधि शाक्ताभिषेक तथा पूर्णाभिषेक दोनों के लिये है। अतः सङ्कल्पादि, पूजादि में इस प्रकरण में जहाँ 'शाक्ताभिषेक' लिखा गया है, यदि पूर्णाभिषेक करना हो तब वहाँ 'शाक्ताभिषेक' के स्थान पर पूर्णाभिषेक का उच्चारण करना चाहिये।

अर्थात् हे वत्स! तुम शिव-शक्ति के आदेश से शाक्ताभिषेक से अभिषिक्त हो। श्रीभगवान् महेश्वर की आज्ञा से तुम्हारी मनोवाञ्छा पूर्ण हो जाय।

शिष्य को अपने गुरु से इस प्रकार की आज्ञा प्राप्त करके सर्वोपद्रव-शान्ति, शक्ति-आयु-लक्ष्मी-बल-आरोग्य-प्राप्ति के लिये तथा शिवत्वलाभार्थ सङ्कल्प करना चाहिये। शिष्य को उत्तर की ओर मुख करके दाहिना जानु रखकर बैठकर जल, तिल, हरीतकी, कुश, दूर्वा, तुलसी, बेलपत्र आदि लेकर बाँयें हाथ की हथेली पर उसे रखकर दाहिनी हथेली से ढ़ककर यह सङ्कल्पमन्त्र पढ़ना चाहिये—

'ॐ तत्सत् अद्य अमुके मासि अमुकराशीस्थभास्करे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा (अथवा अमुकी देवी कहे जहाँ महिला हो) सर्वोपद्रवशान्ति-सर्वरोगनिवारण-धनकीर्त्यायुर्वृद्धि-सर्वसौभाग्यप्राप्ति-असौभाग्यप्रशमन-सर्वपातकापनयन-सर्वाशापूरण-मन्त्रदोषनिवारण-सर्वार्थसाधन-सर्वतीर्थफलावाप्ति-शत्रुकृत-अभिचारप्रशमन-सर्वग्रहदोषनिवारण-भूतरोगादिशमन-डाकिन्यादिभयविध्वंसन-विषादिकृतदोषखण्डन-स्वीकृतादिदोषाशान्तिनिदान (जैसे गुप्त कुलदीक्षा को सुन लेना आदि)-सर्वमन्त्रजपाधिकारित्व-सर्वापच्छान्ति-सर्वविजय-परमैश्वर्य-परदैवतमन्त्रसिद्ध्यादि-धर्मार्थकाममोक्षशिवत्वसिद्धये गुप्तावधूत (अथवा प्रकटावधूत)-भावेन कौलधर्माश्रयार्थं गुरुद्वारा (कौलद्वारा) मत्कर्त्तव्यशुभशाक्ताभिषेकाङ्गीभूत (यदि पूर्णाभिषेक हो तब कहे—पूर्णाभिषेकाङ्गीभूत) अमुकदेवता अमुकमन्त्र द्वारा श्रीमद्दक्षिणकालिका (अथवा अमुकदेवतार्चित) घटस्थ (जहाँ मद्य हो वहाँ 'घटस्थ' के आगे 'कुलद्रव्येण' लगाये) मन्त्रपूतसिद्धसलिलेन शाक्ताभिषेक (जहाँ पूर्णाभिषेक हो वहाँ 'पूर्णाभिषेक' कहना होगा) कर्माऽहं करिष्ये।

तत्पश्चात् ईशानकोण में उस सङ्कल्पपात्र का कुछ जल फेंककर उस पात्र को अन्य किसी पात्र के ऊपर उलटा करके रख देना चाहिये तथा उस पर कुछ अक्षत छिड़क कर हाथ जोड़कर कहना चाहिये—'ॐ सङ्कल्पितेऽस्मिन् कर्मणि सिद्धिरस्तु'। इस पर गुरुदेव को कहना चाहिये—'ॐ अस्तु'। पुनः शिष्य के 'ॐ अयमारम्भः शुभाय भवतु' कहने पर गुरु को 'ॐ भवतु' कहना चाहिये।

इस प्रकार कृतसङ्कल्प साधक द्वारा निम्नलिखित मन्त्र से उत्तरमुख बैठे गुरु का वरण करना चाहिये। एतदर्थ पूर्वमुखीन शिष्य को हाथ जोड़कर गुरु से इस प्रकार कहना चाहिये—

शिष्य कहे— ॐ साधु भवानास्ताम्।
गुरु कहें— ॐ साध्वहमासे।
शिष्य कहे— ॐ अर्चयिष्यामो भवन्तम्।
गुरु कहें— ॐ अर्चये।

तदनन्तर शिष्य को गन्ध-पुष्प, वस्त्र, यज्ञोपवीत तथा अलङ्कारादि के साथ यथाशक्ति

अर्चनीय उपकरणसमूह को गुरुदेव के हाथों में अर्पित करके गुरु के दाहिने जानु पर आतप-तण्डुल रखना चाहिये तथा वाम हस्तयुक्त दाहिने हाथ से उसे धारण करके कहना चाहिये—'ॐ तत्सदद्य अमुके मासि अमुकराशीस्थभास्करे अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुक-गोत्रः श्री अमुकदेवशर्मा (यदि शिष्य स्त्री हो तब 'अमुकी देवी') मत्सङ्कल्पितार्थसिद्धये अमुकमन्त्रद्वारा घटस्थकुलद्रव्येण (यदि मद्य के स्थान पर जल हो तब कहे—'मन्त्रपूतसिद्ध-सलिलेन') शुभशाक्ताभिषेकार्थं (यदि पूर्णाभिषेक हो तब कहे पूर्णाभिषेकार्थं) परब्रह्मगोत्रं सशक्तिकं श्री अमुकानन्दनाथ भवन्तं गुरुत्वेन अहं वृणे'।

गुरुदेव कहें— ॐ वृतोऽस्मि।
शिष्य कहे— ॐ यथाविहित शुभकर्म कुरु।
गुरु कहे— ॐ यथाज्ञानतः करवाणि।

तदनन्तर गुरुदेव को मन्त्र का संस्कार करना चाहिये (लेकिन काली आदि सिद्ध विद्या के मन्त्रों का संस्कार नहीं किया जाता)।

अब गुरुदेव द्वारा शिष्य के नेत्रद्वय को 'वौषट्' मन्त्र पढ़ते हुये रक्त वस्त्र से आच्छादित करना चाहिये और पुष्पों को शिष्य की अञ्जलि में रख देना चाहिये। देवता की प्रीति के लिये उन्हें स्वयं अपने मूल मन्त्र को पढ़ते हुये उस कलश में पुष्पाञ्जलि देना चाहिये।

तत्पश्चात् गुरु द्वारा अपने शिष्य के हृदय पर त्रिशूल अथवा किसी अन्य शस्त्र का स्पर्श कराकर उससे पूछना चाहिये—**किं वत्स! ते हृदि न्यस्तं कथ्यतामनुभूयते?** (तुम कैसा अनुभव कर रहे हो?)।

शिष्य को अनुभव करके कहना चाहिये—**शाणितं शस्त्रमेतद्धि हृदि न्यस्तं मम प्रभो** (हे प्रभो! एक तेज अस्त्र मेरे हृदय के ऊपर रखा है)।

गुरुदेव को पुनः कहना चाहिये—**अनेन तीक्ष्णशस्त्रेण भेत्स्यामि हृदयं तव** (इसके द्वारा तुम्हारे हृदय को विद्ध करूँगा)।

ब्रह्मज्ञ कौलगुरु का यह आदेश सुनकर दृढ़सङ्कल्प शिष्य को बिना सङ्कोच इस प्रकार कहना चाहिये—

एतन्निवेदितं पूर्वं हृदयं ते कृपानिधे।
यथेष्टं क्रियतां ब्रह्मन् कौलसंसच्छिरोमणे॥

(प्रभो! यह आपका ही हृदय है। हे कृपानिधे! इसका जो कुछ करना हो, अपनी इच्छा से करिये)।

तब गुरुदेव को स्नेह से इस प्रकार कहना चाहिये—

नाहं भेत्स्यामि हृत्पिण्डं शस्त्रेण निशितेन तु।
भित्वा दैवेन ते वत्स बीजं परमदुर्लभम्।

वप्यामि हृदये श्रीमान् गुह्यातिगुह्यमेव च ।
प्रयत्नश्च प्रकर्त्तव्यस्तद्बीजस्याङ्कुरायणे ।
अप्रमत्तेन कर्त्तव्या नोपेक्षा च कदाचन ॥

अर्थात् हे वत्स! मैं लौहशस्त्र से तुम्हारे हृदय का भेदन नहीं कर रहा हूँ। तुम्हारे हृत्पिण्ड को आज (लौहशस्त्र से नहीं) देवशस्त्र से विद्ध करके जिस परम गुह्य बीज को प्रदान कर रहा हूँ, उसके लिये तुम्हारा प्रयास अप्रमत्त रूप से यह होना चाहिये कि उसका कभी भी तुम दुरुपयोग मत करना।

इस पर शिष्य को यह कहना चाहिये—

आदेशो मे शिरोधार्यः कृपां कुरु कृपानिधे ।
भवत्पादाम्बुजच्छायामाश्रितोऽहं निराश्रयः ॥
रक्ष मां कृपया ब्रह्मन् शिष्यस्तेऽहं प्रसाधि माम् ॥

आपकी अनुमति को शिरोधार्य करता हूँ। मैं आपका आश्रित शिष्य हूँ। हे ब्रह्मन्! मेरी रक्षा कीजिये।

इस पर गुरुदेव शिष्य को विविध उपदेश देकर नियमादि का उपदेश देकर कर्मतत्पर होने का आदेश देते हैं।

अब गुरुदेव भूतशुद्धि कराकर शिष्य के देह में देय मन्त्र का न्यास कराते हैं। इसके अनन्तर शिष्य पुष्प, चन्दन, वस्त्रालङ्कार के द्वारा कुमारी-पूजन करता है। यदि कुमारी उपस्थित नहीं है, तब अभिषेक घट को ही कुमारी का प्रतीक मानकर उस पर कुमारीपूजा की जाती है। कुमारी-पूजनकाल में पूजक पूर्व अथवा उत्तर की ओर कुमारी के सामने आसनादि रखकर आचमन आदि साधारण क्रिया करके निम्नलिखित सङ्कल्प करता है— 'ॐ तत्सत् अद्य अमुकमासि अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रस्य श्रीअमुकदेवशर्मणः सङ्कल्पितदीक्षाभिषेककर्मणः परिपूर्णफलप्राप्तिकामः कुमारीपूजाकर्माहं करिष्यामि'।

पूजाविधि— जल— ऐं एतज्जलं ॐ अमुककुमार्यै नमः।
पाद्य— ह्रीं एतत् पाद्यं ॐ अमुककुमार्यै नमः।
अर्घ्य— श्रीं इदमर्घ्यं ॐ अमुककुमार्यै नमः।
गन्ध— ह्रं एष गन्धः ॐ अमुककुमार्यै नमः।
पुष्प— ऐं एतत् पुष्पं ॐ अमुककुमार्यै नमः।
धूप— हसौः एष धूपः ॐ अमुककुमार्यै नमः।
दीप— हसौः एष दीपः ॐ अमुककुमार्यै नमः।

एते गन्धपुष्पे ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हेसौः कुलकुमारिके हृदयाय नमः।
हैं वैं हैं श्रीं ह्रीं ऐं स्वाहा शिरसे स्वाहा नमः।

ऐं ह्रीं शिखायै वषट् नमः ।

ऐं वागीश्वरि कवचाय हुं नमः ।

ऐं कुलेश्वरि नेत्रत्रयाय वौषट् नमः ।

ह्रीं अस्त्राय फट् नमः ।

ऐं सिद्धजयाय पूर्ववक्त्राय नमः ।

ऐं जयाय उत्तरवक्त्राय नमः ।

ऐं ह्रीं श्रीं कुब्जिके पश्चिमवक्त्राय नमः ।

ऐं कालिके दक्षवक्त्राय नमः ।

तदनन्तर कुमारी को वस्त्रादि पहनाकर भोजन कराने के बाद तीन बार उनकी प्रदक्षिणा देकर दक्षिणान्त कर्म करना चाहिये। यथा—'ॐ एतस्मै रजताय नमः एतदधिपतये श्रीविष्णवे नमः। ॐ तत्सत् अद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रस्य श्रीअमुकदेवशर्मणः सङ्कल्पितदीक्षाभिषेककर्मणः परिपूर्णफलप्राप्तिकामनया कृतैतत् अमुककुमारीपूजने दक्षिणामिदं काञ्चनमूल्यं रजतखण्डं श्रीविष्णुदैवत अमुकगोत्रायै श्रीमती अमुकदेव्यै अमुककुमार्यै तुभ्यं ददामि'।

अब अच्छिद्रावधारण करना चाहिये—'ॐ कृतैतत् कुमारीपूजाकर्माच्छिद्रमस्तु'।

अब उपस्थित कौलगण की (साधकगण की) शिष्य द्वारा यथासम्भव अर्चना करके उन्हें प्रणाम करने के बाद गुरुदेव को कौलगण को सम्बोधित करते हुये इस प्रकार कहना चाहिये—

अनुग्रहन्तु कौला मे शिष्यं प्रति कुलव्रताः ।
शाक्ताभिषेकसंस्कारे भवद्भिरनुमन्यताम् ॥

हे कुलव्रत कौलगण! मेरे शिष्य के प्रति आप लोग कृपा करें और इनके शाक्ताभिषेक-हेतु अनुमति प्रदान करें।

गुरुदेव के प्रश्न करने पर कौलगण आदर-पूर्वक इस प्रकार कहें—

महामायाप्रसादेन प्रभावात् परमात्मनः ।
शिष्यो भवतु पूर्णस्तु परतत्त्वपरायणः ॥

अर्थात् महामाया के प्रभाव से, कृपा से तथा परमात्मा के प्रभाव से आपका शिष्य इस अभिषेक द्वारा परतत्त्व-परायण होकर पूर्णत्व को प्राप्त करे। यदि अभिषेक काल में कोई कौलसाधक नहीं हो तब अभिषेक के साक्षीरूप में किसी यन्त्रपुष्प में (अपराजिता आदि यन्त्र पुष्प में) मन्त्रकौल की कल्पना करनी चाहिये अथवा घट:स्थित कुलेश्वरी महामाया को ही सम्बोधित करके कौलार्चन करना चाहिये।

घट में शक्तिसञ्चार—यह सभी कार्य यथाविधान सम्पन्न करके गुरुदेव को

पूर्वार्चित ब्रह्मकलश (अभिषेककलश) में शिष्य द्वारा सङ्क्षिप्त भाव से महाशक्ति का पूजन कराकर स्वयं अथवा उपस्थित कौलगण के सहयोग से उसमें अपनी अथवा सबकी साधनशक्ति का समावेश कराना चाहिये। इसकी प्रक्रिया ग्रन्थ में पहले ही वर्णित की जा चुकी है। अर्थात् इसी समय सभी उपस्थित साधकगण द्वारा अपनी-अपनी शक्ति को अभिषेक-कलश में सञ्चारित करना चाहिये। इस प्रक्रिया के लिये गुरु को स्वयं तथा साधकगण के साथ कलश के समीप बैठना चाहिये तथा प्रकृत भूतशुद्धि द्वारा स्थिरचित्त होकर अपने-अपने हस्तद्वय की हथेली को उठाकर ऊपर तिर्यक् भाव से उस कलश का स्पर्श करते हुये महाशक्ति का चिन्तन करके वे शिष्य के मङ्गलार्थ अपनी-अपनी साधनशक्ति का किञ्चित् अंश प्रदान कर रहे हैं—यह सोचते हुये घटाश्रित देवता का ध्यान तथा मन्त्रजप करना चाहिये। कम से कम बारह पल अथवा पाँच मिनट तक ऐसा करके कलश से हाथ हटा लेना चाहिये। प्रत्येक तान्त्रिक परम्परा में गुप्त रूप से यही क्रिया चलती आ रही है।

साधन-जगत् में अभिषेक का अत्यधिक महत्त्व कहा गया है। इस प्रकार शक्ति-सञ्चार करने के अनन्तर गुरु द्वारा स्वयं 'क्लीं ह्रीं श्रीं' मन्त्र का जप करके यह पाठ करना चाहिये—

उत्तिष्ठ ब्रह्मकलश देवतात्मकसिद्धिद।
त्वत्तोयपल्लवैः सिक्तः शिष्यो ब्रह्मरतोऽस्तु मे॥

हे ब्रह्मकलश! आप सिद्धिदाता तथा देवतात्मक हैं। आप उठ जाईये। मेरा शिष्य आपके जलपल्लव से सींचा जाकर ब्रह्मपरायण हो जाय।

यह कहने के उपरान्त गुरुदेव द्वारा समागत कौलगण के सहयोग से उस कलश को हिलाकर उठाना चाहिये तथा उसके मुख पर स्थित पत्तों को जो कि स्थापन के समय रखे गये थे, उसे शिष्य के मस्तक पर रखकर मन ही मन मातृका मन्त्र का स्मरण करते हुये मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित करके उत्तराभिमुखीन शिष्य को मन्त्र द्वारा अभिषिक्त करना चाहिये, जो आगे लिखा जा रहा है।

अभिषेक का यह मन्त्र शुभशाक्ताभिषेक का मन्त्र है—'एतस्य शुभशाक्ताभिषेक-मन्त्रस्य दक्षिणामूर्त्ति ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः शक्तिर्देवता सर्वकल्पसिद्ध्यर्थे विनियोगः'।

अभिषेक मन्त्र—

ॐ राजराजेश्वरी देवी भैरवी कालभैरवी।
श्मशानभैरवी देवी त्रिपुरानन्दभैरवी॥
त्रिपूटा त्रिपुरादेवी तथा त्रिपुरसुन्दरी।
त्रिपुरेशी महादेवी तथा त्रिपुरमालिका।
त्रिपुरानन्दिनी देवी तत्रैव त्रिपुरातनी॥

पहला अभिषेक— एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥१॥

छिन्नदन्ता महादेवी तथा चैकजटेश्वरी ।
तारा च जयदुर्गा च शूलिनी भुवनेश्वरी ॥
त्वरिताख्या महादेवी तथैव च त्रिखण्डिका ।
नित्या च नित्यरूपा च वज्रप्रस्तारिणी तथा ॥

दूसरा अभिषेक— एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥२॥

अश्वारूढ़ा महेशानी तथा महिषमर्दिनी ।
दुर्गा च वनदुर्गा च श्रीदुर्गा भगमालिनी ॥
तथा भगन्दरी देवी भगक्लिन्ना तथापरा ।
सर्वसिद्धिकरी देवी सर्वगन्धर्वसेविता ।
उग्रतारा महादेवी तथा नीलसरस्वती ॥

तीसरा अभिषेक— एतात्स्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥३॥

क्षेमङ्करी महाकाली चानिरुद्धा सरस्वती ।
मातङ्गिनी चान्नपूर्णा राजराजेश्वरी तथा ॥

चौथा अभिषेक— एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥४॥

उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ।
चण्डा चण्डवती चैव चण्डकृपातिचण्डिका ॥

पाँचवाँ अभिषेक— एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥५॥

उग्रदंष्ट्रा महादंष्ट्रा शुभदंष्ट्रा कपालिनी ।
भीमनेत्रा विशालाक्षी मङ्गला विजया जया ॥

छठा अभिषेक— एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥६॥

मङ्गला नन्दिनी भद्रा कीर्त्तिलक्ष्मीर्यशस्विनी ।
पुष्टिर्मेधा शिवा साध्वी यशः शोभा जया धृतिः ।
श्रीनन्दा च सुनन्दा च नन्दिन्यानन्दपूजिता ॥

सातवाँ अभिषेक— एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥७॥

विजया नन्दिनी भद्रा स्मृतिः शान्ता धृतिः क्षमा ।
सिद्धिस्तुष्टी रमा पुष्टिः श्रीवृद्धिश्च रतिस्तथा ॥
दीप्तिः कान्तिर्यशोलक्ष्मीरीश्वरी बुद्धिरेव च ।
शाक्ती मायावती ब्राह्मी जयन्ती चापराजिता ॥
अजिता मानवी श्वेता दितिश्चादितिरेव च ।
माया चैव महामाया मोहिनी क्षोभिणी तथा ॥

कमला विमला गौरी लावण्याम्बुधिसुन्दरी ।
दुर्गा क्रिया चारुन्धती घण्टाकर्णी कपालिनी ॥
रौद्री काली च मायूरी त्रिनेत्रा चापराजिता ।
सुरूपा बहुरूपा च तथैव विग्रहात्मिका ॥
चर्चिका च परा ज्येष्ठा तथैव सुरपूजिता ।
वैवस्वती च कौमारी तारा माहेश्वरी परा ॥
वैष्णवी च महालक्ष्मीः कार्त्तिकी कौशिकी तथा ।
शिवदूती च चामुण्डा मुण्डमालाविभूषिता ॥

आठवाँ अभिषेक— एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥८॥
इन्द्रो वह्निर्यमश्चैव नैर्ऋतो वरुणस्तथा ।
पवनो धनदेशानो ब्रह्मानन्तो दिगीश्वराः ॥

नवाँ अभिषेक— एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥९॥
संवत्सरश्चायनौ च मासाः पक्षौ दिनानि च ।

दशवाँ अभिषेक— एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥१०॥
रविः सोमः कुजः सौम्या गुरुशुक्रः शनैश्चरः ।

ग्यारहवाँ अभिषेक— राहुः केतुश्च सततमभिषिञ्चन्तु ते ग्रहाः ॥११॥
नक्षत्रः करणं योगो अमृतं सिद्धिरेव च ।
दग्धं पापं तथा भद्रा योगो वारो क्षणास्तथा ।
वारवेला कालबलो दण्डा राश्यादयस्तथा ॥

बारहवाँ अभिषेक— अभिषिञ्चन्तु सततं मन्त्रपूतेन वारिणा ॥१२॥
असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधोन्मत्तसंज्ञकः ।
कपाली भीषणश्चैव संहारोऽष्टौ च भैरवाः ।

तेरहवाँ अभिषेक— अभिषिञ्चन्तु सततं मन्त्रपूतेन वारिणा ॥१३॥
डाकिनीपुत्रिकाश्चैव राकिनीपुत्रिकास्तथा ।
लाकिनीपुत्रिकाश्चान्ये काकिनीपुत्रिकाः परम् ॥
शाकिनीपुत्रिका भूयो हाकिनीपुत्रिकास्तथा ।
ततश्च यक्षिणीपुत्रा देवीपुत्रास्ततः परम् ॥
मातृणाञ्च तथा पुत्री ऊर्ध्वमुख्याः सुताश्च ये ।
अधोमुख्याः सुताः ये च उन्मुख्याश्च सुताः परे ॥

चौदहवाँ अभिषेक— एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥१४॥
पुरुषः प्रकृतिश्चैव विकाराश्चैव षोडश ।

आत्मान्तरात्मापरमज्ञानात्मनः प्रकीर्त्तिताः ।
आत्मनश्च गुणा ये तु स्थूलाः सूक्ष्मस्तथा परे ॥

पन्द्रहवाँ अभिषेक— एते त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥१५॥
पुरुषः प्रकृतिश्चैव विकाराश्चैव षोडश ।
आत्मान्तरात्मापरमज्ञानात्मनः प्रकीर्त्तिताः ।
आत्मनश्च गुणा ये तु स्थूलाः सूक्ष्मास्तथा परे ॥

सोलहवाँ अभिषेक— एते त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥१६॥
वेदादिबीजं हुं बीजं स्त्रीं बीजं मीनकेतनम् ।
शक्तिबीजं रमाबीजं मायाबीजं सुधाकरम् ॥
चिन्तारत्नमहाबीजं नादसिंहञ्च शाङ्करम् ।
मार्कण्डभैरवं दौर्गं बीजं श्रीपुरुषोत्तमम् ।
गाणपत्यञ्च वाराहं कालीबीजं भयापहम् ॥

सत्रहवाँ अभिषेक— एते त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥१७॥
गङ्गा गोदावरी रेवा यमुना च सरस्वती ।
आत्रेयी भारती चैव सरयूर्गण्डकी तथा ॥
करतोया चन्द्रभागा श्वेतगङ्गा च कौशिकी ।
भोगवती च पाताले स्वर्गे मन्दाकिनी तथा ॥

अट्ठारहवाँ अभिषेक— एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥१८॥
भैरवो भीमरूपश्च शोणा घर्घर एव च ।
सिन्धुतोयह्रदाः पान्तु तथा पातालसम्भवाः ।
यानि कानि च तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ॥

उन्नीसवाँ अभिषेक— तानि त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥१९॥
जम्बूद्वीपादयो द्वीपाः सागरा लवणादयः ।
अनन्ताद्यास्तथा नागाः सर्पा ये तक्षकादयः ॥

बीसवाँ अभिषेक— एते त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥२०॥
वह्निश्च वह्निजाया च वषट् कूर्चमतः परम् ।

इक्कीसवाँ अभिषेक— वौषट्कारन्तु फट्कारमभिषिञ्चन्तु सर्वदा ॥२१॥
नश्यन्तु प्रेतकूष्माण्डा राक्षसा दानवाश्च ये ।

बाईसवाँ अभिषेक— पिशाचा गुह्यका भूता अभिषेकेन ताडिताः ॥२२॥
अलक्ष्मीः कालकर्णी च पापानि सुमहान्ति च ।

तेईसवाँ अभिषेक— नश्यन्तु चाभिषेकेन ताराबीजेन ताडिताः ॥२३॥

रोगाः शोकाश्च दारिद्र्यं दौर्बल्यं चित्तविभ्रमम् ।

चौबीसवाँ अभिषेक— नश्यन्तु चाभिषेकेन वाग्बीजेन ताडिताः ॥२४॥

लोकानुरागस्त्यागश्च दौर्भाग्यमपि दुर्यशः ।

पच्चीसवाँ अभिषेक— नश्यन्तु चाभिषेकेन मन्मथेन च ताडिताः ॥२५॥

तेजोह्रासो बलह्रासो बुद्धिह्रासस्तथैव च ।

छब्बीसवाँ अभिषेक— नश्यन्तु चाभिषेकेन शक्तिबीजेन ताडिताः ॥२६॥

विषापमृत्युरोगश्च डाकिन्यादिभयं तथा ।

घोराभिचाराः क्रूराश्च ग्रहा नागास्तथा परे ॥

सत्ताईसवाँ अभिषेक— नश्यन्तु चाभिषेकेन कालीबीजेन ताडिताः ॥२७॥

नश्यन्तु चापदः सर्वा सम्पदः सन्तु सुस्थिराः ।

अट्ठाईसवाँ अभिषेक— अभिषेकेन शाक्तेन पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ॥२८॥

इन एक-एक को पढ़ते हुये कलश के मुख पर पञ्चपल्लव को किसी विस्तृत मुख वाले पात्र में रखकर उस ब्रह्मार्चित मन्त्रपूत ब्रह्मशक्तियुक्त जल से गुरु द्वारा अपने शिष्य को पूर्णतः सिञ्चित कर देना चाहिये । यदि गुरु उपयुक्त समझे तो इसी बचे हुये मन्त्रपूत जल से शिष्य का पूर्णाभिषेक भी कर सकता है । यद्यपि शिष्य का शाक्ताभिषेक हो चुका है, तब भी पूर्णाभिषेक काल में नूतन रूप से यह अनुष्ठान करके पूर्णाभिषेक मन्त्र से उसे सम्पन्न करा देते हैं । यह अनुष्ठान शाक्ताभिषेक की ही तरह होता है । लेकिन जहाँ-जहाँ सङ्कल्पादि में शाक्ताभिषेक पद व्यवहृत है, वहाँ-वहाँ पूर्णाभिषेक पद का प्रयोग करना चाहिये तथा शिष्य के पूर्णाभिषेक कृत्य का मन्त्र शाक्ताभिषेक की तरह उक्त अट्ठाईस श्लोक का न होकर अब अन्य प्रकार का होता है । यथा—

एषां शुभपूर्णाभिषेकमन्त्राणां सदाशिवऋषिरनुष्टुप्छन्दः आत्मा देवता प्रणवो बीजं शुभपूर्णाभिषेकार्थे विनियोगः ।

शुभपूर्णाभिषेक मन्त्र— ॐ गुरवस्त्वाभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।

पहला अभिषेक— दुर्गालक्ष्मीभवान्यस्त्वामभिषिञ्चन्तु मातरः ॥१॥

षोडशी तारिणी नित्या स्वाहा महिषमर्दिनी ।

दूसरा अभिषेक— एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥२॥

जयदुर्गा विशालाक्षी ब्रह्माणी च सरस्वती ।

तीसरा अभिषेक— एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु बगला वरदा शिवा ॥३॥

नारसिंही च वाराही वैष्णवी वनमालिनी ।

चौथा अभिषेक— इन्द्राणी वारुणी रौद्री त्वाभिषिञ्चन्तु शक्तयः ॥४॥

भैरवी भद्रकाली च तुष्टिः पुष्टि रमा क्षमा ।

पाँचवाँ अभिषेक— श्रद्धा कान्तिर्दया शान्तिरभिषिञ्चन्तु ते सदा ॥५॥

महाकाली महालक्ष्मीर्महानीलसरस्वती ।

छठा अभिषेक— उग्रचण्डा प्रचण्डा त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वदा ॥६॥

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नृसिंहो वामनस्तथा ।

सातवाँ अभिषेक— रामो भार्गव रामस्त्वामभिषिञ्चन्तु वारिणा ॥७॥

असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधोन्मत्तो भयङ्करः ।

आठवाँ अभिषेक— कपाली भीषणश्च त्वामभिषिञ्चन्तु वारिणा ॥८॥

काली कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला विरोधिनी ।

नवाँ अभिषेक— विप्रचित्ता महोग्रा त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वदा ॥९॥

इन्द्रोऽग्निः शमनो रक्षो वरुणः पवनस्तथा ।

दशवाँ अभिषेक— धनदश्च तथेशानः सिञ्चन्तु त्वां दिगीश्वराः ॥१०॥

रविः सोमो मङ्गलश्च बुधो जीवः सितः शनिः ।

ग्यारहवाँ अभिषेक— राहुः केतुः सनक्षत्रा अभिषिञ्चन्तु ते ग्रहाः ॥११॥

नक्षत्रः करणं योगो वारो पक्षौ दिनानि च ।

बारहवाँ अभिषेक— ऋतुर्मासो हायनास्त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वदा ॥१२॥

लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलान्तकाः ।

तेरहवाँ अभिषेक— समुद्रास्त्वाभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥१३॥

सदा सूर्यसुता रेवा चन्द्रभागा सरस्वती ।

सरयुर्गण्डकी कुन्ती श्वेतगङ्गा च कौशिकी ॥

चौदहवाँ अभिषेक— एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥१४॥

अनन्ताद्या महानागाः सुपर्णाद्याः पतत्त्रिणः ।

पन्द्रहवाँ अभिषेक— तरवः कल्पवृक्षाद्याः सिञ्चन्तु त्वां दिगीश्वराः ॥१५॥

पातालभूतलव्योमचारिणः क्षेमकारिणः ।

सोलहवाँ अभिषेक— पूर्णाभिषेकसन्तुष्टास्त्वाभिषिञ्चन्तु पाथसा(?) ॥१६॥

दौर्भाग्यं दुर्यशो रोगा दौर्मनस्यं तथाशुचः ।

सत्रहवाँ अभिषेक— विनश्यन्त्वभिषेकेन परमब्रह्मतेजसा ॥१७॥

अलक्ष्मीः कालकर्णी च डाकिन्यो योगिनीगणाः ।

अट्ठारहवाँ अभिषेक— विनश्यन्त्वभिषेकेन कालीबीजेन ताडिताः ॥१८॥

अभिचारकृता दोषो वैरिमन्त्रोद्भवाश्च ये ।

उन्नीसवाँ अभिषेक— मनोवाक्कायजा दोषाः विनश्यस्त्वभिषेचनात् ॥१९॥

भूताः प्रेताः पिशाचाश्च ग्रहा येरिष्टकारकाः ।

बीसवाँ अभिषेक— विद्रुतान्ते विनश्यन्तु रमाबीजेन ताडिताः ॥२०॥

नश्यन्तु विपदः सर्वाः सम्पदः सन्तु सुस्थिराः ।

इक्कीसवाँ अभिषेक— अभिषेकेन पूर्णेन पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ॥२१॥

इन इक्कीस मन्त्रों से गुरु को पूर्वोक्त रूप से ब्रह्मकलशस्थ सिद्ध सलिल के सहयोग से कल्पवृक्ष-सदृश पञ्चपल्लव द्वारा शिष्य को पूर्णाभिषिक्त करना चाहिये।

कलि में दिवा-रात्रि में निर्विशेष रूप से अभिषेक का विधान है। कोई-कोई कुलावधूत आवश्यक होने पर शाक्ताभिषेक की ही तरह इसे करते हैं अथवा दोनों अभिषेक की क्रिया साथ ही एक के बाद एक सम्पन्न कर देते हैं। श्रीसदाशिव कहते हैं—सत्य, त्रेता, द्वापर में यह पूर्णाभिषेक अति गुप्त है। तब अतिगुप्त रूप से इसका अनुष्ठान करके मानव मोक्षलाभ के पथ पर अग्रसर होते थे। इसके अनन्तर जब कलि का पूर्ण प्रकाश हो गया तब कुलावधूत महात्मागण मुक्तावधूत रूप से रात्रि अथवा दिन में कभी भी प्रकाशित रूप से अभिषेक क्रिया सम्पन्न करते थे। लेकिन इस प्रकार का अनुष्ठान केवल मुक्तावधूत ही कर सकते हैं। गुप्तावधूत ऐसा अनुष्ठान नहीं कर सकते।

जो भी हो, इन दोनों में से कोई भी अभिषेक सम्पन्न हो जाने पर शिष्य को ताम्रकुण्ड में रखे सिद्ध (कलश में रखे) जल से आचमन करने के उपरान्त शुद्ध वस्त्र पहनकर गुरु के निकट बैठना चाहिये। तदनन्तर गुरु को अपने इष्टदेवता और शिष्य देवता का ऐक्य ज्ञान करके गन्धादि से शिष्य देवता के मस्तक पर पूजन करना चाहिये। इसके बाद 'ॐ सहस्रारे हुं फट्' मन्त्र से शिष्य का शिखाबन्धन करके शिष्य के शरीर में इस प्रकार से कलान्यास करना चाहिये।

कलान्यास—यह तीन कुशपत्र से करना चाहिये—

(१) पदतल से जानु-पर्यन्त— ॐ निवृत्त्यै नमः।

(२) जानु से नाभि-पर्यन्त— ॐ प्रतिष्ठायै नमः।

(३) नाभि से कण्ठ-पर्यन्त— ॐ विद्यायै नमः।

(४) कण्ठ से ललाट-पर्यन्त— ॐ शान्त्यै नमः।

(५) ललाट से ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त— ॐ शान्त्यतीतायै नमः।

इस प्रकार से न्यास करके पुनः विपरीत क्रम से न्यास करना चाहिये—

(६) ब्रह्मरन्ध्र से ललाट-पर्यन्त— ॐ शान्त्यतीतायै नमः।

(७) ललाट से कण्ठ-पर्यन्त— ॐ शान्त्यै नमः।

(८) कण्ठ से नाभि-पर्यन्त— ॐ विद्यायै नमः।

(९) नाभि से जानु-पर्यन्त— ॐ प्रतिष्ठायै नमः ।
(१०) जानु से पदतल-पर्यन्त— ॐ निवृत्त्यै नमः ।

इस प्रकार से न्यास करना चाहिये। गुरु द्वारा यह न्यास शिष्य-शरीर में करके शिष्य के मस्तक पर हाथ रखकर १०८ बार जप करके 'अमुकमन्त्रं (अमुक के स्थान पर जिस देवता का मन्त्र है, उसका उल्लेख करें) तेऽहं ददामि' कहने के अनन्तर शिष्य की अञ्जलि में जल प्रदान करना चाहिये और शिष्य को अपनी अञ्जलि से यह जल 'ददस्व' कहकर अपने मस्तक पर छोड़ देना चाहिये।

मन्त्रदान—अब गुरु को पूर्वमुख होकर पश्चिमाभिमुख शिष्य के दाहिने कान में तीन बार तथा वामकर्ण में एक बार वह मन्त्र कहना चाहिये। स्त्री तथा शूद्र के लिये गुरु को उनके बाँयें कर्ण में तीन बार तथा दाहिने कर्ण में एक बार ऋष्यादि-संयुक्त मन्त्र कहना चाहिये। मन्त्र ग्रहण करने के बाद शिष्य को गुरु के चरणों में पड़कर इस प्रकार कहना चाहिये—

ॐ त्वत्प्रसादादहं देव कृतकृत्योऽस्मि सर्वतः ।
मायामृत्युमहापाशाद्विमुक्तोऽस्मि शिवोऽस्मि च ॥

तदनन्तर गुरुदेव द्वारा इस मन्त्र को पढ़कर शिष्य को बाहु से पकड़ कर अपने चरणों से उठाते हुये कहना चाहिये—

ॐ उत्तिष्ठ वत्स मुक्तोऽसि सम्यगाचारवान् भव ।
कीर्त्तिश्रीकान्तिपुत्रायुर्बलारोग्यं सदास्तु ते ।

इसी समय साधक-मण्डली की अनुमति से अथवा अपनी इच्छा से शिष्य को 'आनन्दनाथ' युक्त कोई नाम प्रदान करना चाहिये। अब शिष्य द्वारा गुरुदत्त बीजमन्त्र का १०८ बार जप करके घट के नीचे स्थित यन्त्र में उन देवता का पूजन करना चाहिये। साथ ही गुरु तथा उपस्थित कौल साधकगण को भी अपनी-अपनी शक्ति के संरक्षणार्थ अपने इष्ट बीजमन्त्र का १००८ बार अथवा १०८ बार जप करना चाहिये।

दक्षिणादान—अब शिष्य द्वारा निम्न मन्त्र से दक्षिणादान करना चाहिये—'ॐ तत्सद् अद्य कृतैतच्छुभ (शाक्ताभिषेक अथवा पूर्णाभिषेक)-कर्मणः साङ्गतार्थं गो-भू-हिरण्मयादि अथवा यत् किञ्चित् तत्काञ्चनमूल्यं दक्षिणा परब्रह्म-गोत्राय श्रीमत्स्वामी अमुकानन्दनाथाय कौलाय गुरवे (गुरु का नाम ले) तुभ्यमहं सम्प्रददे'।

तत्पश्चात् शिष्य द्वारा उपस्थित कौलगण को प्रणाम करना चाहिये और उनकी यथाशक्ति अर्चना करके वह जगदम्बा का चरणामृत-पान का अधिकारी हो जाता है। अब वह गुरु की आज्ञा से अभिषेकभूत होकर गुरुदत्त इष्टमन्त्र से स्वयं होमकार्य सम्पन्न कर सकता है। होमविधि इस ग्रन्थ में अन्य प्रसङ्ग में अङ्कित है। अन्यथा यदि स्वयं न कर

सके तब किसी अधिकारी साधक से होमकार्य यथाविधि सम्पन्न करा सकता है। गुरु यदि स्वयं अभिषिक्त न हो, तो उसे अन्य का अभिषेक लोभवश नहीं करना चाहिये। अन्यथा देवीशाप लग जाता है।

पूर्णाभिषेक साधना की अन्त्य क्रिया नहीं है। इसके आगे भी अन्य सोपान हैं, जिनका अतिक्रमण साधक को करना ही होता है। अत: पूर्णाभिषेक हो जाने से गर्व से अभिभूत होना उचित नहीं है। यह तो एक प्रकार से प्रथम अभिषेक सोपान-मात्र है। केवल इतने से ही मानव सिद्ध नहीं हो जाता। यह केवल साधनमार्ग में गुरुतर कार्य के लिये प्रथम अधिकारी होना अथवा सूत्रपात-मात्र है। इसका वास्तविक कार्य है—मन की एकाग्रता उत्पन्न करना।

क्रमदीक्षाभिषेक

पूर्णाभिषेक की साधना के उपरान्त उच्चाभिलाषी साधक का प्रधान कर्त्तव्य है—क्रमदीक्षाभिषेक। कहा गया है कि क्रमदीक्षाभिषेक सर्वकामना अथवा मन्त्रयोग की समग्र साधना का सारतत्त्व है। ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के लिये यह मध्य स्तर है। तभी इसे स्तरानुरूप होने के कारण क्रमदीक्षा कहा गया है। भगवान् कहते हैं कि कलिकाल में क्रमदीक्षा के बिना अन्य किसी भी तरह से भगवद्भाव साधना की सिद्धि नहीं मिल पाती। पूर्णाभिषेक-प्रदत्त मन्त्र का यथोक्त जप तथा पुरश्चरणादि सम्पूर्ण हो जाने पर ही साधक क्रमदीक्षाभिषेक का अधिकारी होता है। यदि भाग्यक्रमेण किसी को सद्गुरु की कृपा से क्रमदीक्षा मिल जाती है, तब उसे निश्चय ही सिद्धि-लाभ होता है। वास्तव में क्रमदीक्षा के बिना कलियुग में उच्च साधनानुकूल जप-पूजादि मन्त्रयोग की कोई क्रिया अथवा मन्त्र सिद्ध नहीं हो पाता। अत: गुरु के निकट अत्यन्त भक्तिपूर्वक रहकर क्रमदीक्षाभिषेक ग्रहण करना चाहिये। कहा भी है—

विधानमेतत् परमं गुप्तमासीद् युगत्रये।
गुप्तभावेन कुर्वन्तो नरा मोक्षं ययुः पुरा॥
प्रबले कलिकाले तु प्रकाशे कुलवर्त्तिनः।
नक्तं वा दिवसे कुर्यात् सप्रकाशाभिषेचनम्॥

तन्त्रशास्त्र का मत है कि अभिषेक में गुरु जो मन्त्र देते हैं, उसकी साधना में ब्राह्मण जाति के साधक को नाना बाधायें आती हैं; क्योंकि वशिष्ठ देव ने क्रुद्ध होकर तारामन्त्र को अभिशाप दे दिया था और देवी ने भी क्रुद्ध होकर महर्षि को भी अभिशाप दिया था। तभी से देवी ब्राह्मण साधकों को सामान्य उद्योग से मन्त्र-सिद्धि नहीं देतीं। इसलिये शापोद्धार मन्त्र का जप करना आवश्यक होता है। तभी जप फलित होता है। ब्रह्मसाधना का मूल है—काली-साधना। तदनन्तर तारासाधना करनी चाहिये। क्रमदीक्षा के समय

साधक मध्यपीठ पर नील-सरस्वती की साधना करते हैं। आजकल क्रमदीक्षा-प्राप्त लोगों की सङ्ख्या नहीं के बराबर है। इस दीक्षा के अभिषेक-ग्रहणकाल में कोई विस्तृत अनुष्ठान नहीं होता। सात्त्विक साधक को पहले आद्या शक्ति दक्षिणकालिका की प्रथम विधि पूजा-जपादि सम्पन्न करके पूज्यपाद गुरु से क्रमदीक्षाभिषेक की प्रार्थना करनी चाहिये। पहले आचार्य शिष्य की अवस्था देखते हैं कि इसने पूर्णाभिषेक साधना कहाँ तक सम्पन्न की है। कितनी दूरी तक उसकी क्रिया सम्पन्न हो सकी है? तत्पश्चात् उसे योग्य पाने पर पूर्णाभिषेक के अनुरूप होने पर घट-स्थापनादि करते हैं। तदनन्तर शिष्य इस प्रकार से क्रमदीक्षा का सङ्कल्प करता है—

ॐ तत्सदद्य अमुके मासि अमुकराशीस्थभास्करे अमुके पक्षे अमुकतिथौ परब्रह्मगोत्रः श्रीअमुकानन्दनाथः (स्वपत्नी-सहित) सर्वसिद्धिः तथा ब्रह्मविद्या-शक्तिसिद्ध्यर्थं श्रीमद्गुरु-द्वारा मत्कर्त्तव्यश्रीकौलधर्मान्तर्गतक्रमदीक्षाभिषेकाङ्गीकृतश्रीमत्तारिणीमन्त्रद्वारा श्रीमत्तारा-देवतार्चितघटस्थमन्त्रपूतक्रियाशक्तिसमन्वितसिद्धसलिलेन क्रमदीक्षाभिषेककर्माऽहं करिष्ये।

अब साधक को हाथ जोड़कर गुरु की अर्चना तथा यथाविधि गुरुवरण करना चाहिये। जिस गुरु ने पूर्णाभिषेक प्रदान किया है, उनसे ही क्रमदीक्षाभिषेक ग्रहण करने पर स्वतन्त्र गुरु का प्रयोजन नहीं रह जाता।

अब शिष्य गुरु से कहे— ॐ साधु भवानास्ताम्।
गुरु कहें— ॐ साध्वहमासे।
शिष्य कहे— ॐ अर्चयिष्यामो भवन्तम्।
गुरु कहें— ॐ अर्चये।

अब शिष्य द्वारा गन्ध-पुष्पादि अर्चनीय उपकरणों को श्रीगुरुदेव के हाथों में अर्पित करके उनका दाहिना जानु पकड़ कर कहना चाहिये—'ॐ तत्सदद्य अमुके मासि अमुके राशीस्थभास्करे अमुके पक्षे अमुकतिथौ परब्रह्मगोत्रः श्रीअमुकानन्दनाथ मत्सङ्कल्पितार्थ-सिद्धये श्रीमत्तारिणीमन्त्रद्वारा श्रीमत्तारा-देवतार्चितघटस्थसिद्धसलिलेन शुभक्रमदीक्षाभिषेकार्थं परब्रह्मगोत्रं श्रीमत्स्वामी अमुकानन्दनाथं भवन्तं गुरुत्वेन अहं वृणे'।

गुरुदेव कहें— ॐ वृतोऽस्मि।
शिष्य कहे— ॐ यथाविहितं गुरुकर्म कुरु।
गुरु कहें— ॐ यथाज्ञानतः करवाणि।

तदनन्तर गुरुदेव को स्वयं अथवा शिष्य द्वारा पूर्वस्थापित घट का यथाशक्ति उपचार पूजापद्धति से पूजन करके पुष्पाञ्जलि प्रदान करना चाहिये। देवी का स्तव तथा कवच पढ़ने के बाद समागत उच्चाधिकारी कौलगण के सहयोग से गुरुदेव द्वारा पूर्णाभिषेक के अनुष्ठान के अनुरूप श्रीमत्तारिणी मन्त्र का चिन्तन करते-करते उस घट में शक्तिसञ्चार करना

चाहिये। तदनन्तर उस कलश पर गुरुदेव को १०८ बार तारिणीमन्त्र का जप करना चाहिये तथा ब्रह्मकलश उठाने के लिये इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये—

ॐ उत्तिष्ठ ब्रह्मकलश देवतात्मकसिद्धिद।
तत्तोयपल्लवैः सिक्तः शिष्यो ब्रह्मरतोऽन्तमे॥

अब उस कलश-स्थित सिद्ध जल को चौड़े मुख वाले पात्र में उलट कर घट-स्थित पञ्चपल्लवों से १०८ बार 'ह्रीं स्त्रीं हुं तारिणीं सिञ्चामि' मन्त्र का उच्चारण करते हुये उत्तराभिमुख बैठे शिष्य का चिन्तन तारिणीमय रूप में करते हुये उसका क्रमदीक्षाभिषिञ्चन करना चाहिये। गुरुदेव वामहस्त-स्थित स्फटिक अथवा महाशङ्ख की माला से मन्त्र की सङ्ख्या रखें। इस समय इच्छा करने पर गुरुदेव पूर्णाभिषेक वाले इक्कीस श्लोकों से भी शिष्य का अभिषिञ्चन कर सकते हैं। तत्पश्चात् गुरुदेव द्वारा यथाविधि शिष्य को तारिणीमन्त्र की दीक्षा प्रदान करनी चाहिये। तदनन्तर उपस्थित कौलसाधकों को भी भोजन एवं दक्षिणा से तृप्त करना चाहिये। इसी बीच शिष्य को दीक्षा-ग्रहणोपरान्त तारिणीमन्त्र से यथाविधि हवन सम्पन्न करना चाहिये।

अशौच-त्याग—इस साधना में साधक को अशौचकाल को कम करना चाहिये। यही है—साधक की लोकविजय अथवा पार्थिव आनन्दविजय-साधना। किसी आत्मीय के मरने पर या जन्म पर अशौच होता है। शास्त्रों में सभी वर्ण वालों के लिये अशौच का समय निर्धारित किया गया है। सामान्यतः दस दिन में जननाशौच तथा मरणाशौच जनित आनन्द तथा दुःख का आवेग कम हो जाता है। अतः इसका कालनिर्धारण उतना ही किया गया है। अशौच-काल में सन्ध्यापूजनादि वर्जित रहता है। अशौच अवस्था न होने पर भी प्रतिसंक्रान्ति, पूर्णिमा, अमावस्या तथा द्वादशी के लिये पञ्चाङ्ग में यह नियम लक्षित होता है कि 'सायं सन्ध्या नास्ति'। इसका कारण है—हृदय का चाञ्चल्य स्पन्दन। पूजा तथा सन्ध्या का तात्पर्य है—अभीष्ट देवता (भगवान्) का सम्यक् ध्यान (सम् + ध्यै + अङ् = सन्ध्या। यहाँ पाणिनि के मत से ध्यै अर्थात् ध्यान) अथवा उपासना। पूज्य ऋषिगण सतत् प्रकृत कर्म का ही उपदेश प्रदान कर गये हैं। साधना का तात्पर्य कतिपय बाह्य अनुष्ठान अथवा उपासना का अभिनय-मात्र नहीं है। सन्ध्या अथवा ध्यानमूलक उपासना का साधक के हृदय तथा मन के साथ प्रगाढ़ सम्बन्ध रहता है। जब मन अन्य स्पन्दन के कारण ध्यान नहीं कर सकता तब सन्ध्या-पूजा का नाटक रचाने का क्या तात्पर्य? मन की ऐसी ही विक्षिप्तावस्था अथवा चाञ्चल्यावस्था को तन्त्र की दृष्टि में अशौच माना गया है। अतः इस प्रकार की चाञ्चल्य एवं विक्षिप्तता की स्थिति प्रायः सर्वदा मानव में रहती है। अतः मानव सर्वदा ही अशौचावस्था में रहता है। इस स्थिति में गुरु-प्रदत्त उपाय से ही त्राण सम्भव होता है। मन्त्रजप तथा पुरश्चरण प्रक्रिया से यथार्थ अशौच समाप्त हो जाता है।

साम्राज्याभिषेक

जब साधक क्रमाभिषेक प्राप्त करके (क्रमदीक्षाभिषेक प्राप्त करके) उसके जप-ध्यानादि के स्तर को आयत्त कर लेता है तब आत्मदर्शी गुरु उसकी यथार्थ परीक्षा लेकर उसे साम्राज्याभिषेक के लिये उपयुक्त अथवा अनुपयुक्त समझते हैं। अनुपयुक्त होने पर उसे पुनः क्रमसाधना का आदेश दिया जाता है और जो उपयुक्त अधिकारी सिद्ध हो जाता है, उसे आगे का अभिषेक साम्राज्याभिषेक प्रदान किया जाता है। क्रिया की अभिज्ञानेच्छा से अनुप्राणित होकर शिष्य अपनी जिज्ञासा गुरु के समक्ष जब प्रकट करता है तब गुरुदेव उसके अन्तःस्तल का निरीक्षण करते हैं। इस अभिषेक से ब्रह्मज्ञान का किञ्चित् आभास मिलने लगता है। शिष्य के अन्तस्तल को चञ्चलता तथा इतस्ततः बिखरे स्पन्दनों से रहित पाकर गुरु आगे की प्रक्रिया करते हैं।

क्रमदीक्षा की ही तरह इसमें भी अधिक बाह्य अनुष्ठान प्रयोज्य नहीं है। इसमें मानसिक धारणा तथा क्रिया का ही उपदेश अधिक दृष्टिगोचर होता है। जो भी हो, इस दीक्षा के समय गुरुदेव घटस्थापना करके उसमें जगदम्बा के शक्ति की आराधना करते हैं। पूर्ववत् अनुष्ठान के लिये सङ्कल्पादि करा कर घट-स्थित मन्त्रपूत जल से देवी की तृतीय शक्ति के मूल-मन्त्र का उच्चारण करते हुये साम्राज्याभिषेक की क्रिया सम्पन्न करते हैं। देवी की प्रथम शक्ति हैं—काली, द्वितीया हैं—तारा। उनकी साधना क्रमदीक्षाभिषेक काल की साधना में सम्पन्न करने के अनन्तर देवी की तृतीया शक्ति की यह साधना की जाती है। ये तृतीया शक्ति हैं—श्रीविद्या, सुन्दरी, त्रिपुरसुन्दरी अथवा श्रीमत् षोडशी। सब एक ही (तृतीया शक्ति) के नाम हैं।

यह पञ्चस्तर में विभक्त है। इनके मन्त्र के कूटपञ्चक को क्रमशः पञ्चाङ्ग पुरश्चरण द्वारा करना पड़ता है। ये कूट हैं—वाग्भवकूट, कामराजकूट, शक्तिकूट, स्वप्नावतीकूट तथा मधुमती-कूट। गुरुदेव इन पञ्चकूट की दीक्षा क्रमशः प्रदान करते हैं। इसमें पहले शिष्य को चाहिये कि वह गुरुदेव को प्रणाम करने के अनन्तर उच्चाधिकारी कौल साधकों को प्रणाम करके उनका आशीर्वाद प्राप्त करे। इन तृतीया शक्ति को ही राजराजेश्वरी तथा महामाया भी कहते हैं। इनसे ही यथाक्रमेण महासरस्वती, महालक्ष्मी, महाकाली एवं माहेश्वरी समुद्भूता हैं। पूर्णाभिषेक तथा क्रमदीक्षाभिषेक की साधना में साधक ने ध्यानान्तर्गत सृष्टि, स्थिति तथा संहार का स्पष्ट अनुभव किया था, उन त्रिअङ्गों को प्रत्यक्ष किया था, आज उनका ही समष्टि रूप उनके ज्ञाननेत्रों के समक्ष इस दीक्षा द्वारा प्रतिफलित होगा। इस प्रसङ्ग का नित्याषोडशिकार्णव तथा योगिनीहृदयतन्त्र में विशद् रूप से अध्ययन किया जा सकता है।

महासाम्राज्याभिषेक

वर्तमान समय में सनातन साधनप्रथा में एक प्रकार की विशृङ्खलता-सी परिलक्षित

होती है। किसी भी क्रिया में विशेष क्रम का अभाव-सा हो चला है। शास्त्रों को पढ़कर जिसे जो अंश अच्छा लगा, उसने सबका त्याग करके उसे ही अपना लिया। इस क्षुद्र से अंश को ही वे शास्त्रों का सार बतलाने लगते हैं। इसी कारण आजकल साधना प्रायः विफल रहती है। भले ही उसे करने वाले यह दावा करें कि उन्होंने अपना लक्ष्य पा लिया है। यह भी एक भ्रम है। इस सम्बन्ध में साधकमण्डली तथा गुरुमण्डली को सचेत हो जाना चाहिये।

जो भी हो, अब पूर्व प्रसङ्ग पर लौटना उचित लगता है। पूर्ववर्णित साम्राज्याभिषेक के अनन्तर शिष्य की आन्तरिक स्थिति की परीक्षा तथा विवेचना गुरु करते हैं। शिष्य को परीक्षा द्वारा यदि वे अधिकारी समझ लेते हैं, तब उसे महासाम्राज्याभिषेकाधिकार प्रदान करते हैं। सङ्कल्प तथा घटस्थापन करके उसमें ओत-प्रोत रूप से अर्द्धनारीश्वर की प्राण-प्रतिष्ठा करते हैं। तदनन्तर उसका यथाविधान पूजन करके अर्द्धनारीश्वर मन्त्र द्वारा उस घट के मन्त्रपूत जल से शिष्य का अभिषेक करके मूल मन्त्र द्वारा उसे दीक्षित कर देते हैं। अब शिष्य दीक्षा के उपरान्त गुरुदेव को प्रणाम-अर्चना द्वारा तुष्ट करके वहाँ आये कौलसाधकगण को भी सन्तुष्ट करता है। पूर्वोक्त साम्राज्याभिषेक साधन-पर्यन्त वह गुरुदत्त क्रिया द्वारा ही मन्त्र-जप तथा बाह्य पूजा-अर्चना करता आ रहा था। अब उसे इन कठिन नियमों का पालन नहीं करना पड़ता। पहले वह शून्यमय विश्व की धारणा-चिन्तना नहीं कर सकता था, अतः विविध मन्त्र-जप बाह्यपूजा आदि उसके लिये आवश्यक एवं प्रयोजनीय थे। लेकिन अब वह चित्त-भूमि में शून्य निराकार का आस्वादन कर सकने में समर्थ हो जाता है। अब वह यथार्थ अन्तर्पथ पर चल पड़ा है। अब तक शिव शक्ति पृथकतः मानसिक हो रहे थे, लेकिन इस अभिषेक के उपरान्त साधना द्वारा उसे इन दोनों का एकीभूत तत्त्व आयत्त होने लगा है। यहीं यथार्थ बिन्दुध्यान का रहस्य प्रकटित होता है।

ध्यान भी चतुर्विध है। प्रथम है—मूर्त्तिध्यान; यह है वैखरी तथा मध्यमा नादात्मक मन्त्रध्यान। द्वितीय है—सूक्ष्म ध्यान अर्थात् पश्यन्ती नादात्मक कूटस्थ चैतन्यरूपा ज्योतिः-ध्यान। इसी का द्वितीय स्तर है—बिन्दुध्यान। इसके लिये धारणा नहीं करनी पड़ती। शिष्य के प्रयास से इसका आविर्भाव हो ही नहीं सकता। गुरुरूपा महाशक्ति की कृपा ही इसके आविर्भाव का कारण है। अब तृतीय ध्यान है—परानादानुभूतिरूप ब्रह्मध्यान। इसका प्रकटन बिन्दु में प्रवेशोपरान्त होता है। अब है—महाबिन्दु; बिन्दु के पश्चात्। यही अर्द्धनारीश्वर का प्रकाश है।

योगदीक्षाभिषेक

प्रथम था शाक्ताभिषेक, तदनन्तर पूर्णाभिषेक, तृतीय क्रमदीक्षाभिषेक, चतुर्थ साम्राज्याभिषेक एवं पञ्चम महासाम्राज्याभिषेक। अब षष्ठ है—योगदीक्षाभिषेक। इसमें

समस्त बहिरंग क्रिया का त्याग कर देना पड़ता है। केवल अन्तरङ्ग क्रिया ही अवलम्बनीय होती है। यह कुण्डलिनी-जागरणपरक साधना है। इसके सम्बन्ध में यहाँ अधिक लिखना निष्प्रयोज्य है; क्योंकि यह रहस्य-साधना है। इसका जो रूप शास्त्रों में तथा योगपरक पुस्तकों में मिलता है, वह इसका प्रच्छन्न रूप अथवा सङ्केत-मात्र है। इसका यथार्थ स्वरूप आज भी गुरुगम्य है; क्योंकि कुण्डलिनी का स्थान भले ही षट्चक्रान्तर्गत बतलाया जाता है, फिर भी वह मात्र एक सङ्केत ही है। यह स्पन्दनात्मिका है और वास्तव में सूक्ष्म शरीर से ही इसका सूत्रपात होता है। अत: इस गुरुगम्भीर रहस्य को भाषा के माध्यम से व्यक्त करने से किसी को भी यथार्थ ज्ञान हो ही नहीं सकता; अत: मैं उस व्यर्थ वाग्जाल से पाठकगण को भ्रमित करना उचित नहीं समझता।

पूजापद्धतिरहस्य

वनदुर्गापूजापद्धतिः

भूत, प्रेत, दानव, दैत्य, पिशाच, डाकिनी, योगिनी, कलवा, शाकिनी, राकिनी, हाकिनी, प्रेतिनी, यक्ष, यक्षी आदि अपदेवता होते हैं, जो नानाविध अनिष्ट करते हैं। ये प्राणनाश भी कर देते हैं। इनकी दृष्टि से मुक्ति-हेतु प्रथमतः वनदुर्गा तथा द्वादश दानव का पूजन करना चाहिये। ये बारह दानव हैं—कृष्णकुमार, पुष्पकुमार, रूपकुमार, हरिपागल, मधुभाङ्गर, रूपमाली, गोभूरडलन, मोघरासिंह, निशाचौर, सूचीमुख, महामल्लिक तथा बालिभद्र एवं रणयक्षिणी। इन सबकी पूजा-पद्धति नीचे अङ्कित है।

वनदुर्गा-पूजा—कृत्वा तु वेदिकां शुद्धां कदलीषण्डनिर्मिताम्।
घटञ्च सहकारेण युक्तं सिन्दूरमण्डितम्।
स्थापयित्वा गुण्डिकाभिर्मण्डलं साष्टपद्मकम्॥

तत्र क्रमः—प्रथमं शुद्धासने उपविश्य कुशहस्त आचम्य स्वस्तिवाचनादिकं कृत्वा सूर्यः सोम इत्यादि पठेत्।

सूर्यः सोमो यमः कालः सन्ध्ये भूतान्यहः क्षपा।
पवनो दिक् पतिर्भूमिराकाशं खचरामराः।
ब्राह्मयं शासनमास्थाय कल्पध्वमिह सन्निधिम्॥

ततः फलपुष्पजलपूर्णं ताम्रपात्रं गृहीत्वा सङ्कल्पं कुर्यात्। विष्णुरोमद्येत्यादि अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा वनदुर्गाप्रीतिकामः कृष्णकुमारादिसहित-वनदुर्गादेवीपूजनमहं करिष्ये। इति सङ्कल्प्य सूक्तं पठेत्।

ततः आसनं संशोध्य,

ॐ अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः।
ये भूता विघ्नकर्त्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया।

इत्यनेन भूतापसारणं कृत्वा सामान्यार्घ्यं विधाय गां हृदयाय नमः इत्यादि क्रमेण अङ्गन्यासकराङ्गन्यासादीन् कृत्वा 'सर्वं स्थूलतनुं गजेन्द्रवदनं सुन्दरमित्यादि' गणपतिं ध्यात्वावाह्य पूजयित्वा एकदन्तमित्यादि प्रणमेत्।

एवं शिवादि पञ्चदेवताः आदित्यादि नवग्रहान् इन्द्रादि दशदिक्पालान् मत्स्यादि दशावतारान् ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् गङ्गा-यमुना-लक्ष्मी-सरस्वतींश्च प्रणवादि नमोऽन्तेन पाद्यादिभिः सम्पूज्य प्रणमेत्।

ततो भूतशुद्धि-प्राणायामौ च कृत्वा ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। यथा—
शिरसि ॐ आरण्यक ऋषये नमः, मुखे अनुष्टुप्छन्दसे नमः, हृदि श्रीवनदुर्गायै नमः।

ततो ह्रां हृदयाय नमः। ह्रीं शिरसे स्वाहा। ह्रूं शिखायै वषट्। ह्रैं कवचाय हुं। ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ह्रः अस्त्राय फट्।

ततः 'ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः' इत्यादिक्रमेण अङ्गन्यासकरन्यासौ कृत्वा वामे ॐ गुरुभ्यो नमः इत्यादि गुरुपङ्क्तिनमस्कारपूर्वकं कूर्ममुद्रया पुष्पं गृहीत्वा ध्यायेत्।

अथ ध्यानम्—

ॐ देवीं दानवमातरं निजमदा घूर्णन्महालोचनाम्
दंष्ट्राभीममुखीं जटालिविलसन्मौलीं कपालस्रजाम्।
वन्दे लोकभयङ्करीं घनरुचिं नागेन्द्रहारोज्ज्वलां
सर्पाबन्धनितम्बबिम्बविपुलां बाणान् धनुर्बिभ्रतीम्॥

इति ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पं दत्त्वा मानसोपचारैः सम्पूज्य विशेषार्घ्यं कृत्वा पीठपूजादिकं समाप्य पुनरङ्गन्यासकरन्यासादिकं कृत्वा पुनर्ध्यात्वा घटे पुष्पं दत्त्वा देवीमावाहयेत्।

'ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा इदमासनं ॐ ह्रीं वनदुर्गायै नमः' इत्यादि क्रमेण षोडशोपचारादिभिर्यथासम्भवं पूजयित्वा प्रणमेत्। ततः ॐ क्षं क्षां क्षिं क्षीं क्षुं क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षं क्षः नम इति पाद्यादिभिः पूजयित्वा कृष्णकुमारादिदानवान् पूजयेत्।

अथ कृष्णकुमारदानवपूजा—यथा प्रथमं कृष्णकुमारं पूजयेत्। कां हृदयाय नमः इत्यङ्गन्यासकरन्यासौ कृत्वा ध्यायेत्—

ॐ कृष्णवर्णं महाकायं खड्गखट्वाङ्गधारिणम्।
श्वेताश्ववाहनं दैत्यं रक्तमाल्यानुलेपनम्॥
स्मेरास्यं सुन्दरस्कन्धं पिङ्गाक्षं पिङ्गकेशकम्।
वन्दे कृष्णकुमारञ्च भयदं पीतवाससम्॥

इति ध्यात्वावाह्य 'ॐ कां कीं कूं कैं कौं कः कृष्णकुमाराय नमः' इति मन्त्रेण पूजयेत्।

अथ पुष्पकुमारदानवपूजा—ततः पां हृदयाय नमः इत्यङ्गन्यासकरन्यासौ कृत्वा ध्यायेत्।

ॐ पुष्पहस्तं महाकायं पुष्पचापकरं परम्।
पुष्पमालाधरं कान्तं दिव्यगन्धानुलेपनम्॥
रक्ताश्ववाहनं क्रूरं रक्तास्यं रक्तवाससम्।
तप्तकाञ्चनवर्णाभं वन्दे पुष्पकुमारकम्॥

इति ध्यात्वावाह्य 'ॐ पुष्पाय पुष्पहस्ताय स्वाहा। ॐ पुष्पकुमाराय नमः' इति मन्त्रेण पूजयेत्।

अथ रूपकुमारदानवपूजा—ततो रां हृदयाय नमः इत्यङ्गन्यासकरन्यासौ कृत्वा गुरुपङ्क्तिनमस्कारपूर्वकं कूर्ममुद्रया पुष्पं गृहीत्वा ध्यायेत्—

ॐ वन्दे काञ्चनवर्णाभं द्विभुजं शूलहस्तकम्।
सुन्दरां सुन्दरं कान्तं नानापुष्पविहारिणम्॥
रक्तनेत्रं रक्तवन्द्यं रक्तमाल्यानुलेपनम्।
ध्यात्वैवं पूजयेद्धीमान् दैत्यं रूपकुमारकम्॥

इति ध्यात्वावाह्य 'ॐ रूपकुमाराय नमः' इति मन्त्रेण पूजयेत्।

अथ हरिपागलदानवपूजा—हां हृदयाय नमः इत्यङ्गन्यासकरन्यासौ कृत्वा ध्यायेत्—

ॐ उन्मत्तवेशं करपङ्कजाभ्यां धृतलगुडं परशुं सपाशम्।
आघूर्णितं निजमदैः स्खलितं सुकान्तं यजेन्महान्तं हरिपागलाख्यम्॥

इति ध्यात्वावाह्य 'ॐ ह्री हुं हरिपागलाय नमः' इति मन्त्रेण पूजयित्वा प्रणमेत्।

अथ मधुमाङ्गरदानवपूजा—मां हृदयाय नमः, इत्यङ्गन्यासकरन्यासौ कृत्वा ध्यायेत्—

ॐ रक्तास्यनेत्रं पिशुनस्वभावं सदा जयन्तं परिपूर्णवक्त्रम्।
आघूर्णितं निजमदैः स्खलिताग्रपादं ध्यायेत् सुदैत्यं मधुमाङ्गराख्यम्॥

इति ध्यात्वावाह्य 'ॐ मां मां मां मीं मीं मौं मः मधुमाङ्गराय नमः' इति मन्त्रेण पूजयित्वा प्रणमेत्।

अथ रूपमालिकादानवपूजा—रां हृदयाय नमः इत्यङ्गन्यासादिकं कृत्वा ध्यायेत्—

रूपमालाधरं रक्तं रुक्मवस्त्रचतुर्भुजम्।
शूलवज्रशरांश्चापं धारिणं सुमनोहरम्॥
कृष्णाश्ववाहनं कान्तं कुमाररूपधारिणम्।
दीर्घहस्तं दीर्घकारं पाशखट्वाङ्गधारिणम्॥

इति ध्यात्वावाह्य 'ॐ रां हुं फट् रूपमालिने नमः' इति मन्त्रेण पूजयित्वा प्रणमेत् ।

अथ गाभूरडलनदानवपूजा—गां हृदयाय नमः इत्यङ्गन्यासादिकं कृत्वा— ध्यायेत् —

दीर्घहस्तं दीर्घकायं पाशखट्वाङ्गधारिणम् ।
कृष्णवर्णं रक्तनेत्रं लम्बकर्णं कृशोदरम् ॥
रक्तवस्त्रधरं क्रूरं रक्तगन्धानुलेपनम् ।
गाभूरडलनं वन्दे सर्वलोकभयङ्करम् ॥

इति ध्यात्वावाह्य 'ॐ गाभूरडलनाय नमः' इति मन्त्रेण पूजयित्वा प्रणमेत् ।

अथ मोचरसिंहदानवपूजा—मां हृदयाय नमः इत्यङ्गन्यासादिकं कृत्वा ध्यायेत्—

ॐ रक्ताङ्गनेत्रो भयदो जनानां शूलं सपाशं करपङ्कजेन ।
रक्तास्यहस्तः पिशुनः स्वभावः सदा जरा भीममुखो विभाति ॥

इति ध्यात्वावाह्य 'ॐ मां मोचरसिंहाय नमः' इति मन्त्रेण पूजयित्वा प्रणमेत् ।

अथ निशाचौरदानवपूजा—नां हृदयाय नमः इत्यङ्गन्यासादिकं कृत्वा ध्यायेत्—

ॐ कृष्णवर्णं रक्तनेत्रं निशाचौरं भयानकम् ।
शक्तिहस्तं दीर्घजङ्घं विकटास्यं दिगम्बरम् ॥
करालवदनं भीमं शुष्कदेहं कृशोदरम् ।
ध्यायेत् सदा क्रोधयुतं घङ्घाघर्घरराविणम् ।
रात्रौ चारमसीचर्मधरं दिशतमस्ककम् ॥

इति ध्यात्वावाह्य 'ॐ नां नीं निशाचौराय नमः' इति मन्त्रेण पूजयित्वा प्रणमेत् ।

अथ सूचीमुखदानवपूजा—सां हृदयाय नमः इत्यङ्गन्यासादिकं कृत्वा ध्यायेत्—

ॐ दीर्घास्यनेत्रं पिशुनस्वभावः सदा कृशाङ्गो भयदो जनानाम् ।
सुरङ्गवक्त्रो विरसः प्रमादी खट्वाङ्गहस्तो विमुखो बभासे ॥

इति ध्यात्वावाह्य 'ॐ सां हुं सूचीमुखाय नमः' इति मन्त्रेण पूजयित्वा प्रणमेत् ।

अथ महामल्लिकदानवपूजा—मां हृदयाय नमः इत्यङ्गन्यासादिकं कृत्वा ध्यायेत्—

ॐ विशालनेत्रं परिपूर्णवक्त्रो रक्तैः समांसैर्भयदो जनानाम् ।
करालदंष्ट्रः कमलासनस्थः कदम्बमाली कुटिलः कृशाङ्गः ॥
श्रीमन्महामल्लिक एष भाति गोमायुरावी द्विभुजो जटौघः ।
खट्वाङ्गधारी नृकपालमाली शार्दूलचर्मावृतसर्वगात्रः ॥

इति ध्यात्वावाह्य 'ॐ मां महामल्लिकाय नमः' इति मन्त्रेण पूजयित्वा प्रणमेत् ।

अथ बालिभद्रपूजा—वां हृदयाय नमः इत्यङ्गन्यासादिकं कृत्वा ध्यायेत्—

ॐ कृष्णाङ्गवक्त्रः स्फटिकाङ्गयष्टिः सक्रोधनेत्रः कपिलाक्षकेशः ।
खट्वाङ्गहस्तः खरगृध्ररावी स बालिभद्रः पशुसिंहकायः ॥

इति ध्यात्वावाह्य ॐ वां वीं बालिभद्राय नमः' इति मन्त्रेण पूजयित्वा प्रणमेत् ।

अथ रणयक्षिणीपूजा—रां हृदयाय नमः इत्यङ्गन्यासादिकं कृत्वा ध्यायेत्—

ॐ दीर्घाङ्गी दीर्घनेत्री गुरुकुचयुगला घोरद्रंष्ट्रा कराला
रक्ताक्षी कृष्णवर्णा रुधिरचसकहस्ता मण्डमालावृताङ्गी ।
घण्टाखट्वाङ्गपाशं करयुगविधृता द्वीपचर्मापिनब्धा
नित्यं मांसास्थिभक्षा चलतुरगगता यक्षिणी दीर्घवक्त्रा ॥

इति ध्यात्वावाह्य 'ॐ ह्लीं ह्लीं रणयक्षिण्यै नमः' इति मन्त्रेण पूजयित्वा प्रणमेत् ।

ततः पञ्चोपचारेण देवीं सम्पूज्य मूलमन्त्रं यथाशक्ति जपित्वा प्राणायामं कृत्वा ॐ गुह्यादिति जपं समर्प्य यथाशक्ति बलिदानं होमादिकं कृत्वा दक्षिणाच्छिद्रावधारणञ्च कृत्वा शान्त्याशीर्वादं कुर्यात् ।

।। इति द्वादशदानवादिपूजापद्धतिः समाप्ता ।।

●

विपरीतप्रत्यङ्गिरास्तोत्रम्

महेश्वर उवाच

ॐ शृणु देवि महाविद्या सर्वसिद्धिप्रदायिका ।
यस्याः विज्ञानमात्रेण शत्रुवर्गा लयं गताः ॥
विपरीता महाकाली सर्वभूतभयङ्करी ।
यस्याः प्रसङ्गमात्रेण कम्पते च जगत्त्रयम् ॥
न च शान्तिप्रदः कोऽपि परमेशो न चैव हिं ।
देवताः प्रलयं यान्ति किं पुनर्मानवादयः ॥
पठनाद्धारणाद्देवि सृष्टिसंहारको भवेत् ।
अभिचारादिकाः सर्वा या याः साध्यतमाः क्रियाः ॥
स्मरणेन महाकाल्या नाशं जग्मुः सुरेश्वरि ।
सिद्धविद्या महाकाली परत्रेह च मोदते ॥
सप्तलक्षा महाविद्या गोपिताः परमेश्वरि ।
महाकाली महादेवी शङ्करस्येष्टदेवता ॥
यस्याः प्रसादमात्रेण परब्रह्म महेश्वरः ।
कृत्रिमादिविषघ्नी सा प्रलयाग्निनिवर्त्तिका ॥
तद्भक्तदर्शमात्रेण कम्पमानो महेश्वरः ।
यस्याः निग्रहमात्रेण पृथ्वीयं प्रलयं गता ॥
दशविद्या यदा ज्ञाता दशद्वारसमाश्रिता ।
प्राचीद्वारे भुवनेशी दक्षिणे कालिका तथा ॥
नाक्षत्री पश्चिमद्वारे चोत्तरे भैरवी तथा ।
ऐशान्यां सततं देवी प्रचण्डचण्डिका तथा ॥
आग्नेय्यां बगला देवी रक्षःकोणे मतङ्गिनी ।
धूमावती च वायव्यां अध उर्ध्वं च सुन्दरी ॥
सम्मुखे षोडशी देवी सदा जाग्रत्स्वरूपिणी ।
वामभागे च देवेशि महात्रिपुरसुन्दरी ॥
अंशरूपेण देवेशि सर्वा देव्याः प्रतिष्ठिताः ।
महाप्रत्यङ्गिरा चैव प्रत्यङ्गिरा तथोदिता ॥
महाविष्णुर्यदाज्ञातो भुवनानां महेश्वरि ।
कर्त्ता पाता च संहर्त्ता सत्यं सत्यं वदामि ते ॥
भुक्तिमुक्तिप्रदा चैव महाकाली सुनिश्चिता ।

वेदशास्त्रप्रगुप्ता सा न दृश्या दैवतैरपि ॥
अनन्तकोटिसूर्याभा सर्वजन्यभयङ्करा ।
ध्यानज्ञानविहीना सा वेदान्तामृतवर्षिणी ॥
सर्वमन्त्रमयी काली निगमागमकारिणी ।
निगमागमहारी सा प्रलयालयकारिणी ॥
यस्या अङ्गधर्मलवा सा गङ्गा परमोदिता ।
महाकाली नगेन्द्रस्था विपरीता महोदरा ॥
विपरीतप्रत्यङ्गिरा यत्र तत्र काली प्रतिष्ठिता ।
साधकस्मरणमात्रेण शत्रूणां निगमागमाः ॥
नाशं जग्मुर्नाशं जग्मुः सत्यं सत्यं वदामि ते ।
परं ब्रह्म महादेवी पूजनैरीश्वरो भवेत् ॥
शिवकोटिसमो योगी विष्णुकोटिसमस्थिरः ।
सर्वैराराधिता सा वै भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ।
गुरुमन्त्रशतं जप्त्वा श्वेतसर्षपमानयेत् ॥

ॐ हुं स्फरय स्फरय मारय मारय शत्रुवर्गान्नाशय नाशय स्वाहा षड्विंशत्यक्षरी आत्मरक्षां शत्रुनाशं सा करोति तत्क्षणात् । ऋषिन्यासादिकं कृत्वा सर्षपैर्मारणञ्चरेत् । अस्य विपरीतप्रत्यङ्गिरास्तोत्रस्य महाकालभैरव ऋषिरनुष्टुप् छन्दो विपरीतप्रत्यङ्गिरा देवता हुं बीजं ह्रीं शक्तिः क्लीं कीलकं मम सर्वार्थसाधनसिध्यर्थे विनियोगः । ॐ अं (३) नमो विपरीतप्रत्यङ्गिरायै सहस्रानेकसूर्यलोचनायै कोटिविद्युज्जिह्वायै महाव्यापिन्यै संहाररूपायै जन्मशान्तिकारिण्यै मम सपरिवारकस्य भूतभाविभवच्छत्रून् सदारापत्यान् संहारय संहारय महाप्रभावं दर्शय दर्शय हिलि हिलि किलि किलि मिलि मिलि चिलि चिलि भूरि भूरि विद्युज्जिह्वे ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ध्वंसय ध्वंसय प्रध्वंसय प्रध्वंसय ग्रस ग्रस ग्रासय ग्रासय पिब पिब नाशय नाशय त्रासय त्रासय वित्रासय वित्रासय मारय मारय भ्रामय भ्रामय विद्रामय विद्रामय द्रावय द्रावय विद्रावय विद्रावय हुं हुं फट् स्वाहा । हुं (५) ह्रीं (५) क्लीं (५) ॐ (५) विपरीतप्रत्यङ्गिरे हुं (७) ह्रीं (७) क्लीं (७) ॐ (७) फट् फट् स्वाहा । हुं ह्रीं क्लीं ॐ विपरीतप्रत्यङ्गिरे मम सपरिवारकस्य यावच्छत्रून् खड्गेन घातय घातय त्रिशूलेन मारय मारय विपरीतप्रत्यङ्गिरे मम सदारापत्यस्य भूतभाविभवच्छत्रून् देवतापितृपिशाचनागगरुडकिन्नरविद्याधरगन्धर्वयक्षराक्षसलोकपालान् ग्रहभूतनरलोकान् समन्त्रान् सौषधान् सायुधान् ससहायान्

बाणैः छिन्धि छिन्धि भिन्दि भिन्दि निकृन्तय निकृन्तय छेदय छेदय उच्चाटय उच्चाटय मारय मारय तेषामहङ्कारादिधर्मान् कीलय कीलय घातय घातय नाशय नाशय विपरीतप्रत्यङ्गिरे स्फें फेत्कारिणि ॐ अं जः (७) अं अं ठः (७) मम सपरिवारकस्य शत्रूणां सर्वां विद्यां स्तम्भय स्तम्भय नाशय नाशय ॐ अं जः (७) ॐ अं ठ (७) मम सपरिवारकस्य शत्रूणां मुखं स्तम्भय स्तम्भय नाशय नाशय ॐ अं जः (७) ॐ अं ठः (७) मम सपरिवारकस्य शत्रूणां नेत्राणि स्तम्भय स्तम्भय नाशय नाशय ॐ अं जः (७) ॐ अं ठः (७) मम सपरिवारकस्य शत्रूणां दन्तान् स्तम्भय स्तम्भय नाशय नाशय ॐ अं जः (७) ॐ अं ठः (७) मम सपरिवारकस्य शत्रूणां जिह्वां स्तम्भय स्तम्भय नाशय नाशय ॐ अं जः (७) ॐ अं ठः (७) मम सपरिवारकस्य शत्रूणां पदौ स्तम्भय स्तम्भय नाशय नाशय ॐ अं जः (७) ॐ अं ठः (७) मम सपरिवारकस्य शत्रूणां गुह्यं स्तम्भय स्तम्भय नाशय नाशय ॐ अं जः (७) ॐ अं ठः (७) मम सपरिवारकस्य शत्रूणां कुटुम्बान् स्तम्भय स्तम्भय नाशय नाशय ॐ अं जः (७) ॐ अं ठः (७) मम सपरिवारकस्य शत्रूणां स्थानं कीलय कीलय नाशय नाशय ॐ अं जः (७) ॐ अं ठः (७) मम सपरिवारकस्य शत्रूणां सप्राणान् कीलय कीलय नाशय नाशय। हुं (७) ह्रीं (७) क्लीं (७) ऐं (७) विपरीत-प्रत्यङ्गिरे हुं (७) ह्रीं (७) क्लीं (७) ॐ (७) फट् फट् स्वाहा मम सपरिवारकस्य सर्वतोरक्षां कुरु कुरु ॐ हुं फट् फट् स्वाहा। हुं ह्रीं क्लीं ऐं विपरीतप्रत्यङ्गिरे मम सपरिवारकस्य भूतभाविभवच्छत्रूणां उच्चाटनं कुरु हुं हुं फट् फट् स्वाहा। ह्रीं (५) वं (५) लं (५) रं (५) यं (५) ॐ (५) अं नमो भगवति विपरीतप्रत्यङ्गिरे दुष्टा चाण्डालिनि त्रिशूलवज्राङ्कुशशक्तिशूलखड्गधनुःशरपाशधारिणि शत्रुरुधिरचर्ममेदो-मांसास्थिमज्जाशुक्रमेदवसां वाक्प्राणमस्तकादिभक्षिणि परब्रह्मशिवे ज्वालादायिनि मालिनि शत्रूच्चाटनमारणक्षोभणस्तम्भनमोहनद्रावणजृम्भण-भ्रामणरौद्रणसन्तापनयन्त्रमन्त्रतन्त्रान्तर्यागपुरश्चरणभूतशुद्धिपूजाफलपरम-निर्वाणहारणकारिणि कपालखट्वाङ्गवरासिधारिणि मम सपरिवारकस्य भूतभाविभवच्छत्रून् ससहायान् सायुधान् सवाहनान् हन हन रण रण दह दह दल दल धम धम पच पच मथ मथ लङ्घय लङ्घय खादय खादय चर्वय चर्वय व्यथय व्यथय ज्वरय ज्वरय मूकीं कुरु कुरु ज्ञानं हर हर हुं हुं फट् फट् स्वाहा। ह्रीं (७) हुं (७) क्लीं (७) ॐ (७) विपरीतप्रत्यङ्गिरे

ह्रीं (७) हुं (७) क्लीं (७) ॐ (७) फट् फट् स्वाहा मम सपरिवारकस्य कृते मन्त्रतन्त्रयंन्त्रहरणौषधिविषचूर्णशस्त्राद्याभिचारसर्वोपद्रवादिकं येन कृतं कारितं कुरुते कारयते करिष्यते वा तान् सर्वान् हन हन स्फारय स्फारय मारय विपरीतप्रत्यङ्गिरे मम सपरिवारकस्य सर्वतोरक्षां कुरु कुरु हुं हुं फट् फट् स्वाहा हुं (७) ह्रीं (७) क्लीं (७) ॐ (७) विपरीतप्रत्यङ्गिरे हुं (७) ह्रीं (७) क्लीं (७) फट् फट् स्वाहा। ॐ ह्रीं क्लीं ॐ अं विपरीतप्रत्यङ्गिरे मम सपरिवारकस्य शत्रवः कुर्वन्ति करिष्यन्ति चक्रुश्च कारयामास, कारयन्ति करिष्यन्ति यां यां कृत्यां तैः सार्द्धं तां तां विपरीतां कुरु कुरु नाशय नाशय मारय मारय श्मशानस्थं कुरु कुरु कृत्यादिकां क्रियां विपरीतां कुरु कुरु डाकिनी मुखे हारय हारय भीषय भीषय ग्रासय ग्रासय मारय मारय परमशमनरूपेण हन हन धर्माविच्छिन्ननिर्वाणं हर हर तेषामिष्टदेवतां नाशय नाशय हारय हारय प्राणादिमनोबुद्ध्यहङ्कारक्षुत्तृष्णाकर्षणलपनश्रवणगमनबला-मरणादिकं नाशय नाशय हुं ह्रीं क्लीं ॐ फट् स्वाहा। क्षं ळं हं सं षं शं वं लं रं यं मं भं बं फं पं नं धं दं थं तं णं ढं डं ठं टं ञं झं जं छं चं ङं घं गं खं कं अः अं औं ओं ऐं एं लॄं लृं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं हुं (७) ह्रीं (७) क्लीं (७) ॐ (७) विपरीतप्रत्यङ्गिरे हुं (७) ह्रीं (७) क्लीं (७) ॐ (७) फट् फट् स्वाहा क्षं ळं हं सं षं शं वं लं रं यं मं भं बं फं पं नं धं दं थं तं णं ढं डं ठं टं ञं झं जं छं चं ङं घं गं खं कं अः अं औं ओं ऐं एं लॄं लृं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं ङं घं गं खं कं ञं झं जं छं चं णं ढं डं ठं टं नं धं दं थं तं मं भं बं फं पं क्षं ळं हं सं षं शं वं लं रं यं ॐ (७) विपरीतप्रत्यङ्गिरे ॐ (७) फट् फट् स्वाहा अः अं औं ओं ऐं एं लॄं लृं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं ङं घं गं खं कं ञं झं जं छं चं णं ढं डं ठं टं नं धं दं थं तं मं भं बं फं पं क्षं ळं हं सं षं शं वं लं रं यं विपरीतप्रत्यङ्गिरे मम सपरिवारकस्य स्थाने शत्रूणां कृत्यां सर्वां विपरीतां कुरु कुरु भस्मीकुरु कुरु तेषां मन्त्रयन्त्रतन्त्रार्चनश्मशाना-रोहणभूमिस्थापनभस्मप्रक्षेपणपुरश्चरणतर्पणहोमाभिषेकादिकां कृत्यां दूरीकुरु नाशं कुरु कुरु हुं विपरीतप्रत्यङ्गिरे मां सपरिवारकं सर्वतः सर्वेभ्यो रक्ष रक्ष हुं ह्रीं फट् स्वाहा। अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं ॐ (७) क्लीं (७) ह्रीं (७) श्रीं (७) हुं (७) ह्रीं (७) क्लीं (७) विपरीतप्रत्यङ्गिरे हुं

(७) ह्रीं (७) क्लीं (७) ॐ (७) फट् फट् स्वाहा। क्लीं ह्रीं श्रीं ॐ क्लीं ह्रीं श्रीं ॐ क्लीं ह्रीं श्रीं ॐ क्लीं ह्रीं श्रीं ॐ क्लीं ह्रीं श्रीं ॐ ॐ (७) अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं विपरीतप्रत्यङ्गिरे मम सपरिवारकस्य शत्रूणां विपरीतादिक्रियां नाशय नाशय त्रुटीकुरु कुरु तेषामीष्टदेवतादिविनाशं कुरु कुरु सिद्धिमपनयापनय विपरीतप्रत्यङ्गिरे त्रिभुवनभयङ्करि शत्रूणां नानाकृत्यादिमर्दिनि ज्वालिनि महाघोरतरे त्रिभुवनभयङ्करि शत्रूणां चक्षुःश्रोत्रादिहारिणि मम सपरिवारकस्य सर्वतः सर्वेभ्यः सर्वदा रक्षां कुरु कुरु स्वाहा। श्रीं ह्रीं ऐं ॐ वसुन्धरे मम सपरिवारकस्य स्थानं रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा। श्रीं ह्रीं ऐं ॐ महालक्ष्मीर्मम सपरिवारकस्य पादौ रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा। श्रीं ह्रीं ऐं ॐ चण्डिके मम सपरिवारकस्य जङ्घे रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा। श्रीं ह्रीं ऐं ॐ चामुण्डे मम सपरिवारकस्य गुह्यं रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा। श्रीं ह्रीं ऐं ॐ इन्द्राणि मम सपरिवारकस्य नाभिं रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा। श्रीं ह्रीं ऐं ॐ नारसिंहि मम सपरिवारकस्य बाहू रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा। श्रीं ह्रीं ऐं ॐ वाराहि मम सपरिवारकस्य हृदयं रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा। श्रीं ह्रीं ऐं ॐ वैष्णवि मम सपरिवारकस्य कण्ठं रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा। श्रीं ह्रीं ऐं ॐ कौमारि मम सपरिवारकस्य वक्त्रं रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा। श्रीं ह्रीं ऐं ॐ माहेश्वरि मम सपरिवारकस्य नेत्रे रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा। श्रीं ह्रीं ऐं ॐ ब्रह्माणि मम सपरिवारकस्य शिरो रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा। हुं ह्रीं क्लीं ॐ विपरीतप्रत्यङ्गिरे मम सपरिवारकस्य सच्छिद्रसर्वगात्राणि रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा।

सन्तापिनी संहारिणी रौद्री च भ्रामिणी तथा।
जृम्भिणी द्राविणी चैव क्षोभिणी मोहिनी ततः॥
स्तम्भिनी चांशरूपास्ताः शत्रुपक्षे नियोजिताः।
प्रेरिता साधकेन्द्रेण दुष्टशत्रुविमर्दिकाः॥

ॐ सन्तापिनि स्फें स्फें मम सपरिवारकस्य यावच्छत्रून् सन्तापय सन्तापय हुं फट् स्वाहा। ॐ संहारिणि स्फें स्फें मम सपरिवारकस्य यावच्छत्रून् संहारय संहारय हुं फट् स्वाहा। ॐ रौद्रि स्फें स्फें मम सपरिवारकस्य यावच्छत्रून् रौद्रय रौद्रय हुं फट् स्वाहा। ॐ भ्रामिणि स्फें स्फें मम सपरिवारकस्य यावच्छत्रून् भ्रामय भ्रामय हुं फट् स्वाहा। ॐ जृम्भिणि स्फें स्फें मम सपरिवारकस्य यावच्छत्रून् जृम्भय जृम्भय

हुं फट् स्वाहा । ॐ द्राविणि स्फें स्फें मम सपरिवारकस्य यावच्छत्रून् द्रावय द्रावय हुं फट् स्वाहा । ॐ क्षोभिणि स्फें स्फें मम सपरिवारकस्य यावच्छत्रून् क्षोभय क्षोभय हुं फट् स्वाहा । ॐ मोहिनि स्फें स्फें मम सपरिवारकस्य यावच्छत्रून् मोहय मोहय हुं फट् स्वाहा । ॐ स्तम्भिनि स्फें स्फें मम सपरिवारकस्य यावच्छत्रून् स्तम्भय स्तम्भय हुं फट् स्वाहा ।

घृणोति य इमां विद्यां श्रृणोति च सदापि ताम् ।
यावत्कृत्यादि शत्रूणां तत्क्षणादेव नश्यति ॥
मारणं शत्रुवर्गाणां रक्षणञ्चात्मनः परम् ।
आयुर्वृद्धिर्यशोवृद्धिस्तेजोवृद्धिस्तथैव च ।
कुबेर इति वित्ताढ्यः सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥
वाय्वादीनामुपशमं विषमज्वरनाशनम् ।
परविद्याहरा सा वै परप्राणहरा तथा ॥
परक्षोभादिककरा सर्वसम्पत्करा शुभा ।
स्मृतिमात्रेण देवेशि शत्रुवर्गा लयं गताः ॥
इदं सत्यमिदं सत्यं दुर्लभा दैवतैरपि ।
शठाय परशिष्याय न प्रकाश्या कदाचन ॥
पुत्राय भक्तयुक्ताय स्वशिष्याय तपस्विने ।
प्रदातव्या महाविद्या चात्मवर्गप्रदा यतः ॥
विना ध्यानैर्विना जापैर्विना पूजाविधानतः ।
विना षोढ़ां विना ज्ञानैर्मोक्षसिद्धिः कराम्बुजे ॥
परनारिहरा विद्या पररूपहरा तथा ।
वायुश्चन्द्रस्तम्भकरा मैथुनानन्दसंयुता ॥
त्रिसन्ध्यमेकसन्ध्यं वा यः पठेद्भक्तितः सदा ।
सत्यं वदामि देवेशि यमकोटिसमो भवेत् ॥
क्रोधाद्देवगणाः सर्वे लयं यास्यन्ति निश्चितम् ।
किं पुनर्मानवा देवि भूतप्रेतादयो मृताः ॥
विपरीता समा विद्या न भूता न भविष्यति ।
पठनास्ते परंब्रह्मविद्या सभास्करीस्तथा ॥
मातृकापुटितां कृत्वा दशधा प्रजपेत् सुधीः ।
वेदादिपुटिता देवि मातृकानन्तरूपिणी ।
तया हि पुटितां विद्यां प्रजपेत् साधकोत्तमः ॥

अ (७) अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐ ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अं (५०) विपरीतपरब्रह्ममहाप्रत्यङ्गिरे अं (५०) अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐ ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अं ॐ मम सपरिवारकस्य सर्वेभ्यः सर्वतः सदा रक्षां कुरु कुरु मरणभयमपनयापनय त्रिजगतां बलं रूपं वित्तायुर्मे सपरिवारकस्य देहि देहि दापय दापय साधकत्वं प्रभुत्वञ्च सततं देहि देहि विश्वरूपे धनपुत्रान् देहि देहि मां सपरिवारकमापश्यन्तु देहिनः सर्वे हिंसकाः प्रलयं यान्तु मम सपरिवारकस्य यावच्छत्रूणां बलबुद्धिहानिं कुरु कुरु तान् ससहायान् सेष्टदेवतागणान् संहारय संहारय तेषां मन्त्रतन्त्रयन्त्रालोकान् प्राणान् हर हर हारय हारय स्वाभिचारमपनयापनय ब्रह्मास्त्रादीनि व्यर्थीकुरु कुरु हुं हुं फें फें ठः ठः फट् स्वाहा ॐ ।

॥ इति श्रीमहामहोपाध्यायमहादेववेदान्तकृत्सप्ततिलक्षसुरतन्त्रनिर्दिष्ट-विपरीतप्रत्यङ्गिरास्तोत्रं समाप्तम् ॥

यह विपरीतप्रत्यङ्गिरा स्तोत्र लिखा गया। इसमें जहाँ-जहाँ कोष्ठ में (३), (५), (७), (५०) आदि अङ्कित हैं, उसका अर्थ यह है कि जिस मन्त्र के आगे जो सङ्ख्या अङ्कित है, उसे उस अङ्क के बराबर पढ़ना चाहिये।

इसके पाठ से साधक कृत्यादि अभिचार, भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, दानव, दैत्य, शंखिनी, भूतिनी, दानवी, नायिका प्रभृति की दृष्टि से तथा अभिचारों से बच जाता है। जो साधक के ऊपर यह सब प्रेरित करता है, वह सब दोष उसी पर उलट जाता है।

●

श्रीकृष्णपूजापद्धतिः

संयतमना साधक इष्टदेवतां ध्यायन् स्तोत्रं पठन् मूलमन्त्रं वा जपन् पूजागृहं गच्छेत् । ततः पूजागृहद्वारि आसने उपविश्य वैष्णवाचमनं कुर्यात् ।

संयतमन साधक को अपने इष्टदेव का ध्यान करके उनकी स्तुति करनी चाहिये तथा मूल मन्त्र का जप करते-करते पूजागृह में प्रवेश करना चाहिये । तदनन्तर पूजागृह के द्वार पर आसन पर बैठकर वैष्णवाचमन करना चाहिए । [यथा—'ॐ केशवाय नमः, ॐ नारायणाय नमः, ॐ माधवाय नमः' । इस मन्त्र से तीन बार अञ्जुलि द्वारा जल-पान करके 'ॐ गोविन्दाय नमः, ॐ विष्णवे नमः' कहकर हस्तद्वय का प्रक्षालन करना चाहिये । तदनन्तर 'ॐ मधुसूदनाय नमः, ॐ त्रिविक्रमाय नमः' कहकर ओष्ठ-मार्जनोपरान्त 'ॐ वामनाय नमः, ॐ श्रीधराय नमः' मन्त्र से मुखमार्जनोपरान्त 'ॐ हृषीकेशाय नमः' से हाथ एवं 'ॐ पद्मनाभाय नमः' मन्त्र द्वारा पादप्रक्षालन करना चाहिये । तदनन्तर 'ॐ दामोदराय नमः' मन्त्रोच्चारण द्वारा शिरोदेश का जल से अभ्युक्षण करना चाहिये । तत्पश्चात् 'ॐ सङ्कर्षणाय नमः' मन्त्र से मुख का स्पर्श करके 'ॐ वासुदेवाय नमः, ॐ प्रद्युम्नाय नमः' इन दो मन्त्रों से क्रमशः एक-एक नासिकाद्वार का स्पर्श करना चाहिये । तदनन्तर 'ॐ अनिरुद्धाय नमः, ॐ पुरुषोत्तमाय नमः' मन्त्र से क्रमशः दोनों चक्षु का, 'ॐ अधोक्षजाय नमः, ॐ नृसिंहाय नमः' से क्रमशः दोनों कान का, 'ॐ अच्युताय नमः' से नाभि का, 'ॐ जनार्दनाय नमः' से वक्षःस्थल का, 'ॐ उपेन्द्राय नमः' से मस्तक का तथा क्रमशः 'ॐ हरये नमः' तथा 'ॐ विष्णवे नमः' से भुजद्वय का स्पर्श करना चाहिये । विष्णुपूजादि में इसी प्रकार से आचमन करना चाहिये ।]

ततः सामान्यार्घ्यादिमातृकान्यासान्तं कर्म विधाय केशवकीर्त्यादिन्यासं कुर्यात् । अस्य ऋष्यादिन्यासः—शिरसि प्रजापतये ऋषये नमः । मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः । हृदि अर्द्धलक्ष्मीहरये देवतायै नमः । ततः कराङ्गन्यासौ कुर्यात्; यथा—श्रीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । श्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा । श्रीं मध्यमाभ्यां वषट् । श्रीं अनामिकाभ्यां हुं । श्रीं कनिष्ठाभ्यां वौषट् । श्रीः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु ।

तदनन्तर सामान्यार्घ्यादि, मातृका न्यासान्त कर्म समाप्त करके केशवकीर्त्यादि न्यास करना चाहिये । तदनन्तर ऋष्यादि न्यास तथा कराङ्गन्यासादि मूल में लिखे अनुसार करके इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—

उद्यत्प्रद्योतनशतरुचिं तप्तहेमावदातं,
पार्श्वद्वन्द्वे जलधिसुतया विश्वधात्र्या च जुष्टम् ।

नानारत्नोल्लसितविविधाकल्पमापीतवस्त्रं,
विष्णुं वन्दे दरकमलकौमोदकीचक्रपाणिम् ।।

एवं ध्यात्वा न्यसेत् । यथा—ललाटे ॐ श्रीं अं केशवाय कीर्त्यै नमः । मुखे ॐ श्रीं आं नारायणाय कान्त्यै नमः । दक्षनेत्रे ॐ श्रीं इं माधवाय तुष्ट्यै नमः । वामनेत्रे ॐ श्रीं ईं गोविन्दाय पुष्ट्यै नमः । दक्षकर्णे ॐ श्रीं उं विष्णवे धृत्यै नमः । वामकर्णे ॐ श्रीं ऊं मधुसूदनाय शान्त्यै नमः । दक्षनासापुटे ॐ श्रीं ऋं त्रिविक्रमाय क्रियायै नमः । वामनासापुटे ॐ श्रीं ॠं वामनाय मायायै नमः । दक्षगण्डे ॐ श्रीं लृं श्रीधराय मेधायै नमः । वामगण्डे ॐ श्रीं लॄं हृषीकेशाय हर्षायै नमः । ओष्ठे ॐ श्रीं एं पद्मनाभाय श्रद्धायै नमः । अधरे ॐ श्रीं ऐं दामोदराय लज्जायै नमः । ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ ॐ श्रीं ओं वासुदेवाय लक्ष्म्यै नमः । अधोदन्तपङ्क्तौ ॐ श्रीं औं सङ्कर्षणाय सरस्वत्यै नमः । मस्तके ॐ श्रीं अं प्रद्युम्नाय प्रीत्यै नमः । मुखे ॐ श्रीं अः अनिरुद्धाय रत्यै नमः । दक्षकरमूलसन्ध्यग्रकेषु ॐ श्रीं कं चक्रिणे जयायै नमः, ॐ श्रीं खं गदिने दुर्गायै नमः, ॐ श्रीं गं शार्ङ्गिणे प्रभायै नमः, ॐ श्रीं घं खड्गिने सत्यायै नमः, ॐ श्रीं ङं शङ्खिने विजयायै नमः । वामकरमूलसन्ध्यग्रकेषु ॐ श्रीं चं हलिने शान्त्यै नमः, ॐ श्रीं छं मूषलिने क्रियायै नमः, ॐ श्रीं जं शूलिने दयायै नमः, ॐ श्रीं झं पाशिने विरजायै नमः, ॐ श्रीं ञं अङ्कुशिने विश्वायै नमः । दक्षपादमूलसन्ध्यग्रकेषु ॐ श्रीं टं मुकुन्दाय विनदायै नमः, ॐ श्रीं ठं नन्दजाय सुनन्दायै नमः, ॐ श्रीं डं नन्दिने स्मृत्यै नमः, ॐ श्रीं ढं नराय ऋद्ध्यै नमः, ॐ श्रीं णं नरकजिते समृद्ध्यै नमः । वामपादमूलसन्ध्यग्रकेषु ॐ श्रीं तं हरये शुध्यै नमः, ॐ श्रीं थं कृष्णाय भक्त्यै नमः, ॐ श्रीं दं सत्याय बुद्ध्यै नमः, ॐ श्री धं सत्त्वाय मत्यै नमः, ॐ श्रीं नं शौरये क्षमायै नमः, दक्षपार्श्वे ॐ श्रीं पं सुराय रमायै नमः । वामपार्श्वे ॐ श्रीं फं जनार्दनाय उमायै नमः । पृष्ठे ॐ श्रीं बं भूधराय क्लेदिन्यै नमः । नाभौ ॐ श्रीं भं विश्वमूर्त्तये क्लिन्नायै नमः । उदरे ॐ श्रीं मं वैकुण्ठाय वसुदायै नमः । हृदि ॐ श्रीं यं त्वगात्मने पुरुषोत्तमाय वसुधायै नमः । दक्षांसे ॐ श्रीं रं असृगात्मने बलिने परायै नमः । ककुदि ॐ श्रीं लं मांसात्मने बलानुजाय परायणायै नमः । वामांसे ॐ श्रीं वं मेदात्मने बलाय सूक्ष्मायै नमः । हृदादिदक्षकरे ॐ श्रीं शं अस्थ्यात्मने वृषघ्नाय सन्ध्यायै नमः । हृदादिवामकरे ॐ श्रीं षं मज्जात्मने वृषाय प्रज्ञायै नमः । हृदादिदक्षपादे ॐ श्रीं सं शुक्रात्मने

हंसाय प्रभायै नमः। हृदादिवामपादे ॐ श्रीं हं प्राणात्मने वराहाय निशायै नमः। हृदादिजठरे ॐ श्रीं ळं जीवात्मने विमलाय अमोघायै नमः। हृदादिमुखे ॐ श्रीं क्षं क्रोधात्मने नृसिंहाय विद्युतायै नमः।

ध्यानोपरान्त मूल में ऊपर लिखी प्रणाली से न्यास करना चाहिये।

ततस्तत्त्वन्यासं कुर्यात्। यथा—सर्वाङ्गे मं नमः पराय जीवतत्त्वात्मने नमः, भं नमः पराय प्राणतत्त्वात्मने नमः। हृदि बं नमः पराय मतितत्त्वात्मने नमः, फं नमः परायाहङ्कारतत्त्वात्मने नमः, पं नमः पराय मनस्तत्त्वात्मने नमः। मस्तके नं नमः पराय शब्दतत्त्वात्मने नमः। मुखे धं नमः पराय स्पर्शतत्त्वात्मने नमः। हृदि दं नमः पराय रूपतत्त्वात्मने नमः। गुह्ये थं नमः पराय रसतत्त्वात्मने नमः। पादयोः तं नमः पराय गन्धतत्त्वात्मने नमः। कर्णयोः णं नमः पराय श्रोत्रतत्त्वात्मने नमः। त्वचि ढं नमः पराय त्वक्तत्त्वात्मने नमः। नेत्रयोः डं नमः पराय नेत्रतत्त्वात्मने नमः। जिह्वायां ठं मनः पराय जिह्वातत्त्वात्मने नमः। नासिकयोः टं नमः पराय घ्राणतत्त्वात्मने नमः। वाचि ञं नमः पराय वाक्तत्त्वात्मने नमः। हस्तयोः झं नमः पराय पाणितत्त्वात्मने नमः। पादयोः जं नमः पराय पादतत्त्वात्मने नमः। गुह्ये छं नमः पराय पायुतत्त्वात्मने नमः। लिङ्गे चं नमः पराय उपस्थतत्त्वात्मने नमः। मूर्ध्नि ङं नमः पराय आकाशतत्त्वात्मने नमः। मुखे घं नमः पराय वायुतत्त्वात्मने नमः। हृदि गं नमः पराय तेजस्तत्त्वात्मने नमः। लिङ्गमूले खं नमः पराय जलतत्त्वात्मने नमः। पादयोः कं नमः पराय पृथिवीतत्त्वात्मने नमः।

अब मूल में ऊपर लिखी प्रणाली से तत्त्वन्यास करना चाहिये। जहाँ-जहाँ न्यास करना है, मूल में उसका स्पष्ट निर्देश किया गया है।

अथ यथाविधि मूलमन्त्रेण प्राणायामं कृत्वा पूर्वोक्तसाधारणपूजापद्धत्युक्तपीठन्यासं विधाय पीठशक्तिर्न्यसेत्। यथा—ॐ विमलायै नमः, ॐ उत्कर्षिण्यै नमः, ॐ ज्ञानायै नमः, ॐ क्रियायै नमः, ॐ योगायै नमः, ॐ प्रह्व्यै नमः, ॐ सत्यायै नमः, ॐ ईशान्यायै नमः, ॐ अनुग्रहायै नमः। तदुपरि ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने नमः। सर्वत्र ओङ्कारादि नमोऽन्तेन न्यसेत्।

तदनन्तर मूल मन्त्र से प्राणायाम करके साधारण पूजा पद्धत्युक्त पीठन्यास करके मूल में लिखे अनुसार पीठशक्तिन्यास करना चाहिये।

अथ ऋष्यादिन्यासः—यथा शिरसि सम्मोहनऋषये नमः, मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः, हृदि त्रैलोक्यसम्मोहनाय विष्णवे नमः। ततः कराङ्गन्यासौ यथा—क्लां हृदयाय नमः, क्लीं शिरसे स्वाहा, क्लूं शिखायै वषट्, क्लैं कवचाय हुं, क्लौं नेत्रत्रयाय वौषट्। क्लः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्। एवं 'क्लां' अङ्गुष्ठाभ्यां नमः इत्यादि।

तदनन्तर ऋष्यादि न्यासोपरान्त मूलोक्त कराङ्गन्यास करना चाहिये। [विष्णुविषय में (वैष्णव) अङ्गुलिनियम यह है—अङ्गुष्ठहीन सरल हस्तशाखा से हृदय तथा मस्तक में न्यास करना चाहिये। अङ्गुष्ठमध्यगत मुष्टि द्वारा शिखा में, उभयहस्त की सर्वाङ्गुलि से कवच, तर्जनी तथा मध्यमा से चक्षु में तथा अङ्गुष्ठ एवं तर्जनी द्वारा करतल में (ध्वनि) न्यास का नियम है।]

ततो बाणन्यासः—अङ्गुष्ठयोः द्रां शोषणबाणाय नमः। तर्जन्योः ह्रीं मोहनबाणाय नमः। मध्यमयोः क्लीं सन्दीपनबाणाय नमः। अनामिकयोः ब्लूं तापनबाणाय नमः। कनिष्ठयोः सः मादनबाणाय नमः। तथा मस्तक-मुख-हृदय-गुह्य-पादेषु न्यसेत्।

अब मूल में लिखित प्रणाली से बाणन्यास करके मस्तक, मुख, हृदय, गुह्य तथा पाद में भी न्यास करना चाहिये।

अथ व्यापकन्यासः—शीर्षादिपादान्तं, पादादिशिरोऽन्तं, नाभ्यादि हृदयान्तं च प्रणवपुटितमूलमन्त्रेण हस्ताभ्यां मार्जयन् एकधा व्यापकन्यासो भवति। इत्थं सप्तधा पञ्चधा त्रिधा वा यथाशक्ति कर्त्तव्या। ततो मुद्राः प्रदर्श्य कूर्ममुद्रया गन्धपुष्पाणि गृहीत्वा ध्यायेत्।

शिर से पैर तक, पुनः पैर से शिर तक, नाभि से हृदय तक, प्रणव-पुटित मूल मन्त्र से हस्तमार्जन द्वारा एक व्यापक न्यास होता है। इसे ७, ५, ३ अथवा यथाशक्ति करना चाहिये। तदनन्तर मुद्राप्रदर्शन द्वारा कूर्ममुद्रा से गन्ध-पुष्प धारण करके ध्यान करना चाहिये।

ध्यानं यथा—

भग्नविद्रुमसङ्काशं सर्वतेजोमयं वपुः।
किरीटिनं कुण्डलिनं केयूरवलयान्वितम्॥
मुक्तालसद्रत्ननद्धतुलाकोटिसमुज्ज्वलम्।
नानालङ्कारसुभगं पीताम्बरयुगावृतम्॥
गरुडोपरि सन्नद्धं रक्तपङ्कजमध्यगम्।
उत्तप्तहेमसङ्काशं लक्ष्मीं वामोरुसंस्थितम्॥

सर्वालङ्कारसुभगां शुक्लवासोयुगावृताम् ।
सकामां लीलया देवं मोहयन्तं पुनः पुनः ।।
शङ्खचक्रगदापद्मपाशाङ्कुशधनुःशरान् ।
धारयन्तं जगन्नाथं रक्तपद्मारुणेक्षणम् ।।

एवं ध्यात्वा स्वशिरसि तत्पुष्पं दत्त्वा ऋजुकायः स्वाङ्के उत्तानौ करौ कृत्वा हृदि देवं ध्यात्वा मनसा नैवेद्यं विना सर्वोपचारैः सम्पूज्य दानार्घ्यं स्थापयेत् । तत्र षडङ्गपूजा तु 'क्लीं हृदयाय नमः' इत्यादिना विहिता ।

ध्यानार्थ यह है कि इन देव की देहकान्ति भग्न प्रवाल के समान है । देह सर्वतेजोमय है । उनके मस्तक पर किरीट, कान में कुण्डल, हाथों में वलय तथा केयूर हैं । उनके पदद्वय में रत्नयुक्त नूपुर हैं । वे नाना अलङ्कार-भूषित हैं । पीतवस्त्रयुगल-धारी हैं । वे गरुड़ के ऊपर रत्नपद्म पर स्थित हैं । गलित स्वर्ण के समान उनकी देहप्रभा है । उनके बाँयीं जाङ्घ पर लक्ष्मी देवी बैठी हैं । वे भी सर्वालङ्कारभूषिता तथा शुक्लवस्त्रयुगल से आवृता हैं । वे सकामा हैं । श्रीकृष्ण इन देवी को लीला द्वारा बारम्बार मोहित कर रहे हैं । ये जगत् के अधिपति हैं । शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, पाश, अङ्कुश, धनु तथा शर-धारी हैं । उनके नेत्र रक्तपद्म के समान अरुणाभ हैं ।

इस प्रकार ध्यान के उपरान्त हाथों की अञ्जलि में स्थित पुष्पों को अपने मस्तक से लगाकर सीधे बैठकर अपनी गोद में दोनों हथेली को उत्तान रखकर देवता का चिन्तन करते हुये मन ही मन नैवेद्य को छोड़कर बाकी सभी उपचारों से उनका मानस पूजन करके दानार्घ्य (विशेषार्घ्य) स्थापन करना चाहिये । तदनन्तर 'क्लां हृदयाय नमः, क्लीं शिरसे स्वाहा, क्लूं शिखायै वषट्, क्लैं कवचाय हुं, क्लौं नेत्रत्रयाय वौषट्, क्लः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्' से षडङ्ग-पूजन करना चाहिये । (विष्णुपूजनार्थ ताम्र, शङ्ख, मिट्टी, सुवर्ण तथा रजत में से किसी भी पात्र में अर्घ्यस्थापना की जाती है । विष्णु को ताम्रपात्र अतिप्रिय है । इन पाँच के अतिरिक्त अन्य पात्र विष्णुपूजार्थ विहित नहीं हैं) ।

ततः पीठपूजां कुर्यात्; यथा—'ॐ एते गन्धपुष्पे पीठदेवताभ्यो नमः । ॐ एते गन्धपुष्पे पीठशक्तिभ्यो नमः (समर्थश्चेत् पूर्वोक्त पीठन्यासक्रमेण विमलादिशक्तिसहितपीठपूजा प्रत्येकतः पृथक् पृथक् कर्त्तव्या) । ततः पुनः गन्धपुष्पान् गृहीत्वा पुनर्ध्यात्वा मूलाधारात् कुण्डलिनीं ब्रह्मपथेन परमशिवे समायोज्य पूर्ववत् मूर्त्तिं परिकल्प्य वामनासया कुसुमाञ्जलौ समानीय यन्त्रोपरि संस्थाप्य आवाहयेत् । यथा—मूलमुच्चार्य 'अमुक देव! इहागच्छ, इहागच्छ इह तिष्ठ इह तिष्ठ' इत्यादि ।

तदनन्तर पीठपूजा तथा पीठशक्ति की पूजा मूलोक्त विधि से करनी चाहिये । इसके बाद पुनः गन्ध-पुष्प लेकर पुनः ध्यान करके मूलाधार से कुण्डलिनी को सुषुम्ना मार्ग से

ब्रह्मपथ से ऊपर ले जाकर परमशिव से संयुक्त करके पूर्ववत् मूर्त्ति की कल्पना करके वाम नासिका पर कुसुमाञ्जलि ले आकर उसे यन्त्र के ऊपर स्थापित करके मूलोक्त मन्त्र से आवाहनादि सम्पन्न करना चाहिये।

ततः परमीकरणमुद्रया परमीकृत्य मूलमन्त्रेण देवतां त्रिरभ्युक्ष्य दशोपचारेण देवं पूजयेत्। यथा (बीजं) 'एतत् पाद्यं श्रीकृष्णाय नमः' इत्यादि। नैवेद्यदाने तु विशेषो यथा—नैवेद्यमानीय देवाय मूलेन पाद्यार्घ्याचमनीयं दत्त्वा फडिति मन्त्रेण नैवेद्यं सम्प्रोक्ष्य चक्रमुद्रया अभिरक्ष्य यं इति मन्त्रेण दोषसमूहं संशोध्य, रं इति दोषं सन्दह्य हिमकरसौधधाराभिः रं इत्यमृतीकृतं विभाव्य मूलमष्टधा जपेत्। ततो धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य गन्धपुष्पाभ्यां नैवेद्यं सम्पूज्य देवाय गन्धपुष्पाञ्जलिं दत्त्वा कृताञ्जलिः सन् हरिं प्रार्थयेत्।

'अस्य मुखतो महः प्रसवेत्' इति विभाव्य मूलमुच्चार्य नैवेद्यं जलं दद्यात्। ततो मूलमुच्चार्य 'एतन्नैवेद्यं अमुकदेवाय नमः' इति निवेद्य ततो नैवेद्यमुद्धृत्य 'ॐ निवेदयामि भवते जुषाणेदं हविर्हरिः' इति नैवेद्यं समर्प्य 'अमुकदेवतायै तज्जलं अमृतोपस्तरणमसी'ति जलं दत्त्वा वामहस्ते ग्रासमुद्रां प्रदर्श्य दक्षिणहस्ते प्राणादि मुद्रां दर्शयेत्। ततोऽङ्गुष्ठाभ्याम-नामिकाग्रं स्पृशन् 'वौं नमः पराय सर्वात्मने अनिरुद्धाय नैवेद्यं कल्पयामि' इति नैवेद्यमुद्रां प्रदर्श्य मूलमन्त्रम् उच्चार्य 'अमुकदेवं तर्पयामि' इति चतुर्धा सन्तर्प्य 'अमुकदेवाय एतज्जलं अमृतापिधानमसि' इति जलं दत्त्वा तत्तेजो देवतामुखे स्थापयित्वा आचमनीयादिकं दद्यादिति। वैष्णवे तु सर्वत्र नैवेद्यदाने अयं क्रमः।

तदनन्तर परमीकरण मुद्रा से परमीकरण करके मूल मन्त्र से देवता का तीन बार जल से अभ्युक्षण करके दशोपचार से पूजा करनी चाहिये। जैसे पहले बीजमन्त्र लगाकर 'एतत् पाद्यं श्रीकृष्णाय नमः' इत्यादि से क्रमशः दशोपचार पूजन सम्पन्न करना चाहिये। इन देवता के पूजन में नैवेद्य का कुछ विशेष विधान है; जैसे—नैवेद्य लाकर मूल मन्त्र से देवता-हेतु पाद्य-अर्घ्य-आचमनीय आदि प्रदान करके 'फट्' मन्त्र से नैवेद्य का प्रोक्षण, चक्रमुद्रा से अभिरक्षण, 'यं' मन्त्र द्वारा दोषों का संशोधन, 'रं' मन्त्र से दोषों का दहन तथा 'रं' मन्त्र से अमृतीकरण करके 'एते गन्धपुष्पाभ्यां' इत्यादि मन्त्र से नैवेद्य की अर्चना करके देवता को मूल मन्त्र से पुष्पाञ्जलि गन्धादि प्रदान करके कृताञ्जलि होकर 'अस्य मुखतो महः प्रसवेत्' की भावना करके मूल मन्त्र जपते हुये 'एतन्नैवेद्यं अमुकदेवाय नमः' से निवेदन करके नैवेद्य लेकर 'ॐ निवेदयामि भवते जुषाणेदं हविर्हरिः' कहते हुये नैवेद्य का समर्पण करना चाहिये। तदनन्तर 'अमुकदेवतायै एतज्जलं अमृतोपस्तरणमसि' कहकर जल प्रदान

करना चाहिये। तदनन्तर बाँयें हाथ से ग्रासमुद्रा प्रदर्शित करके दाहिने हाथ से प्राणादि मुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये। तदनन्तर अङ्गुष्ठद्वय से अनामिकाग्र का स्पर्श करके 'वौं नमः पराय सर्वात्मने अनिरुद्धाय नैवेद्यं कल्पयामि' कहते-कहते नैवेद्यमुद्रा का प्रदर्शन करके मूलमन्त्रोच्चारण करके 'अमुकदेवं तर्पयामि' कहकर चार बार तर्पण करके 'अमुकदेवाय एतज्जलं अमृतापिधानमसि' कहकर जल प्रदान करके आचमनीयादि निवेदित करना चाहिये। वैष्णव पूजा में नैवेद्य-दान का यही विधान है।

[नैवेद्य पात्रनिर्णय—

हैरण्यं राजतं कास्यं ताम्रं मृण्मयमेव च।
पालाशं श्रीहरेः पात्रं नैवेद्यं कल्पयेद्बुधः॥

विद्वान् लोगों ने स्वर्ण, चाँदी, कांसा, ताम्र, मिट्टी के पात्र तथा पलाशपत्र का विधान नैवेद्यार्थ (वैष्णव) किया है।]

अथ उपचारदानानन्तरमावरणपूजां कुर्यात्। यथा कृताञ्जलिर्भूत्वा— 'देव! आज्ञापय भवतः परिवारान् पूजयामि'। ततः आत्मानं लब्धानुज्ञं विभाव्य 'ॐ एते गन्धपुष्पे किरीटाय नमः। ॐ एते गन्धपुष्पे कुण्डलाय नमः। ॐ एते गन्धपुष्पे चक्राय नमः। ॐ एते गन्धपुष्पे शङ्खाय नमः। ॐ एते गन्धपुष्पे गदायै नमः। ॐ एते गन्धपुष्पे पाशाय नमः। ॐ एते गन्धपुष्पे अङ्कुशाय नमः। ॐ एते गन्धपुष्पे धनुषे नमः। ॐ एते गन्धपुष्पे शराय नमः। इति हस्तेषु पूजयेत्। ततः स्तनोद्ध्वें ॐ एते गन्धपुष्पे श्रीवत्साय नमः। ॐ एते गन्धपुष्पे कौस्तुभाय नमः। गले ॐ एते गन्धपुष्पे वनमालायै नमः। नितम्बे ॐ एते गन्धपुष्पे पीतवसनाय नमः। वामाङ्गे ॐ एते गन्धपुष्पे श्रियै नमः, ॐ एते गन्धपुष्पे लक्ष्म्यै नमः। ततः क्लां हृदयाय नमः, क्लीं शिरसे स्वाहा, क्लूं शिखायै वषट्, क्लैं कवचाय हुं, क्लौं नेत्रत्रयाय वौषट्, क्लः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः इति षडङ्गानि सम्पूज्य पात्रेषु 'ॐ लक्ष्म्यै नमः, ॐ सरस्वत्यै नमः, ॐ रत्यै नमः, ॐ प्रीत्यै नमः, ॐ कीर्त्त्यै नमः, ॐ कान्त्यै नमः, ॐ तुष्ट्यै नमः, ॐ पुष्ट्यै नमः तद्बहिर्लोकपालान् पूजयेत्। अत्र वज्रादिपूजा नास्ति, अनुक्तत्वात्। ततः पुनः पञ्चोपचारेण देवं सम्पूज्य शिरो-हृदय-मूलाधार-पादपद्म-सर्वाङ्गेषु च पञ्चपुष्पाञ्जलीन् अथवा पादपद्मे पुष्पाञ्जलिमेकं दत्त्वा तर्पयेत्।

तदनन्तर आवरणदेवों का पूजन करना चाहिये, इस हेतु कृताञ्जलि होकर देवता से आज्ञा माँगनी चाहिये—'देव! आज्ञापय भवतः परिवारान् पूजयामि'। तदनन्तर मूलोक्त

विधान से पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् षडङ्ग-पूजन करके पात्र में लक्ष्मी, सरस्वती, रति, प्रीति, कीर्त्ति, कान्ति, तुष्टि, पुष्टि का पूजन मूलोक्त विधान से करके पात्र के बाहर लोकपालों का पूजन करना चाहिये। यहाँ वज्रादि का पूजन नहीं किया जाता। तदनन्तर पुनः देवता का पञ्चोपचार पूजन करके शिर, हृदय, मूलाधार, पादपद्म तथा सर्वाङ्ग-हेतु पाँच पुष्पाञ्जलि अथवा केवल पादपद्म में एक ही पुष्पाञ्जलि अर्पित करनी चाहिये।

ततः अन्ननिवेदनं कृत्वा होमं कुर्यात्। षडङ्गहोमे तु 'ॐ क्लां हृदयाय नमः स्वाहा' इति प्रयोक्तव्यम्।

अथ यथाशक्ति कुल्लूका-सेतु-महासेतु-अशौचभङ्गञ्च विधाय 'ॐ गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं' इत्यादि वामहस्तेन घण्टां वादयन् गन्धपुष्प-सामान्यार्घ्यजलेन जपं समर्प्य स्तुत्वा अष्टाङ्गनतिं कुर्यात्।

तदनन्तर अन्ननिवेदनोपरान्त होम करना चाहिये। इसमें 'ॐ क्लां हृदयाय नमः स्वाहा' का प्रयोग करना चाहिये।

तदनन्तर यथाशक्ति कुल्लूका (ॐ नमो नारायणाय) सेतु (ॐ विष्णवे नमः ॐ) महासेतु (स्त्रीं) का जप करके अशौचभङ्ग करके 'गुह्यातिगुह्य' इत्यादि मन्त्र से जप-समर्पण करके बाँयें हाथ से घण्टा-वादन करते हुये गन्ध-पुष्प-सामान्यार्घ्य जल हथेली पर रखकर जपसमर्पणोपरान्त साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिये।

ततो देवताङ्गे आवरणदेवताः विलाप्य 'क्षमस्वे'ति विसर्जनं कृत्वा संहारमुद्रया तत्तेजः पुष्पैः सार्द्धं स्वहृदयमानयेत्। तत ऐशान्यां त्रिकोणमण्डलं कृत्वा 'ॐ विष्वक्सेनाय नमः' इति मन्त्रेण निर्माल्यपुष्पं जलं किञ्चित् नैवेद्यमपि मण्डलोपरि दद्यात्। ततः पादोदकं पीत्वा नैवेद्यं किञ्चित् स्वीकृत्य यथासुखं विहरेदिति।

तदनन्तर समस्त आवरणदेवताओं की विलोप-चिन्तना करके 'क्षमस्व' मन्त्र से देवता का विसर्जन करना चाहिये। तदन्तर संहारमुद्रा द्वारा देवतेज को पुष्प के साथ हृदय में लाने के बाद ईशानकोण में त्रिकोण बनाकर 'ॐ विष्वक्सेनाय नमः' मन्त्र से निर्माल्य पुष्प, जल तथा किञ्चित् नैवेद्य मण्डल पर रखकर देवता का पादोदक तथा कुछ नैवेद्य ग्रहण करके आनन्दपूर्वक जगत् में विचरण करना चाहिये।

●

महिषमर्दिनीपूजापद्धतिः

साधकः प्रातःकृत्यादिकं कृत्वा साधारणपूजापद्धतिक्रमेण पीठन्यासान्तं कर्म सम्पाद्य केशरेषु मध्ये च दुर्गामन्त्रोक्तपीठशक्तिर्न्यसेत्; यथा—आं प्रभायै, ईं मायायै, ऊं उषायै, एं सूक्ष्मायै, ऐं विशुद्धायै, ओं नन्दिन्यै, औं सुप्रभायै, अं विजयायै, अः सर्वसिद्धिदायै । असमर्थश्चेत् ॐ ह्रीं पीठदेवताभ्यो नमः, ॐ ह्रीं पीठशक्तिभ्यो नमः, ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट् नमः, महासिंहासनाय नमः ।

साधक को प्रातःकृत्यादि समस्त कार्य सम्पन्न करके साधारण पूजा पद्धति-क्रम द्वारा पीठन्यासान्त कर्म सम्पन्न करके दुर्गामन्त्रोक्त पीठशक्ति का न्यास करना चाहिये । यथा—आं प्रभायै नमः, ईं मायायै नमः, ऊं उषायै नमः, एं सूक्ष्मायै नमः, ऐं विशुद्धायै नमः, ओं नन्दिन्यै नमः, औं सुप्रभायै नमः, अं विजयायै नमः, अः सर्वसिद्धिदायै नमः । जो इतना न कर सके, असमर्थ हो तो उसे 'ॐ पीठदेवताभ्यो नमः, ॐ ह्रीं पीठशक्तिभ्यो नमः, ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट् नमः, महासिंहासनाय नमः' से न्यास करना चाहिये ।

अथ ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् । यथा—(बीजं) अस्य मन्त्रस्य नारदऋषि-र्गायत्रीच्छन्दः श्रीमहिषमर्दिनी दुर्गादेवता चतुर्वर्गफलप्राप्तये विनियोगः । शिरसि नारदऋषये नमः, मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः, हृदि महिषमर्दिन्यै दुर्गायै देवतायै नमः ।

इस प्रकार से मूलोक्त विधि के अनुसार ऋष्यादि न्यास करना चाहिये ।

अथ कराङ्गन्यासौ कुर्यात् । तद्यथा—ॐ महिषसिंहिके हुं फट् अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ महिषशत्रो शार्वि हुं फट् तर्जनीभ्यां स्वाहा । ॐ महिषं हिंसय हिंसय हुं फट् मध्यमाभ्यां वषट् । ॐ महिषं हन हन हुं फट् अनामिकाभ्यां हुं । ॐ महिषसूदनि हुं फट् कनिष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु 'ॐ महिषसिंहिके हुं फट् हृदयाय नमः' इत्यादि नेत्ररहितं पञ्चाङ्गन्यासं कुर्यात् ।

अब करन्यास मूलोक्त विधि से करके नेत्ररहित अङ्गन्यास (पञ्चाङ्गन्यास) करना चाहिये ।[1]

---

१. अङ्गन्यास में नेत्ररहित पञ्चाङ्गन्यास के सम्बन्ध में निबन्ध ग्रन्थ में इस प्रकार कहा गया है—

अथ षोढान्यासं व्यापकन्यासञ्च कृत्वा कूर्ममुद्रया रक्तपुष्पाञ्जलिं गृहीत्वा ध्यायेत् ।

तदनन्तर षोढान्यास तथा व्यापकन्यास करके कूर्ममुद्रा से लाल पुष्पों को अञ्जलि में रखकर ध्यान करना चाहिये ।

[**षोढान्यास**—षोढान्यास की प्रणाली यह है कि प्रथमत: केवल मातृकान्यास करके पुन: मातृकावर्णों को ॐ से पुटित करके न्यास करना चाहिये । तदनन्तर मातृका वर्णों से ॐ को पुटित करके न्यास करना चाहिये । जैसे—ॐ अं ॐ नम: मुखे, ॐ आं ॐ नम: इत्यादि । तदनन्तर अं ॐ अं नम: । आं ॐ आं नम: इत्यादि । तदनन्तर मातृका वर्णों को बीज से पुटित करके एवं मातृका वर्णों से बीज को पुटित करके मातृकान्यास करना चाहिये ।]

ध्यानं यथा—

गरुडोपलसन्निभां मणिमयकुण्डलमण्डितां
नौमि भालविलोचनां महिषोत्तमाङ्गनिषेदुषीम् ।
शङ्खचक्रकृपाणखेटकबाणकार्मुकशूलकान्,
तर्जनीमपि विभ्रतीं निजबाहुभिः शशिशेखराम् ।।

महिषमर्दिनी देवी की देहकान्ति मरकतमणिवत् है । ये मणिमय कुण्डलों से शोभित हैं, त्रिनेत्रा हैं तथा महिष के मस्तक पर स्थित हैं । ये अष्टभुजा हैं । इनके हाथों में शङ्ख, चक्र, कृपाण, खेटक, बाण, कार्मुक तथा शूलास्त्र एवं तर्जनीमुद्रा है । ये शशिशेखरा हैं ।

एवं ध्यात्वा पूर्ववत् मानसैः सम्पूज्य दानार्घ्यं स्थापयेत् । तत्र 'ॐ ह्रीं षडङ्गेभ्यो नमः' इति मन्त्रेण षडङ्गपूजां कुर्यात् । ततः पीठपूजां कुर्यात् । यथा—'ॐ ह्रीं एते गन्धपुष्पे पीठदेवताभ्यो नमः । ॐ ह्रीं एते गन्धपुष्पे पीठशक्तिभ्यो नमः । एते गन्धपुष्पे ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट् नमः, महासिंहासनाय नमः' ।

इस प्रकार ध्यान करके पूर्ववत् मानसोपचार से पूजन करके दानार्घ्य स्थापित करना चाहिये । तदनन्तर पीठपूजन करना चाहिये । मूलोक्त विधि से षडङ्गपूजन भी करना चाहिये ।

अथ पूर्ववत् कराङ्गन्यासौ कृत्वा कूर्ममुद्रया रक्तपुष्पाणि गृहीत्वा पुनर्ध्यात्वा

महिषसिंहिके हुं फट् हृदयं परिकीर्त्तितम् ।
महिषशत्रो शार्वि हुं फट् शिर उदाहृतम् ।।
महिषं हेसयद्वन्द्वं हुं फडन्त: शिखामनु: ।
महिषं हनयुग्मान्ते देवि हुं फट् तनुच्छदम् ।
महिषान्ते सूदनि हुं फडन्तम्मन्त्र ईरित: ।।

पूर्ववत् मूर्त्तिं परिकल्प्य वामनासिकया पुष्पाञ्जलौ समानीय यन्त्रोपरि संस्थाप्य कृताञ्जलिरावाहयेत् । ततः परमीकरणमुद्रया मूलमन्त्रेण देवीं त्रिरभ्युक्ष्य दशोपचारेण पूजयेत् । यथा—'(बीजं) एतत् पाद्यं श्रीमहिष-मर्दिन्यै दुर्गायै देवतायै नमः' इत्यादि ।

अब पूर्ववत् कराङ्गन्यास करके कूर्ममुद्रा से लाल पुष्पों की पुष्पाञ्जलि लेकर पूर्ववत् मूर्त्ति की (ध्यानोक्त) कल्पना करके वाम नासिका के पास पुष्पाञ्जलि को लाने के पश्चात् उसे यन्त्र पर रखकर कृताञ्जलि होकर आवाहन करना चाहिये ।

ॐ देवेशि! भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते ।
यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव ।।

यह आवाहन मन्त्र है । तदनन्तर परमीकरण मुद्रा द्वारा देवी का मूल मन्त्र से तीन बार अभ्युक्षण करके दशोपचार से उनका पूजन करना चाहिये । जैसे—'(बीजमन्त्र पढ़कर)—एतत् पाद्यं श्रीमहिषमर्दिन्यै दुर्गायै देवतायै नमः' इत्यादि ।

तत आवरणपूजामारभेत् । यथा—कृताञ्जलिपुटो भूत्वा 'देवि! आज्ञापय परिवारांस्ते पूजयामि' इति आत्मानं लब्धानुज्ञं विभाव्य 'ॐ ह्रीं आवरणदेवताभ्यो नमः' इति गन्धपुष्पेण पूजयेत् । समर्थश्चेत् अग्न्यादिषु पूर्ववदङ्गं पूजयेत् । ततः पद्मेषु पूर्वादिक्रमेण—आं दुर्गायै नमः, ईं वर्णिन्यै नमः, ऊं अर्यायै नमः, ॠं कनकप्रभायै नमः, ॡं कृत्तिकायै नमः, ऐं अभयप्रदायै नमः, औं कन्यायै नमः, अः सुरक्तायै नमः । पत्राग्रेषु—यं चक्राय नमः, रं शङ्खाय नमः, लं खड्गाय नमः, वं खेटकाय नमः, शं बाणाय नमः, यं धनुषे नमः, सं शूलाय नमः, हं तर्जन्यै नमः । ततः पुनरपि पत्राग्रेषु ब्रह्माद्याः पूजयेत् । ततो दिक्षु तद्बहिरिन्द्रादीन् वज्रादींश्च पूजयेत् ।

अब आवरण-पूजा करनी चाहिये । एतदर्थ अञ्जलिबद्ध होकर देवी से आज्ञा लेकर 'एते गन्धपुष्पे ॐ ह्रीं आवरणदेवतयो नमः' कहकर गन्ध-पुष्पादि से पूजन करना चाहिये । समर्थ होने पर पूर्ववत् अङ्गदेवताओं का भी पूजन करना चाहिये । अग्न्यादि कोण से पद्म में 'ॐ ह्रां ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै हृदयाय नमः' इत्यादि अङ्गमन्त्रों से पूजन करके मूलोक्त 'आं दुर्गायै नमः' इत्यादि (मूलोक्त) अङ्गमन्त्रों से पूजनोपरान्त ('आं दुर्गायै नमः' से लेकर अः सुरक्तायै नमः' पर्यन्त मन्त्रों से पूजनोपरान्त) 'यं चक्राय नमः' से लेकर 'हं तर्जन्यै नमः' तक मूलोक्त प्रकार से अस्त्रपूजन करके पत्राग्र में ब्राह्मी-प्रभृति अष्टमातृका का पूजन[1] करके

---

१. अष्टमातृका पूजा इस प्रकार है । इसे पूर्वादिक्रम से करना चाहिये । यथा—ॐ अं आं ब्राह्म्यै नमः, ॐ ईं नारायण्यै नमः, ॐ ऊं माहेश्वर्यै नमः, ॐ ॠं चामुण्डायै नमः,

इन्द्रादि लोकपालों का पूजन सम्पन्न करना चाहिये। तत्पश्चात् इनके अस्त्रों का भी पूजन करना चाहिये (द्रष्टव्य—'आगमतत्त्वविलास' ग्रन्थ)।

अथ नीलकण्ठं शिवं पूजयेत्। पुनः पञ्चोपचारेण देवीमभ्यर्च्य मस्तके, हृदये, मूलाधारे, पादपद्मे, सर्वाङ्गे च पञ्चपुष्पाञ्जलीन् दत्त्वा तर्पयेत्। यथा—वामहस्ततत्त्वमुद्रया सामान्यार्घ्यजलं दक्षिणहस्ततत्त्वमुद्रया गन्धपुष्पाक्षतानि गृहीत्वा उभयहस्ततत्त्वमुद्रायोगेन '(बीजं) सायुधां

ॐ लृं कौमार्यै नमः, ॐ ऐं अपराजितायै नमः, ॐ औं वाराह्यै नमः, अं अः नारसिंह्यै नमः। इस प्रकार से इनका पूजन ध्यान के साथ करना चाहिये। अष्टमातृका का ध्यान इस प्रकार है—

ब्राह्मी-ध्यान— ब्रह्माणीं हंससंरूढां स्वर्णवर्णां चतुर्भुजाम्।
चतुर्वक्त्रां त्रिनेत्राञ्च ब्रह्मकूर्चञ्च पङ्कजम्॥
दण्डपद्माक्षसूत्रञ्च दधतीं चारुहासिनीम्।
जटाजूटधरां देवीं भावयेत् साधकोत्तमः॥

नारायणी-ध्यान—नारायणीं महादीप्तां श्यामां गरुडवासिनीम्।
नानालङ्कारसंयुक्तां चारुकेशां चतुर्भुजाम्॥
घण्टां शङ्खं कपालञ्च चक्रं सन्दधतीं पराम्।
मधुमत्तां मदाल्लोलदृष्टिं सर्वाङ्गसुन्दरीम्॥

माहेश्वरी-ध्यान— माहेश्वरीं वृषारूढां शुभ्रां त्रिनयनान्विताम्।
कपालं डमरूञ्चैव वरदाभयशूलकाम्।
टङ्कञ्च दधतीं देवीं नानारत्नविभूषिताम्॥

चामुण्डा-ध्यान— चामुण्डामट्टहासां प्रकटितदशनां भीमवक्त्रां त्रिनेत्राम्
नीलाम्भोजप्रभाभां प्रमुदितवपुषं नारमुण्डालिमालीम्।
खड्गं शूलं कपालं नरशिरघटितं खेटकं धारयन्तीं
प्रेतारूढां प्रमत्तां मधुमदमुदितां भावयेच्चण्डरूपाम्॥

कौमारी-ध्यान— कौमारीं कुङ्कुमप्रभां त्रिनेत्रां शिखिसंस्थिताम्।
चतुर्भुजां शक्तिपाशमङ्कुशाभयधारिणीम्।
नानालङ्कारसंयुक्तां प्रमत्तां परिचिन्तयेत्॥

अपराजिता-ध्यान—अपराजिताञ्च पीताभामक्षसूत्रवरप्रदाम्।
कपालं मातुलुङ्गञ्च दधतीं परिचिन्तयेत्॥

वाराही-ध्यान— वाराहीं धूम्रवर्णाञ्च वराहवदनां शुभाम्।
फलकं खड्गमुशलं हलं वेदभुजैर्युताम्॥

नारसिंही-ध्यान— नारसिंही नृसिंहस्य विभ्रतीसदृशं वपुः।

सपरिवारां नीलकण्ठशिवसहितां श्रीमहिषमर्दिनीदुर्गादेवीं तर्पयामि स्वाहा' । अतः परं अन्ननिवेदनादिकं सर्वमवशिष्टं दक्षिणकालिकापूजापद्धति-दर्शनेन कर्त्तव्यम् । तत्र 'दक्षिणकालिका' इत्यत्र 'श्रीमहिषमर्दिनी दुर्गा' इति प्रयोक्तव्यम् । जपसमर्पणात् पूर्वमुत्तरस्यां दिशि त्रिकोणमण्डलं विलिख्य बलिं दद्यात् ।

बलिमन्त्रस्तु—'ॐ एहि एहि गृह्ण गृह्ण मदीयं बलिं देवि लूलापय लूलापय साधय साधय खादय खादय सर्वसिद्धिं देहि स्वाहा' ।

तदनन्तर नीलकण्ठ शिव का पूजन करना चाहिये । नीलकण्ठ का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

बालार्कयुततेजसं धृतजटाजूटेन्दुखण्डोज्ज्वलं,
नागेन्द्रैः कृतशेखरं जपवटीं शूलं कपालं करैः ।
खट्वाङ्गं दधतं त्रिनेत्रविलसत् पञ्चाननं सुन्दरं,
व्याघ्रत्वक्परिधानमब्धिनिलयं श्रीनीलकण्ठं भजे ॥

तदनन्तर 'ॐ नमो नीलकण्ठाय एतत् पाद्यं नीलकण्ठाय शिवाय नमः' इत्यादि क्रम से इनका पूजन करना चाहिये ।

तदनन्तर पुनः पञ्चोपचार से देवी की अर्चना करके पञ्चपुष्पाञ्जलि प्रदान करके तर्पण करना चाहिये । तर्पण मन्त्र मूल में पठित है । यह वाम हस्त में तत्त्वमूद्रा से सामान्यार्घ्य जल तथा दाहिने हाथ में तत्त्वमुद्रा से गन्ध-पुष्प-अक्षत आदि लेकर दोनों हाथों की तत्त्वमुद्रा से लेकर बीजमन्त्र का उच्चारण करके इस प्रकार कहना चाहिये—'सायुधां सपरिवारां नीलकण्ठशिवसहितां श्रीमहिषमर्दिनीदुर्गादेवीं तर्पयामि स्वाहा' । तदनन्तर अन्ननिवेदनादि शेष कृत्य दक्षिणकालिकापूजापद्धतिक्रम में जैसा कहा गया है, वैसे ही करना चाहिये, लेकिन जहाँ 'दक्षिणकालिका' कहा गया है, वहाँ 'श्रीमहिषमर्दिनी दुर्गा' कहना उपयुक्त होता है । जपसमर्पण के पहले उत्तरदिशा में त्रिकोण बनाकर उस पर मूलोक्त बलिमन्त्र से बलि प्रदान करना चाहिये ।

षडङ्गहोमं तु—'ॐ ह्रीं महिषमर्दिनी दुर्गाषडङ्गेभ्यः स्वाहा' इति प्रयोक्तव्यम् । महाकालभैरवबलिवत् नीलकण्ठशिवस्य बलिदानविधिर्न दृश्यते । प्रणाममन्त्रस्तु 'सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये' इत्यादि ।

षडङ्ग होम में मूलोक्त मन्त्र से आहुति देनी चाहिये । महाकालभैरव की तरह नीलकण्ठ शिव का बलिविधान नहीं पाया जाता । प्रणाममन्त्र से प्रणाम करना चाहिये, जो दुर्गासप्तशती का मन्त्र है । यथा—'सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये' इत्यादि ।

●

दुर्गापद्धतिः

साधको ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थाय प्रातःकृत्यादिकं कृत्वा साधारणपूजापद्धति-क्रमेण पीठन्यासान्तं विधाय हृत्पद्मस्य केशरेषु मध्ये च पीठशक्तिर्न्यसेत् । तद्यथा—आं प्रभायै, ईं मायायै, ऊं जयायै, एं सुरक्तायै, ऐं विशुद्धायै, ओं नन्दिन्यै, औं सुप्रभायै, अं विजयायै, अः सर्वसिद्धिदायै । नमः सर्वत्र । तदुपरि 'वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट् नमः' । अस-मर्थश्चेत् (हृदि मृगमुद्रया) 'ॐ ह्रीं पीठदेवताभ्यो नमः । ॐ ह्रीं पीठशक्तिभ्यो नमः । ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहासनाय हुं फट् नमः' इति न्यसेत् ।

साधक को ब्राह्म मुहूर्त्त में उठकर प्रातःकृत्यादि सम्पन्न करके साधारण पूजापद्धति क्रम से पीठन्यासादि करना चाहिये । यह हृत्पद्म की केशर के मध्य में किया जाता है । यथा—आं प्रभायै नमः, ईं मायायै नमः, ऊं जयायै नमः, एं सुरक्तायै नमः, ऐं विशुद्धायै नमः, ओं नन्दिन्यै नमः, औं सुप्रभायै नमः, अं विजयायै नमः, अः सर्वसिद्धिदायै नमः । उसके ऊपर 'वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट् नमः' से न्यास करना चाहिये । यदि असमर्थ हो तो (मृगमुद्रा से हृदय में) मूलोक्त मन्त्रों से 'ॐ ह्रीं पीठदेवताभ्यो नमः' से लेकर 'हुं फट् नमः' पर्यन्त न्यास करना चाहिये ।

ततः ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् । यथा—(बीजं) अस्य मन्त्रस्य नारदऋषि-र्गायत्रीच्छन्दो दुरितापन्निवारिणी दुर्गा देवता चतुर्वर्गफलप्राप्तये विनियोगः । शिरसि—नारदऋषये नमः । मुखे—गायत्रीच्छन्दसे नमः । हृदि—दुरितापन्निवारिण्यै दुर्गायै देवतायै नमः । ततः कराङ्गन्यासौ—ॐ ह्रां ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै तर्जनीभ्यां स्वाहा । ॐ ह्रूं ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै मध्यमाभ्यां वषट् । ॐ ह्रैं ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै अनामिकाभ्यां हुं । ॐ ह्रौं ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै कनिष्ठाभ्यां वौषट् । ॐ ह्रः ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै करतलकरपृष्ठाभ्याम् अस्त्राय फट् । एवं हृदयादिषु—ॐ ह्रां ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै हृदयाय नमः इत्यादि ।

तदनन्तर मूलोक्त विधि से ऋष्यादिन्यास एवं कराङ्गन्यासादि सम्पन्न करना चाहिये ।

अथ षोढान्यासं व्यापकन्यासञ्च कृत्वा शङ्खमुद्रां चक्रमुद्रां चाप-मुद्रां बाणमुद्रां दौर्गीमुद्रां च प्रदर्श्य कूर्ममुद्रया रक्तपुष्पाञ्जलिं गृहीत्वा ध्यायेत् ।

अब षोढ़ान्यास तथा व्यापककन्यास सम्पन्न करके शङ्ख, चक्र, चाप, बाण एवं दौर्गी

मुद्रा प्रदर्शित करने के अनन्तर कूर्ममुद्रा से रक्तपुष्पाञ्जलि लेकर ध्यान करना चाहिये (षोढ़ान्यास आदि का विधान ग्रन्थ में अङ्कित है)।

ध्यानं यथा—

सिंहस्था शशिशेखरा मरकतप्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजैः
शङ्खं चक्रधनुःशरांश्च दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता।
आमुक्ताङ्गदहारकङ्कणरणत् काञ्चीक्वणन्नूपुरा
दुर्गा दुर्गतिहारिणी भवतु मे रत्नोल्लसत्कुण्डला॥

अर्थात् दुर्गादेवी सिंह पर बैठी हैं। इनके मस्तक पर अर्द्धचन्द्र है तथा मरकत-मणिवत् देहकान्ति है। इनके चार हाथ हैं, जिनमें शङ्ख, चक्र, धनुष तथा बाण विराजित हैं। ये तीन नेत्रों से शोभिता हैं। ऐसी दुर्गा देवी मेरी दुर्दशा का हरण करें, जिनके कानों में रत्नकुण्डल शोभित है।

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य दानार्घ्यं स्थापयेत्। तत्र षडङ्गपूजा तु 'ॐ ह्रां ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै हृदयाय नमः' इत्यादि।

इस प्रकार से ध्यान करके दानार्घ्य की स्थापना करके मूलोक्त मन्त्रों से षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। (स्वर्ण, चाँदी, ताम्र तथा मृण्मय पात्र में से किसी एक का अर्घ्यपात्र बना सकते हैं। देवी, शिव, सूर्य तथा दुर्गापूजार्थ शङ्खपात्र का अर्घ्य नहीं बनाना चाहिये। छत्तीस अङ्गुल का अर्घ्यपात्र उत्तम, चौबीस अङ्गुल का मध्यम तथा बारह अङ्गुल का अधम माना जाता है। गन्ध, पुष्प (बिल्वपत्र), अक्षत, जौ, तिल, सरसों, दूर्वा तथा कुशाग्र से यह प्रस्तुत किया जाता है। किसी मत से कुशाग्र के स्थान पर फल रखने का विधान है। शक्तिपूजार्थ श्वेत दूर्वा निषिद्ध है। अन्य मत से पद्म, अपराजिता, गन्ध, पुष्प, अक्षत, यव, कुशाग्र, तिल तथा सरसों से अर्घ्य बनाते हैं। त्रिपत्रान्विता सगर्भा दूर्वा इस कार्यार्थ विहित है।)

अथ पीठपूजां कुर्यात्। यथा—'ॐ ह्रीं एते गन्धपुष्पे पीठदेवताभ्यो नमः। ॐ ह्रीं एते गन्धपुष्पे पीठशक्तिभ्यो नमः। ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट् नमः। एते गन्धपुष्पे ॐ महासिंहासनाय नमः'। असमर्थश्चेत् पीठन्यासक्रमेण पीठपूजां कृत्वा केशरेषु मध्ये च—'आं प्रभायै नमः, ईं मायायै नमः, ऊं जयायै नमः, एं सूक्ष्मायै नमः, ऐं विशुद्धायै नमः, ओं नन्दिन्यै नमः, औं सुप्रभायै नमः, अं विजयायै नमः। अः सर्वसिद्धिदायै नमः'। तदुपरि—'ॐ वज्रनखद्रंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट् नमः' इति पूजयेत्।

तदनन्तर मूलोक्त विधि से पीठपूजा करनी चाहिये। जो विस्तार से पूजन नहीं कर

सकते, उन्हें पीठन्यासक्रम से पीठपूजा करके मूल में लिखित मन्त्रों से प्रभादि शक्तियों का पूजन करना चाहिये। उसके ऊपर महासिंह का पूजन मूलोक्त प्रकार से करना चाहिये।

ततः पूर्ववत् कराङ्गन्यासौ कृत्वा कूर्ममुद्रया रक्तपुष्पाणि गृहीत्वा पुनर्ध्यात्वा पूर्ववत् मूर्त्तिं प्रकल्प्य यन्त्रोपरि संस्थाप्य आवाहयेत्। ततः परमीकरण-मुद्रया परमीकृत्य मूलमन्त्रेण त्रिरभ्युक्ष्य दशोपचारेण देवीं पूजयेत्। यथा (बीजमन्त्र) एतत् पाद्यं श्रीदुर्गायै देवतायै नमः इत्यादि। तत आवरणपूजां कुर्यात्। यथा—कृताञ्जलिपुटो भूत्वा 'दुर्गे देवि! आज्ञापय परिवारांस्ते पूजयामि'। तत आत्मानं लब्धानुज्ञं विभाव्य 'ॐ ह्रीं आवरणदेवताभ्यो नमः'। समर्थश्चेत् अग्निनिर्ऋतिवायवीशानकोणेषु मध्ये दिक्षु च 'ॐ ह्रां ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै हृदयाय नमः' इति षडङ्गमन्त्रेण पूजयेत्। ततः पत्रेषु 'जं जयायै, विं विजयायै, कीं कीर्त्यै, प्रीं प्रीत्यै, प्रं प्रभायै, श्रं श्रद्धायै, श्रुं श्रुत्यै, मं मेधायै, पत्रेषु ॐ शङ्खाय, चक्राय, गदायै, खड्गाय, पाशाय, अङ्कुशाय, चापाय, शराय। तद्बाह्ये इन्द्रादीन् वज्रादींश्च पूजयेत्।

तदनन्तर पूर्वोक्त कराङ्गन्यास करके कूर्ममुद्रा से रक्तपुष्पों को लेकर पुनः ध्यान करके पूर्वोक्त मूर्ति की कल्पना करके पुष्पों को यन्त्र पर रखकर आवाहन करना चाहिये। तदनन्तर कृताञ्जलि होकर कहना चाहिये—'ॐ देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते। यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिता भव'। यह आवाहन मन्त्र है। इसमें देवी को आवाहनीमुद्रा से 'इहागच्छ इहागच्छ' कहकर आवाहन करते हैं। स्थापनीमुद्रा से 'इह तिष्ठ इह तिष्ठ' कहकर देवी को आसीन कराते हैं। 'इह सन्निधेहि' को आवाहनीमुद्रा से कहकर सन्नि-रोधिनीमुद्रा से 'इह सन्निरुध्यस्व' कहते हैं। तत्पश्चात् सम्मुखीकरण मुद्रा से 'अत्राधिष्ठानं कुरु मम पूजां गृहाण' कहना चाहिये। इसके बाहर में 'हुं' द्वारा सकलीकरण, धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करना चाहिये। परमीकरण मुद्रा द्वारा परमीकरण करके मूल मन्त्र से तीन बार अभ्युक्षण करके दशोपचार से देवी की पूजा करनी चाहिये। जैसे कि बीजमन्त्र का उच्चारण करके 'एतत् पाद्यं श्रीदुर्गायै देवतायै नमः' इत्यादि। तत्पश्चात् आवरणपूजन करना चाहिये। इसके लिये पहले देवी से उनके परिवार की पूजा-हेतु आज्ञा माँगते हुये कृताञ्जलि होकर कहना चाहिये—'दुर्गे देवि! आज्ञापय परिवारांस्ते पूजयामि'। तब आत्मा से आज्ञा मिलने की भावना करके 'ॐ ह्रीं आवरणदेवताभ्यो नमः' से आवरणदेवगण का पूजन करना चाहिये। अग्नि, नैर्ऋत्य, वायु, ईशानकोण में एवं मध्य में पूजा करनी चाहिये। मन्त्र है—'ॐ ह्रां ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै हृदयाय नमः' इत्यादि। तदनन्तर पत्रों में 'जं जयायै नमः, विं विजयायै नमः, कीं कीर्त्यै नमः, प्रीं प्रीत्यै नमः, प्रं प्रभायै नमः, श्रं श्रद्धायै नमः, श्रुं श्रुत्यै नमः, मं मेधायै नमः' से पूजन करना चाहिये। अब पत्रों में 'ॐ शङ्खाय नमः, ॐ चक्राय

नमः, ॐ गदायै नमः, ॐ खड्गाय नमः, ॐ पाशाय नमः, ॐ अङ्कुशाय नमः, ॐ चापाय नमः, ॐ शराय नमः' से अस्त्रपूजन करके इन्द्रादि लोकपालगण के पूजनोपरान्त वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिये (विस्तृत विधान 'आगमतत्त्वविलास' में देखें)।

अथ देव्या दक्षिणे भैरवं नीलकण्ठं पूजयेत्। पुनः पञ्चोपचारेण देवीं सम्पूज्य मस्तके हृदये मूलाधारे पादपद्मे सर्वाङ्गे च पञ्चपुष्पाञ्जलीन् दत्त्वा तर्पयेत्। तथा वामहस्ततत्त्वमुद्रया सामान्यार्घ्यजलं दक्षिणहस्त-तत्त्वमुद्रया गन्धपुष्पाक्षतानि गृहीत्वा उभयहस्ततत्त्वमुद्रायोगेन '(बीजं) साङ्गां सायुधां सपरिवारां श्रीदुर्गादेवीं तर्पयामि स्वाहा'। अतः परं अन्ननिवेदनादिकं सर्वमवशिष्टं दक्षिणकालिकापूजापद्धतिक्रमेण कर्त्तव्यम्। तत्र विशेषस्तु 'दक्षिणकालिका' इत्यत्र 'श्रीदुर्गा' इति प्रयोक्तव्यम्। नित्यहोमे पृथक्-पृथक् षडङ्गहोमे तु 'ॐ ह्रां ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै हृदयाय नमः स्वाहा' इत्यादि स्वाहान्तषडङ्गमन्त्रेण कर्त्तव्यम्। प्रणाममन्त्रस्तु—

ॐ सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

तदनन्तर देवी के दाहिने भाग में नीलकण्ठ भगवान् का पूजन करके पुनः पञ्चोपचार से देवी की पूजा करके मस्तक, हृदय, मूलाधार, पादपद्म, सर्वाङ्ग में पञ्चपुष्पाञ्जलि देकर तर्पण करना चाहिये। जैसे बाँयें हाथ की तत्त्वमुद्रा में सामान्यार्घ्य जल लेकर दाहिने हाथ की तत्त्वमुद्रा में गन्ध, पुष्प, अक्षत लेकर दोनों हाथों की तत्त्वमुद्रा को एक करके बीजमन्त्र पढ़कर 'साङ्गां सायुधां सपरिवारां श्रीदुर्गादेवीं तर्पयामि स्वाहा' कहकर अन्न-व्यञ्जनादि शेष सभी कार्य का निर्वहण वैसे ही करना चाहिये, जैसे दक्षिणकालिका पूजन में विहित है। विशेष यह कि 'दक्षिणकालिका' जहाँ लिखा है, वहाँ 'श्रीदुर्गा' कहना चाहिये। नित्य होम में पृथक्-पृथक् षडङ्ग होम 'ॐ ह्रां ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै हृदयाय नमः स्वाहा' इत्यादि प्रकार से करना चाहिये। तदनन्तर मूलोक्त प्रणाममन्त्र द्वारा प्रणाम करना चाहिये।

●

जयदुर्गापूजापद्धतिः

साधको ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थाय प्रातःकृत्यादिकं कृत्वा साधारणपूजा-पद्धतिक्रमेण पीठन्यासपर्यन्तं सम्पाद्य पूर्वोक्तदुर्गापूजापद्धतिक्रमेण पीठ-शक्तिर्न्यसेत् । ततः ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् । अथ (बीजं) अस्य मन्त्रस्य नारदऋषिर्गायत्रीच्छन्दो जयदुर्गादेवता चतुर्वर्गफलप्राप्तये विनियोगः । शिरसि नारदऋषये नमः । मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः । हृदि श्रीजयदुर्गायै देवतायै नमः ।

साधक को ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर प्रातःकृत्यादि कार्य करके साधारण पूजापद्धति क्रम से पीठन्यासान्त कर्म सम्पन्न करके पूर्वोक्त दुर्गापूजापद्धति-क्रम से पीठशक्ति न्यास करना चाहिये । तदनन्तर मूलोक्त विधि से ऋष्यादि न्यास करना चाहिये ।

अथ कराङ्गन्यासौ कुर्यात् । यथा—ॐ दुर्गे दुर्गे अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ दुर्गे तर्जनीभ्यां स्वाहा । ॐ दुर्गायै मध्यमाभ्यां वषट् । ॐ भूतरक्षणि अनामिकाभ्यां हुं । ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि कनिष्ठाभ्यां वौषट् । ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट् । एवं हृदयादिषु—'ॐ दुर्गे दुर्गे हृदयाय नमः' इत्यादि ।

(पहले पीठशक्ति न्यास के लिये कहा गया है, वह इस प्रकार है—इस न्यास को हृत्पद्मस्थ केसरों में करना चाहिये । यथा—'आं प्रभायै नमः, ईं मायायै नमः, ऊं जयायै नमः, एं सूक्ष्मायै नमः, ऐं विशुद्धायै नमः, ओं नन्दिन्यै नमः, औं सुप्रभायै नमः, अं विजयायै नमः, अः सर्वसिद्धिदायै नमः ।) तदनन्तर कराङ्गन्यास करना चाहिये । इसे मूलोक्त मन्त्रों से यथावत् करना चाहिये ।

अथ षोढान्यासं व्यापकन्यासञ्च कृत्वा शङ्खमुद्रां चक्रमुद्रां खड्गमुद्रां त्रिशिखमुद्राञ्च प्रदर्श्य कूर्ममुद्रया रक्तपुष्पाञ्जलिं गृहीत्वा ध्यायेत् ।

तदनन्तर षोढान्यास, व्यापकन्यास करके शङ्खमुद्रा, चक्रमुद्रा, खड्गमुद्रा तथा त्रिशिखमुद्रा प्रदर्शित करके कूर्ममुद्रा से रक्तपुष्पाञ्जलि लेकर ध्यान करना चाहिये ।

ध्यानं यथा—

कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभयदां मौलिबद्धेन्दुरेखां,
शङ्खं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम् ।
सिंहस्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं
ध्यायेद्दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितां सिद्धिकामैः ॥

ध्यान इस प्रकार किया जाता है—इन देवी की देहप्रभा नीलवर्ण के मेघवत् है। ये कटाक्ष से शत्रुओं में भयोत्पादन करती हैं। इनके कपाल पर अर्द्धचन्द्र है। ये अपने चार हाथों में शङ्ख, चक्र, कृपाण तथा त्रिशूल धारण करती हैं। ये तीन नेत्रों वाली हैं तथा सिंहस्कन्ध के ऊपर बैठी है। इनके तेज से तीनो लोक व्याप्त है। ये देवताओं से परिवृता हैं तथा सिद्धिकामी लोगों से सेविता हैं। इन जयदुर्गा का मैं ध्यान करता हूँ।

एवं ध्यात्वा पूर्ववत् मानसोपचारैः सम्पूज्य दानार्घ्यं स्थापयेत्। तत्र षडङ्गपूजा तु 'ॐ ॐ दुर्गे दुर्गे हृदयाय नमः' इत्यादि षडङ्गमन्त्रानुसारेण कर्त्तव्या। ततो दुर्गापूजापद्धतिक्रमेण पीठपूजां कुर्यात्।

इस प्रकार ध्यानोपरान्त पूर्ववत् मानसोपचार से पूजन करके दानार्घ्य स्थापित करना चाहिये। तदनन्तर मूलोक्त प्रकार से षडङ्गमन्त्रों द्वारा पूजन करके दुर्गापूजापद्धति क्रम से ही पीठपूजन करना चाहिये।

अथ पूर्ववत् कराङ्गन्यासौ कृत्वा कूर्ममुद्रया रक्तपुष्पाणि गृहीत्वा पुनर्ध्यात्वा पूर्ववत् मूर्त्तिं परिकल्प्य आवाहयेत्। ततः परमीकरणमुद्रया मूलमन्त्रेण देवतां त्रिरभ्युक्ष्य दशोपचारेण देवीं पूजयेत्। यथा—'(बीजं) एतत् पाद्यं श्रीजयदुर्गायै देवतायै नमः' इत्यादि।

ततो दुर्गापूजापद्धतिक्रमेण आवरणपूजादिकं सर्वमवशिष्टं कुर्यात्। तत्र विशेषस्तु 'दुर्गा' इत्यत्र जयदुर्गा इति प्रयोक्तव्यम्। षडङ्गहोमे च 'ॐ ॐ दुर्गे दुर्गे हृदयाय नमः स्वाहा' इत्यादि प्रयोक्तव्यम्। प्रणाममन्त्रस्तु 'ॐ सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये' इत्यादि।

तदनन्तर पूर्ववत् कराङ्गन्यास करके कूर्ममुद्रा से रक्तपुष्पों को लेकर पुनः ध्यान करके पूर्ववत् मूर्त्ति की कल्पना करके आवाहन करना चाहिये। तत्पश्चात् परमीकरणमुद्रा से परमीकरण करके मूल मन्त्र से देवता का तीन बार अभ्युक्षण करके दशोपचार से देवी की पूजा करनी चाहिये।

तदनन्तर दुर्गापूजापद्धतिक्रम से आवरण पूजा आदि समस्त कार्यों को करते हुए मन्त्र में जहाँ 'दुर्गा' लिखा है, वहाँ 'जयदुर्गा' का उच्चारण करना चाहिये। षडङ्ग होम में 'ॐ ॐ दुर्गे दुर्गे हृदयाय नमः' इत्यादि का प्रयोग करना चाहिये। प्रणाम मन्त्र है—'सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये' इत्यादि।

जगद्धात्रीदुर्गापूजापद्धतिः

साधको ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थाय प्रातःकृत्यादिकं कृत्वा पूजागृहं प्रविश्य साधारणपूजापद्धतिक्रमेण पीठन्यासान्तं कर्म सम्पाद्य पीठशक्तिर्न्यसेत् । यथा—हृत्पद्मस्य पूर्वादिकेशरेषु ॐ ह्रीं आं प्रभायै नमः, ॐ ह्रीं ईं मायायै नमः । ॐ ह्रीं ऊं जयायै नमः । ॐ ह्रीं ऐं सूक्ष्मायै नमः । ॐ ह्रीं ओं नन्दिन्यै नमः । ॐ ह्रीं औं सुप्रभायै नमः, ॐ ह्रीं अं विजयायै नमः । मध्ये ॐ ह्रीं अः सर्वसिद्धायै नमः । तदुपरि ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहासनाय हुं फट् नमः ।

साधक को ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर प्रातःकृत्यादि कार्य का निर्वाह करके पूजागृह में जाकर साधारण पूजापद्धति क्रम से पीठन्यासोक्त कर्म-सम्पादन करके मूलोक्त विधि से हृत्कमल के केशरों में पीठशक्ति का न्यास करना चाहिये ।

अथ ऋष्यादिन्यासः । (दुं) अस्य मन्त्रस्य नारदऋषिर्गायत्रीच्छन्दः श्रीजगद्धात्री दुर्गादेवता ह्रीं बीजं दुं शक्तिः स्वाहा कीलकं चतुर्वर्गसिद्धये विनियोगः । शिरसि नारदऋषये नमः । मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः । हृदि श्रीजगद्धात्रीदुर्गायै देवतायै नमः । मूलाधारे ह्रीं बीजाय नमः । पादयोः दुं शक्तये नमः । सर्वाङ्गे स्वाहा कीलकाय नमः ।

अथ ॐ दां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ दीं तर्जनीभ्यां नमः, ॐ दुं मध्यमायां वषट्, ॐ दैं अनामिकाभ्यां हुं, ॐ दौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्, ॐ दः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट् इति करन्यासं कृत्वा 'ॐ दां हृदयाय नमः' इत्यादि अङ्गन्यासं कुर्यात् ।

तदनन्तर ऋष्यादिन्यास करके कराङ्गन्यास तथा अङ्गन्यास मूलोक्त प्रकार से सम्पन्न करना चाहिये ।

अथ सङ्क्षेपषोढान्यासं, बीजन्यासं, तत्त्वन्यासं व्यापकन्यासञ्च कृत्वा शङ्खमुद्रां चक्रमुद्रां चापमुद्रां बाणमुद्रां दौर्गीमुद्राञ्च प्रदर्श्य कूर्ममुद्रया रक्तपुष्पाञ्जलिं गृहीत्वा ध्यायेत् ।

अब सङ्क्षेप में षोढान्यास, बीजन्यास, व्यापकन्यास करके शङ्ख, चक्र, बाण, चाप तथा दौर्गी मुद्रा प्रदर्शित करने के पश्चात् कूर्ममुद्रा से रक्तपुष्पाञ्जलि लेकर ध्यान करना चाहिये ।

ध्यानं यथा—

**सिंहस्कन्धसमारूढां नानालङ्कारभूषिताम् ।
चतुर्भुजां महादेवीं नागयज्ञोपवीतिनीम् ॥**

शङ्खचापसमायुक्तवामपाणिद्वयां तथा ।
चक्रबाणसमायुक्तदक्षपाणिद्वयां तथा ।।
रक्तवस्त्रपरीधानां बालार्कसदृशद्युतिम् ।
नारदाद्यैर्मुनिगणैः सेवितां भवसुन्दरीम् ।।
त्रिवलीवलयोपेतनाभिनालमृणालिनीम् ।
ईषत्सहास्यवदनां काञ्चनाभां वरप्रदाम् ।।
नवयौवनसम्पन्नां पीनोन्नतपयोधराम् ।
करुणामृतवर्षिण्या पश्यन्तीं साधकं दृशा ।।
रत्नद्वीपे महाद्वीपे सिंहासनसमन्विते ।
प्रफुल्लकमलारूढां ध्यायेत्तां भवगेहिनीम् ।।

ध्यानार्थ—देवी सिंहस्कन्ध पर बैठी हैं तथा नाना अलङ्कारभूषिता, चतुर्भुजा हैं । ये महादेवी नागयज्ञोपवीत-धारिणी हैं । शङ्ख-चाप क्रमशः उनके दोनों बाँयें हाथों में तथा क्रमशः दोनों दाहिने हाथों में चक्र तथा बाण शोभित हैं । ये रक्त वस्त्र पहनी हुई हैं तथा इनके बाल सूर्यवत् द्युति से युक्त हैं । ये भवसुन्दरी नारदादि मुनिगण से सेवित हैं । इनके नाभिपद्म पर मृणालरूप त्रिवली-वलय शोभित हो रहा है । इनका मुख ईषत् हास्य-युक्त है । ये स्वर्ण के समान दीप्ति वाली तथा वरप्रदान-निरता हैं । ये नवयुवति के समान हैं । इनके पयोधर पीन तथा उन्नत हैं । ये करुणामृत-वर्षिणी दृष्टि से साधक को देखती हैं । देवी रत्ननिर्मित महाद्वीप पर सिंह के ऊपर आसीन हैं । ऐसी भगवती भवगेहिनी का मैं ध्यान करता हूँ ।

इति ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पं दत्त्वा मानसोपचारैः सम्पूज्य दानार्घ्यं स्थापयेत् । तत्र षडङ्गपूजा तु ॐ दां हृदयाय नमः इत्यादि । ततः पीठपूजां कुर्यात् । यथा—ॐ ह्रीं एते गन्धपुष्पे पीठदेवताभ्यो नमः । ॐ ह्रीं एते गन्धपुष्पे पीठशक्तिभ्यो नमः । समर्थश्चेत् पीठन्यासक्रमेण पीठपूजा कर्त्तव्या ।

इस प्रकार से ध्यान करके अपने शिर पर पुष्प रखकर मानसोपचार से पूजनोपरान्त दानार्घ्य-स्थापन करके मूलोक्त प्रकार से पीठपूजन करना चाहिये । जो समर्थ हैं, उन साधकों को पीठ-न्यासक्रमेण पीठपूजा करनी चाहिये ।

ततः पूर्ववत् कराङ्गन्यासौ कृत्वा कूर्ममुद्रया रक्तपुष्पाञ्जलिं गृहीत्वा पुनर्ध्यात्वा मूलाधारात् कुलकुण्डलिनीं ब्रह्मपथेन परमशिवे समायोज्य पूर्ववत् मूर्त्तिः परिकल्प्य वामनासिकया कुसुमाञ्जलौ समानीय मूर्त्तौ संस्थाप्य आवाहनादिकं कृत्वा यथाशक्त्युपचारेण देवीं पूजयेत् । यथा (बीजं) एतत् पाद्यं श्रीजगद्धात्रीदुर्गायै देवतायै नमः इत्यादि । तत

उपचारदानानन्तरम् आवरणपूजां कुर्यात्। यथा कृताञ्जलिपुटो भूत्वा 'देवि! आज्ञापय परिवारांस्ते पूजयामि' इति आत्मानं लब्धानुज्ञं विभाव्य 'ॐ दां हृदयाय नमः' इत्यादिक्रमेण षडङ्गं सम्पूज्य गुरुं परमगुरुं परापरगुरुं परमेष्ठिगुरुं च पूजयेत्। ततो नवकोणे प्रभाद्यष्टशक्तीः पूजयेत्। यथा—ॐ ह्रीं प्रभायै नमः। एवं ॐ ह्रीं मायायै नमः, ॐ ह्रीं जयायै नमः, ॐ ह्रीं सूक्ष्मायै नमः, ॐ ह्रीं विशुद्धायै नमः, ॐ ह्रीं नन्दिन्यै नमः, ॐ ह्रीं सुप्रभायै नमः, ॐ ह्रीं विजयायै नमः, ॐ ह्रीं सर्वसिद्धिदायै नमः। ततो देव्या दक्षिणे शङ्खनिधिं वामे पद्मनिधिं च दशोपचारेण पञ्चोपचारेण वा पूजयेत्।

तदनन्तर पुनः पूर्ववत् कराङ्गन्यास करके कूर्ममुद्रा में लालपुष्पों को लेकर पुनः ध्यान करके मूलाधार से उठाकर कुलकुण्डलिनी को ब्रह्ममार्ग से ऊपर ले जाकर उसे परमशिव के साथ संयोजित करके पूर्ववत् मूर्त्ति-कल्पना करनी चाहिये। अब वामनासिका के पास उस पुष्पाञ्जलि को लाकर उस पुष्पाञ्जलि में तेज लाकर पुष्पाञ्जलि के तेज को उस कल्पित मूर्ति में स्थापित कर देना चाहिये। तदनन्तर आवाहनादि करके यथाशक्ति उपचार से देवी की अर्चना करनी चाहिये। उसकी विधि मूल में अङ्कित है। तदनन्तर उपचार-दानोपरान्त आवरण पूजा-हेतु मूलोक्त मन्त्र से देवी की आज्ञा लेने के उपरान्त यह भावना करके कि आत्मा में आज्ञा मिल गयी है, मूलोक्त प्रकार से षडङ्गपूजन तथा आवरण देवों का पूजन करके गुरु, परमगुरु, परापरगुरु तथा परमेष्ठिगुरु का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर नौ कोणों में अष्टशक्ति का पूजन करना चाहिये, जो मूल में अङ्कित है। तब देवी के दाहिने शङ्खनिधि का तथा वाम भाग में पद्मनिधि का दशोपचार अथवा पञ्चोपचार से पूजन करना चाहिये।

अथ पूजावसाने देव्यै अर्घ्यदानं कृत्वा पुनः षडङ्गं सम्पूज्य पत्रकोणेषु ब्राह्म्याद्यष्टशक्तीः पूजयेत्। ततो भूपुरे इन्द्रादिलोकपालान् सम्पूज्य तेषामस्त्राणां पूजा कर्त्तव्या।

अब पूजावसान पर देवी को अर्घ्य देकर पुनः षडङ्गपूजन तथा पत्र के कोणों में ब्राह्मी आदि आठ शक्तियों का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर भूपुर में इन्द्रादि लोकपालों का पूजन उनके मन्त्रों से करना चाहिये।

अथ देव्या दक्षिणे नीलकण्ठभैरवं पूजयेत्। ध्यानं यथा—

बालार्कयुततैजसं धृतजटाजूटेन्दुखण्डोज्ज्वलं
नागेन्द्रैः कृतशेखरं जपवटीं शूलं कपालं करैः।
खट्वाङ्गं दधतं त्रिनेत्रविलसत् पञ्चाननं सुन्दरं
व्याघ्रत्वक्परिधानमब्धिनिलयं श्रीनीलकण्ठं भजे॥

ततः 'ॐ नमो नीलकण्ठाय एतत् पाद्यं नीलकण्ठाय शिवाय नमः' इत्यादिक्रमेण पाद्यादिना पूजयेत् ।।४।।

तब देवी के दाहिने नीलकण्ठ भैरव का पूजन करके उनका ध्यान मूलोक्त प्रकार से करने के उपरान्त मूलोक्त मन्त्र से पाद्यादि द्वारा उनका पूजन करना चाहिये ।

पुनः पञ्चोपचारेण देवीं सम्पूज्य पञ्च पुष्पाञ्जलीन् दत्त्वा तर्पयेत् । यथा—वामहस्ततत्त्वमुद्रया सामान्यार्घ्यजलं दक्षिणहस्ततत्त्वमुद्रया गन्धपुष्पाक्षतानि गृहीत्वा उभयहस्ततत्त्वमुद्रायोगेन 'मूलमुच्चार्य साङ्गां सावरणां सायुधां सपरिवारां सवाहनां श्रीजगद्धात्रीदुर्गादेवीं तर्पयामि स्वाहा' । अतः परं अन्ननिवेदनादिकं सर्वं दक्षिणकालिकापूजापद्धतिक्रमेण कर्त्तव्यम् । तत्र विशेषन्तु 'श्रीमद्दक्षिणकालिका' इत्यत्र 'श्री जगद्धात्री दुर्गा' इति प्रयोक्तव्यम् । नित्यहोमे तु पृथक्-पृथक् षडङ्गहोमे 'ॐ दां हृदयाय नमः' स्वाहा इत्यादि च प्रयोक्तव्यम् ।

तदनन्तर पञ्चोपचार से देवीपूजनोपरान्त पाँच पुष्पाञ्जलि से उनका तर्पण करना चाहिये । मन्त्र मूल में अङ्कित हैं । तदनन्तर अन्न-निवेदनादि समस्त कर्म को दक्षिणकालिका पूजापद्धतिक्रम से करना चाहिये । अन्तर यही है कि जहाँ 'श्रीमद्दक्षिणकलिका' लिखा है, वहाँ 'श्रीजगद्धात्री दुर्गा' कहना चाहिये । अन्त में प्रणाम करना चाहिये । प्रणाममन्त्र है—'ॐ सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये' इत्यादि ।

●

अन्नपूर्णापूजापद्धतिः

साधको ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थाय प्रातःकृत्यादिकं कृत्वा साधारणपूजापद्धति-क्रमेण पीठन्यासान्तं कर्म विधाय हृत्पद्मस्य केशरेषु मध्ये च भुवनेश्वरी-पीठमन्वन्तं पीठशक्तीर्न्यस्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। असमर्थश्चेत् (हृदि मृगमुद्रया) 'ॐ ह्रीं पीठदेवताभ्यो नमः, ॐ ह्रीं पीठशक्तीभ्यो नमः' इति न्यसेत्। अथ ऋष्यादिन्यासः (बीजं) अस्य मन्त्रस्य ब्रह्मऋषि-र्गायत्रीछन्दः श्रीअन्नपूर्णा देवता ह्रीं बीजं स्वाहा शक्तिः नमः कीलकं ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः। शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः। हृदि श्रीअन्नपूर्णायै देवतायै नमः। मूलाधारे ह्रीं बीजाय नमः। पादयोः स्वाहा शक्तये नमः। सर्वाङ्गे नमः कीलकाय नमः। ततः कराङ्गन्यासौ—ॐ ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, ॐ ह्रूं मध्यमाभ्यां वषट्, ॐ ह्रैं अनामिकाभ्यां हुं, ॐ ह्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्, ॐ ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्। एवं हृदयादिषु।

साधक को प्रात:कृत्यादि कार्य सम्पन्न[१] करके पीठन्यासादि कर्म करके हृदयकमल

---

१. साधक साधारण पद्धति से ही प्रात:कृत्य, स्नान, सन्ध्या करते हैं। तब भी अन्नदा-कल्पतन्त्र में स्थान-स्थान पर जो कुछ विशेष कहा गया है, उसे करने में कोई दोष नहीं है। अन्नदाकल्प के अनुसार अन्नपूर्णा गायत्री है—'ॐ ह्रीं नमो भगवति विद्महे माहेश्वरि धीमहि तन्नोऽन्नपूर्णे प्रचोदयात्'। इनका ध्यान भी अलग है। इनका प्रात:कालीन ध्यान इस प्रकार है—

प्रातर्ब्राह्मी रक्तवस्त्रा द्विभुजा च कुमारिका।
कमण्डलुतीर्थपूर्णा अक्षमालां च बिभ्रती।
कृष्णाजिनाम्बरधरा हंसारूढा शुचिस्मिता॥

मध्याह्नकालीन ध्यान इस प्रकार है—

मध्याह्ने सा श्यामवर्णा वैष्णवी या चतुर्भुजा।
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणी गरुडासना।
पीनोत्तुङ्गकुचद्वन्द्वा वनमालाविभूषणा।
युवती च सदा ध्येया मध्ये मार्त्तण्डमण्डले।

सायंकालीन ध्यान इस प्रकार है—

सायं सरस्वतीरूपा शुक्लाशुक्लाम्बरा सती।
त्रिनेत्रा वरदा पाशशूलखर्परधारिणी॥

के केशर के मध्य में भुवनेश्वरी पूजापद्धति क्रम से पीठशक्तियों का न्यास करके ऋष्यादि न्यास करना चाहिये।

ऋष्यादिन्यास (जो असमर्थ हों, उन्हें हृदय में मृगमुद्रा से 'ॐ ह्रीं पीठदेवताभ्यो नमः, ॐ ह्रीं पीठशक्तिभ्यो नमः' से न्यास करना चाहिये) यह है—'(बीजमन्त्र) अस्य मन्त्रस्य ब्रह्मऋषि-र्गायत्रीच्छन्दः श्रीअन्नपूर्णा देवता ह्रीं बीजं स्वाहा शक्तिः नमः कीलकं ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः। शिरसि—ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे—गायत्रीच्छन्दसे नमः। हृदि—श्रीअन्नपूर्णायै देवतायै नमः, मूलाधारे ह्रीं बीजाय नमः। पादयोः स्वाहा शक्तये नमः। सर्वाङ्गे नमः कीलकाय नमः। इसके बाद इस प्रकार कराङ्गन्यास करना चाहिये— ॐ ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ ह्रूं मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ ह्रैं अनामिकाभ्यां हुं। ॐ ह्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्। ॐ ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्। इसी प्रकार हृदयादिन्यास भी करना चाहिये।

मूलोक्त मन्त्रों से करन्यास करके 'ॐ ह्रां हृदयाय नमः' इत्यादि मूलोक्त मन्त्र से अङ्गन्यास करना चाहिये।

ततः सङ्क्षेपषोढां बीजन्यासं तत्त्वन्यासं व्यापकन्यासञ्च कृत्वा कूर्ममुद्रया रक्तपुष्पाणि गृहीत्वा ध्यायेत्।

(किसी-किसी सम्प्रदाय में ऋष्यादि न्यास के पश्चात् शक्तिन्यास करके तब कराङ्गन्यास

वृषभासनमारूढ़ा चन्द्रार्ककृतशेखरा।
अर्धास्तमितमार्त्तण्डे ध्येया विगतयौवना॥

अन्नदाकल्प के मत से सन्ध्याकार्य में गायत्रीध्यान तथा गायत्रीजपोपरान्त देवता को अर्घ्यदान देना चाहिये। सामान्यार्घ्य-स्थापना में विशेष यह है कि 'फट्' मन्त्र से अर्घ्यपात्र का प्रक्षालन करके उसे आधार पर स्थापित करके 'ह्रीं नमः' कहकर जल प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर ॐ मन्त्र से बिल्वपत्र, दूर्वा, गन्ध-पुष्प तथा अक्षतादि उसमें स्थापित करना चाहिये और 'ॐ एते गन्धपुष्पे मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः' से आधार का पूजन करके 'ॐ अं अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः' कहकर अर्घ्यपात्र का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर 'ॐ उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः' से अर्घ्यजल का पूजन करने के बाद मत्स्यमुद्रा से इसका आच्छादन करके 'ह्रीं' मन्त्र का दस बार जप करना चाहिये। शेष सब अलग नहीं है। इतना ही अलग है।

नैर्ऋत्य कोण में ब्रह्मा तथा वास्तुपुरुष की पूजा करके सामान्यार्घ्य जल द्वारा यागमण्डप का अभ्युक्षण करना चाहिये। आसन-स्थापना में यहाँ विशेष यह है कि आसन के नीचे अधोमुख त्रिकोण तथा चतुरस्र मण्डल बनाकर 'क्लीं एते गन्धपुष्पे कामरूपाय नमः' से मण्डल-पूजन करना चाहिये। यहाँ 'आधारशक्त्यादिभ्यो नमः' से पूजन नहीं करना चाहिये।

आदि करते हैं। शक्तिन्यास इस प्रकार है—ललाटे—आं ब्राह्म्यै नमः। वामरन्ध्रे—ईं माहेश्वर्यै नमः। वामपार्श्वे—ऊं कौमार्यै नमः। जठरे—ॠं वैष्णव्यै नमः। दक्षिणपार्श्वे—लॄं वाराह्यै नमः। दक्षिणस्कन्धे—ऐं इन्द्राण्यै नमः। गले—औं चामुण्डायै नमः। हृदये—अः महालक्ष्म्यै नमः। सभी में आरम्भ में 'ॐ ह्रीं' लगाना चाहिये।)

तदनन्तर सङ्क्षेप षोढान्यास, बीजन्यास, तत्त्वन्यास, व्यापकन्यास करके कूर्ममुद्रा में रक्तपुष्प लेकर ध्यान करना चाहिये।

ध्यानं यथा—

रक्तां विचित्रवसनां नवचन्द्रचूड़ामन्नप्रदाननिरतां स्तनभारनम्राम्।
नृत्यन्तमिन्दुशकलाभरणं विलोक्य हृष्टां भजे भगवतीं भवदुःखहन्त्रीम्॥

देवी का शरीर रक्तवर्ण है, वे विचित्र परिधानधारी हैं तथा उनके कपाल पर अर्द्धचन्द्र विराजित है। वे सदा अन्न प्रदान करती रहती हैं। इनकी देह स्तनों के भार से कुछ झुकी है। ये अर्द्धचन्द्राभरण नर्तनशील शिव को देखकर प्रफुल्लित रहती हैं। इन भवदुःखहारिणी भगवती का मैं भजन करता हूँ।

इति ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पं दत्त्वा मानसोपचारैः सम्पूज्य दानार्घ्यं स्थापयेत्। यथा—ह्रीं गर्भत्रिकोणवृत्तचतुरस्रमण्डलं विलिख्य सामान्यार्घ्योदकेन अभ्युक्ष्य इत्यादि पूर्ववत्।

इस प्रकार ध्यान करके अपने शिर पर पुष्प रखकर मानसोपचार से पूजन करके (मानसोपचार में मानसिक नैवेद्य प्रदान किये विना पूजा की जाती है) मूलोक्त विधि से दानार्घ्य स्थापित करना चाहिये। इसके लिये गर्भ त्रिकोण वृत्त चतुरस्र मण्डल बनाकर उसका सामान्यार्घ्य जल से प्रोक्षण करके 'ह्रीं एते गन्धपुष्पे आधारशक्तये नमः' से मण्डलपूजनोपरान्त वहाँ रखी तिपाई का 'ह्रीं एते गन्धपुष्पे मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः' से पूजन करके 'फट्' मन्त्र से अर्घ्यपात्र धोकर उसे तिपाई के ऊपर रखना चाहिये (शेष विधान दक्षिणकालिका-प्रसङ्ग में देखना चाहिये)।

अथ पीठपूजां कुर्यात्; यथा—ॐ ह्रीं एते गन्धपुष्पे पीठदेवताभ्यो नमः, ॐ ह्रीं एते गन्धपुष्पे पीठशक्तिभ्यो नमः। समर्थश्चेत् भुवनेश्वरी-पूजापद्धत्युक्तजयादिपीठमन्वन्तां पीठपूजां कुर्यात्।

अब मूलोक्त मन्त्र से पीठशक्तियों की पूजा करनी चाहिये। जो समर्थ हों, उन्हें जयादि पीठशक्तियों के मन्त्र से उनका भी पूजन करना चाहिये। यथा—ॐ जं जयायै नमः, ॐ विं विजयायै नमः, ॐ अं अजितायै नमः, ॐ अं अपराजितायै नमः, ॐ निं नित्यायै नमः, ॐ विं विलासिन्यै नमः, ॐ दों दोग्ध्र्यै नमः, ॐ अं अघोरायै नमः। (मध्य में) ॐ सं सर्वमङ्गलायै नमः। (कर्णिका में) ॐ ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः।

अथ पूर्ववत् कराङ्गन्यासौ कृत्वा कूर्ममुद्रया रक्तकुसुमानि गृहीत्वा पुनर्ध्यात्वा मूलाधारात् कुलकुण्डलिनीं ब्रह्मपथेन परमशिवे समायोज्य पूर्ववत् मूर्त्तिं परिकल्प्य वामनासया कुसुमाञ्जलौ समानीय मूर्त्तौ यन्त्रोपरि वा संस्थाप्य, आवाहनादिकं कृत्वा यथाशक्त्युपचारेण देवीं पूजयेत्। यथा—'(बीजं) एतत् पाद्यं श्रीअन्नपूर्णायै देवतायै नमः' इत्यादि।

अब पूर्ववत् कराङ्गन्यास करके कूर्ममुद्रा से लाल पुष्प लेकर पुनः ध्यान करके मूलाधार से कुलकुण्डलिनी को उठाते हुये उसे सहस्रार में परमशिव के साथ योजित करके पूर्ववत् मूर्त्ति की परिकल्पना करके उस कुसुमाञ्जलि को वामनासा के पास लाकर उस परिकल्पित मूर्त्ति को उस यन्त्र पर स्थापित करके आवाहनादि करके यथाशक्ति उपचारों से देवी का पूजन करना चाहिये। यथा—

पाद्य— (बीजमन्त्र कहकर) एतत् पाद्यं श्रीअन्नपूर्णायै देवतायै नमः।

अर्घ्य— (बीजमन्त्र कहकर) इदमर्घ्यं श्रीअन्नपूर्णादेवतायै स्वाहा।

आचमनीय— (बीजमन्त्र कहकर) इदमाचमनीयं श्रीअन्नपूर्णादेवतायै स्वधा।

मधुपर्क— (बीजमन्त्र कहकर) एष मधुपर्कः[1] श्रीअन्नपूर्णादेवतायै स्वधा।

पुनराचमनीय— (बीजमन्त्र कहकर) इदं पुनराचमनीयं श्रीअन्नपूर्णादेवतायै स्वधा।

स्नानीय— (बीजमन्त्र कहकर) इदं स्नानीयं[2] श्रीअन्नपूर्णादेवतायै स्वधा इति देव्याः सर्वाङ्गे दद्यात्।

आभूषण— (बीजमन्त्र कहकर) इदं वस्त्रं श्रीअन्नपूर्णादेवतायै नमः' इति देव्याः सर्वाङ्गे दद्यात्।

गन्ध— (बीजमन्त्र कहकर) 'एष गन्धः श्रीअन्नपूर्णादेवतायै नमः' कहकर मध्यमा, अनामिका तथा अङ्गुष्ठ द्वारा देवी के चरण में प्रदान करना चाहिये।[3]

---

१. मधुपर्क—दधि, घृत, नरियल-जल, मधु तथा शर्करा। कांस्यपात्र में मिलाकर इन्हें प्रदान करना चाहिये, इसमें मधु की मात्रा अधिक होती है। बाकी समपरिमाण में रहते हैं। इस पात्र को आठ अङ्गुलियों से पकड़कर प्रदान करना चाहिये। अन्य मत से कांस्य तथा रजतपात्र में मधुपर्क नहीं देना चाहिये।

२. स्नानीय द्रव्य में गन्ध, पुष्प, अक्षत मिलाना चाहिये।

३. गन्धद्रव्य है—घिसा हुआ चन्दन, अगुरु, कर्पूर। अथवा चन्दन, कर्पूर, कस्तूरी, गोरोचन, अगुरु, कुंकुम प्रदान करना चाहिये अथवा केवल मलयज गन्ध प्रदान करना चाहिये। यथा—

सर्वेषु गन्धजातेषु प्रशस्तो मलयोद्भवः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन दद्यान्मलयजं सदा॥

पुष्प— (बीजमन्त्र कहकर) 'इदं सचन्दनपुष्पं श्रीअन्नपूर्णादेवतायै वौषट्' कहकर ज्ञानमुद्रा से पुष्प तथा बिल्वपत्र प्रदान करना चाहिये ।

अथ उपचारदानानन्तरं आवरणपूजां कुर्यात् । यथा कृताञ्जलिपुटो भूत्वा 'देवि आज्ञापय भवत्याः परिवारान् पूजयामि' इति आत्मानं लब्धानुज्ञं विभाव्य केशरेषु अग्निकोणे—ॐ ह्रां हृदयाय नमः, नैर्ऋत्यां—ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा, वायव्ये—ॐ ह्रूं शिखायै वषट्, ऐशान्यां—ॐ ह्रैं कवचाय हुं, मध्ये—ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, चतुर्दिक्षु—ॐ ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट् ।

अष्टदलेषु—पूर्वादिक्रमेण ब्राह्म्यै, माहेश्वर्यै, कौमार्यै, वैष्णव्यै, वाराह्यै, इन्द्राण्यै, चामुण्डायै, महालक्ष्म्यै । सर्वत्र प्रणवादि नमोऽन्तेन पूजयेत् । ततः पूर्वादौ इन्द्रादीन् वज्रादींश्च पूर्ववत् सम्पूज्य दशवक्त्रं शिवं पूजयेत् । यथा—'ॐ दां एतत् पाद्यं दशवक्त्रशिवाय नमः' इत्यादिक्रमेण दशोपचारेण पञ्चोपचारेण वा अर्चयेत् ।

इस उपचार-प्रदान के अनन्तर आवरण-पूजा करनी चाहिये । कृताञ्जलि होकर देवी से मूलोक्त मन्त्र द्वारा परिवार-पूजन की आज्ञा माँगकर 'आत्मा में आज्ञा मिल गयी' यह भावना करके केशर के अग्निकोण में—'ॐ ह्रां हृदयाय नमः, नैर्ऋत्य कोण में—ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा, वायव्य कोण में—ॐ ह्रूं शिखायै वषट्, ईशान कोण में—ॐ ह्रैं कवचाय हुं, मध्य में—ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, चारो दिशाओं में—ॐ ह्रः करतलकर-पृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्' से पूजन करना चाहिये । अष्टदल में पूर्वादि क्रम से—'ॐ ब्राह्म्यै नमः, ॐ माहेश्वर्यै नमः, ॐ कौमार्यै नमः, ॐ वैष्णव्यै नमः, ॐ वाराह्यै नमः, ॐ इन्द्राण्यै नमः, ॐ चामुण्डायै नमः, ॐ महालक्ष्म्यै नमः' से पूजन करना चाहिये ।

तदनन्तर पूर्वादि-दिशा क्रम से इन्द्रादि लोकपालों तथा उनके वज्रादि आयुधों की पूजा करनी चाहिये । यथा—

ॐ लां इन्द्राय सुराधिपतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय श्रीमदन्नपूर्णा-पारिषदाय नमः ।

ॐ रां अग्नये तेजोऽधिपतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय श्रीमदन्नपूर्णा-पारिषदाय नमः ।

ॐ यां यमाय प्रेताधिपतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय श्रीमदन्नपूर्णा-पारिषदाय नमः ।

ॐ क्षां निर्ऋतये राक्षसाधिपतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय श्रीमदन्नपूर्णा-पारिषदाय नमः ।

ॐ वां वरुणाय जलाधिपतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय श्रीमदन्नपूर्णा-पारिषदाय नमः ।

ॐ यां वायवे प्राणाधिपतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय श्रीमदन्नपूर्णा-पारिषदाय नमः ।

ॐ कुं कुबेराय यक्षाधिपतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय श्रीमदन्नपूर्णा-पारिषदाय नमः ।

ॐ हां ईशानाय गणाधिपतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय श्रीमदन्नपूर्णा-पारिषदाय नमः ।

ॐ ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय श्रीमदन्नपूर्णा-पारिषदाय नमः ।

ॐ आं ब्रह्मणे प्रजाधिपतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय श्रीमदन्नपूर्णा-पारिषदाय नमः ।

अब अस्त्र की अलग से पूजा करनी चाहिये ।

शस्त्रपूजन—ॐ वज्राय नमः, ॐ शक्तये नमः, ॐ दण्डाय नमः, ॐ खड्गाय नमः, ॐ पाशाय नमः, ॐ अङ्कुशाय नमः, ॐ गदायै नमः, ॐ शूलाय नमः, ॐ चक्राय नमः, ॐ पद्माय नमः । तदनन्तर मूल मन्त्र (बीजमन्त्र) से तीन पुष्पाञ्जलि देकर पाद्यादि से देवी के दाहिने दशवक्त्र शिव का पूजन करना चाहिये । दशोपचार अथवा पञ्चोपचार से पूजन करना चाहिये; यथा—'ॐ दां एतत् पाद्यं दशवक्त्रशिवाय नमः' इत्यादि ।

ततः पुनः पञ्चोपचारेण देवीं अभ्यर्च्य शिरो-हृदय-मूलाधार-पादपद्म-सर्वाङ्गेषु च पञ्चपुष्पाञ्जलीन् अथवा पादपद्मे पुष्पाञ्जलिमेकं दत्त्वा तर्पयेत् । यथा—वामहस्ते तत्त्वमुद्रया सामान्यार्घ्यजलं दक्षिणहस्ततत्त्वमुद्रया गन्धपुष्पाक्षतानि गृहीत्वा उभयहस्ततत्त्वमुद्रायोगेन मूलमुच्चार्य—साङ्गां सावरणां सायुधां सपरिवारां श्रीअन्नपूर्णादेवीं तर्पयामि स्वाहा ।

तदनन्तर पुनः पञ्चोपचार से देवी का पूजन करके सर्वाङ्ग में पाँच पुष्पाञ्जलि अथवा एक ही पुष्पाञ्जलि चरणों पर देकर तर्पण करना चाहिये । जैसे बाँयें हाथ की तत्त्वमुद्रा में सामान्यार्घ्य से जल लेकर दाहिने हाथ की तत्त्वमुद्रा में गन्ध, पुष्प, अक्षत लेकर दोनों हाथ की सम्मिलित तत्त्वमुद्रा करके मूल मन्त्र का उच्चारण करके इस प्रकार कहना चाहिये—'साङ्गां सावरणां सायुधां सपरिवारां श्रीअन्नपूर्णादेवीं तर्पयामि स्वाहा' ।

अतः परं अन्ननिवेदनं बलिनिवेदनादिकञ्च सर्वमवशिष्टं दक्षिणकालिका-पूजापद्धतिक्रमेण कर्त्तव्यम् । तत्र विशेषस्तु 'श्रीमद्दक्षिणकालिका' इत्यत्र

'श्रीअन्नपूर्णा' इति प्रयोक्तव्यम् । नित्यहोमे पृथक्-पृथक् षडङ्गहोमे तु 'ॐ ह्रां हृदयाय नमः स्वाहा' इत्यादि प्रयोक्तव्यम् । महाकालभैरवबलिवत् दशवक्त्रशिवस्य बलिदानविधिर्न दृश्यते ।

तदनन्तर अन्ननिवेदन बलिनिवेदन करके सभी कार्य दक्षिणकालिका-क्रमवत् करना चाहिये । यहाँ विशेष यही है कि जहाँ 'श्रीमद्दक्षिणकालिका' कहा गया है, वहाँ 'श्रीअन्नपूर्णा' कहना चाहिये । नित्यहोम में पृथक्-पृथक् एवं षडङ्गहोम में 'ॐ ह्रां हृदयाय नमः स्वाहा' इत्यादि का प्रयोग करना चाहिये । दशवक्त्र शिव की बलिदानविधि महाकालभैरव से भिन्न होती है । अन्त में 'ॐ सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये' इत्यादि से प्रणाम किया जाता है ।

कमलात्मिकापूजापद्धतिः

साधकः प्रातःकृत्यादिकं सम्पाद्य साधारणपूजापद्धतिक्रमेण वर्णन्यासपर्यन्तं विधाय पीठदेवताः पीठशक्तीश्च न्यसेत्; यथा—'(हृदि मृगमुद्रया) ॐ ह्रीं पीठदेवताभ्यो नमः, ॐ ह्रीं पीठशक्तिभ्यो नमः' । तत ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् । यथा—'(बीजं) अस्य मन्त्रस्य भृगुर्ऋषिर्निवृच्छन्दः श्रीर्देवता सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः । शिरसि—भृगुऋषये नमः । मुखे—निवृच्छन्दसे नमः । हृदि—श्रीश्रियै देवतायै नमः ।

साधक को प्रातःकृत्यादि सम्पन्न करके साधारण पूजापद्धति क्रम से वर्णन्यास-पर्यन्त कृत्य करके पीठदेवता तथा पीठशक्तियों का न्यास करना चाहिये। हृदय में मृगमुद्रा बनाकर मूलोक्त मन्त्र से पीठशक्तियों का न्यास करने के उपरान्त मूलोक्त विधि से ऋष्यादि-न्यास करना चाहिये।

ततः ॐ श्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ श्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा । इत्यादिक्रमेण कराङ्गन्यासौ कृत्वा सङ्क्षेपषोढान्यासं व्यापकन्यासञ्च कुर्यात् । ततो यथाविधि कूर्ममुद्रया रक्त-पुष्पाञ्जलिं गृहीत्वा ध्यायेत् ।

तदनन्तर मूलोक्त विधान से कराङ्गन्यास करके सङ्क्षेप षोढ़ान्यास एवं व्यापकन्यास करना चाहिये। इसके बाद यथाविधि कूर्ममुद्रा में रक्तपुष्पाञ्जलि लेकर ध्यान करना चाहिये।

ध्यानं यथा—

> **कान्त्या काञ्चनसन्निभां हिमगिरिप्रख्यैश्चतुर्भिर्गजै-**
> **र्हस्तोक्षिप्तहिरण्मयामृतघटैरासिच्यमानां श्रियम् ।**
> **बिभ्राणां वरमब्जयुग्ममभयं हस्तैः किरीटोज्ज्वलां**
> **क्षौमाबद्धनितम्बबिम्बललितां वन्देऽरविन्दस्थिताम् ॥**

कमला देवी की देहप्रभा स्वर्णवत् है। हिमालय के समान विशाल चार हाथी अपनी सूँड़ से पकड़े अमृतपूर्ण स्वर्णकलश से इनका अभिषेक कर रहे हैं। इनके चार हाथों में क्रमशः वरमुद्रा, अभयमुद्रा तथा दो कमल हैं। मस्तक पर उज्ज्वल मुकुट है तथा वे पट्टवस्त्रधारी हैं। ये कमल के ऊपर बैठी हैं। मैं उनकी वन्दना करता हूँ।

इति ध्यात्वा मानसोपचारैः सम्पूज्य दानार्घ्यं स्थापयेत् । ततः पीठपूजां कुर्यात् । यथा—ॐ ह्रीं एते गन्धपुष्पे पीठदेवताभ्यो नमः । ॐ ह्रीं एते गन्धपुष्पे पीठशक्तिभ्यो नमः । ॐ श्रीं कमलासनाय नमः ।

इस प्रकार ध्यान करके मानसोपचार से पूजन करना चाहिये (नैवेद्यरहित मानस पूजन करना चाहिये)। तदनन्तर दानार्घ्य स्थापित करके मूलोक्त मन्त्र से पीठशक्तिगण का पूजन

करना चाहिये (यदि अलग-अलग पीठशक्तियों का पूजन करने की इच्छा हो, तब 'ॐ भूत्यै नमः, ॐ उन्नत्यै नमः, ॐ कान्त्यै नमः, ॐ सृष्ट्यै नमः, ॐ कीर्त्यै नमः, ॐ सन्नत्यै नमः, ॐ बुद्ध्यै नमः, ॐ उत्कृष्ट्यै नमः, ॐ ऋद्ध्यै नमः' से पूजन करना चाहिये)।

ततः पूर्ववत् कराङ्गन्यासौ कृत्वा कूर्ममुद्रया रक्तपुष्पाञ्जलिं गृहीत्वा पुनर्ध्यात्वा पूर्ववत् मूर्त्तिं परिकल्प्य कृताञ्जलिपुटो भूत्वा—

ॐ महापद्मवनान्तस्थे कारणानन्दविग्रहे ।
सर्वभूतहिते मातरेह्येहि परमेश्वरि ।।

ततः 'श्रीलक्ष्मीदेवि इहागच्छ इहागच्छ' इत्यादिना आवाहनादिकं कुर्यात् । ततः परमीकरणमुद्रया परमीकृत्य मूलमन्त्रेण देवतां त्रिरभ्युक्ष्य यथाशक्त्युपचारैः पूजयेत् । पूजामन्त्रो यथा—'श्रीं एतत् पाद्यं श्रीलक्ष्म्यै देवतायै नमः' इत्यादि ।

तदनन्तर पूर्ववत् कराङ्गन्यास करके कूर्ममुद्रा में रक्तपुष्पाञ्जलि लेकर पुनः ध्यान करके पूर्ववत् मूर्त्ति की कल्पना करके कृताञ्जलि होकर मूल में लिखे श्लोक को पढ़ने के पश्चात् मूलोक्त विधि से 'श्रीलक्ष्मीदेवि इहागच्छ, इहागच्छ' कहकर आवाहन करना चाहिये । यह आवाहनी मुद्रा से करना चाहिये । स्थापनी मुद्रा से 'इह तिष्ठ इह तिष्ठ' कहना चाहिये । सन्निधापनी मुद्रा द्वारा 'इह सन्निधेहि' कहना चाहिये । सन्निरोधिनी मुद्रा से ' इह सन्निरुध्यस्व' कहना चाहिये । सम्मुखीकरण मुद्रा से 'अत्राधिष्ठानं कुरु मम पूजां गृहाण' से आवाहन करना चाहिये । तदनन्तर परमीकरण मुद्रा से परमीकरण करके मूल मन्त्र द्वारा तीन बार अभ्युक्षण करके यथाशक्ति उपचारों से पूजन करना चाहिये । पूजामन्त्र है—'श्रीं एतत् पाद्यं श्रीलक्ष्म्यै देवतायै नमः' इत्यादि ।

अथ आवरणपूजां कुर्यात्; यथा—कृताञ्जलिपुटो भूत्वा 'देवि! आज्ञापय भवत्याः परिवारान् पूजयामि' । तत आत्मानं लब्धानुज्ञं विभाव्य 'ॐ ह्रीं आवरणदेवताभ्यो नमः' इति गन्धपुष्पेण पूजयेत् ।

अब आवरण-पूजन करना चाहिये । पहले कृताञ्जलिबद्ध होकर देवी से मूलोक्त मन्त्र द्वारा उनके परिवार के पूजन की आज्ञा लेनी चाहिये । तदनन्तर आत्मा में 'आज्ञा मिल गयी' यह भावना करके 'ॐ ह्रीं आवरणदेवताभ्यो नमः' द्वारा गन्ध-पुष्पों से पूजन करना चाहिये । प्रत्येक आवरणदेवगण की पूजा का यह नियम है—

अग्निकोण में—	ॐ श्रां हृदयाय नमः ।
ईशान कोण में—	ॐ श्रीं शिरसे स्वाहा ।
नैर्ऋत्य कोण में—	ॐ श्रूं शिखायै वषट् ।

वायु कोण में— ॐ श्रैं कवचाय हुं ।
सम्मुख— ॐ श्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् ।
चतुर्दिक्— ॐ श्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट् ।
पूर्वादि दलचतुष्टय में— ॐ वासुदेवाय नमः, ॐ सङ्कर्षणाय नमः,
ॐ प्रद्युम्नाय नमः, ॐ अनिरुद्धाय नमः ।
अग्न्यादि दलचतुष्टय में— ॐ मदकाय नमः, ॐ सलिलाय नमः,
ॐ गुग्गुलवे नमः, ॐ कुरुण्टकाय नमः ।
देवी के दक्षिण में— ॐ शङ्खनिधये नमः, ॐ वासुदेवाय नमः ।
देवी के वाम में— ॐ पद्मनिधये नमः, ॐ वसुमत्यै नमः ।

पूर्वादि दलाग्र में—ॐ बलाक्यै नमः, ॐ विमलायै नमः, ॐ कमलायै नमः, ॐ वनमालिकायै नमः, ॐ विभीषिकायै नमः, ॐ मालिकायै नमः, ॐ शाङ्कर्यै नमः, ॐ वसुमालिकायै नमः, ॐ विभीषिकायै नमः, ॐ मालिकायै नमः, ॐ शाङ्कर्यै नमः, ॐ वसुमालिकायै नमः ।

तदनन्तर भूपुर पर पूर्वादिक्रम से इन्द्रादि दस दिक्पालों तथा उसके बहिर्भाग में उनके वज्रादि अस्त्रों का पूजन करना चाहिये । जैसे—

ॐ लां इन्द्राय सुराधिपतये सायुधाय सवाहनाय सशक्तिकाय श्रीमत्कमलात्मिकापारिषदाय नमः ।
ॐ रां अग्नये तेजोऽधिपतये सायुधाय सवाहनाय सशक्तिकाय श्रीमत्कमलात्मिकापारिषदाय नमः ।
ॐ यां यमाय प्रेताधिपतये सायुधाय सवाहनाय सशक्तिकाय श्रीमत्कमलात्मिकापारिषदाय नमः ।
ॐ क्षां निर्ऋतये राक्षसाधिपतये सायुधाय सवाहनाय सशक्तिकाय श्रीमत्कमलात्मिकापारिषदाय नमः ।
ॐ वां वरुणाय जलाधिपतये सायुधाय सवाहनाय सशक्तिकाय श्रीमत्कमलात्मिकापारिषदाय नमः ।
ॐ यां वायवे प्राणाधिपतये सायुधाय सवाहनाय सशक्तिकाय श्रीमत्कमलात्मिकापारिषदाय नमः ।
ॐ कुं कुबेराय यक्षाधिपतये सायुधाय सवाहनाय सशक्तिकाय श्रीमत्कमलात्मिकापारिषदाय नमः ।
ॐ हां ईशानाय गणाधिपतये सायुधाय सवाहनाय सशक्तिकाय श्रीमत्कमलात्मिकापारिषदाय नमः ।
ॐ ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये सायुधाय सवाहनाय सशक्तिकाय श्रीमत्कमलात्मिकापारिषदाय नमः ।
ॐ आं ब्रह्मणे प्रजाधिपतये सायुधाय सवाहनाय सशक्तिकाय श्रीमत्कमलात्मिकापारिषदाय नमः ।

तदनन्तर अस्त्रपूजन करना चाहिये; यथा—ॐ वज्राय नमः, ॐ शक्तये नमः, ॐ दण्डाय नमः, ॐ खड्गाय नमः, ॐ पाशाय नमः, ॐ अङ्कुशाय नमः, ॐ गदायै नमः, ॐ शूलाय नमः, ॐ चक्राय नमः, ॐ पद्माय नमः ।

ततो देव्या दक्षिणे विष्णुं पूजयेत् । ध्यानं यथा—

उद्यत् प्रद्योतनशतरुचिं तप्तहेमावदातं,
पार्श्वद्वन्द्वे जलधिसुतया विश्वधात्र्या च जुष्टम् ।

नानारत्नोल्लसितविविधाकल्पमापीतवस्त्रं,
विष्णुं वन्दे वरकमलकौमोदकीचक्रपाणिम् ॥

पूजामन्त्रो यथा 'ॐ नमो नारायणाय एष गन्धः श्रीविष्णवे नमः' ।

अब देवी के दाहिने विष्णु-पूजन करना चाहिये । ध्यान-मन्त्र तथा पूजामन्त्र मूल में पठित है ।

ततः पुनः पञ्चोपचारेण देवीं सम्पूज्य मस्तके, हृदये, मूलाधारे, पादपद्मे सर्वाङ्गे च पञ्चपुष्पाञ्जलीन् दत्त्वा तर्पयेत् । यथा—वामहस्ततत्त्वमुद्रया अर्घ्यजलं दक्षहस्ततत्त्वमुद्रया गन्धपुष्पाक्षतानि गृहीत्वा उभयहस्ततत्त्व-मुद्रायोगेन '(बीजं) सायुधां सवाहनां सपरिवारां श्रीलक्ष्मीदेवीं तर्पयामि स्वाहा' ।

अब पुनः पञ्चोपचार से देवी-पूजनोपरान्त मस्तक, हृदय, मूलाधार, पादपद्म तथा सर्वाङ्ग पर पञ्चपुष्पाञ्जलि देकर तर्पण करना चाहिये । जैसे बाँयें हाथ की तत्त्वमुद्रा में अर्घ्यजल लेकर दाहिने हाथ की तत्त्वमुद्रा में गन्ध, पुष्प, अक्षत लेकर दोनों हाथों की तत्त्वमुद्रा को आपस में संयुक्त करके बीजमन्त्र का उच्चारण करके 'सायुधां सवाहनां सपरिवारां श्रीलक्ष्मीदेवीं तर्पयामि स्वाहा' से तर्पण करना चाहिये ।

अतः परं सर्वमवशिष्टं दक्षिणकालिकापूजापद्धतिदर्शनेन सम्पादनीयम् । तत्र विशेषः 'श्रीमद्दक्षिणकालिका' इत्यत्र 'श्रीलक्ष्मी' इति प्रयोक्तव्यम् । षडङ्गहोमे तु 'ॐ श्रां हृदयाय नमः स्वाहा' इति प्रयोक्तव्यम् । अविहितत्त्वात् अष्टभैरवाहुतिस्तु न देया ।

अब शेष कार्य दक्षिणकालिका पूजापद्धति के अनुसार सम्पादित करना चाहिये । वहाँ यह विशेष है कि जहाँ-जहाँ 'श्रीमद्दक्षिणकालिका' लिखा है, वहाँ 'श्रीलक्ष्मी' कहना चाहिये । षडङ्गहोम में 'ॐ श्रां हृदयाय नमः स्वाहा' कहना चाहिये । दक्षिणकालिका पद्धति की तरह यहाँ अष्टभैरव को आहुति नहीं दी जाती ।

●

साधकः[१] पूर्वोक्तसाधारणपूजापद्धतिक्रमेण वर्णन्यासान्तं विधाय पीठन्यासं कुर्यात् । यथा हृदये—'ॐ आधारशक्तये नमः, ॐ प्रकृत्यै नमः, ॐ कमठाय नमः, ॐ शेषाय नमः, ॐ पृथिव्यै नमः, ॐ सुधाम्बुधये नमः, ॐ मणिद्वीपाय नमः, ॐ चिन्तामणिगृहाय नमः, ॐ श्मशानाय नमः, ॐ पारिजाताय नमः । तन्मूले ॐ रत्नवेदिकायै नमः, तस्योपरि ॐ मणिपीठाय नमः, चतुर्दिक्षु—ॐ मुनिभ्यः नमः, ॐ वेदेभ्यः नमः, ॐ शिवाभ्यः नमः, ॐ शवमुण्डेभ्यो नमः, ॐ धर्माय नमः, ॐ ज्ञानाय नमः, ॐ वैराग्याय नमः, ॐ ऐश्वर्याय नमः, ॐ अधर्माय नमः, ॐ अज्ञानाय नमः, ॐ अवैराग्याय नमः, ॐ अनैश्वर्याय नमः, ॐ अनन्ताय नमः, ॐ पद्माय नमः, ॐ अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः, ॐ उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः, ॐ मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः, ॐ सं सत्वाय नमः, ॐ रं रजसे नमः, ॐ तं तमसे नमः, ॐ आं आत्मने नमः, ॐ अं अन्तरात्मने नमः, ॐ पं परमात्मने नमः, ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः ।

साधक को पूर्वोक्त साधारण पूजापद्धति विधानानुसार वर्णन्यासान्त कर्म सम्पन्न करके मूलोक्त पीठन्यास करना चाहिये । उपरोक्त मूलोक्त कर्म करके हृत्पद्म में पूर्वादि केशर से प्रारम्भ करके इन मन्त्रों से क्रमशः पूजन करना चाहिये—ॐ इच्छायै नमः, ॐ ज्ञानायै नमः, ॐ क्रियायै नमः, ॐ कामिन्यै नमः, ॐ कामदायिन्यै नमः, ॐ रत्यै नमः, ॐ रतिप्रियायै नमः, ॐ आनन्दायै नमः । मध्य में—ॐ मनोन्मन्यै नमः, ॐ परायै नमः, ॐ अपरायै नमः, ॐ परापरायै नमः । उसके ऊपर—हेसौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः ।

ततः ऋष्यादिन्यासः । यथा—'(बीजमन्त्र) अस्य मन्त्रस्य भैरऋषि-रुष्णिक्छन्दः श्रीमद्दक्षिणकालिका देवता ह्रीं बीजं हुं शक्तिः क्रीं कीलकं पुरुषार्थचतुष्टयसिद्धये विनियोगः । शिरसि भैरवाय ऋषये नमः । मुखे उष्णिक्छन्दसे नमः । हृदि (बीजं) श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः । मूलाधारे ह्रीं बीजाय नमः । पादयोः हुं शक्तये नमः । सर्वाङ्गे क्रीं कीलकाय नमः ।

---

१. प्रतिमा, घट अथवा यन्त्र स्थापित करके स्वस्तिवाचन, सङ्कल्प तथा घट-स्थापित करने के उपरान्त स्नानादि करना चाहिये । प्रतिमा के साथ घटस्थापन प्रयोज्य है, किन्तु यन्त्र के साथ घट का प्रयोजन नहीं है । नित्यपूजा में सङ्कल्प की आवश्यकता नहीं होती ।

अब मूलोक्त विधि से ऋष्यादि न्यास सम्पन्न करना चाहिये।

ततः कराङ्गन्यासौ। करन्यासो यथा—ॐ क्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ क्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ क्रूं मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ क्रैं अनामिकाभ्यां हुं। ॐ क्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्। ॐ क्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्।

अङ्गन्यासो यथा—ॐ क्रां हृदयाय नमः। ॐ क्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ क्रूं शिखायै वषट्। ॐ क्रैं कवचाय हुं। ॐ क्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ क्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्।

अब मूलोक्त विधि से करन्यास तथा अङ्गन्यास सम्पन्न करना चाहिये। (शक्तिषड्ङ्गमुद्रा यह है कि हृदय में न्यास करते समय तर्जनी, मध्यमा तथा अनामा द्वारा स्पर्श करना चाहिये। शिरोदेश में मध्यमा तथा तर्जनी से स्पर्श करना चाहिये। शिखास्थान में अङ्गूठे से स्पर्श करना चाहिये। कवच में दसों अङ्गुलियों से तथा नेत्रत्रय का स्पर्श तर्जनी, मध्यमा एवं अनामा से करके तर्जनी तथा मध्यमा अङ्गुली द्वारा वामकरतल पर आघात करके दाहिने करतलपृष्ठ द्वारा वामकरतलपृष्ठ का स्पर्श करना चाहिये। स्त्री तथा शूद्र को स्वाहा की जगह 'नम:' का प्रयोग करना चाहिये एवं प्रणव की जगह 'ह्रीं' लगाना चाहिये। सभी शक्तिदेवियों के अङ्गन्यास में इसी प्रकार हृदयादि का स्पर्श किया जाता है।)

अथ षोढान्यासः। यथा—केवलं मातृकां कृत्वा पुनः तारसम्पुटितां मातृकां मातृकापुटितं तारम्। एवं श्रीवीजपुटितां तां तत्पुटितं श्रीबीजं। एवं कामेन पुटितां मातृकां मातृकापुटितं कामम्। एवं शक्त्या पुटितां मातृकाम्। मातृकापुटितां शक्तिं न्यसेत्। तथा क्रीं द्वन्द्वञ्च ॠ ॠ ऌ ॡ पूर्ववत्। तत् पुटितां मातृकां मातृकां पुटितञ्च तत् न्यसेत्। मन्त्रपुटितां मातृकां तत्पुटितं मनुम्। पुनरनुलोमविलोमेन केवलं मन्त्रं मातृकास्थाने न्यस्य बीजन्यासं कुर्यात्।

अब षोढ़ान्यास कहते हैं। पहले केवल मातृकान्यास करके मातृकाओं को 'ॐ' से पुटित करके मातृकान्यासस्थान पर न्यास करना चाहिये। अब मातृकावर्ण से 'ॐ' को पुटित करके न्यास करे। तदनन्तर 'श्रीं' बीज से मातृकाओं को पुटित करके (एक-एक मातृका को) न्यास करके मातृकाओं द्वारा श्रीबीज को पुटित करके मातृका न्यासोक्त स्थानों में न्यास करे। ऐसे ही 'क्लीं' से मातृका वर्णों को पुटित करके न्यासोपरान्त मातृका वर्णों द्वारा 'क्लीं' को पुटित करके न्यास करना चाहिये। इसी प्रकार 'ह्रीं' बीज से मातृका वर्णों को पुटित करके न्यासोपरान्त मातृका वर्णों से 'ह्रीं' बीज को पुटित करके न्यास करना चाहिये। तदनन्तर ललाट में—क्रीं क्रीं ऋं ॠं ऌं ॡं क्रीं क्रीं नमः। मुख में—क्रीं क्रीं ऋं

ॠं ऌं ऌं क्रीं क्रीं नमः । ललाट में—ऋं ॠं ऌं ऌं क्रीं क्रीं ऋं ॠं ऌं ऌं नमः । मुख में—ऋं ॠं ऌं ऌं क्रीं क्रीं ऋं ॠं ऌं ऌं नमः' इत्यादि प्रकार से मातृकान्यास करना चाहिये । तदनन्तर मूल मन्त्र से 'ह्रीं' को पुटित करके मातृकावर्ण द्वारा मूल मन्त्र को पुटित करके पूर्वोक्त स्थानों पर न्यास करना चाहिये । यथा ललाटे—क्रीं ह्रीं क्रीं नमः । मुखे—क्रीं ह्रीं क्रीं नमः इत्यादि । तथा ललाट में—अं क्रीं अं नमः । मुख में—आं क्रीं आं नमः' इत्यादि । पुनः अनुलोम-विलोम से केवल मन्त्र का मातृका स्थानों में न्यास करना चाहिये । इस प्रकार से षोढान्यासोपरान्त बीजन्यास, तत्त्वन्यास एवं व्यापक न्यास करना चाहिये ।

(अब सङ्क्षेप षोढान्यास कहा जा रहा है । यथा मस्तके—ॐ नमः । मूलाधारे—स्त्रीं नमः । लिङ्गे—एं नमः । नाभौ—क्रीं नमः । हृदि—ऐं नमः । कण्ठे—क्लीं नमः । भ्रूमध्ये—स्वौं नमः । दक्षिणबाहौ—ॐ नमः । वामबाहौ—श्रीं नमः । दक्षिणपादे—ह्रीं नमः । वामपादे—क्लीं नमः । पृष्ठे—क्रौं नमः । सर्वत्र तत्त्वमुद्रया न्यसेत् ।)

अथ बीजन्यासः—ब्रह्मरन्ध्रे—मूलं । भ्रूमध्ये—मूलं । ललाटे—मूलं । नाभौ—हुं । मुखे—ह्रीं । मूलाधारे—हुं । सर्वाङ्गे मूलं । सर्वत्र तत्त्वमुद्रया न्यसेत् ।

बीजन्यास मूलोक्त प्रकार से करना चाहिये । इसमें जहाँ 'मूलं' लिखा है, वहाँ मूलमन्त्र कहना चाहिये । मूलमन्त्र का न्यास तत्त्वमुद्रा से ही करना चाहिये ।

ततस्तत्त्वन्यासः । यथा—मूलं त्रिखण्डं विधाय प्रथमखण्डान्ते आत्मतत्त्वाय स्वाहा इति पादादि नाभिपर्यन्तम् । तत्त्वन्यास में मूल को त्रिखण्ड करके प्रथम खण्डान्त में 'ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा' कहकर पैरों से नाभिपर्यन्त न्यास करना चाहिये । **द्वितीयखण्डान्ते विद्यातत्त्वाय स्वाहा इति नाभ्यादि हृदयपर्यन्तम् ।** द्वितीय खण्ड से 'ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा' कहकर नाभि से हृदय-पर्यन्त तत्त्वन्यास करना चाहिय । **तृतीयखण्डान्ते शिवतत्त्वाय स्वाहा इति हृदयादि शिरःपर्यन्तं हस्ताभ्यां न्यसेत् ।** तृतीयखण्डान्त में 'ॐ शिवतत्त्वाय स्वाहा' से हृदय से शिर-पर्यन्त का हाथ से न्यास करना चाहिये ।

अथ व्यापकन्यासः—शीर्षादिपादान्तं पादादिशिरोऽन्तं नाभ्यादिहृदयान्तञ्च प्रणवपुटितमूलमन्त्रेण हस्ताभ्यां मार्जनमेकधा व्यापकन्यासो भवति । अस्य त्रिधापञ्चधादिः शक्ताशक्तभेदेन कर्त्तव्या । ततः खड्गमुद्रा, मुण्डमुद्रा, वरमुद्रा, अभयमुद्रा, लेलिहानमुद्राप्रदर्शनपूर्वकं कूर्ममुद्रया सगन्धरक्तपुष्पाणि गृहीत्वा ध्यायेत् ।

शिर से पादान्त तक, पादान्त से शिर तक, नाभि से हृदय तक प्रणवपुटित मूल मन्त्र से हाथों से मार्जन करना एक व्यापकन्यास होता है । इसे अपनी शक्ति के अनुसार

तीन अथवा पाँच बार करना चाहिये। (मूल मन्त्र से सात अथवा पाँच बार मस्तक से पैरों तक, पुनः पैरों से मस्तक तक करयुगल से मार्जन करना व्यापक न्यास होता है; यह तन्त्रसार का मत है। लेकिन अन्य मतानुसार ॐकार-पुटित मूल मन्त्र से शिर से पादान्त तक, पादान्त से शिर तक तथा नाभि से हृदय तक करयुगल से मार्जन करने पर एक व्यापक न्यास होता है)।

अब खड्गमुद्रा, मुण्डमुद्रा, वरमुद्रा, अभयमुद्रा, लेलिहानमुद्रा का प्रदर्शन करके कूर्ममुद्रा से गन्धयुक्त रक्तपुष्प लेकर ध्यान करना चाहिये।

ध्यानं यथा—

शवारूढां महाभीमां घोरदंष्ट्रां वरप्रदाम्।
हास्ययुक्तां त्रिनेत्राञ्च कपालकर्त्तृकाकराम्॥
मुक्तकेशीं ललज्जिह्वां पिबन्तीं रुधिरं मुहुः।
चतुर्बाहुयुतां देवीं वराभयकरां स्मरेत्॥

इति स्वशिरसि पुष्पं दत्त्वा ऋजुकायः स्वाङ्के उत्तानौ करौ कृत्वा देवतां हृदि ध्यात्वा मनसा नैवेद्यं विना सर्वोपचारैः सम्पूज्य दानार्घ्यस्थापनं कुर्यात्।

देवी शवारूढ़ा, महान् भयानक घोर दंष्ट्रा तथा वर देने वाली हैं। वे खुले केशों वाली, लपलपाती जिह्वा से युक्ता तथा उससे रुधिर को धीरे-धीरे पीने वाली हैं। वे चतुर्बाहु वाली हैं। वर-अभय मुद्रा से युक्ता हैं। उनका स्मरण करना चाहिये।

इस प्रकार ध्यानोपरान्त हाथ में स्थित पुष्पों को अपने मस्तक पर रखकर अपनी गोद में हथेली को चित्त करके रखकर सीधे बैठकर देवता का हृदय में चिन्तन करते हुये मानसिक उपचारों से (विना नैवेद्य अर्पण की चिन्ता किये) पूजन करके दानार्घ्य की स्थापना करनी चाहिये।

दानार्घ्यस्थापनं यथा—स्ववामे चन्दनाम्भसा मत्स्यमुद्रया हुं गर्भमध्ये मुखत्रिकोणं तद्बहिर्वृत्तं तद्बहिश्चतुष्कोणमण्डलं विलिख्य सामान्यार्घ्य-जलेन सम्प्रोक्ष्य 'ह्रीं एते गन्धपुष्पे आधारशक्तये नमः' इति मण्डलं सम्पूज्य तत्र त्रिपादिकां संस्थाप्य 'ह्रीं एते गन्धपुष्पे मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः' इति त्रिपादिकां सम्पूज्य 'फट्' इति शङ्खादिपात्रं प्रक्षाल्य त्रिपादिकोपरि संस्थाप्य 'ह्रीं एते गन्धपुष्पे अं अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः' इत्यर्घ्यपात्रं सम्पूज्य मूलमुच्चरन् त्रिभागं जलेनापूर्य तत्र गन्धपुष्पाक्षतदूर्वाबिल्वपत्रादीनि संस्थाप्य 'ह्रीं एते गन्धपुष्पे उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः' इत्यर्घ्यजलं सम्पूज्य 'क्रों गङ्गे च

यमुने चैव' इत्यादिना अङ्कुशमुद्रया सूर्यमण्डलात् तीर्थमावाह्य गन्धपुष्पैः सम्पूज्य 'वषट्' इति गालिनीमुद्रां प्रदर्श्य 'ॐ क्रां हृदयाय नमः, ॐ क्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ क्रूं शिखायै वषट्, ॐ क्रैं कवचाय हूं— इत्यग्नीशासुरवायुषु। अग्रे ॐ क्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, चतुर्दिक्षु—ॐ क्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट् इत्यभ्यर्च्य 'श्रीमद्दक्षिणकालिके देवि इहागच्छ इहागच्छ इह तिष्ठ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि इह सन्निरुद्धा भव। अत्राधिष्ठानं कुरु मम पूजां गृहाण इति आवाहन्यादि पञ्चमुद्रया देवीं तत्रावाह्य मत्स्यमुद्रया आच्छाद्य मूलं दशधा जप्त्वा वामहस्तकर-तले दक्षिणहस्ततर्जनी-मध्यमाभ्यां 'फट्' इति ऊर्ध्वोर्ध्वकृततालत्रयेण संरक्ष्य धेनुयोनिपरमीकरणमुद्राः प्रदर्श्य तज्जलं किञ्चित् प्रोक्षणीपात्रे निक्षिप्य मूलमन्त्रमुच्चरन् तेनोदकेन आत्मानं पूजोपकरणञ्च अभ्युक्ष्य पीठपूजामारभेत्।

अब दानार्घ्यस्थापना कहते हैं, जिसे मूल में व्यवस्थित रूप से कहा गया है। अपने बाँयें चन्दन को जल में मिलाकर उससे मत्स्यमुद्रा द्वारा 'हुं' (हुं का बीज मन्त्र लिखकर) गर्भ-मध्य में त्रिकोण बनाकर उसके बाहर वृत्त बनाये। उसके बाहर चतुष्कोण मण्डल बनाकर उसे सामान्यार्घ्य जल से प्रोक्षित करके 'ह्रीं एते गन्धपुष्पे आधारशक्तये नमः' द्वारा मण्डल-पूजनोपरान्त वहाँ तिपाई रखे। तिपाई का पूजन 'ह्रीं एते गन्धपुष्पे मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः' से करके 'फट्' द्वारा पात्र-प्रक्षालन करे (काली, दुर्गा आदि पूजन में शङ्खपात्र का अर्घ्यपात्र वर्णित है; अतएव स्वर्ण, चांदी, ताम्र का पात्र बनाये)। अब उसे तिपाई पर रखकर 'ह्रीं एते गन्धपुष्पे अं अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः' मन्त्र से उस अर्घ्यपात्र का पूजन करे।

मूल मन्त्र पढ़ते हुये उसके ३/४ भाग को जल से पूरित करके गन्ध, पुष्प, दूर्वा, बिल्व-पत्रादि[१] रखकर 'ह्रीं एते गन्धपुष्पे उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः' से अर्घ्य जल का पूजन करके 'क्रों गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति, नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेस्मिन् सन्निधिं कुरु' पढ़ते हुये अङ्कुशमुद्रा द्वारा सूर्यमण्डल से तीर्थावाहन करे। तदनन्तर गन्धपुष्प से पूजन करके 'वषट्' मन्त्र से गालिनीमुद्रा प्रदर्शित करके 'ॐ क्रां

---

१. प्रपञ्चसार में शिवार्चनचन्द्रिका का मत अङ्कित है, उनके अनुसार गन्ध, पुष्प (बिल्वपत्र), अक्षत, यव, तिल, सरसों, दूर्वा तथा कुशाग्र से अर्घ्य प्रस्तुत करना चाहिये। महा-कपिलपाञ्चरात्र में भी इन्हीं अष्टद्रव्य द्वारा अर्घ्य-निर्माण कहा गया है। किसी तन्त्रमत से कुशाग्र की जगह फल का विधान है। कौलावती के अनुसार श्यामा दूर्वा, पद्म, अपराजिता, गन्ध, पुष्प, अक्षत, यव, कुशाग्र, तिल तथा सरसों से अर्घ्य-निर्माण करना चाहिये। शक्तिपूजा में श्वेत दूर्वा निषिद्ध है। त्रिपत्रा दूर्वा अर्घ्य में विहित है।

हृदयाय नमः, ॐ क्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ क्रूं शिखायै वषट्, ॐ क्रैं कवचाय हुं' से ईशान, अग्नि, नैर्ऋत्य तथा वायुकोण में पूजन करे। आगे 'ॐ क्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्', चारो ओर 'ॐ क्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्' से अर्चना करके घट में 'श्रीमद्दक्षिणकालिका देवि इहागच्छ इहागच्छ (आवाहनी मुद्रा से), इह तिष्ठ इह तिष्ठ (स्थापनीमुद्रा से), इह सन्निधेहि (सन्निधापनीमुद्रा से), इह सन्निरुद्धा भव (सन्निरोधिनीमुद्रा), अत्राधिष्ठानं कुरु मम पूजां गृहाण (सम्मुखीकरणमुद्रा से)—इन आवाहन्यादि मुद्राओं से देवी का आवाहन करके उसके बाहर मत्स्यमुद्रा से आच्छादन करके मूल मन्त्र का दस बार जप करे तथा बाँयें हाथ की हथेली पर दाहिने हाथ की तर्जनी तथा मध्यमा से 'फट्' कहते हुये ऊर्ध्व तथा अधः तीन ताली देकर रक्षण करे और धेनु, योनि, परमीकरणमुद्रा प्रदर्शित करके उस जल को थोड़ा-सा प्रोक्षणी पात्र में लेकर मूलमन्त्रोच्चारण करते हुये स्वयं का तथा पूजोपकरण का अभ्युक्षण करके पीठपूजन प्रारम्भ करना चाहिये।

(यहाँ जो समर्थ हो, वह एक 'विलोमार्घ्य' का भी स्थापन करे। पूजान्त में इस अर्घ्य को हाथों में लेकर प्रदक्षिणा द्वारा उससे आत्मसमर्पण किया जाता है। प्रथम स्थापित अर्घ्य ही दानार्घ्य है। जो असमर्थ हैं, वे केवल दानार्घ्य स्थापित करके पूजान्त में सामान्यार्घ्य जल से आत्मसमर्पण करें। दोनों अर्घ्य स्थापना की विधि तथा मन्त्र एक ही है। भेद इतना ही है कि जहाँ दानार्घ्य में बीजमन्त्र पढ़ते हुये अर्घ्यपात्र में जल भरते हैं, वहीं विलोमार्घ्य में बीजमन्त्र तथा विलोममातृका पढ़ते हुये अर्घ्यपात्र में जल भरते हैं।)

अथ पीठन्यासक्रमेण पीठपूजां कृत्वा पूर्ववत् कराङ्गन्यासौ कुर्यात्।

अब पीठन्यास क्रम से पीठपूजा करके पूर्ववत् कराङ्गन्यास करना चाहिये (यह इस प्रसङ्ग के आरम्भ में देखें)।

ततः करकलितचन्दनचर्चितरक्तकुसुमाञ्जलिकः साधकः करकच्छपिकां बद्ध्वा पुनर्ध्यात्वा स्वहृदयात् ध्यानेन हृत्पद्मान्तः प्रत्यक्षीकृत्य मूलमन्त्ररूपां परब्रह्मशुद्धचैतन्यमयीं तड़िदिव देदीप्यमानां तेजोराशिमीष्टदेवतां मूलाधारात् कुलकुण्डलिनीम् उत्थाप्य तथा षट्चक्रभेदक्रमेण शिरःस्थितसहस्रदलकमलकर्णिकान्तर्गतपरमशिवं प्रापय्य तेन कुलकुण्डलिनीक्रियासमभिव्याहारजनितपरामृतेनेष्टदेवतां संप्लाव्य यमिति वायुबीजमुच्चरन् प्रवहद्वामनासापुटमार्गेणातिदीप्तां तां विनिःसार्य मातृकाम्भोजत्वेन ध्यातेषु करस्थपुष्पेषु योजयन् मूलमन्त्रकल्पितमूर्तौ तत्पुष्पं निधाय आवाहयेत्।

तदनन्तर साधक को पूर्ववत् कूर्ममुद्रा में चन्दनचर्चित रक्तपुष्प लेकर पुनः ध्यान करना चाहिये, जो पहले लिखा जा चुका है। तदनन्तर अपने हृदय से ध्यान द्वारा हृत्पद्म में प्रत्यक्षीकृता मूलमन्त्ररूपा, परब्रह्म शुद्धचैतन्यरूपा, विद्युद्वत् दीप्तिमता तेजःस्वरूपा

इष्टदेवता को (देवी को) मूलाधार से कुलकुण्डलिनी को जगाते हुये षट्चक्रभेदन की भावना करते हुये शिरःस्थित सहस्र पद्म की कर्णिका में विराजित परमशिव के साथ सम्मिलित करना चाहिये। वहाँ इस सम्मिलन-जनित परामृत से उन्हें प्लावित करके 'यं' वायुबीज का उच्चारण करके प्रवहमान वाम नासिकापुट से अतीव तेज से उद्दीप्त इन देवता को भावना द्वारा बाहर लाकर कर-स्थित पुष्पों में स्थापित करना चाहिये और मूल मन्त्र से कल्पित मूर्त्ति में इस पुष्प को स्थापित करके आवाहन करना चाहिये। यहाँ यह कहा गया है कि शक्तिपूजा-हेतु सभी शिवलिङ्गों में (पार्थिव शिवलिङ्ग वर्जित है), प्रतिष्ठित प्रतिमा में, मणि, पीठस्थान, यन्त्र, घट, पुस्तक, अपने हृदय में, गङ्गा में, अपने मस्तक पर, जल, चित्रित पट पर, शालग्राम, अग्नि, सूर्यमण्डल, स्थण्डिल, फलक, अपराजितापुष्प, कनेर, जवा, खड्ग, बिल्वमूल, बिल्ववृक्ष, देवता के चरणचिह्न, लौहित्यनद, गङ्गासागर-सङ्गम, पर्वतस्थ काली शिला, पर्वतशिखर, पर्वतगह्वर पर शक्तिपूजा होती है। लेकिन कालीकुलसर्वस्व, मायातन्त्र तथा निरुत्तरतन्त्र में कहते हैं कि शालिग्राम शिला पर काली, तारा, छिन्नमस्ता, सुन्दरी तथा भैरवी का पूजन नहीं करना चाहिये। यदि अप्रतिष्ठित मूर्त्ति अथवा घट पर देवीपूजन करना हो तब देवता का आवाहन करना चाहिये; लेकिन शिवलिङ्ग, गङ्गाजल, शालग्राम (लक्ष्मी आदि देवी की पूजा शालग्राम पर की जा सकती है), अग्नि, नदी, पर्वतशिखर आदि पर पूजा करने में आवाहन प्रयोज्य नहीं होता। किसी तन्त्र के अनुसार काली, तारा तथा त्रिपुरा का पूजन शिवलिङ्ग पर कर सकते हैं; जैसा कि कहा है—

कालिकायाश्च ताराया: सुन्दर्या: परमेश्वरि।
पार्थिवे पूजनादेवि अनन्तफलभाग्भवेत्॥

ततः कृताञ्जलिः पठेत्—

ॐ देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते।
यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिता भव॥

ततो मूलमुच्चार्य 'महाकालभैरवसहिते परिवारगणपरिवृते श्रीमद्दक्षिण-कालिके देवि इहागच्छ इहागच्छ (आवाहनीमुद्रा) इह तिष्ठ इह तिष्ठ (स्थापनीमुद्रा) इह सन्निधेहि (सन्निधापनीमुद्रा) इह सन्निरुध्यस्व (सन्निरोधिनीमुद्रा) अत्राधिष्ठानं कुरु मम पूजां गृहाण (सम्मुखीकरणी-मुद्रा) इत्यावाह्य 'हुं' इत्यवगुण्ठ्य अङ्गमन्त्रैः सकलीकृत्य धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य परमीकरणमुद्रया परमीकृत्य भूतिन्याकर्षिणीयोनिमुद्राः प्रदर्श्य प्राणप्रतिष्ठां विधाय मूलमन्त्रेण देवतां त्रिरभ्युक्ष्य यथासम्भवोप-चारैः पूजयेत्।

तदनन्तर अपना मूल मन्त्र कहकर मूलोक्त मन्त्रों से आवाहनादि मुद्रा का प्रदर्शन

करके प्राणप्रतिष्ठा करके मूल मन्त्र से देवता का तीन बार अभ्युक्षण करके यथासम्भव उपचारों से पूजन करना चाहिये। प्राणप्रतिष्ठा का विधान नीचे पादटिप्पणी में देखना चाहिये।[१]

षोडशोपचारो यथा शिवार्चनचन्द्रिकायां—

आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्।
मधुपर्काचमस्नानवसनाभरणानि च।।
गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्यं वन्दनं तथा।
प्रयोजयेदर्चनायाद्युपाचारांस्तु षोडशे।।

शिवार्चनचन्द्रिका में आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, आचमन, स्नान, वस्त्र, आभरण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, वन्दन को षोडश उपचार कहा गया है।

दशोपचारो यथा—पाद्यमर्घ्यं तथाचामं मधुपर्काचमनं तथा।
गन्धादयो नैवेद्यास्ता उपचाराः दश क्रमात्।।

दशोपचार हैं—पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, आचमन, गन्धादि, नैवेद्य (गन्धादि में पुष्प, धूप, दीप तथा वन्दना को समझ लेना चाहिये तभी दस उपचार होते हैं)।

पञ्चोपचारो यथा—गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपं नैवेद्यमेव च।
अखण्डं फलमासाद्य कैवल्यं लभते ध्रुवम्।।

पञ्चोपचार हैं—गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य। इससे निश्चित ही अखण्ड फल तथा कैवल्य प्राप्त होता है।

षोडशोपचारदानप्रकारमाह—रजतासनं पुरतः संस्थाप्य वमिति सामान्यार्घ्योदकेन सम्प्रोक्ष्य धेनुगालिनीमुद्रे प्रदर्श्य 'एतस्मै रजतासनाय नमः' इति सामान्यार्घ्योदकेन त्रिरभ्युक्ष्य 'एते गन्धपुष्पे एतदधिपतये श्रीविष्णवे नमः' इति सम्पूज्य 'एते गन्धपुष्पे एतत्सम्प्रदानाय श्रीमद्दक्षिणकालियायै नमः' इत्युत्सृज्य च मूलमुच्चार्य 'इदं रजतासनं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः' इति वामहस्तयुतदक्षिणहस्ताङ्गुलेन यथा नखदर्शनं न भवेत्तथा निवेदयेत्।

---

(१) देवी की प्राणप्रतिष्ठा-विधि—लेलिहान मुद्रा में देवी का हृदय-स्पर्श कर अथवा यन्त्रस्पर्श कर कहे—'आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हंसः श्रीमद्दक्षिणकालिकाया प्राणा इह प्राणाः, आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हंसः श्रीमद्दक्षिणकालिकायाः जीव इह स्थितः, आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हंसः श्रीमद्दक्षिणकालिकायाः वाङ्मनश्चक्षुः-श्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा। प्राणप्रतिष्ठा यदि स्त्री अथवा शूद्र कर रहा हो तब 'स्वाहा' की जगह 'नमः' कहना चाहिये।

अब षोडशोपचार कहते हैं। रजतासन स्थापित करके 'वं' बीज का उच्चारण करते हुये सामान्यार्घ्य जल से उसका प्रोक्षण करके धेनु तथा गालिनी मुद्रा का प्रदर्शन करके 'एतस्मै रजतासनाय नमः' से सामान्यार्घ्य जल द्वारा उसका तीन बार अभ्युक्षण करना चाहिये। तदनन्तर 'एते गन्धपुष्पे एतदधिपतये श्रीविष्णवे नमः' मन्त्र से पूजन करके 'एते गन्धपुष्पे एतत्सम्प्रदानाय श्रीमद्दक्षिणकालियायै नमः' से उत्सर्जन करके मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुये 'इदं रजतासनं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः' कहना चाहिये। इसका निवेदन बाँयें हाथ से युक्त दाहिने हाथ की अङ्गुलियों के अग्रभाग से इस प्रकार करना चाहिये कि नख दिखलाई न दें।

विशेष—यहाँ रजतासन कहा गया है, लेकिन काष्ठासन, वस्त्रासन, कृष्णाजिन-मृगचर्मासन, कुशासन, स्वर्णासन प्रदान कर सकते हैं; लेकिन रजतासन तथा स्वर्णासन के सिवाय अन्य आसनों का माप एक हाथ से कम नहीं होना चाहिये। स्वर्ण तथा रजत का आसन यदि प्रदान करना हो, तो वे चार अङ्गुल से छोटे नहीं होने चाहिये।

जिन द्रव्यों का जो आसन हो, उसके अधिपति देवता का नाम उच्चारण करना चाहिये। जैसे यदि सुवर्णासन हो, तब कहा जायेगा—'एते गन्धपुष्पे एतदधिपतये अग्नये नमः' क्योंकि स्वर्ण के अधिपति हैं—अग्नि। इसी प्रकार रजत के चन्द्र, अन्न के लक्ष्मी, वस्त्र के बृहस्पति, जल तथा सभी पेय द्रव्य के वरुण, आसन के पृथिवी, परमान्न के अधिपति बृहस्पति माने जाते हैं। घृतप्रदीप, दधि तथा क्षीर के देवता (अधिपति) हैं—विष्णु। पुष्प तथा तैलप्रदीप के देवता हैं—वनस्पति। मधु के देवता हैं—वरुण। गन्ध तथा धूप के देवता हैं—गन्धर्व। घृत के देवता हैं—वैश्वानर तथा माला के देवता हैं—दुर्गा। अथवा सभी द्रव्य के अधिपति हैं—विष्णु; 'सर्वं वा विष्णुदैवतमिति'।

सभी उपचार प्रदान करते समय 'वं' से अभ्युक्षण करना चाहिये। धेनु तथा गालिनी मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिये। देय द्रव्य के अर्चनार्थ पहले अधिष्ठातृ देवता तथा पूजनीय देवता का पूजन करके उपचार द्रव्य अर्पित करना चाहिये। निवेदन करके मूल मन्त्र पढ़ते हुये उस द्रव्य को वाम हस्त-युक्त दाहिने हाथ की वृद्धाङ्गुलि तथा तर्जनीयोग से देवता के बाँयीं ओर रखना चाहिये। निवेदन-काल में हथेली चित्त रखकर कार्य करना चाहिये, ताकि नख न दिखाई पड़े।

स्वागतं—कृताञ्जलिपुटो भूत्वा 'श्रीमद्दक्षिणकालिके देवि स्वागतं सुस्वागतं ते।

कृताञ्जलि होकर उक्त मन्त्र से स्वागत करना चाहिये।

पाद्यं—मूलमुच्चार्य 'एतत् पाद्यं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः' इति पादाम्बुजे।

मूल मन्त्र के साथ उक्त मूलोक्त मन्त्र से चरणकमल पर पाद्य अर्पित करना चाहिये। (पाद्य द्रव्य हैं—दूर्वा, अपराजिता, श्यामक धान्य तथा पद्म। इन चार को निवेदित करना चाहिये अथवा उशीर तथा चन्दन पादतल पर छोड़ना चाहिये)।

अर्घ्यं—मूलमुच्चार्य 'इदमर्घ्यं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै स्वाहा। इति गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपदूर्वात्मकमर्घ्यं शिरसि दद्यात्।

मूल मन्त्र के साथ उक्त मन्त्र पढ़ते हुये गन्ध, पुष्प, अक्षत, यव, कुशाग्र, तिल, सरसों, दूर्वा-मिश्रित जल शिर पर अर्पित करना चाहिये।

आचमनीयं—मूलमन्त्रमुच्चार्य 'इदमाचमनीयं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै स्वधा' इदमाचमनीयं वदने दद्यात्।

मूल मन्त्र के साथ उक्त मूलोक्त मन्त्र से मुख में आचमनीय प्रदान करना चाहिये अर्थात् मुख के उद्देश्य से छोड़ना चाहिये (आचमनीय द्रव्य हैं—जायफल, लौंग तथा कङ्कोल का चूर्ण। इन्हें जल से मिलाकर तैजस पात्र से अथवा कपूर, अगुरु तथा पुष्प को आचमनीय जल से मिलाकर प्रदान करना चाहिये। आचमनीय प्रदान का समय है—पाद्यदानोपरान्त एक बार, मधुपर्क-दानोपरान्त एक बार, स्नानोपरान्त एक बार, वस्त्र तथा यज्ञोपवीतार्पण के पश्चात् एक बार, नैवेद्यदानोपरान्त एक बार तथा भोगप्रदानोपरान्त एक बार)।

मधुपर्कः—मूलमुच्चार्य 'एष मधुपर्कः श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै स्वधा' इति मुखपङ्कजे दद्यात्।

मूलमन्त्रोच्चार के साथ मूलोक्त मन्त्र पढ़ते हुये मुखकमल हेतु प्रदान करना चाहिये (मधुपर्क द्रव्य हैं—दधि, घृत, नारियल जल, मधु तथा शर्करा। इसमें मधु अधिक तथा शेष सब समान होने चाहिये। किसी के मत से कांस्य तथा रजतपात्र में मधुपर्क नहीं देना चाहिये और वह पात्र आठ अङ्गुल से छोटा नहीं होना चाहिये)।

पुनराचमनीयं—मूलमुच्चार्य 'इदं पुनराचमनीयं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै स्वधा' इति केवलजलेन देव्या मुखे पुनराचमनीयं दद्यात्।

मूल मन्त्र से साथ मूलोक्त मन्त्र से केवल जल देवी के मुख के लिये प्रदान करना चाहिये।

स्नानीयं—मूलमुच्चार्य 'इदं स्नानीयं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः' इति देव्या सर्वाङ्गे दद्यात्।

मूल मन्त्र पढ़कर मूलोक्त मन्त्र द्वारा देवी के सर्वाङ्ग में जल प्रदान करना चाहिये (स्नानीय जल हैं—गन्ध, पुष्प, अक्षत-मिश्रित जल। साधक इच्छानुसार 'नमः' अथवा 'निवेदयामि' कह सकते हैं)।

वसनं—मूलमुच्चार्य इदं वस्त्रं (सोत्तरीयवस्त्रं) श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः' इति देव्याः सर्वाङ्गे दद्यात् ।

मूल मन्त्र के साथ मूलोक्त मन्त्र से देवता के सर्वाङ्ग पर वस्त्र प्रदान करना चाहिये (शक्तिपूजा, सूर्यपूजा तथा गणेशपूजा में लाल वस्त्र, विष्णुपूजार्थ पीत वस्त्र तथा शिव-पूजार्थ श्वेत वस्त्र उत्तम होता है। सभी वस्त्र साफ, छिद्ररहित रेशमी अथवा कपास रुई से बने होने चाहिये। वे तैलादि लगे, कीड़े से कटे, जीर्ण, चूहे के काटे नहीं होने चाहिये। वस्त्र इतना बड़ा प्रदान करना चाहिये कि युवती रमणी उसे पहन सके। अन्यत्र कहा है कि १½ हाथ से छोटा वस्त्र नहीं होना चाहिये)।

आभरणं—मूलमुच्चार्य 'इदं रजताभरणं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः' इत्याभरणं दद्यात् ।

मूल मन्त्र पढ़ते हुये मूलोक्त मन्त्र से आभरण प्रदान करना चाहिये (आभरण ऐसा होना चाहिये कि कम से कम आठ वर्ष की कन्या उसे धारण कर सके। जो असमर्थ हों, वे मात्र एक स्वर्ण अथवा चांदी की अङ्गूठी प्रदान कर सकते है। भूषणदान के साथ उपभूषण भी दिया जाता है, जैसे—छत्र, चामर, पादुका आदि)।

गन्धः—मूलमुच्चार्य 'एष गन्धः श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः' इति मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैरङ्गुल्यग्रेण देवीचरणे दद्यात् ।

मूल मन्त्र का उच्चारण करके मूलोक्त मन्त्र पढ़कर मध्यमा, अनामिका तथा अङ्गुष्ठ द्वारा गन्ध द्रव्य देवी के चरण में प्रदान करना चाहिये (यदि रक्त चन्दन प्रदान करना हो तब 'मूल मन्त्र' पढ़कर 'इदं रक्तचन्दनं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः' से प्रदान करना चाहिये)।

पुष्पं—मूलमुच्चार्य 'इदं सचन्दनपुष्पं श्रीमद्दक्षिकालिकायै देवतायै वौषट्' इति ज्ञानमुद्रया पुष्पं बिल्वपत्रं दद्यात् । ततो मूलेन पञ्चपुष्पाञ्जलिं दत्त्वा धूपदीपौ दद्यात् ।

मूल मन्त्र पढ़कर मूलोक्त मन्त्र द्वारा ज्ञानमुद्रा से पुष्प तथा बिल्वपत्रार्पण करना चाहिये। तदनन्तर मूल मन्त्र से पञ्चपुष्पाञ्जलि देकर धूप-दीपार्पण भी करना चाहिये।

विशेष—निषिद्ध पुष्प नहीं देना चाहिये; यथा—सूखा, बासी, भूमि पर गिरा पुष्प (लेकिन शेफालिका तथा बकुल भूमिपतित भी दे सकते हैं, अन्य नहीं)। कीड़ों से खाया, कीड़े लगा, केशादि से दूषित, उग्र गन्ध वाला अथवा गन्धहीन, बाँयें हाथ में रखा, प्रणाम के समय हाथ में लिया हुआ, बाँयें हाथ से वृक्ष से तोड़ा पुष्प, जल में धुला, डाल तोड़कर अथवा वृक्ष उखाड़ कर लिया गया फूल, अशुद्धि से छूआ गया, जानबूझकर सूँघा, पहने वस्त्र में रखा, बाजार से खरीदा, मध्याह्न स्नानोपरान्त वृक्ष से तोड़ा, मस्तक-कान आदि

पर रखा, पलाश, कास का पुष्प, शरत् काल के अतिरिक्त अन्य ॠतु में उत्पन्न शेफालिका तथा बकुल, शिखायुक्त जवा, अन्य देवालय में उत्पन्न पुष्प, दूसरे के बाग से चोरी से लाया गया पुष्प, भृत्यों के सिवाय अन्य शूद्रों से लाया गया पुष्प निषिद्ध होता है। बकुल, अशोक, अर्जुन तथा कुटजपुष्प का वृन्त तोड़कर पूजा करनी चाहिये। अन्य सभी पुष्प वृन्तयुक्त उपयोग में लाना चाहिये। यदि जल में उत्पन्न पुष्प अन्त्यज भी लाये तब भी ग्राह्य होता है। लेकिन स्थलज पुष्प अन्त्यज द्वारा लाया ग्राह्य नहीं होता है। कुन्द, कुरुबक, केतकी, झिन्टी, पीला तगर, श्वेत उड्र, कृष्ण अर्जुन, लाल कुन्द, नीलकण्ठ, कुरुण्टक, मदार, मन्दार से भगवती की पूजा निषिद्ध है। बक तथा मालती-पुष्प से काली एवं तारा का पूजन नहीं करना चाहिये। नागकेशर, धतूरा, अडूसा, किंशुक, कृष्णकेलि तथा काञ्चन-पुष्प से त्रिपुरा की, काञ्चन पुष्प से लक्ष्मी की, कुन्द, अशोक तथा तगर एवं तुलसी से गणेश की, कुन्द, मन्दार, नागकेशर, काष्ठतगर तथा धतूरा-फूल से सूर्य की, बन्धुजीव तथा द्रोणपुष्प से सरस्वती की, पद्म को छोड़कर अन्य जलज पुष्प से दुर्गा की तथा माघ मास के अतिरिक्त अन्य ॠतु में पुष्पित कुन्द, शेफालिका, जवा, काष्ठमल्लिका, बकुल, मालती, जूही, केतकी, कुमुद, कोकिलाक्ष, कनेर, बन्धूक, नागकेशर, कुटज तथा जयन्ती से शिवपूजा निषिद्ध है।

कुन्द, कल्हार, कमल, बकपुष्प तथा बिल्व एवं तुलसी-पत्र बासी नहीं होते। जो कली हैं, वे एवं माली के घर में रखे फूल भी बासी नहीं माने जाते। सफेद कमल, रक्तकमल, कुमुद तथा उत्पल पुष्प पाँच दिनों तक तथा कनेर एक दिन तक बासी नहीं माने जाते। बेलपत्र, जातीपुष्प, तमाल तथा पद्मपुष्प यदि छिन्न-भिन्न हों तब भी पूजन में प्रयुक्त हो सकते हैं।

धूपः— ॐ वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुमनोहरः।
आघ्रेय सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

इति पठन् मूलमुच्चार्य 'एष धूपः श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः' इति निवेदयेत्। ततः फट् इति घण्टां प्रक्षाल्य 'ॐ जयध्वनिमन्त्रमातः स्वाहा' इति सम्पूज्य वामहस्तेन तां वादयन् धूपं दद्यात्।

तदनन्तर 'ॐ वनस्पतिरसो' से लेकर 'प्रतिगृह्यताम्' पर्यन्त पढ़कर मूलमन्त्रोच्चारण करके 'एष धूपः श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः' से धूप निवेदित करने के उपरान्त 'फट्' मन्त्र से घंटा का प्रक्षालन करके उसका पूजन 'ॐ जयध्वनिमन्त्रमातः स्वाहा' से करके बाँयें हाथ से उसे बजाकर धूप प्रदान करना चाहिये।

विशेष—घण्टापूजनोपरान्त बाँयें हाथ में घण्टा उठाकर घण्टा बजाते समय दाहिने हाथ की अनामा तथा मध्यमा के मध्यपर्व तथा अङ्गूठा द्वारा धूपपात्र उठाकर बीजमन्त्र एवं

गायत्रीमन्त्र पढ़ते-पढ़ते धूपपात्र को देवता की नाक-पर्यन्त बारम्बार घुमाना चाहिये। अन्त में अपने दाहिने उसे रखना चाहिये। धूपपात्र को अपने बाँयें नहीं रखना चाहिये।

दीपः—ॐ सुप्रकाशो महादीपः सर्वतस्तिमिरापहः।
सबाह्याभ्यन्तरज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

इति पठन् मूलमुच्चार्य 'एष दीपः श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः' इति दृष्टिपर्यन्तं दीपं दद्यात्।

मूलोक्त श्लोक को पढ़कर मूल मन्त्र के साथ मूलोक्त मन्त्र पढ़ते हुये दीप प्रदान करना चाहिये (दीप-निवेदन में भी बाँयें हाथ से घंटा की ध्वनि करते-करते बीजमन्त्र तथा उन देवता की गायत्री पढ़ते-पढ़ते जैसे धूपपात्र दाहिने हाथ में लिया जाता है, उसी विधि से दीप को लेकर देवता के नेत्र तक तीन बार घुमाकर बाँयें अथवा दाहिने रखना चाहिये)।

नैवेद्यं—मूलेन पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा नैवेद्यमानीयं अधोमुखत्रिकोण-मण्डलोपरि साधारे पुरतः संस्थाप्य अर्घ्यवारिणा फडिति सम्प्रोक्ष्य चक्रमुद्रया अभिरक्ष्य वायुबीजेन संशोध्य वह्निबीजेन संदह्य धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य तदुपरि मूलं दशधा जप्त्वा मूलमुच्चार्य 'इदं सघृतोपकरण-नैवेद्यं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै निवेदयामि' इति निवेदयेत्।

मूल मन्त्र से पुष्पाञ्जलित्रय प्रदान करके नैवेद्य लाकर अधोमुख त्रिकोणमण्डल पर पहले आधार पर संस्थापित कर अर्घ्यजल से 'फट्' मन्त्र द्वारा सप्रोक्षित करके चक्रमुद्रा से उसकी अभिरक्षा करनी चाहिये। तदनन्तर वायुबीज 'वं' से संशोधित करके वह्निबीज 'रं' से उसे दह्यमान करके धेनुमुद्रा से अमृतीकृत करना चाहिये। उस पर मूल मन्त्र का दस बार जप कर मूल मन्त्र के साथ 'इदं सघृतोपकरणनैवेद्यं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै निवेदयामि' द्वारा निवेदित करना चाहिये।

विशेष—सुवर्ण, रजत, ताम्र, कांस्य अथवा अपने हाथ से बनाये गये मिट्टी के पात्र, अथवा पत्थर के पात्र अथवा यज्ञकाष्ठ से बने पात्र में नैवेद्य प्रदान करना चाहिये। आमान्न को देवता के दाहिने तथा पक्वान्न को देवता के बाँयें रखना चाहिये। अथवा दोनों को मिली हालत में देवता के सामने रखने का भी विधान है। अंगूठे से नैवेद्य-पात्र का स्पर्श करके नैवेद्य की अर्चना करनी चाहये; अन्यथा नैवेद्य राक्षस को जाता है। कालीपूजा में नैवेद्य पर दस बार तथा अन्य देवियों की पूजा में आठ बार मूल मन्त्र पढ़ने का विधान है। शाक्तानन्दतरङ्गिणी के मत से नैवेद्य-निवेदनोपरान्त उसे दोनों हाथों से उठाकर इष्टदेवता के मुख के पास पकड़े रखकर पहले मूल मन्त्र तदनन्तर 'जगन्मातर्जगद्धात्रि श्रीमद्दक्षिणकालिके निवेदयामि यत् किञ्चित् यूषाणेदं हविर्नमः' यह श्लोक पढ़ना चाहिये। तब नैवेद्य यदि आमान्न है तो देवता के दाहिने रखना चाहिये और यदि पक्वान्न (सिद्धान्न) है, तो उसे देवता

के बाँयें रखना चाहिये। सभी द्रव्यों को निवेदन करने के पहले केवल अर्घ्यजल से ही प्रोक्षण करना चाहिये, अन्य जल वर्जित है।

पानार्थोदकं—मूलमुच्चार्य 'इदं पानार्थोदकं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः' इति निवेद्य पूर्ववत् पुनराचमनीयं दद्यात्।

पीने का जल पहले मूल मन्त्र और उसके बाद मूलोक्त मन्त्र जोड़कर निवेदित करना चाहिये। तदनन्तर पूर्ववत् पुनराचमनीय प्रदान करना चाहिये।

ताम्बूलं—पुरतः साधारे संस्थाप्य वामहस्ताङ्गुष्ठेन विधृत्य पूर्ववत् अभ्यर्च्य मूलमुच्चार्य 'एतत् ताम्बूलं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै निवेदयामि' इति दक्षिणहस्तस्य अनामिकाङ्गुष्ठयोगेन निवेदयेत्।

ताम्बूल को सामने आधार पर रखकर बाँयें हाथ के अङ्गूठे से स्पर्श करके पूर्ववत् अर्चना करके मूल मन्त्र के साथ मूलोक्त मन्त्र से निवेदित करना चाहिये। इसे दाहिने हाथ की अनामिका तथा अङ्गुष्ठ से निवेदित करना चाहिये।

विशेष—चूना, कत्था, इलायची, दारुचीनी, जायफल, कपूर, धनियाँ, कस्तूरी तथा सुपाड़ी-मिश्रित ताम्बूल देना चाहिये। जो ताम्बूल लता अशोक, शाल्मली, पलाश, कटहल तथा बहेड़ा पर चढी हो, उस ताम्बूल को देवता को प्रदान करना वर्जित है।

दशोपचारदानप्रकारमाह—

पाद्यं—(मूलमन्त्र +) **एतत् पाद्यं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः।**

अर्घ्यं—(मूलमन्त्र +) **इदमर्घ्यं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै स्वाहा।**

आचमनीयं—(मूलमन्त्र +) **इदमाचमनीयं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै स्वधा।**

स्नानीयं—(मूलमन्त्र +) **इदं स्नानीयं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै निवेदयामि।**

गन्धः—(मूलमन्त्र +) **एष गन्धः श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै निवेदयामि नमः।**

पुष्पं—(मूलमन्त्र +) **इदं सचन्दनपुष्पं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै वौषट्।**

बिल्वपत्रं—(मूलमन्त्र +) **इदं सचन्दनबिल्वपत्रं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः।**

धूपः—(मूलमन्त्र +) **एष धूपः श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः।**

दीपः—(मूलमन्त्र +) **एष दीपः श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः।**

नैवेद्यं—(मूलमन्त्र +) **इदं नैवेद्यं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै निवेदयामि।**

पानार्थोदकं—(मूलमन्त्र +) **इदं पानार्थोदकं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः।**

पुनराचमनीयं—(मूलमन्त्र +) **इदं पुनराचमनीयं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै स्वधा।**

ताम्बूलं—(मूलमन्त्र +) **इदं ताम्बूलं श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै निवेदयामि।**

अथ तत्त्वमुद्रया मूलमुच्चार्य श्रीमद्दक्षिणकालिकां देवीं तर्पयामि स्वाहा इति देव्या मुखे त्रिः सन्तर्प्य मूलमुच्चार्य 'एष सचन्दनपुष्पाञ्जलिः

श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै वौषट्' इति मन्त्रेण पुष्पाञ्जलिपञ्चकं पुष्पाञ्जलित्रयं पुष्पाञ्जलिमेकं वा दद्यात् ।

अब तत्त्वमुद्रा से मूलोक्त तर्पणमन्त्र से देवी के मुख में तीन बार तर्पण करके मूलोक्त मन्त्र द्वारा तीन पुष्पाञ्जलि, पाँच पुष्पाञ्जलि अथवा एक पुष्पाञ्जलि प्रदान करनी चाहिये ।

विशेष—उपचार प्रदान के समय सबके साथ पहले मूल मन्त्र, तदनन्तर द्रव्य का नाम, तदनन्तर चतुर्थी विभक्तियुक्त देवता का नाम, तदनन्तर अर्पणात्मक (त्यागात्मक) वाक्य कहना चाहिये ।

अथ योनिमुद्रां प्रदर्श्य कृताञ्जलिपुटो भूत्वा इष्टदेवतां प्रार्थयेत् । यथा— श्रीमद्दक्षिणकालिके देवि आज्ञापय भवत्याः परिवारान् पूजयामि । अथ मनसा देव्यनुज्ञां लब्ध्वा विभाव्य पूंजयेत् ।

अब योनिमुद्रा प्रदर्शित करके अञ्जलिबद्ध होकर इष्टदेवता से प्रार्थना करनी चाहिये कि मैं आपके परिवार का पूजन करना चाहता हूँ । देवि! आज्ञा दीजिये । अब यह भावना करनी चाहिये कि देवी से आज्ञा मिल गयी है और पूजन करना चाहिये ।

अथ आवरणपूजा; यथा—केशरेषु अग्न्यादिकोणेषु मध्ये च 'ॐ क्रां हृदयाय नमः । ॐ क्रीं शिरसे स्वाहा । ॐ क्रूं शिखायै वषट् । ॐ क्रैं कवचाय हुं । ॐ क्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् । चतुर्दिक्षु—ॐ क्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट् । ततो गुरुं, परमगुरुं, परापरगुरुं, परमेष्ठिगुरुं च सम्पूज्य,

सर्वाः श्यामा असिकरा मुण्डमालाविभूषिताः ।
तर्जनीं वामहस्तेन धारयन्त्यः शुचिस्मिताः ।
दिगम्बरा हसन्मुख्यः स्वस्ववाहनभूषिताः ।

अब आवरणपूजा कहते हैं । केशरों में अग्न्यादिकोण से तथा मध्य में 'ॐ क्रां हृदयाय नमः । ॐ क्रीं शिरसे स्वाहा । ॐ क्रूं शिखायै वषट् । ॐ क्रैं कवचायं हुं । ॐ क्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्' से पूजन करना चाहिये । चारो दिशाओं में 'ॐ क्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्' से पूजन करना चाहिये । तदनन्तर गुरु, परमगुरु, परापरगुरु, परमेष्ठिगुरु का पूजन करके भगवती का मूलोक्त श्लोकों से ध्यान करना चाहिये, जो 'सर्वाः श्यामा' से लेकर 'वाहनभूषिताः' पर्यन्त है ।

एवं ध्यात्वा बहिः षट्कोणे ॐ काल्यै नमः, ॐ कपालिन्यै नमः, ॐ कुल्लायै नमः, ॐ कुरुकुल्लायै नमः, ॐ विरोधिन्यै नमः, ॐ विप्रचित्तायै नमः, ॐ उग्रायै नमः, ॐ उग्रप्रभायै नमः इत्यन्तत्र्यस्रे । 'ॐ नीलायै नमः, ॐ घनायै नमः, ॐ बलाकायै नमः' इति द्वितीयत्र्यस्रे ।

'ॐ मात्रायै नमः, ॐ मुद्रायै नमः, ॐ मितायै नमः' इति तृतीयत्र्यस्रे ।

ततः अष्टपत्रेषु पूर्वादिक्रमेण—ॐ आं ब्राह्मयै नमः, ॐ ईं नारायण्यै नमः, ॐ ऊं माहेश्वर्यै नमः, ॐ ॠं चामुण्डायै नमः, ॐ ॡं कौमार्यै नमः । ॐ ऐं अपराजितायै नमः, ॐ औं वाराह्यै नमः, ॐ अः नारसिंह्यै नमः ।

इस प्रकार ध्यान करके बाह्य षट्कोण में तथा अष्टपत्र आदि में मूलोक्त विधि से पूजन करना चाहिये । सब मन्त्र मूल में अङ्कित हैं (श्यामारहस्य में ब्राह्मी आदि अष्टशक्ति के ध्यान का भी विधान अङ्कित है । उसे श्यामारहस्य में देखना चाहिये) ।

ततः पत्राग्रे असिताङ्गादिभैरवान् पूजयेत् । यथा—ॐ ऐं ह्रीं अं असिताङ्गभैरवाय नमः । ॐ ऐं ह्रीं इं रुरुभैरवाय नमः । ॐ ऐं ह्रीं उं चण्डभैरवाय नमः । ॐ ऐं ह्रीं ॠं क्रोधभैरवाय नमः । ॐ ऐं ह्रीं ॡं उन्मत्तभैरवाय नमः । ॐ ऐं ह्रीं ऐं कपालिभैरवाय नमः । ॐ ऐं ह्रीं ओं भीषणभैरवाय नमः । ॐ ऐं ह्रीं अं संहारभैरवाय नमः ।

तदनन्तर पत्राग्र में मूलोक्त मन्त्रों से भैरवगण का पूजन करना चाहिये ।

तत इन्द्रादिलोकपालान् पूजयेत् । यथा—

ॐ लां इन्द्राय सुराधिपतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय श्रीमद्दक्षिणकालिकापारिषदाय नमः ।

ॐ रां अग्नये तेजोधिपतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय श्रीमद्दक्षिणकालिकापारिषदाय नमः ।

ॐ यां यमाय प्रेताधिपतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय श्रीमद्दक्षिणकालिकापारिषदाय नमः ।

ॐ क्षां निर्ऋतये राक्षसाधिपतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय श्रीमद्दक्षिणकालिकापारिषदाय नमः ।

ॐ वां वरुणाय जलाधिपतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय श्रीमद्दक्षिणकालिकापारिषदाय नमः ।

ॐ यां वायवे प्राणाधिपतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय श्रीमद्दक्षिणकालिकापारिषदाय नमः ।

ॐ कुं कुबेराय यक्षाधिपतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय श्रीमद्दक्षिणकालिकापारिषदाय नमः ।

ॐ हां ईशानाय गणाधिपतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय श्रीमद्दक्षिणकालिकापारिषदाय नमः ।

ॐ ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय श्रीमद्दक्षिणकालिकापारिषदाय नमः ।

ॐ आं ब्रह्मणे प्रजाधिपतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय श्रीमद्दक्षिणकालिकापारिषदाय नमः ।

पुनस्तेषामस्त्राणां पृथक् पूजा कर्त्तव्या । तत्र प्रकारः—ॐ शक्तये नमः, ॐ दण्डाय नमः, ॐ खड्गाय नमः, ॐ पाशाय नमः, ॐ अङ्कुशाय नमः, ॐ गदायै नमः, ॐ शूलाय नमः, ॐ चक्राय नमः, ॐ पद्माय नमः । ततो मूलेन पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा पाद्यादिना देव्या दक्षिणे महाकालं पूजयेत् ।

तदनन्तर इन्द्रादि लोकपाल तथा उनके अस्त्रों का मूलोक्त मन्त्रों से पूजन करके मूलमन्त्रोच्चारण से तीन पुष्पाञ्जलि देकर पाद्यादि से देवी के दक्षिण में महाकाल का पूजन करना चाहिये ।

अथ महाकालं ध्यायेत् । यथा—

महाकालं यजेद्देव्या दक्षिणे धूम्रवर्णकम् ।
बिभ्रतं दण्डखट्वाङ्गं दंष्ट्राभीममुखं शिशुम् ।
व्याघ्रचर्मावृतकटिं तुन्दिलं रक्तवाससम् ।
त्रिनेत्रमूर्ध्वकेशञ्च मुण्डमालाविभूषितम् ।
जटाभारलसच्चन्द्रखण्डमुग्रं ज्वलन्निभम् ।

इस प्रकार महाकाल का ध्यान करना चाहिये ।

इति ध्यात्वा 'हुं क्षों यां रां लां वां क्रों महाकालभैरव सर्वविघ्नान् नाशय नाशय ह्रीं श्रीं फट् स्वाहा' एतत् पाद्यं महाकालभैरवाय नमः । इत्यनेन प्रकारेण पाद्यादिभिः पूजयेत् । असमर्थश्चेत् पञ्चोपचारेण गन्ध-पुष्पेण वा पूजयेत् ।

ध्यानोपरान्त मूलोक्त मन्त्र से पाद्यादि से पूजन करना चाहिये । जो असमर्थ हैं, वे पञ्चोपचार से अथवा गन्ध-पुष्प से पूजन कर सकते हैं ।

ततस्तत्त्वमुद्रया पूर्ववत् देवीं तर्पयेत् । समर्थश्चेत् अस्मिन्नेव समये अन्नव्यञ्जनादिकं निवेद्य मस्तके हृदये मूलाधारे पादाम्बुजे सर्वाङ्गेषु च पञ्चपुष्पाञ्जलीन् दद्यात् । समर्थश्चेत् बलिदानं नीराजनञ्च कुर्यात् ।

अब तत्त्वमुद्रा से देवी का तर्पण करना चाहिये । समर्थ होने पर इस समय अन्न-व्यञ्जनादि निवेदन करके पञ्चपुष्पाञ्जलि को देवी के मस्तक, हृदय, मूलाधार, पादाम्बुज

तथा सर्वाङ्ग पर प्रदान करना चाहिये। समर्थ व्यक्ति को बलिदान तथा नीराजन करना चाहिये। (बलि-विधान हेतु आगमतत्त्वविलास ग्रन्थ देखना चाहिये)।

विशेष—देवता के बाँयीं ओर त्रिकोण, वृत्त, चतुरस्र अङ्कित करके 'ॐ एते गन्धपुष्पे मण्डलाय नमः' कहकर मण्डल-पूजन करके उस पर साध्य का बलिदान स्थापित करना चाहिये। उसमें तण्डुल, दधि, हल्दी, नमक, अदरख, मांस, मछली, तीर्थजल-प्रभृति संस्थापित करके कृताञ्जलि होकर 'ॐ एह्येहि जगतां मातर्जगतां जननि शुभे। गृह्ण गृह्ण इमं नित्यं सिद्धिं मे देहि देहि शत्रुक्षयं कुरु कुरु हुं फट् स्वाहा (बीजमन्त्र) 'एष सामिषान्नबलिः श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः' कहकर प्रदान करना चाहिये। महाकाल को भी यही बलि देनी चाहिये। मन्त्र है—'हुं क्ष्रौं यां रां लां वां क्रों महाकालभैरव श्मशानाधिप इमं बलिं गृह्णापय विघ्ननिवारणं कुरु सिद्धिं मे प्रयच्छ स्वाहा। एष समांसबलिः महाकालभैरवाय नमः'। समर्थ होने पर इस समय छागादि का बलिदान करना चाहिये, वह विधान आगमतत्त्वविलास ग्रन्थ में देखना चाहिये।

नीराजन पाँच प्रकार का होता है—दीपमाला से, जलपूर्ण शङ्ख से, धुले वस्त्र से, आम्र-पीपल आदि पल्लव से तथा साष्टाङ्ग प्रणाम से। दर्पण, चामर कर्पूरदीप तथा धूप से भी नीराजन करते हैं।

अथ नित्यहोमः—कुण्डं स्थण्डिलं समभूमिं वा सामान्यार्घ्योदकेन सम्प्रोक्ष्य तिस्रो रेखाः लिखेत्। ततो यथाविधि अग्निमानीय 'क्रव्यादेव्यो नमः' इति मन्त्रेण क्रव्यादांशं परित्यज्य मूलमन्त्रमुच्चरन् अङ्कितरेखात्रयोपरि वह्निं स्थापयेत्। ततः 'ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा' इति मन्त्रेण सतिलाज्याहुतित्रयं दद्यात्। ततः ॐ क्रों हृदयाय नमः स्वाहा इत्यादिक्रमेण षडङ्गहोमं कृत्वा 'ॐ असिताङ्गाद्यष्टभैरवेभ्यः स्वाहा' इति पूर्वाद्यष्टदिक्षु घृतधारया एकाहुतिं दद्यात्। अथ श्रीमद्दक्षिण-कालिके देवि इहागच्छ इहागच्छ इत्यादिना देवीमावाह्य स्वाहान्तमूल-मन्त्रेण षोडशाहुतिं दद्यात्। ततो महाकालबीजेन महाकालाय एकाहुतिं 'ॐ ह्रीं श्रीमद्दक्षिणे कालिकावरणदेवताभ्यः स्वाहा' इति च एकाहुतिं दत्त्वा नमस्कृत्य संहारमुद्रया इष्टदेवतां स्वहृदयमानीय 'अग्ने त्वं चन्द्रमण्डलं गच्छ' इति अग्निं विसृजेत्। इति नित्यहोमः।

अब नित्यहोम-विधान कहते हैं। कुण्ड, स्थण्डिल अथवा समभूमि का सामान्यार्घ्य जल द्वारा सम्प्रोक्षण करके तीन रेखा खींचे। वहाँ विधिपूर्वक अग्नि लाकर 'ॐ क्रव्यादेभ्यो नमः' से किञ्चित् अग्नि का परित्याग करे। तदनन्तर मूल मन्त्र पढ़ते हुये अङ्कित रेखात्रय के ऊपर अग्नि को स्थापित करे। तत्पश्चात् क्रमशः 'ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा' कहकर तिल-मिश्रित घृत से तीन आहुति प्रदान करे।

तदनन्तर 'क्रों हृदयाय नमः स्वाहा' इत्यादि क्रम से षडङ्ग होम करके 'ॐ असिताङ्गाद्यष्टभैरवेभ्यः स्वाहा' कहकर पूर्वादि आठो दिशाओं में घृत द्वारा एक-एक बार आहुति प्रदान करे। तदनन्तर देवी का आवाहन मूलोक्त मन्त्र से करके मूल मन्त्र में स्वाहा लगाकर सोलह आहुति देनी चाहिये। तदन्तर महाकाल बीज से महाकाल को एक आहुति देकर 'ह्रीं श्रीमद्दक्षिणकालिकावरणदेवताभ्यः स्वाहा' कहकर एक आहुति देकर नमस्कार करना चाहिये। तदनन्तर संहारमुद्रा से देवता को अपने हृदय में लाकर 'अग्ने त्वं चन्द्रमण्डलं गच्छ' कहकर अग्नि का विसर्जन करना चाहिये। यह नित्य होम होता है।

अथ प्राणायामत्रयं ऋष्यादिन्यासञ्च कृत्वा षडङ्गन्यासं विधाय यथाशक्ति कुल्लूका-सेतु-महासेतु-मुखशोधन-मन्त्रार्थभावना-मन्त्रचैतन्य-योनिमुद्रादिकं कृत्वा मूलं यथाशक्ति जप्त्वा पुनः कुल्लूकां सेतुं महासेतुं अशौचभङ्गञ्च विधाय 'गुह्यातिगुह्यगोप्तृ त्व'मित्यादिना वामहस्तेन घण्टां वादयन् गोयोनिमुद्रया गन्धपुष्पसामान्यार्घ्यजलेन देव्या वामहस्ते जपं समर्प्य प्रणमेत्।

तदनन्तर तीन प्राणायाम तथा ऋष्यादि न्यासोपरान्त षडङ्गन्यास करके यथाशक्ति कुल्लूका, सेतु, महासेतु, मुखशोधन, मन्त्रार्थभावना, मन्त्रचैतन्य, योनिमुद्रादि कृत्य सम्पन्न करके मूल मन्त्र का यथाशक्ति जप करने के उपरान्त कुल्लूका, सेतु, महासेतु, अशौचभङ्ग सम्पन्न करके 'गुह्यातिगुह्यगोप्तृ' इत्यादि को पढ़ते हुये वाम हाथ से घण्टा बजाना चाहिये और गोयोनिमुद्रा से गन्ध-पुष्प, समान्यार्घ्य जल से देवी के बाँयें हाथ में जप समर्पण करके प्रणाम करना चाहिये।

ततो वामहस्तेन घण्टां वादयन् दक्षिणहस्तेन सामान्यार्घ्यजलं गृहीत्वा 'इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत् स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत् कृतं यदुक्तं यत् स्मृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा मां मदीयं सकलं श्रीमद्दक्षिणकालिकाचरणे समर्पयामि नमः' इति मन्त्रेण देव्याः सम्मुखे त्रिर्भ्रामयित्वा देवीचरणाम्बुजे समर्पयेत्। इति आत्मसमर्पणम्। ततः स्तुत्वा प्रदक्षिणीकृत्याष्टाङ्गप्रणामं कुर्यात्। शक्तश्चेत् अस्मिन्नेव समये कवचादिकं पठेत्।

तदनन्तर बाँयें हाथ से घंटा बजाते-बजाते गो-योनिमुद्रा से गन्ध-पुष्प-सामान्यार्घ्य जल द्वारा देवी के वामहस्त में जप-समर्पण करके मूलोक्त 'इतः पूर्वं' से लेकर 'समर्पयामि नमः' पर्यन्त मन्त्र से देवी को नमस्कार करना चाहिये। तदनन्तर घंटा बजाते हुये सामान्यार्घ्य जल लेकर मूलोक्त 'इतः पूर्वं' इत्यादि मन्त्र पढ़कर देवी के सामने तीन बार घुमाकर उसे (जलादि को) देवी के चरणों में समर्पित करना चाहिये। यही है—

आत्मसमर्पण। तदनन्तर स्तवपाठ करके प्रदक्षिणा करने के पश्चात् देवी को साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिये। समर्थ व्यक्ति को कवचादि का भी पाठ करना चाहिये।

अथ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा

ॐ आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्।
पूजाञ्चैव न जानामि त्वं गतिः परमेश्वरि॥
उत्तरे शिखरे देवि भूम्यां पर्वतवासिनि।
ब्रह्मयोनिसमुत्पन्ने गच्छ देवि ममान्तरम्॥

श्रीदक्षिणकालिके देवि क्षमस्व।

तदनन्तर कृताञ्जलि होकर देवी से मूलोक्त मन्त्र से क्षमा माँगनी चाहिये।

इति पठन् आवरणदेवता देव्या अङ्गे विलाप्य ऐशान्यां अधोमुखत्रिकोण-मण्डलं कृत्वा संहारमुद्रया निर्माल्यपुष्पमानीय 'ऐं ह्रीं क्लीं सौः ऐं ज्येष्ठमातङ्गि नमामि उच्छिष्टचाण्डालिनि त्रैलोक्यवशङ्करि स्वाहा, इदं निर्माल्यपुष्पादिकं उच्छिष्टचाण्डालिन्यै नमः' इति मन्त्रेण निर्माल्यपुष्पं जलं किञ्चित् नैवेद्यमपि मण्डलोपरि दद्यात्। ततो नैवेद्यशेषं इष्टेभ्यो दत्त्वा किञ्चित् स्वीकृत्य पादोदकं पीत्वा निर्माल्यं स्वशिरसि विधृत्य यथेच्छं विहरेदिति।

तदनन्तर कृताञ्जलि होकर 'ॐ आवाहनं' इत्यादि मन्त्र का पाठ करके देवी के अङ्गों में आवरणदेवताओं का विलोप करके ईशानकोण में अधोमुख त्रिकोण मण्डल अङ्कित करके संहारमुद्रा योग से निर्माल्य पुष्पों को लाकर 'ऐं ह्रीं क्लीं' इत्यादि मन्त्र से निर्माल्य पुष्प, जल तथा किञ्चित् नैवेद्य को मण्डल के ऊपर प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर इष्ट को नैवेद्य प्रदान करके किञ्चित् स्वयं भी प्राप्त करके 'पादोदक' पीकर (निर्माल्यं स्वशिरसि विधृत्य) निर्माल्य को शिर पर रखना चाहिये तथा (यथेच्छं विहरेदिति) इच्छानुसार विहार करना चाहिये।

●

त्रिपुरसुन्दरीपूजापद्धतिः

साधको ब्राह्ममुहूर्त्ते उत्थाय प्रातःकृत्यादिकं विधाय साधारणपूजापद्धति-क्रमेण पीठन्यासान्तं कर्म सम्पाद्य हृत्पद्मस्य पूर्वादिकेशरेषु 'ॐ इच्छायै नमः, ॐ ज्ञानायै नमः, ॐ क्रियायै नमः, ॐ कामिन्यै नमः, ॐ कामदायिन्यै नमः, ॐ रत्यै नमः, ॐ रतिप्रियायै नमः, ॐ नन्दायै नमः । मध्ये—ॐ मनोन्मन्यै नमः । तदुपरि—ॐ ऐं परायै नमः, ॐ अपरायै नमः, ॐ परापरायै नमः, ॐ हेसौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः' इति पीठशक्तीर्विन्यस्य सङ्क्षेपषोढां कृत्वा ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् । यथा—(मूलमुच्चार्य) अस्य श्रीमत् त्रिपुरसुन्दरीमन्त्रस्य दक्षिणामूर्त्ति ऋषिः पङ्क्तिच्छन्दः श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी देवता वाग्भवकूटं बीजं शक्तिकूटं शक्तिः कामराजकूटं कीलकं पुरुषार्थचतुष्टयसिद्ध्यर्थे विनियोगः । शिरसि—दक्षिणामूर्त्तये ऋषये नमः । मुखे—पङ्क्तिच्छन्दसे नमः । हृदि—श्रीमत् त्रिपुरसुन्दर्यै देवतायै नमः । गुह्ये—वाग्भवकूटाय बीजाय नमः । पादयोः—शक्तिकूटाय शक्तये नमः । सर्वाङ्गे—कामराजकूटाय कीलकाय नमः ।

साधक द्वारा ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर प्रातःकृत्यादि कार्य करके साधारण पूजापद्धति क्रम से पीठन्यास कर्म सम्पादित करने के अनन्तर हृत्पद्म के पूर्वादि केशर में, मध्य में और उसके ऊपर मूलोक्त मन्त्रों से पूजन करना चाहिये । इस प्रकार पीठशक्ति-विन्यास के पश्चात् सङ्क्षेप षोढ़ान्यास करके ऋष्यादि न्यास करना चाहिये । सभी के मन्त्र मूल में अङ्कित हैं ।

अथ वशिन्यादिन्यासः; तत्त्वमुद्रया ब्रह्मरन्ध्रे—अं आं इं ईं उं ऊं ॠं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः व र लूं वशिनीवाग्देवतायै नमः । ललाटे—कं खं गं घं ङं कलह्रीं कामेश्वरीवाग्देवतायै नमः । भ्रूमध्ये—चं छं जं झं ञं नवलीं मोदिनीवाग्देवतायै नमः । कण्ठे—टं ठं डं ढं णं वं विमलावाग्देवतायै नमः । हृदि—तं थं दं धं नं यमरीं अरुणावाग्देवतायै नमः । नाभौ—पं फं बं भं मं हसलवयूं जयिनीवाग्देवतायै नमः । मूलाधारे—यं रं लं वं झमरयूं सर्वेश्वरीवाग्देवतायै नमः । सर्वाङ्गे—शं षं सं हं ळं क्षं क्षमरीं कौलिनीवाग्देवतायै नमः ।

इस प्रकार वशिन्यादि न्यास मूलोक्त मन्त्रों से करना चाहिये ।

अथ करन्यासः—अं मध्यमाभ्यां नमः । आं अनामिकाभ्यां नमः ।

सौः कनिष्ठाभ्यां नमः । अं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । आं तर्जनीभ्यां नमः । सौः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

अथाङ्गन्यासः—ऐं हृदयाय नमः । क्लीं शिरसे स्वाहा । सौः शिखायै वषट् । ऐं कवचाय हुं । क्लीं नेत्रत्रयाय वौषट् । सौः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट् । ततो मूलेन व्यापकं कुर्यात् ।

मूलोक्त मन्त्रों से करन्यास तथा अङ्गन्यासोपरान्त मूल मन्त्र से व्यापकन्यास करना चाहिये ।

समर्थश्चेत् बीजसहिता नवमुद्राः प्रदर्शयेत् । यथा—द्रां—सर्वसङ्क्षोभिणी मुद्रा । द्रीं—सर्वद्राविणीमुद्रा । क्लीं—आकर्षिणीमुद्रा । ब्लूं—सर्वावेशिनीमुद्रा । सः—सर्वोन्मादिनीमुद्रा । क्रों—महाङ्कुशामुद्रा । हसखफ्रें—खेचरीमुद्रा । सौः—बीजमुद्रा । ऐं—योनिमुद्रा ।

अब सामर्थ्य वाले साधक को बीजसहित नव मुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये । मूलोक्त प्रकार से नवमुद्रा प्रदर्शन करना युक्तियुक्त होता है ।

अथ ध्यानम्—

बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम् ।
पाशाङ्कुशशरांश्चापं धारयन्तीं शिवां श्रये ।।

एवं ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पं दत्त्वा मानसैः सम्पूज्य आनन्दोऽहमिति विभाव्य दानार्घ्यस्थापनं कुर्यात् ।

अब इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—देवी बालसूर्यवत् आभायुक्ता, चतुर्भुजा तथा त्रिनेत्रा हैं । इनके चार हाथों में क्रमशः पाश, अङ्कुश, शर तथा चाप स्थित हैं । ऐसी भगवती शिवा का मैं भजन करता हूँ ।

इस प्रकार से ध्यान करके ध्यानपुष्प को अपने मस्तक पर रखकर मानस पूजन करके दानार्घ्य-स्थापन करना चाहिये ।

यथा—स्ववामे देव्याः पुरतः षट्कोणमध्यगतत्रिकोणयन्त्रं विलिख्य मूलमन्त्रेण षट्कोणं सम्पूज्य 'ॐ एते गन्धपुष्पे आधारशक्त्यादिभ्यो नमः' इति मण्डलमध्ये सम्पूज्य तत्र त्रिपदिकामारोप्य शेषं पूर्ववत् कुर्यात् । अस्मिन्नेव समये दानार्घ्यस्य वामपार्श्वे सामान्यार्घ्यस्थापनवत् पाद्यादिपात्रं संस्थाप्य आसनपूजामारभेत् ।

अपने वामभाग में तथा देवी के पूर्व में षट्कोण में त्रिकोण यन्त्र लिखकर मूल मन्त्र से षट्कोण का पूजन मूलोक्त मन्त्र से यन्त्र का करना चाहिये । वहाँ तिपाई रखकर शेष क्रिया पूर्ववत् करनी चाहिये । अब दानार्घ्य के बाँयें पार्श्व में सामान्यार्घ्य स्थापनवत् पाद्यादि

पात्र स्थापित करके आसनपूजा प्रारम्भ करनी चाहिये। (दानार्घ्य स्थापन प्रसङ्ग को दक्षिण काली-प्रसङ्ग में देखना चाहिये)।

विशेष—इसी समय विशेषार्घ्य-स्थापन का भी विधान है, लेकिन कालीकुल में विशेषार्घ्य नहीं होता। श्रीकुल में होता है। तन्त्र में कहा गया है कि काली, तारा, भुवनेश्वरी, अन्नपूर्णा, दुर्गा, महिषमर्दिनी, छिन्नमस्ता, बगला, त्रिपुरा, त्वरिता तथा प्रत्यङ्गिरा—ये सभी देवता कालीकुल में हैं और त्रिपुरसुन्दरी, धूमावती, मातङ्गी, स्वप्नावती, भैरवी तथा कमला—ये सभी श्रीकुलान्तर्गत हैं। अतः त्रिपुरसुन्दरी के पूजन में (जो साधक सामर्थ्यवान् हैं) विशेषार्घ्य-स्थापन करना चाहिये।

यथा उपर्युपरि यन्त्रस्य 'ॐ आधारशक्तये नमः, ॐ प्रकृतये नमः, ॐ कूर्माय नमः, ॐ अनन्ताय नमः, ॐ पृथिव्यै नमः, ॐ रसाम्बुधये नमः, ॐ रत्नद्वीपाय नमः, ॐ नन्दनोद्यानाय नमः, ॐ रक्तमण्डलाय नमः, ॐ कल्पवृक्षाय नमः, ॐ मणिवेदिकायै नमः, ॐ रत्नसिंहासनाय नमः' पीठोपरि वैन्दवचक्रे 'हेसौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः।

इस प्रकार मूलोक्त मन्त्रों से आसन-पूजन सम्पन्न करना चाहिये।

ततो वैन्दवचक्रे 'हसरैं हसकलरीं हसरौं' इति मन्त्रेण मूर्त्तिं सङ्कल्प्य उभयहस्ते त्रिखण्डां मुद्रां बद्ध्वा रक्तकुसुमगर्भतन्मुद्राद्वयसंयोगेन पुनर्ध्यात्वा प्रवहन्नासापुटेन पूर्ववत् तेजोमयं पुष्पाञ्जलावानीय,

ॐ महापद्मवनान्तस्थे कारणानन्दविग्रहे।
सर्वभूतहिते मातरेह्येहि परमेश्वरि॥

इति मूर्त्तौ संस्थाप्य आवाहनादि यथाशक्त्युपचारेण पूजां विधाय कृताञ्जलिपुटो भूत्वा 'देवि आज्ञापय परिवारांस्ते पूजयामि' इत्यात्मानं लब्धानुज्ञं विभाव्य षडङ्गानि पूजयेत्। यथा अग्नीशासुरवायव्यमध्ये दिक्षु च वाग्भवकूटमुच्चार्य (क ए ई ल ह्रीं) हृदयाय नमः।

कामराजकूटमुच्चार्य (ह स क ह ल ह्रीं) शिरसे स्वाहा। शक्तिकूटमुच्चार्य (स क ल ह्रीं) शिखायै वषट्। पुनर्वाग्भवमुच्चार्य (क ए ई ल ह्रीं) कवचाय हूं। कामराजमुच्चार्य (ह स क ह ल ह्रीं) नेत्रत्रयाय वौषट्। शक्तिकूटमुच्चार्य (स क ल ह्रीं) अस्त्राय फट्।

तदनन्तर वैन्दवचक्र में 'हसरैं हसकलरीं हसरौं' मन्त्र से मूर्त्ति की कल्पना करके त्रिखण्डा मुद्रा बद्ध करके रक्तपुष्प-सम्पूरित इन मुद्राओं द्वारा पुनः ध्यान करके जिस नासिका से वायु का प्रवाह हो रहा हो, उससे उस पुष्पाञ्जलि में पूर्ववत् तेज को लाकर (भावना द्वारा) 'ॐ महापद्मवनान्तस्थे' इत्यादि मूलोक्त मन्त्र से उस कल्पित मूर्त्ति में इस तेज को

स्थापित करके पूर्वकथित आवाहनादि उपचार से मानस-पूजा करके कृताञ्जलिबद्ध होकर देवी से उनके परिवार की पूजा-हेतु आज्ञा माँगकर यह भावना करनी चाहिये कि आज्ञा मिल गयी है और षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। यह पूजन अग्नि, ईशान, नैर्ऋत्य तथा वायु कोण में, मध्य तथा चारो दिशाओं में करना चाहिये। यह सब मन्त्र (षडङ्गपूजन मन्त्र) मूल में अङ्कित हैं।

ततो मध्यप्राक्त्र्यस्य मध्ये गुरुपङ्क्तिः पूजयेत्। यथा—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं गुरुभ्यो नमः, ॐ ऐ ह्रीं श्रीं गुरुपादुकाभ्यो नमः।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं परमगुरुभ्यो नमः, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं परमगुरुपादुकाभ्यो नमः।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं परापरगुरुभ्यो नमः, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं परापरगुरुपादुकाभ्यो नमः।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं परमेष्ठिगुरुपादुकाभ्यो नमः।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं आचार्येभ्यो नमः, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं आचार्यपादुकाभ्यो नमः।

ततश्चतुरस्रचक्रे प्रथमरेखायां ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अणिमाद्यष्टसिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि नमः। मध्यरेखायां ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ब्रह्माण्याद्यष्टदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अन्तरेखायां ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सर्वसंक्षोभिण्यादिमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुराचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः।

तदनन्तर मध्य प्राक् त्र्यस्य में गुरुपङ्क्ति का पूजन मूलोक्त मन्त्रों से करके चतुरस्र चक्र की प्रथम रेखा, मध्य रेखा तथा अन्तरेखा एवं चक्राग्र में मूलोक्त प्रकार से पूजन करना चाहिये।

अत्र त्रैलोक्यमोहनचतुरस्रचक्रे त्रिपुराचक्रनायिकाधिष्ठिते एता अणिमाद्याः प्रकटयोगिन्यः समुद्राः सायुधाः सपरिवाराः सवाहनाः पूजितास्तर्पिताः सन्तु, इति वामहस्ततत्त्वमुद्रया सामान्यार्घ्यजलं दक्षिणहस्ततत्त्वमुद्रया गन्धपुष्पाक्षतञ्च गृहीत्वा उभयमुद्रायोगेन मूलदेवताया अधोवामहस्ते समर्पयेत्।

अब बाँयें हाथ की तत्त्वमुद्रा में सामान्यार्घ्य से जल तथा दाहिने हाथ की तत्त्वमुद्रा में गन्ध, पुष्प, अक्षत लेकर दोनों हाथों को मिलाकर मूलोक्त 'अत्र' से लेकर 'पूजितास्तर्पिताः सन्तु' तक पढ़कर मूल देवता की भावना करके उनके नीचे वाले बाँयें हाथ में अर्पित कर देना चाहिये।

ततः षोडशपत्रेषु ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐ ओं औं अं अः कामाकर्षिण्यादिषोडशनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। चक्राग्रे ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐ ओं औं अं अः त्रिपुरेशीश्रीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि। अत्र सर्वाशापरिपूरके

गुप्तयोगिन्यः समुद्राः सायुधाः सपरिवाराः सवाहनाः पूजितास्तर्पिताः सन्तु, मूलदेवताया अधो वामहस्ते समर्पयेत् ।

अब मूलोक्त मन्त्र से पूर्ववत् प्रक्रिया से मूल देवता के अधः स्थित वामहस्त में समर्पण करना चाहिये। 'एताः' से लेकर 'सन्तु' तक मन्त्र है। इसे सर्वाशापरिपूरक षोडशदलचक्र-हेतु अर्पित करना होता है।

ततोऽष्टदले ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अनङ्गकुसुमाद्यष्टदेवीश्रीपादुकां पूजयामि। चक्राग्रे ॐ ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि।

अत्र सर्वसंक्षोभकरे अष्टदलचक्रे त्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाधिष्ठिते एता अनङ्गकुसुमाद्या गुप्ततरयोगिन्यः समुद्राः सायुधाः सपरिवाराः सवाहनाः पूजितास्तर्पिताः सन्तु, पूर्ववत् मूलदेव्या अधोवामहस्ते समर्पयेत् ।

ततश्चतुर्दशारचक्रे ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सर्वसंक्षोभिण्यादिचतुर्दशदेवीश्रीपादुकां पूजयामि। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरवासिनीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि।

अत्र सर्वसौभाग्यदायके चतुर्दशारचक्रे त्रिपुरवासिनीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः सर्वसङ्क्षोभिण्यादिशक्तयः सम्प्रदाययोगिन्यः समुद्राः सायुधाः सपरिवाराः सवाहनाः पूजितास्तर्पिताः सन्तु, पूर्ववत् मूलदेव्या अधोवामहस्ते समर्पयेत् ।

बहिर्दशारचक्रे ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सर्वसिद्धिप्रदादेवीश्रीपादुकां पूजयामि। चक्राग्रे ॐ ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुराश्रीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि।

अत्र सर्वार्थसाधके बहिर्दशारचक्रे त्रिपुराचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः सर्वसिद्धिप्रदादिदेव्यः कुलकौलिनीयोगिन्यः समुद्राः सायुधाः सपरिवाराः सवाहनाः पूजितास्तर्पिताः सन्तु, पूर्ववत् मूलदेव्या अधोवामहस्ते समर्पयेत् ।

अन्तर्दशारचक्रे ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सर्वज्ञादिदेवीश्रीपादुकां पूजयामि। चक्राग्रे ॐ ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरमालिनीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि।

अत्र सर्वरक्षाकरान्तर्दशारचक्रे त्रिपुरमालिनीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः। सर्वज्ञाद्या देव्यः निगर्भयोगिन्यः समुद्राः सायुधाः सपरिवाराः सवाहनाः पूजितास्तर्पिताः सन्तु, पूर्ववत् मूलदेव्या अधोवामहस्ते समर्पयेत् ।

अष्टारचक्रे ॐ ऐं ह्रीं श्रीं वशिन्याद्यष्टवाग्देवताश्रीपादुकां पूजयामि। चक्राग्रे ॐ ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरसिद्धाचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि।

अत्र सर्वरोगहराष्टारचक्रे त्रिपुरसिद्धचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः वशिन्याद्या रहस्ययोगिन्यः समुद्राः सायुधाः सापरिवाराः सवाहनाः पूजितास्तर्पिताः

सन्तु, पूर्ववत् मूलदेव्या अधोवामहस्ते समर्पयेत्। तन्त्रान्तरालत्र्यस्त्रे पूर्ववत् मूलषडङ्गानि पूजयेत्।

ततस्त्रिकोणमण्डलाग्रकोणे ॐ ऐं ह्रीं श्रीं कामेश्वरीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि। दक्षिणकोणे ॐ ऐं ह्रीं श्रीं वज्रेश्वरीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि। वामकोणे ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगमालिनीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि। चक्राग्रे ॐ ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुराम्बिकाचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि।

अत्र सर्वसिद्धिप्रदे त्र्यस्त्रचक्रे बाणचापपाशाङ्कुशविभूषितान्तराले त्रिपुराम्बिकाचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः कामेश्वर्याद्याः रहस्यातिरहस्ययोगिन्यः समुद्राः सायुधाः सपरिवाराः सवाहनाः पूजितास्तर्पिताः सन्तु, पूर्ववत् मूलदेव्या अधोवामहस्ते समर्पयेत्।

ततो बिन्दुमध्ये ॐ ऐं ह्रीं श्रीं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि। इति वारत्रयं पूजयेत्। दक्षिणे ॐ ऐं ह्रीं श्रीं योनिमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। वामकोणे ॐ ऐं ह्रीं श्रीं प्रतिसिध्यादिश्रीपादुकां पूजयामि। चक्राग्रे ॐ ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरभैरवीश्रीपादुकां पूजयामि।

अत्र सर्वानन्दमये परब्रह्मरूपिणी वैन्दवे चक्रे त्रिपुरभैरवीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः सर्वचक्रेश्वरीयोगिन्यः समुद्राः सायुधाः सपरिवाराः सवाहनाः पूजितास्तर्पिताः सन्तु, पूर्ववत् मूलदेव्या अधोवामहस्ते समर्पयेत्।

ततो वामहस्ततत्त्वमुद्रया सामान्यार्घ्यजलं दक्षिणहस्ततत्त्वमुद्रया पुष्पाक्षतं गृहीत्वा संयोज्य ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्या आवरणदेवताश्रीपादुकां तर्पयामि स्वाहा। इति चक्रे तर्पयेत्।

इन सब पूजामन्त्रों से मूल में वर्णित प्रणाली द्वारा देवता का तर्पणादि करना चाहिये।

विशेष—जो साधक आवरणपूजा के समय प्रत्येक आवरणपूजा के अन्त में तर्पण करना चाहें, वे तर्पण काल में 'पूजयामि नमः' की जगह पुरुषदेवता के लिये 'तर्पयामि नमः' कहें तथा स्त्रीदेवता के लिये 'तर्पयामि स्वाहा' कह सकते हैं। प्रत्येक आवरण-पूजा में नाम के आदि में 'ऐं ह्रीं श्रीं' तथा अन्त में 'श्रीपादुकां पूजयामि नमः' लगाना चाहिये।

ततो दशोपचारेण कामेश्वरं पूजयेत्। ध्यानं यथा—

देवं कामेश्वरं तत्र ह्येकवक्त्रं चतुर्भुजम्।
भस्मश्रुतं मध्यहृदि रक्तारक्तञ्च कुङ्कुमैः॥
त्रिशूलञ्च पिनाकञ्च वामहस्तद्वये घृतम्।
उत्पलं बीजपूरञ्च दक्षिणद्वितये तथा।
श्वेतपद्मोपरिस्थञ्च ध्यात्वा मध्ये प्रपूजयेत्॥

दशोपचार से कामेश्वर की पूजा करके मूलोक्त ध्यान करना चाहिये। पूजामन्त्र है—'ॐ कां एतत् पाद्यं कामेश्वराय शिवाय नमः' इत्यादि।

ततः पुनरपि देवीं पञ्चोपचारेण सम्पूज्य तत्त्वमुद्रया तर्पयेत्। यथा—मूलमुच्चार्य सपरिवारायाः सवाहनायाः कामेश्वरशिवसहितायाः श्रीत्रिपुरसुन्दरीदेव्याः श्रीपादुकां तर्पयामि स्वाहा।

पुनः देवी का पूजन पञ्चोपचार से करके तत्त्वमुद्रा से तर्पण करना चाहिये, मन्त्र मूल में पठित है।

अथ पञ्चपुष्पाञ्जलीन् दत्त्वा अन्ननिवेदनं बलिदानं प्रणामं नीराजनं नित्यहोमं जपं जपसमर्पणं पुनः प्रणामं स्तवकवचपाठम् आत्मसमर्पणम् उच्छिष्टचाण्डालिनीपूजाञ्च श्रीमद्दक्षिणकालिकापूजापद्धतिक्रमेण यथायथं कुर्यात्। केवलं देवतानाममात्रे बीजमन्त्रमात्रे षडङ्गमन्त्रमात्रे च भेदोऽवगन्तव्यः।

तदनन्तर पञ्चपुष्पाञ्जलि निवेदन करके अन्न व्यञ्जनादि निवेदन करने के बाद बलिदान, प्रणाम, नीराजन, नित्यहोम, जप, जपसमर्पण, पुनः प्रणाम, स्तव-कवचपाठ, आत्मसमर्पण तथा उच्छिष्ट चाण्डालिनी का पूजन दक्षिणकालिका पूजापद्धति क्रम से करना चाहिये। (इस क्रम में केवल देवता का नाम, बीजमन्त्र तथा षडङ्गमन्त्र अलग-अलग होता है)।

●

भुवनेश्वरीपूजापद्धतिः

साधकः ब्राह्ममुहूर्त्ते उत्थाय प्रातःकृत्यादिकं विधाय साधारणपूजा-पद्धतिक्रमेण पीठन्यासान्तं कर्म सम्पाद्य हृत्पद्मस्य पूर्वादिकेशरेषु मध्ये च पीठशक्तिन्र्यसेत्। यथा—ॐ जं जयायै नमः। ॐ विं विजयायै नमः। ॐ अं अजितायै नमः। ॐ अं अपराजितायै नमः। ॐ निं नित्यायै नमः। ॐ दों दोग्घ्र्यै नमः। ॐ अं अघोरायै नमः। मध्ये—ॐ सं सर्वमङ्गलायै नमः। कर्णिकायां—ॐ ह्रीं सर्वशक्ति-कमलासनाय नमः।

साधक को प्रातः उठकर प्रातःकृत्यादि सम्पन्न करके साधारण पूजापद्धति क्रम से पीठन्यास-पर्यन्त कर्म करके मूलोक्त पीठशक्ति-न्यास करना चाहिये।

अथ ऋष्यादिन्यासः—अस्य भुवनेश्वरीमन्त्रस्य शक्तिर्ऋषिर्गायत्रीछन्दः श्रीभुवनेश्वरी देवता 'ह'कारो बीजम्, ईङ्कारः शक्तिः रेफः कीलकं चतुर्वर्गसिद्धये विनियोगः।

अब ऋष्यादि न्यास करना चाहिये। इस भुवनेश्वरी मन्त्र के शक्ति ऋषि हैं, छन्द गायत्री है। श्रीभुवनेश्वरी देवता हैं। 'ह' बीज 'ईं' शक्ति तथा रेफ कीलक है। चतुर्वर्ग-सिद्धि हेतु इसका विनियोग (प्रयोग) होता है।

शिरसि ॐ शक्तये ऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदि श्रीभुवनेश्वरी देवतायै नमः। गुह्ये हकाराय बीजाय नमः। पादयोः ईङ्काराय शक्तये नमः। सर्वाङ्गे रकाराय कीलकाय नमः।

ततो मन्त्रन्यासं कुर्यात्; शिरसि ॐ हृल्लेखायै नमः। मुखे ऐं गगनायै नमः। हृदि उं रक्तायै नमः। मूलाधारे इं करालिकायै नमः। पादयोः अं महोच्छूष्मायै नमः। ऊर्ध्वमुखे ओं हृल्लेखायै नमः। पूर्वमुखे ओं गगनायै नमः। दक्षिणमुखे उं रक्तायै नमः। उत्तरमुखे इं करालिकायै नमः। पश्चिममुखे अं महोच्छूष्मायै नमः।

मूलोक्त प्रकार से ऋष्यादि न्यास एवं मन्त्रन्यास करना चाहिये।

अथ कराङ्गन्यासौ कुर्यात्। यथा—'ऐं ह्रां ऐं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः' इत्यादि। 'ऐं ह्रां ऐं हृदयाय नमः' इत्यादि। अथ सङ्क्षेपषोढा।

तदनन्तर इस प्रकार कराङ्गन्यास करना चाहिये—

ॐ ह्रां ऐं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्रीं ऐं तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ ह्रूं ऐं मध्यमाभ्यां

वषट्, ॐ हैं ऐं अनामिकाभ्यां हुं । ॐ ह्रौं ऐं कनिष्ठाभ्यां वौषट्, ॐ हः ऐं करतलकर-पृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट् ।

तदनन्तर इस प्रकार अङ्गन्यास करना चाहिये—

ॐ ह्रां ऐं हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं ऐं शिरसे स्वाहा । ॐ ह्रूं ऐं शिखायै वषट्, ॐ हैं ऐं कवचाय हुं । ॐ ह्रौं ऐं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ हः ऐं करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट् ।

तदनन्तर सङ्क्षेप-षोढ़ान्यास करना चाहिये ।

अथ गायत्री-ब्रह्मादिन्यासः—भाले ॐ गायत्रीसहितब्रह्मणे नमः । दक्षिणकपोले ॐ सावित्रीसहितविष्णवे नमः । वामकपोले ॐ वागीश्वरीसहितमहेश्वराय नमः । वामकर्णोपरि ॐ श्रीसहितधनपतये नमः । मुखे ॐ रतिसहितस्मराय नमः । सव्यकर्णोपरि ॐ पुष्टिसहित-गणपतये नमः । दक्षिणगण्डकर्णान्तराले ॐ शङ्खनिधये नमः । वाम-गण्डकर्णान्तराले ॐ पद्मनिधये नमः । मुखे ॐ ह्रीं भुवनेश्वर्यैं देवतायै नमः । कण्ठमूले ॐ गायत्रीसहितब्रह्मणे नमः । दक्षिणस्तने ॐ सावित्रीसहितविष्णवे नमः । वामस्तने ॐ वागीश्वरीसहितमहेश्वराय नमः । वामस्कन्धे ॐ श्रीसहितधनपतये नमः । हृदये ॐ रतिसहितस्मराय नमः । दक्षिणस्कन्धे ॐ पुष्टिसहितगणपतये नमः । वामपार्श्वे ॐ शङ्खनिधये नमः । दक्षिणपार्श्वे ॐ पद्मनिधये नमः । नाभौ ॐ ह्रीं भुवनेश्वर्यैं देवतायै नमः ।

इस प्रकार से गायत्री-ब्रह्मादिन्यास मूलोक्त विधि से करना चाहिये ।

अथ शक्तिन्यासं कुर्यात्—ललाटे ॐ ह्रीं आं ब्राह्म्यै नमः । वामस्कन्धे ॐ ह्रीं ईं माहेश्वर्यैं नमः । वामपार्श्वे ॐ ह्रां ऊं कौमार्यैं नमः । जठरे ॐ ह्रीं ॠं वैष्णव्यै नमः । दक्षिणपार्श्वे ॐ ह्रीं ॡं वाराह्यै नमः । दक्षिणस्कन्धे ॐ ह्रीं ऐं इन्द्राण्यै नमः । गले ॐ ह्रीं औं चामुण्डायै नमः । हृदये ॐ ह्रीं अः महालक्ष्म्यै नमः ।

ततस्तत्त्वन्यासं मूलेन व्यापकन्यासं कृत्वा कूर्ममुद्रया रक्तकुसुमानि गृहीत्वा देवीं ध्यायेत् ।

तदनन्तर मूल मन्त्र से तत्त्वन्यास तथा व्यापकन्यास करके कूर्ममुद्रा में (हथेली पर) लाल पुष्प लेकर देवी का ध्यान करना चाहिये ।

ध्यानं यथा—

श्यामाङ्गीं शशिशेखरां निजकरैर्दानञ्च रक्तोत्पलं,
रत्नाढ्यं चषकं परं भयहरं संविभ्रतीं शाश्वतीम् ।
मुक्ताहारलसत्पयोधरनतां नेत्रत्रयोल्लासिनीं,
वन्देऽहं सुरपूजितां हरवधूं रक्तारविन्दास्थिताम् ।।

देवी का शरीर श्यामवर्ण है तथा वे अभयमुद्रा धारण करती हैं। उनके गले में मोती का हार है तथा देह स्तनभार से झुका हुआ है। ये नेत्रत्रय से शोभिता हैं। लाल पद्म पर आसीन हैं। इन सुरगणपूजिता हरवधू की मैं वन्दना करता हूँ।

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य दानार्घ्यस्थापनं कुर्यात् । ततः साधारण-पूजापद्धतिक्रमेण पीठपूजां विधाय पीठशक्तीः पूजयेत् । यथा पूर्वादि-केशरेषु—ॐ जयायै नमः, ॐ विजयायै नमः, ॐ अपराजितायै नमः, ॐ नित्यायै नमः, ॐ विलासिन्यै नमः, ॐ दोग्ध्र्यै नमः, ॐ अघोरायै नमः । मध्ये—ॐ मङ्गलायै नमः ।

तदुपरि—ॐ ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः । असमर्थश्चेत् 'ॐ ह्रीं एते गन्धपुष्पे पीठदेवताभ्यो नमः' इति पीठपूजां कृत्वा 'ॐ ह्रीं एते गन्धपुष्पे पीठशक्तिभ्यो नमः' इति पीठशक्तिः पूजयेत् ।

इस प्रकार देवी का ध्यान करके मानसोपचार से (मानसिक नैवेद्य-अर्पण वर्जित है। शेष उपचार से मानसपूजन करना चाहिये) पूजा करके दानार्घ्य स्थापित करना चाहिये। तदनन्तर साधारण पूजापद्धति क्रम से पीठपूजा तथा पीठशक्तिगण का पूजन कर्तव्य होता है। जो इतना न कर सके, वह असमर्थ साधक मूलोक्त 'ॐ ह्रीं एते गन्धपुष्पे' आदि से पीठदेवतागण तथा पीठशक्तिगण का पूजन कर सकता है।

अथ पूर्ववत् कराङ्गन्यासौ कृत्वा कूर्ममुद्रया रक्तपुष्पाणि गृहीत्वा पुनर्ध्यात्वा पूर्ववत् मूर्त्तिं परिकल्प्य आवाहयेत् । ततो वरमुद्रां, अभयमुद्रां, अङ्कुश-मुद्रां, पाशमुद्रां, योनिमुद्रां, परमीकरणमुद्रां, धेनुमुद्राञ्च प्रदर्श्य मूलमन्त्रेण देवतां त्रिरभ्युक्ष्य यथाशक्त्युपचारैः पूजयेत् ।

तदनन्तर पूर्ववत् कराङ्गन्यास करके कूर्ममुद्रा से रक्तपुष्पों को अञ्जलि में लेकर पुनः ध्यान करके पूर्ववत् मानसिक मूर्त्ति की कल्पना करके आवाहन करने के उपरान्त वरमुद्रा आदि मूलोक्त मुद्राओं का प्रदर्शन करते हुये मूल मन्त्र से देवता का अभ्युक्षण करके यथाशक्ति पूजा करनी चाहिये।

पूजाप्रकारो यथा—(बीजमन्त्र + ऐं ह्रीं ऐं) एतत् पाद्यं श्रीभुवनेश्वर्यै देवतायै नमः इत्यादि ।

पूजा-प्रकार के क्रम में मन्त्र का सङ्केत मूल में दिया गया है। इसी प्रकार सभी उपचारों का क्रमशः नाम (पाद्य की जगह) लेते हुये पूजन करना चाहिये।

अथ आवरणपूजा; यथा—कृताञ्जलिपुटो भूत्वा 'श्रीभुवनेश्वरि देवि आज्ञापय भवत्याः परिवारान् पूजयामि, इति आत्मानं लब्धानुज्ञं विभाव्य ॐ ह्रां हृदयाय नमः इत्यादिना षडङ्गेन पूजयेत्।

अब आवरण-पूजन कहते हैं। अञ्जलिबद्ध होकर भुवनेश्वरी से उनके परिवार-पूजन की आज्ञा लेनी चाहिये और भावना करनी चाहिये कि आज्ञा मिल गई है और 'ॐ ह्रां हृदयाय नमः' इत्यादि से षडङ्गपूजन सम्पन्न करना चाहिये।

ततो गुरुं परमगुरुं परापरगुरुं परमेष्ठिगुरुञ्च सम्पूज्य कर्णिकामध्ये ॐ हृल्लेखायै नमः। पूर्वे ॐ ऐं गगनायै नमः। दक्षिणे उं रक्तायै नमः। उत्तरे ॐ इं करालिकायै नमः। पश्चिमे ॐ अं महोच्छूष्मायै नमः। षट्कोणेषु पूर्वादिक्रमेण ॐ गायत्र्यै नमः, ॐ ब्रह्मणे नमः। नैर्ऋते ॐ सावित्र्यै नमः, ॐ विष्णवे नमः, ॐ सरस्वत्यै नमः, ॐ रुद्राय नमः। अग्निकोणे ॐ श्रियै नमः, ॐ धनपतये नमः। पश्चिमे ॐ रत्यै नमः, ॐ स्मराय नमः। ऐशान्यां ॐ पुष्ट्यै नमः, ॐ गणपतये नमः, षट्कोणस्योभयपार्श्वयोः ॐ शङ्खनिधये नमः, ॐ पद्मनिधये नमः। केशरेषु अग्निनिर्ऋतिवाय्वीशानेषु मध्ये दिक्षु च 'ॐ ह्रां हृदयाय नमः' इत्यादि पूजयेत्।

तदनन्तर गुरु, परमगुरु, परापरगुरु, परमेष्ठिगुरु की पूजा करके मूलोक्त मन्त्रों से आवरण देवता का पूजन करना चाहिये।

पूर्वाद्यष्टदलेषु—आं ब्राह्म्यै नमः, ईं माहेश्वर्यै नमः, ऊं कौमार्यै नमः, ॠं वैष्णव्यै नमः, ॡं वाराह्यै नमः, ऐं इन्द्राण्यै नमः, औं चामुण्डायै नमः, अः महालक्ष्म्यै नमः।

पुनरष्टदले—अं असिताङ्गाय नमः, इं रुरवे नमः, उं चण्डाय नमः, ऋं क्रोधाय नमः, ऌं उन्मत्ताय नमः, एं कपालिने नमः, ओं भीषणाय नमः, अं संहाराय नमः।

ततस्तद्बहिश्चतुरस्रे पूर्वादौ—ॐ लां इन्द्राय देवाधिपतये सायुधाय सपरिवाराय नमः। ॐ रां अग्नये तेजोऽधिपतये सायुधाय सपरिवाराय नमः। ॐ यां यमाय प्रेताधिपतये सायुधाय सपरिवाराय नमः। ॐ क्षां निर्ऋतये रक्षोऽधिपतये सायुधाय सपरिवाराय नमः। ॐ वां वरुणाय जलाधिपतये सायुधाय सपरिवाराय नमः। ॐ यां वायवे

प्राणाधिपतये सायुधाय सपरिवाराय नमः । ॐ सां सोमाय ताराधिपतये सायुधाय सपरिवाराय नमः । ॐ हां ईशानाय गणाधिपतये सायुधाय सपरिवाराय नमः । इन्द्रेशानयोर्मध्ये ॐ आं ब्रह्मणे प्रजाधिपतये सायुधाय सपरिवाराय नमः । निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये ॐ अं ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये सायुधाय सपरिवाराय नमः ।

इस प्रकार से (मूलोक्त मन्त्रों से) समस्त आवरणदेवताओं का पूजन करके उसके बाहर पूर्वादि क्रम से 'ॐ वज्राय नमः, ॐ शक्तये नमः, ॐ दण्डाय नमः, ॐ खड्गाय नमः, ॐ पाशाय नमः, ॐ अङ्कुशाय नमः, ॐ गदायै नमः, ॐ शूलाय नमः, ॐ पद्माय नमः, ॐ चक्राय नमः' से आयुधों का पूजन करना चाहिये ।

ततस्त्र्यम्बकशिवं पूजयेत् । ध्यानं यथा—

हस्ताभ्यां कलसद्वयामृतरसैराप्लावयन्तं शिरो,
द्वाभ्यां तौ दधतं मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तं परम् ।
अङ्कन्यस्तकरद्वयामृतघटं कैलासकान्तं शिवं,
स्वच्छाम्भोजगतं नवेन्दुमुकुटं देवं त्रिनेत्रं भजे ।।

इति ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पं दत्त्वा पुनर्ध्यात्वा 'ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्, उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्' । एतत् पाद्यं त्र्यम्बकशिवाय नमः, इत्यादिक्रमेण पाद्यादिभिः पूजयेत् ।

तदनन्तर (अञ्जलि में पुष्प लेकर) त्र्यम्बक शिव का ध्यान करके अञ्जलि का पुष्प अपने शिर पर रखकर पुनः ध्यान करके मूलोक्त त्र्यम्बक मन्त्र से पाद्य आदि उपचारों से उनका पूजन करना चाहिये ।

अथ पञ्चोपचारेण पुनर्देवीं पूजयित्वा शिरो-हृदय-मूलाधार-पदारविन्द-सर्वाङ्गेषु च पञ्चपुष्पाञ्जलीन् दत्त्वा तर्पयेत् । यथा—वामहस्ततत्त्व-मुद्रया अर्घ्यजलं दक्षिणहस्ततत्त्वमुद्रया गन्धपुष्पाक्षतानि गृहीत्वा उभयहस्ततत्त्वमुद्रायोगेन '(बीजं + ऐं ह्रीं ऐं) साङ्गां सावरणां सायुधां सपरिवारां त्र्यम्बकशिवसहितां श्रीभुवनेश्वरीदेवीं तर्पयामि स्वाहा' । समर्थश्चेत् अस्मिन्नेव काले बलिदानं नीराजनञ्च कुर्यात् ।

अब पञ्चोपचार से देवी का पुनः पूजन करके उनके शिर, हृदय, मूलाधार, पदारविन्द तथा सर्वाङ्ग पर पञ्चपुष्पाञ्जलि देकर तर्पण करना चाहिये । तर्पणमन्त्र मूल में पठित है । जो समर्थ हो, वह इस समय बलिदान तथा नीराजन भी कर सकता है ।

अतः परं सर्वं श्रीमद्दक्षिणकालिकापूजापद्धतिक्रमेण सम्पादनीयम् । तत्र विशेषस्तु 'श्रीमद्दक्षिणकालिका' इत्यत्र 'श्रीभुवनेश्वरी'ति पदं देयम् ।

नित्यहोमे तु असिताङ्गादि अष्टभैरवाहुतिर्न देया । षडङ्गहोमे तु 'ॐ ह्रां हृदयाय नमः स्वाहा' इत्यादि प्रयोक्तव्यम् ।

तदनन्तर शेष कृत्य दक्षिणकालिका पूजापद्धति के अनुसार करना चाहिये । विशेष यह है कि जहाँ 'श्रीमद्दक्षिणकालिका' अङ्कित है, वहाँ उसकी जगह 'श्रीभुवनेश्वरी' कहना चाहिये । नित्यहोम में असिताङ्ग आदि आठ भैरवों को आहुति नहीं देनी चाहिये । षडङ्ग होमार्थ 'ॐ ह्रां हृदयाय नमः स्वाहा' इत्यादि क्रम से आहुति प्रदान करनी चाहिये । तदनन्तर प्रणाम करना चाहिये । प्रणाम मन्त्र है—

ॐ सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

भैरवीपूजापद्धतिः

[त्रिपुरभैरवीमन्त्र—इनके अनेक मन्त्र हैं, अतः यहाँ एक ही मन्त्र दिया जा रहा है—'ह्स्रैं ह्स्क्ल्रीं ह्स्रौः' ।]

अथ पूजापद्धतिः—प्रातःकृत्यादि प्राणायामान्तं विधाय पूर्वोक्तक्रमेण आधारशक्त्यादि ह्रीं ज्ञानात्मने नमः इत्यन्तं विन्यस्य हृत्पद्मस्य पूर्वादि-केशरेषु ॐ इच्छायै नमः, ॐ ज्ञानायै नमः, ॐ क्रियायै नमः, ॐ कामिन्यै नमः, ॐ कामदायिन्यै नमः, ॐ रत्यै नमः, ॐ रतिप्रियायै नमः, ॐ नन्दायै नमः । मध्ये—ॐ मनोन्मन्यै नमः । तदुपरि—ॐ ऐं परायै नमः, ॐ ऐं अपरायै नमः, ॐ ऐं परापरायै नमः, ॐ हसौः सदाशिवमहाप्रेतासनाय नमः इति पीठशक्तीः पीठमनुञ्च विन्यस्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् ।

ऊपर जो मन्त्र दिया गया है, उसका पूजाक्रम इस प्रकार है । पहले 'प्रातःकृत्यादि' से लेकर प्राणायाम-पर्यन्त कृत्य करके पीठन्यास करना चाहिये । पीठन्यासार्थ सामान्य पूजापद्धति क्रम से 'ॐ आधारशक्तये नमः' इत्यादि से लेकर 'ह्रीं ज्ञानात्मने नमः' पर्यन्त न्यासोपरान्त हृत्पद्म के केशरों आदि में मूलोक्त मन्त्रों से पीठशक्ति एवं पीठमन्त्र का न्यास करके ऋष्यादि न्यास करना चाहिये ।

यथा—शिरसि दक्षिणामूर्त्तये ऋषये नमः । मुखे पङ्क्तिच्छन्दसे नमः । हृदि त्रिपुरभैरव्यै देवतायै नमः । गुह्ये वाग्भवाय बीजाय नमः । पादयोः तार्त्तीयशक्तये नमः । सर्वाङ्गे कामबीजाय कीलकाय नमः । ततो नाभ्यादिचरणपर्यन्तं ह्स्रैं नमः, हृदयान्नाभिपर्यन्तं ह्स्क्ल्रीं नमः, शिरसो हृदयान्तं ह्स्रौः नमः । एवं आद्यबीजं दक्षिणकरे, द्वितीयं वामकरे, तृतीयमुभयकरे । ततो मूर्ध्नि मूलाधारे हृदि यथासङ्ख्येन त्रीणि बीजानि न्यसेत् ।

मूलोक्त ऋष्यादि न्यास करने के उपरान्त नाभि से पैर-पर्यन्त ह्स्रैं नमः, हृदय से नाभि तक 'ह्स्क्ल्रीं नमः', मस्तक से हृदय-पर्यन्त 'ह्स्रौः नमः' से न्यास करके दाहिने हाथ में 'ह्स्रैं नमः', बाँयें हाथ में 'ह्स्क्ल्रीं नमः', दोनों हाथ में 'ह्स्रौः नमः' से न्यास करके मस्तक पर 'ह्स्रैं नमः' से, मूलाधार में 'ह्स्क्ल्रीं नमः' से तथा हृदय में 'ह्स्रौः नमः' से न्यास करना चाहिये ।

ततो नवयोनिन्यासः—आद्यबीजं दक्षकर्णे, द्वितीयबीजं वामकर्णे, तृतीय-बीजं चिबुके । एवं गण्डयोर्वदने, नेत्रयोर्नसि, अंसयोर्जठरे, कूर्परयोः

कुक्षौ, जानुनोर्जङ्घाग्रे, पादयोर्गुह्ये, पार्श्वयोः हृदयाम्बुजे स्तनयोः कण्ठे यथा (दक्षिणगण्डे) 'ह्स्रैं नमः' (वामगण्डे) 'ह्स्क्ल्रीं नमः' मुखे— 'ह्स्रौः नमः' (दक्षिणनेत्रे) 'ह्स्रैं नमः (वामनेत्रे) 'ह्स्क्ल्रीं नमः' (नासिकायां) 'ह्स्रौं नमः' । (दक्षिणस्कन्धे) ह्स्रैं नमः (वामस्कन्धे) 'ह्स्क्ल्रीं नमः' (कुक्षौ) 'ह्स्रौः नमः' (दक्षिणजानौ) 'ह्स्रैं नमः' (वामजानौ) 'ह्स्क्ल्रीं नमः' (लिङ्गे) 'ह्स्रौः नमः' (दक्षिणपादे) 'ह्स्रैं नमः' (वामपादे) 'ह्स्क्ल्रीं नमः' (गुह्ये) 'ह्स्रौः नमः' । (दक्षिणपार्श्वे) 'ह्स्रैं नमः' (वामपार्श्वे) 'ह्स्क्ल्रीं नमः' (हृदये) 'ह्स्रौं नमः' (दक्षिणस्तने) 'ह्स्रैं नमः' (वामस्तने) 'ह्स्क्ल्रीं नमः' (कण्ठे) 'ह्स्रौः नमः' । एवं सर्वाङ्गे न्यसेत् ।

तदनन्तर मूलोक्त विधि से आद्यबीज 'ह्स्रैं' से दाहिने कान का, द्वितीय बीज 'ह्स्क्ल्रीं' से वामकर्ण का तथा तृतीय बीज से अर्थात् 'ह्स्रौः' से चिबुक का न्यास करके मूलोक्त मन्त्रों से सर्वाङ्ग का न्यास करना चाहिये ।

ततो रत्यादिन्यासः; मूलाधारे—ऐं रत्यै नमः, हृदि—क्लीं प्रीत्यै नमः, भ्रूमध्ये—सौः मनोभवायै नमः, पुनर्भ्रूमध्ये—सौः अमृतेश्यै नमः, हृदि—क्लीं योगेश्यै नमः, मूलाधारे—ऐं विश्वयोन्यै नमः ।

उपरोक्त मूलोक्त मन्त्रों से रत्यादि न्यास करना चाहिये ।

अथ मूर्त्तिन्यासः; मूर्ध्नि—सहरों ईशानमनोभवाय नमः । वक्त्रे सहरैं तत्पुरुषमकरध्वजाय नमः । हृदि सहरुं अघोरकुमारकन्दर्पाय नमः । गुह्ये सहरिं वामदेवमन्मथाय नमः । पादयोः सहरं सद्योजातकाम-देवाय नमः ।

एवमूदूर्ध्वप्राग्याम्योत्तरपश्चिमेषु ईशानमनोभवादि पञ्चमूर्त्तींस्तद्बीज-पूर्वकं न्यसेत् ।

अब मूलोक्त मन्त्र तथा विधि से मूर्त्तिन्यास करना चाहिये ।

ततो बाणन्यासः; अङ्गुष्ठयोः द्रां द्राविण्यै नमः । तर्जन्योः द्रीं क्षोभिण्यै नमः । मध्यमयोः क्लीं वशीकरिण्यै नमः । अनामिकयोः ब्लूं आकर्षिण्यै नमः । कनिष्ठयोः सः सम्मोहिन्यै नमः ।

उपरोक्त मन्त्रों से बाणन्यास सम्पन्न करना चाहिये ।

ततस्तेषु स्थानेषु यथाक्रमं कामन्यासं कुर्यात् । यथा—अङ्गुष्ठद्वये ह्रीं कामाय नमः । तर्जनीद्वये क्लीं मन्मथाय नमः । मध्यमाद्वये ऐं कन्दर्पाय नमः । अनामिकाद्वये ब्लूं मकरध्वजाय नमः । कनिष्ठाद्वये स्त्रीं मीनकेतवे नमः ।

तदनन्तर मूलोक्त तत्तत् स्थानों में उक्त मन्त्रों से कामन्यास करना चाहिये।

ततः कराङ्गन्यासः; ह्स्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ह्स्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। ह्स्रुं मध्यमाभ्यां वषट्। ह्स्रैं अनामिकाभ्यां हूं। ह्स्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्। ह्स्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्। एवं हृदयादिषु। षड्दीर्घयुक्तेनाद्येन बीजेनाङ्गक्रिया मनोः।

ततः सुभगादिन्यासः—शिरसि ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः सुभगायै नमः। भ्रूमध्ये ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः भगायै नमः। वदने ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः भगसर्पिण्यै नमः। कण्ठिकायां ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः भगमालिन्यै नमः। कण्ठे ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गायै नमः। हृदि ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गकुसुमायै नमः। नाभौ ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गमेखलायै नमः। लिङ्गमूले ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गमदनायै नमः।

तदनन्तर मूलोक्त मन्त्रों से कराङ्गन्यास तथा सुभगादि न्यास सम्पन्न करना चाहिये।

ततो भूषणन्यासः; शिरसि अं नमः। भाले आं नमः। भ्रुवोः इं ईं नमः। कर्णयोः उं ऊं नमः। नेत्रयोः ऋं ॠं नमः। नसि लृं नमः। गण्डयोः लॄं एं नमः। ओष्ठयोः ऐं ओं नमः। अधोदन्ते औं नमः। ऊर्ध्वदन्ते अं नमः। मुखे अः नमः। चिबुके कं नमः। गले खं नमः। कण्ठे गं नमः। पार्श्वयोः घं ङं नमः। स्तनद्वये चं छं नमः। बाहुमूलयोः जं झं नमः। कूर्परयोः ञं टं नमः। पाण्योः ठं डं नमः। करपृष्ठयोः ढं णं नमः। नाभौ तं नमः। गुह्ये थं नमः। ऊर्वोः दं धं नमः। जानुनोः नं पं नमः। जङ्घयोः फं बं नमः। नितम्बद्वये भं मं नमः। पत्तलयोः यं नमः। चरणाङ्गुष्ठयोः रं नमः। कट्यां वं नमः। ग्रीवायां लं नमः। कटके लं नमः। हृदि शं नमः। गुह्ये क्षं नमः। कर्णयोः षं नमः। गण्डयोः सं नमः। मौलौ हं नमः।

इस प्रकार मूलोक्त मन्त्रों से भूषणन्यास करना चाहिये।

ततस्त्रिखण्डां मुद्रां बद्ध्वा ध्यायेत्—

> उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिकां,
> रक्तालिप्तपयोधरां जपवटीं विद्यामभीतिं वराम्।
> हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्रक्तारविन्दश्रियं,
> देवीं बद्धहिमांशुरत्नमुकुटां वन्दे समन्दस्मिताम्॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं कुर्यात्।

अब समस्त न्यासोपरान्त त्रिखण्डामुद्रा-बन्धन करके इस प्रकार ध्यान करना चाहिये।

ध्यानार्थ है—त्रिपुरभैरवी उदयशील सहस्रों दिवाकरों के समान देहकान्तियुक्त, रक्तवर्णा एवं क्षौम वस्त्रधारिणी हैं। उनके गले में मुण्डमाला है तथा स्तनद्वय रक्तलिप्त हैं। चारो हाथों में क्रमशः जपमाला, पुस्तक, अभय तथा वरमुद्रा विराजित है। कपाल पर अर्द्धचन्द्र शोभित है। ये रक्तपद्म के समान श्रीयुक्त हैं, इनके मस्तक पर रत्नों का मुकुट है तथा मुख तनिक हास्ययुक्त है। इस प्रकार ध्यान करके मानसोपचार से पूजनोपरान्त शङ्खस्थापन (अर्घ्यदान) करना चाहिये।

ततः आधारशक्त्यादि ह्रीं ज्ञानात्मने नमः इत्यन्तं सम्पूज्य पूर्वादि-केशरेषु मध्ये च ॐ इच्छायै नमः, ॐ ज्ञानायै नमः, ॐ क्रियायै नमः, पश्चात् ॐ कामिन्यै नमः, ॐ कामदायिन्यै नमः, ॐ रत्यै नमः, ॐ रतिप्रियायै नमः, ॐ नन्दायै नमः, ॐ मनोन्मयायै नमः, एताः पूजयेत्। ततः ऐं परायै, अपरायै, परापरायै, हेसौः सदाशिव-महाप्रेतपद्मासनाय नमः।

तदनन्तर सामान्य पूजापद्धति क्रम से मूलोक्त प्रकार से पूजन करके 'ऐं परायै नमः, ऐं अपरायै नमः, ऐ परापरायै नमः तथा हेसौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः' से इन सबका पूजन करना चाहिये।

प्राग्योनिमध्ययोन्यन्तराले श्रीविद्योक्तगुरुपङ्क्तिं पूजयेत्। तदशक्तौ तु ॐ गुरुभ्यो नमः, ॐ गुरुपादुकाभ्यो नमः, ॐ परमगुरुभ्यो नमः, ॐ परमगुरुपादुकाभ्यो नमः। ॐ परापरागुरुभ्यो नमः, ॐ परापरगुरु-पादुकाभ्यो नमः। ॐ परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः, ॐ परमेष्ठिगुरुपादुकाभ्यो नमः। ॐ आचार्येभ्यो नमः, ॐ आचार्यपादुकाभ्यो नमः।

अब योनिमध्यान्तराल में श्रीविद्या में कही गयी गुरुपङ्क्ति का पूजन करना चाहिये। यदि ऐसा करने में असमर्थता हो तो मूलोक्त मन्त्रों से गुरुपङ्क्ति का पूजन सम्पन्न करना चाहिये।

अस्याः पूजायन्त्रन्तु शारदायाम्—

पद्ममष्टदलोपेतं नवयोन्याढ्यकर्णिकम्।
चतुर्द्वारसमायुक्तं भूगृहं विलिखेत्ततः॥

इनका पूजायन्त्र इस प्रकार है। पहले नवयोनियुक्त कर्णिका बनाकर उसके बाहर अष्टदलपद्म, उसके बाहर चार द्वार तथा भूपुर अङ्कित करना चाहिये।

ततः 'ऐं ह्रीं श्रीं ह्स्ख्फ्रें हेसौः' इति मन्त्रेण बिन्दुचक्रे देव्या मूर्त्तिं सङ्कल्प्य त्रिखण्डामुद्रया पूर्ववद्देवीं ध्यात्वा आवाहयेत्—

ॐ देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते।
यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव॥

पञ्चभिः प्रणवैर्मूर्त्तिं तस्यामावाह्य देवताम् ।
तारा वाक्शक्ति कमला हसखफ्रें हेसौ स्मृताः ।।

अब मूलोक्त मन्त्र से बिन्दुचक्र में देवी की मूर्त्ति की कल्पना करके त्रिखण्डा मुद्रा से पूर्ववत् देवी का ध्यान करके उनका आवाहन करना चाहिये तथा 'ॐ देवेशि' इत्यादि मूलोक्त श्लोक का पाठ करना चाहिये ।

इत्यावाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधायावरणपूजामारभेत् । तद्यथा— देव्या वामभागे ऐं रत्यै नमः । दक्षिणकोणे क्लीं प्रीत्यै नमः । अग्निकोणे सौः मनोभवायै नमः । ततः केशरेषु अग्न्यादिकोणेषु मध्ये दिक्षु च पूर्वोक्ताङ्गमन्त्रेण पूजयेत् । ततः उत्तरे द्रां द्राविण्यै नमः, ह्रीं क्षोभिण्यै नमः । दक्षिणे क्लीं वशीकरिण्यै नमः, ब्लूं आकर्षिण्यै नमः । अग्रे सः सम्मोहिन्यै नमः । ततः पञ्चकामान् पूजयेत् । यथा उत्तरे ह्रीं कामाय नमः, क्लीं मन्मथाय नमः । दक्षिणे ऐं कन्दर्पाय नमः, ब्लूं मकरध्वजाय नमः । अग्रे स्त्रीं मीनकेतवे नमः । नमः सर्वत्र । तथा च तत्रैव पञ्च कामाः—

परावीजं, मथ्यबाणं वाग्भवं परमेश्वरि ।
तूर्यबाणं ततश्चैव स्त्रीबीजञ्च क्रमात् प्रिये ।।
पञ्चकामा इमे देवि नामानि शृणु वल्लभे ।
काममन्मथकन्दर्पमकरध्वजसंज्ञकाः ।
मीनकेतुर्महेशानि पञ्चमं परिकीर्त्तितम् ।।

ततोऽष्टयोनिषु पूर्वादिक्रमेण ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः सुभगायै नमः, ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः भगायै नमः, ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः भगसर्पिण्यै नमः, ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः भगमालिन्यै नमः, ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गायै नमः, ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गकुसुमायै नमः, ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गमेखलायै नमः, ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गमदनायै नमः ।

ततोऽष्टपत्रेषु पूर्वादिक्रमेण ॐ असिताङ्गब्राह्मीभ्यां नमः, ॐ रुरुमाहेश्वरीभ्यां नमः, ॐ चण्डकौमारीभ्यां नमः, ॐ क्रोधवैष्णवीभ्यां नमः, ॐ उन्मत्तवाराहीभ्यां नमः, ॐ कपालीन्द्राणीभ्यां नमः, ॐ भीषणचामुण्डाभ्यां नमः, ॐ संहारमहालक्ष्मीभ्यां नमः । ततस्तद्बहिरिन्द्रादीन् वज्रादींश्च सम्पूज्य धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् । नैवेद्यानन्तरं श्रीविद्योक्तबलिचतुष्टमत्र देयमिति ।

तत्पश्चात् 'ऐं ह्रीं श्रीं ह्स्ख्फ्रें हेसौः' मन्त्र से देवी-मूर्त्ति का चिन्तन करके त्रिखण्डा

मुद्रा से पुन: पूर्ववत् देवी का ध्यानादि करके मूलोक्त श्लोक 'ॐ देवेशि भक्तिसुलभे' इत्यादि से आवाहनादि पञ्चपुष्पाञ्जलि दान तक का कर्म सम्पन्न करके आवरणपूजा प्रारम्भ करनी चाहिये। देवी के वामकोण में तथा दक्षिण एवं अग्निकोणों में मूलोक्त मन्त्र से पूजा करके (ऐं रत्यै नम:, क्लीं प्रीत्यै नम: तथा सौ: मनोभवायै नम:' से पूजन करके) केशर, अग्न्यादि कोण, मध्य तथा दिक्चतुष्टय में 'ह्स्रां हृदयाय नम:, ह्स्रीं शिरसे स्वाहा, ह्स्रैं कवचाय हुं, ह्स्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्स्र: अस्त्राय फट् से षडङ्गपूजन करना चाहिये।

तदनन्तर मूलोक्त 'द्रां द्राविण्यै नम:' आदि से पञ्चबाण-पूजनोपरान्त 'ह्रीं कामाय नम:' इत्यादि से क्रमश: पञ्चकाम की पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर अष्टयोनि में पूर्वादिक्रमेण 'ऐं ब्लूं स्त्रीं स: सुभगायै नम:' इत्यादि मूलोक्त देवगणों का मूलोक्त मन्त्रों से पूजन करके अष्टपत्र में पूर्वादिक्रमेण 'ॐ असिताङ्गब्राह्मीभ्यां नम:' इत्यादि मूलोक्त मन्त्र से मूलोक्त देवताओं का पूजन करके उसके बाहर इन्द्रादि देवता तथा उनके आयुधों की पूजा करके विसर्जन-सम्पादन करना चाहिये। इसमें विशेष बात यह है कि नैवेद्य दानोपरान्त श्रीविद्यापद्धति में लिखित बलिचतुष्टय भी दे देना चाहिये।

अस्य पुरश्चरणं दशलक्षजप:। होमान्ते पलाशकुसुमेन द्वादशसहस्रम्।
तथा च निबन्धे—

दीक्षां प्राप्य जपेन्मन्त्रं तत्त्वलक्षं जितेन्द्रिय:।
पुष्पैर्भानुसहस्राणि जुहुयाद्ब्रह्मवृक्षजै:॥

इस मन्त्र का पुरश्चरण दस लाख जप से सम्पन्न होता है। जप के पश्चात् पलाशपुष्प से बारह हजार होम करना चाहिये।

बगलापूजापद्धतिः

ॐ नमो बगलायै । साधको ब्राह्ममुहूर्त्ते उत्थाय प्रातःकृत्यादि प्राणायामान्तं विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् । यथा—शिरसि नारदऋषये नमः । मुखे त्रिष्टुप्छन्दसे नमः, हृदि श्रीबगलामुखीदेवतायै नमः, गुह्ये ह्लीं बीजाय नमः । पादयोः स्वाहाशक्तये नमः ।

साधक को ब्राह्म मुहूर्त्त में उठकर प्रात:कृत्य से प्राणायाम तक करके ऋष्यादि न्यास करना चाहिये, जो मूल में अङ्कित है ।

ततः कराङ्गन्यासौ—ॐ ह्लीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, बगलामुखि तर्जनीभ्यां स्वाहा, सर्वदुष्टान्नां मध्यमाभ्यां वषट्, वाचं मुखं स्तम्भय अनामिकाभ्यां हूं, जिह्वां कीलय कीलय कनिष्ठाभ्यां वौषट्, बुद्धिं नाशय ह्लीं ॐ स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु ।

साधक को मूलोक्त विधि से कराङ्गन्यास सम्पन्न करना चाहिये ।

ततो (मूलान्ते) आत्मतत्त्वव्यापिनी बगलामुखी श्रीपादुकां पूजयामि इति मूलाधारे । (मूलान्ते) विद्यातत्त्वव्यापिनी बगलामुखी श्रीपादुकां पूजयामि इति शिरसि । (मूलान्ते) सर्वतत्त्वव्यापिनी बगलामुखी श्रीपादुकां पूजयामि इति सर्वाङ्गे ।

इस प्रकार से न्यास करना चाहिये ।

मन्त्रवर्णन्यासो यथा—मस्तके ॐ नमः । कपाले ह्लीं नमः । दक्षनेत्रे बं नमः । वामनेत्रे गं नमः । दक्षिणकर्णे लां नमः । वामकर्णे मुं नमः । दक्षिणगण्डे खिं नमः । वामगण्डे सं नमः । दक्षिणनासिकायां वैं नमः । वामनासिकायां दुं नमः । उत्तरोष्ठे ष्टां नमः । अधरोष्ठे नां नमः । मुखे वां नमः । दक्षिणस्कन्धे चं नमः । दक्षिणकूर्परे मुं नमः । दक्षिणमणिबन्धे खं नमः । दक्षिणहस्ताङ्गुलिमूले स्तं नमः । गले म्भं नमः । दक्षिणस्तने यं नमः । वामस्तने जिं नमः । हृदये ह्वां नमः । नाभौ कीं नमः । कटिदेशे लं नमः । गुह्यदेशे यं नमः । वामस्कन्धे कीं नमः । वामकूर्परे लं नमः । वाममणिबन्धे यं नमः । वामहस्ताङ्गुलिमूले बुं नमः । दक्षिणपाणौ द्धिं नमः । दक्षिणजानुनि नां नमः । दक्षिणगुल्फे शं नमः । दक्षिणपादाङ्गुलिमूले यं नमः । वामोरौ ह्लीं नमः । वामजानुनि ॐ नमः । वामगुल्फे स्वां नमः । वामपादाङ्गुलिमूले हां नमः ।

इस प्रकार मन्त्रवर्णन्यासोपरान्त ध्यान करना चाहिये।

ततो ध्यानम्—

ॐ मध्ये सुधाब्धिमणिमण्डपरत्नवेद्यां सिंहासनोपरिगतां परिपीतवर्णाम्।
पीताम्बराभरणमाल्यविभूषिताङ्गीं देवीं स्मरामि धृतमुद्गरवैरिजिह्वाम्।।

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य बहिः पूजामारभेत्। तत्र प्रथमतोऽर्घ्यस्थापनम्। यथा—अष्टाङ्गुलं चतुरस्रं विधाय ईशानादिकोणेषु पूर्वादिदिक्षु च कुसुमाक्षतरक्तचन्दनैः ग्लौं गणपतये नमः इत्यनेन मधुना अर्घ्यपात्रमापूरयेत्। ततो वारत्रयं विद्यया सम्पूज्याङ्गानि विन्यसेत्। ततो धेनुयोनिमुद्रे प्रदर्श्य तेनोदकेनात्मानं पूजोपकरणञ्च अभ्युक्षयेत्।

मूलोक्त ध्यान करके मानसपूजनोपरान्त बाह्यपूजा करनी चाहिये। पहले मूलोक्त विधि से अर्घ्यपात्र स्थापित करके अर्घ्यपात्र-जल से धेनु-योनिमुद्रा प्रदर्शन द्वारा पूजोपकरण का अभ्युक्षण करना चाहिये।

ततो मूलमुच्चार्य ॐ आधारशक्तिकमलासनाय नमः। एवं शक्तिपद्मासनाय नमः। ततः पूर्ववद् ध्यात्वा पीठे आवाह्य षडङ्गानि विन्यसेत्।

तदनन्तर मूल मन्त्र का उच्चारण करके मूलोक्त मन्त्र से मण्डल का पूजन करके पूर्ववत् ध्यान करके पीठ में प्रतिमास्थल पर आवाहन करके मण्डल में षडङ्गपूजा करनी चाहिये।

ततो मूलेन मन्त्रयित्वा धेनुयोनिमुद्रे प्रदर्श्य आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वैर्बिन्दुत्रयं मुखे क्षिप्त्वा तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन साङ्गावरणां श्रीबगलामुखीं तर्पयामि स्वाहा इति त्रिस्तर्पयेत्। ततो यथासम्भवमुपचारैः सम्पूज्य आवरणपूजामारभेत्।

तब मूल-मन्त्र से धेनु-योनिमुद्रा प्रदर्शित करके आत्मतत्त्व, शिवतत्त्व तथा विद्यातत्त्व रूप त्रिबिन्दु को मुख पर छिड़कना चाहिये। तर्जनी-अङ्गुष्ठ के योग से मूलोक्त तर्पण मन्त्र 'साङ्गावरणां श्रीबगलामुखीं तर्पयामि स्वाहा' से तीन बार तर्पणोपरान्त यथासम्भव उपचार से पूजन करके आवरणपूजन सम्पन्न करना चाहिये।

षट्कोणेषु पूर्वे 'ॐ सुभगायै नमः, एवमग्निकोणे ॐ भगसर्पिण्यै नमः, ईशाने ॐ भगवहायै नमः, पश्चिमे ॐ भगसिद्धायै नमः, नैर्ऋते ॐ भगनिपातिन्यै नमः, वायौ ॐ भगमालिन्यै नमः' पूजयेत्।

आवरणदेवताओं का उपरोक्त मन्त्रों से मूलोक्त स्थान पर पूजन करना चाहिये।

ततोऽष्टदलपद्मपत्रेषु ब्राह्म्याद्याः पूजा।

अब अष्टदल पद्मपत्रों पर ब्राह्मी आदि अष्टशक्ति की पूजा करनी चाहिये।

पत्राग्रेषु। ॐ जयायै नमः, ॐ विजयायै नमः। एवं ॐ अजितायै नमः, ॐ अपराजितायै नमः, ॐ जम्भिन्यै नमः, ॐ स्तम्भिन्यै नमः, ॐ मोहिन्यै नमः, ॐ आकर्षिण्यै नमः।

पत्राग्र पर इन देवियों का मूलोक्त मन्त्र से पूजन करना चाहिये।

ततो द्वारेषु ॐ भैरवाय नमः। तद्बाह्ये इन्द्रादीन् वज्रादींश्च पूजयेत्।

द्वार पर भैरव का पूजन मूलोक्त मन्त्र से करके उसके बाहर इन्द्रादि लोकपालों तथा उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये।

ततो धूपादिकं दत्त्वा यथाशक्तिजपं विधाय त्रिशूलमुद्रां प्रदर्श्य पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा देव्यै योनिमुद्रां प्रदर्शयेत्। ततो भैरवाय बलिं दद्यात्। ततो विसर्जनान्तं कर्म समापयेत्।

तदनन्तर धूपादि प्रदान करके यथाशक्ति जप करके त्रिशूल मुद्रा का प्रदर्शन कर तीन पुष्पाञ्जलि निवेदनोपरान्त देवी को योनिमुद्रा प्रदर्शित करने के बाद भैरव को बलि देकर विसर्जनान्त कर्म सम्पादित करना चाहिये।

●

मातङ्गीपूजापद्धतिः

साधको ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थाय प्रातःकृत्यादिकं कृत्वा पूजास्थानं गत्वा शुद्धासने उपविश्य पूर्वोक्तसाधारणपूजापद्धतिक्रमेण वर्णन्यासपर्यन्तं विधाय पीठदेवता पीठशक्तींश्च न्यसेत् । यथा हृदि मृगमुद्रया 'ॐ ह्रीं पीठदेवताभ्यो नमः, ॐ ह्रीं पीठशक्तीभ्यो नमः' ।

साधक को ब्राह्म मुहूर्त्त में उठकर प्रातःकृत्यादि सम्पन्न करके पूजास्थान में शुद्धासन पर बैठकर पूर्वोक्त साधारण पूजापद्धतिक्रम से वर्णन्यास-पर्यन्त क्रिया करके पीठदेवता तथा पीठशक्ति का न्यास करना चाहिये; (हृदय पर मृगमुद्रा से) 'ॐ ह्रीं पीठदेवताभ्यो नमः, ॐ ह्रीं पीठशक्तीभ्यो नमः' ।

ततः ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्; यथा—अस्य मन्त्रस्य दक्षिणामूर्त्ति ऋषिर्विराट्छन्दः श्रीमातङ्गीदेवता सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः । शिरसि दक्षिणामूर्त्तिऋषये नमः । मुखे विराट्च्छन्दसे नमः । हृदि श्रीमातङ्गी-देवतायै नमः । ततः ॐ ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः इत्यादि क्रमेण कराङ्ग-न्यासौ कुर्यात् ।

तदनन्तर मूलोक्त प्रकार से ऋष्यादि न्यास तथा अङ्गन्यास सम्पन्न करना चाहिये ।

ततः सङ्क्षेपषोढान्यासं व्यापकन्यासञ्च कृत्वा यथाविधि कूर्ममुद्रया रक्तपुष्पाञ्जलिं गृहीत्वा ध्यायेत् ।

तदनन्तर सङ्क्षेप षोढ़ान्यास तथा व्यापक न्यास करके यथाविधि कूर्ममुद्रा से रक्त-पुष्पाञ्जलि लेकर ध्यान करना चाहिये ।

ध्यानं यथा—

श्यामाङ्गीं शशिशेखरां त्रिनयनां रत्नसिंहासनस्थिताम् ।
वेदैर्बाहुदण्डैरसिखेटकपाशाङ्कुशधराम् ।।

मातङ्गी देवी श्यामवर्णा, शशिशेखरा तथा त्रिनयना हैं । ये रत्नसिंहासनासीन हैं । ये चतुर्भुजा हैं; जिसमें क्रमशः असि, खेटक, पाश तथा अङ्कुश है ।

इस प्रकार से ध्यानोपरान्त अञ्जलि का पुष्प शिर पर रखकर मानस उपचारों से पूजा करके दानार्घ्य स्थापित करने के पश्चात् पीठपूजन मन्त्रों से पीठपूजा करनी चाहिये । इसके लिये मन्त्र है—'ॐ ह्रीं एते गन्धपुष्पे पीठदेवताभ्यो नमः, ॐ ह्रीं एते गन्धपुष्पे पीठ-शक्तिभ्यो नमः' । समर्थ व्यक्ति को अष्टशक्तियों का पूजन करना चाहिये, वे आठ शक्तियाँ हैं—मनोभवा, रति, प्रीति, क्रिया, श्रद्धा, अनङ्गकुसुमा, अनङ्गलालसा, मदनालसा ।

ततः पूर्ववत् कराङ्गन्यासौ कृत्वा कूर्ममुद्रया रक्तकुसुमाञ्जलिं गृहीत्वा पुनर्ध्यात्वा पूर्ववत् मूर्त्तिं परिकल्प्य 'देवेशि' इत्यादि पठित्वा '(बीजं) श्रीमातङ्गिदेवि इहागच्छ इहागच्छ' इत्यादिना आवाहनादिकं कुर्यात् ।

तदनन्तर कराङ्गन्यास करके कूर्ममुद्रा में रक्त कुसुमाञ्जलि लेकर पुनः ध्यान करके पूर्ववत् मूर्त्ति की कल्पना करके इस प्रकार कहना चाहिये—

ॐ देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते ।
यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव ।।

तदनन्तर '(बीजमन्त्र +) श्रीमातङ्गिदेवि इहागच्छ इहागच्छ' से आवाहनादि करना चाहिये ।

ततः परमीकरणमुद्रया परमीकृत्य प्राणप्रतिष्ठां विधाय यथाशक्त्युपचारैर्देवीं पूजयेत् । यथा—'(बीजं) एतत् पाद्यं श्रीमातङ्गीदेव्यै नमः (इत्यादि)' ।

तदनन्तर परमीकरण मुद्रा से परमीकरण करके प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये (प्राणप्रतिष्ठा दक्षिणाकाली पूजाविधि में अङ्कित है)। तदनन्तर (बीजमन्त्र +) एतत् पाद्यं श्रीमताङ्गीदेव्यै नमः इत्यादि से पूजन करना चाहिये ।

ततः आवरणपूजां कुर्यात् । यथा '(कृताञ्जलिः) देवि! आज्ञापय भवत्याः परिवारान् पूजयामि' । तत आत्मानं लब्धानुज्ञं विभाव्य 'ॐ ह्रीं आवरणदेवताभ्यो नमः' इति गन्धपुष्पैः पूजयेत् ।

तदनन्तर आवरण-पूजनार्थ कृताञ्जलिबद्ध होकर देवी से उनके परिवार के पूजनार्थ मूलोक्त मन्त्र से आज्ञा माँगकर यह भावना करे कि आज्ञा मिल गयी । तदनन्तर मूलोक्त मन्त्र 'ॐ ह्रीं आवरणदेवताभ्यो नमः' से उनका गन्ध-पुष्प से पूजन करना चाहिये ।

अथ देव्या दक्षिणे मतङ्गशिवं दशोपचारेण पञ्चोपचारेण वा पूजयेत् । यथा 'ॐ एतत् पाद्यं मतङ्गशिवाय नमः' इत्यादि ।

अब देवी के दक्षिण में मतङ्ग शिव का दशोपचार से अथवा पञ्चोपचार से पूजन मूलोक्त मन्त्र से करना चाहिये ।

ततः पुनः पञ्चोपचारेण देवीं सम्पूज्य मस्तके हृदये मूलाधारे पादपद्मे सर्वाङ्गे च पञ्चपुष्पाञ्जलीन् दत्त्वा तर्पयेत् । यथा—वामहस्ततत्त्वमुद्रया अर्घ्यजलं दक्षहस्ततत्त्वमुद्रया गन्धपुष्पाक्षतानि गृहीत्वा उभयोः हस्ततत्त्वमुद्रायोगेन '(बीजं) सायुधां सपरिवारां मतङ्गशिवसहितां श्रीमातङ्गीदेवीं तर्पयामि स्वाहा' ।

तदनन्तर पुनः पञ्चोपचार से देवी-पूजनोपरान्त उनके मस्तक, हृदय, मूलाधार,

चरणकमल तथा सर्वाङ्ग पर क्रमशः पाँच पुष्पाञ्जलि देकर तर्पण करना चाहिये। यथा—बाँयें हाथ की तत्त्वमुद्रा में अर्घ्य जल लेकर दाहिने हाथ की तत्त्वमुद्रा में गन्ध, पुष्प, अक्षत लेकर दोनों हाथों की तत्त्वमुद्रा को मिलाकर '(बीजमन्त्र कहकर) सायुधां सपरिवारां मतङ्गशिवसहितां श्रीमातङ्गीदेवीं तर्पयामि स्वाहा' कहकर तर्पण करना चाहिये।

अन्यदवशिष्टं दक्षिणकालिकापूजापद्धतिदर्शनेन कर्त्तव्यम्। तत्र विशेषस्तु 'श्रीमद्दक्षिणकालिका' इत्यत्र 'श्रीमातङ्गी' इति प्रयोक्तव्यम्। षडङ्गहोमे तु ॐ ह्रां हृदयाय नमः इत्यादि प्रयोक्तव्यम्। महाकालभैरववत् मतङ्गशिवस्य बलिदानविधिर्न दृश्यते।

अब शेष कार्य दक्षिणकालिका पूजापद्धति की तरह करना चाहिये। भेद इतना ही है कि जहाँ 'श्रीमद्दक्षिणकालिका' कहा है, वहाँ 'श्रीमातङ्गी' कहना चाहिये। महाकालभैरव की तरह मतङ्गशिव की बलिदान विधि नहीं होती।

●

अथ धूमावतीपूजापद्धतिः

अथ धूमावतीमन्त्राः । फेत्कारिण्यां—'धूं धूं धूमावति स्वाहा' । अस्याः पूजा—प्रातःकृत्यादिकं कृत्वा भूतशुद्ध्यादि प्राणायामौ च कृत्वा ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् । यथा—शिरसि पिप्पलादऋषये नमः । मुखे निवृच्छन्दसे नमः । हृदि धूमावत्यै देवतायै नमः । ततः कराङ्गन्यासौ—धां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, धीं तर्जनीभ्यां स्वाहा इत्यादि । धां हृदयाय नमः इत्यादि ।

धूमावती का मन्त्र फेत्कारिणी तन्त्रानुसार इस प्रकार है—'धूं धूं धूमावति स्वाहा' । प्रात:कृत्यादि, भूतशुद्धि, प्राणायाम करके ऋष्यादिन्यास तथा कराङ्गन्यासादि मूलोक्त विधि से करनी चाहये ।

ततो ध्यानम्—

विवर्णा चञ्चला रुष्टा दीर्घा च मलिनाम्बरा ।
विवर्णकुन्तला रूक्षा विधवा विरलद्विजा ॥
काकध्वजरथारूढा बिलम्बितपयोधरा ।
सूर्पहस्तातिरूक्षाक्षी धृतहस्ता वरान्विता ॥
प्रवृद्धघोणा तु भृशं कुटिला कुटिलेक्षणा ।
क्षुत्पिपासार्दिता नित्यं भयदा कलहप्रिया ॥

इसके बाद देवी धूमावती का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—धूमावती देवी विवर्णा, चञ्चला, रुष्टा, दीर्घाङ्गी, मलिन वस्त्रधारिणी, विवर्णा तथा रूक्ष केशधारिणी, विरलदशना एवं नीचे लटकते स्तनों वाली हैं। ये विधवारूपा हैं तथा काकध्वज वाले रथ पर बैठी हैं। देवी के नेत्रयुग्म रूखे हैं। उनके एक हाथ में सूप है तथा दूसरे हाथ में वरमुद्रा है। उनकी नाक बृहद् है। देह तथा नेत्र कुटिल हैं। ये क्षुधा-पिपासा से कातर हैं। वे भयङ्कर आकृति वाली तथा कलह-तत्परा हैं।

जपेत् कृष्णचतुर्दश्यां पुरश्चरणसिद्धये ।
उपवासरतो मन्त्री शून्यागारे दिवानिशम् ॥
श्मशाने विपिने वापि जपेल्लक्षञ्च वाग्यतः ।
सोष्णीष आर्द्रवासाश्च पुरश्चरणकर्मणि ।
आख्योपरि लिखेन्मन्त्रं तस्मिन् स्थाप्य शिवं यजेत् ॥

इस प्रकार ध्यान करके पुरश्चरण-सिद्धि हेतु कृष्णपक्षीय चतुर्दशी तिथि को उपवास-परायण रहकर शून्यगृह, श्मशान अथवा वन में दिन किंवा रात्रि को मौन होकर मन्त्र का

एक लाख जप करना चाहिये । इस पुरश्चरण में उष्णीष-धारण करके तथा भींगे वस्त्र पहन कर जप करना चाहिये । तदनन्तर शत्रुनाम पर (अमुकं शत्रुं मारय) मूल मन्त्र लिखकर उस पर शिवलिङ्ग रखकर जप करना चाहिये ।

तथा च—

अवष्टभ्य शिवं शत्रुनाम्ना तु प्रजपेन्मनूम् ।
सहस्रस्यार्द्धतः शत्रुः ज्वरेण परिगृह्यते ॥

इस प्रकार पाँच सौ बार जप करने से तत्क्षण ही शत्रु ज्वर से पीड़ित हो जाता है ।

पञ्चगव्येन शान्तिः स्याज्ज्वरस्य पयसापि वा ।
पूर्ववत् पञ्चोपचारैः सम्पूज्य जपेत् ।

पञ्चगव्य अथवा दूध से शिव का अभिषेक करने से ज्वर-शान्ति होती है । तत्पश्चात् पूर्ववत् पञ्चोपचार से देवीपूजन करके जप करना चाहिये ।

दद्याद्धूपं साध्यनाम्ना सद्यो विद्वेषयेदरीन् ।

साध्य के नाम के साथ मन्त्रजप करने के साथ धूप देने से सद्यः विद्वेष हो जाता है । शत्रु का नाम मन्त्र के साथ युक्त करके अरण्य में रात्रिकाल में दस हजार जप करने से शत्रु का उच्चाटन होता है । श्मशानाग्नि में कौवे को जलाकर उस भस्म को एक सौ आठ बार अभिमन्त्रित करके शत्रु के नाम के साथ आठो दिशाओं में फेंकने से तत्क्षण ही शत्रु का उच्चाटन हो जाता है । श्मशानभस्म से शिवलिङ्ग बनाकर उस पर शत्रुनाम-युक्त धूमावती का मन्त्र लिखकर कृष्णपक्ष में अर्चन करना चाहिये तथा महिषी के दुग्ध का धूआं देना चाहिये । साथ ही जो वस्तु शत्रु के लिये अमङ्गलकारी हो, वह प्रदान करना चाहिये । अब देवी महिषी का रूप धारण करके स्वप्न में शत्रु का नाश कर देती हैं । इस प्रकार के अनेक प्रयोग धूमावती की कृपा से सिद्ध हो जाते हैं ।

●

तारापूजापद्धतिः

साधकः प्रातःकृत्यादि स्नानान्तं समाप्य स्तवं पठन् यागस्थानं गत्वा पूजागृहं प्रविश्य गुरुं परदेवताञ्च प्रणम्य 'ॐ वज्रोदके हुं फट् स्वाहा' इति जलं संशोध्य तज्जलं पूजार्थं विधाय किञ्चिदन्यजले निःक्षिप्य तेनैव वारिणा आसनं अभ्युक्ष्य तत्रोपविश्य 'ॐ ह्रीं विशुद्धिसर्वपापानि शमयाशेषविकल्पमपनय हुं फट् स्वाहा' इति मनसा हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्य 'ॐ ह्रीं स्वाहा' इति त्रिराचम्य 'रक्तवर्णां चतुर्भुजां सिंहारूढां शङ्खचक्रधनुर्बाणकरां' इति कामिनीं ध्यात्वा 'कं' इति दशधा जपेत् ।

साधक को प्रातःकृत्यादि स्नानान्त समस्त कर्म करके स्तवपाठ करते हुये यागस्थान में आकर पूजा-मन्दिर में प्रवेश करके गुरु तथा परमदेवता को नमस्कार करके 'ॐ वज्रोदके हुं फट् स्वाहा' से जल-शोधन द्वारा उस जल को पूजार्थ रखकर किञ्चित् जल अन्य जल में छोड़ देना चाहिये और उस द्वितीय जल द्वारा आसन का अभ्युक्षण करके उस पर बैठकर 'ॐ ह्रीं विशुद्धिसर्वपापानि शमयाशेषविकल्पमपनय हुं फट् स्वाहा' द्वारा मानसिक रूप से हाथ-पैर का प्रक्षालन करने के बाद 'ॐ ह्रीं स्वाहा' कहते हुये तीन बार आचमन करके रक्तवर्णा, चतुर्भुजा, सिंहारूढा, शङ्ख, चक्र, धनुष, बाणधारी कामिनी का ध्यान करके 'कं' का दस बार जप करना चाहिये ।

मूलेन ऊर्ध्वपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं तिलकं सिन्दूरटीकाञ्च गृहीत्वा 'ॐ पवित्रवज्रभूमे हुं फट् स्वाहा' इति योनिमुद्रया भूमिमभिमन्त्र्य 'ॐ रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा' इति मुष्टिनिःसृतजलेन भूमिं शोधयेत् ।

तदनन्तर मूल मन्त्र से ऊर्ध्वपुण्ड्र, त्रिपुण्ड्र तथा सिन्दूर का टीका लगाकर 'ॐ पवित्रवज्रभूमे हुं फट् स्वाहा' पढ़ते हुये योनिमुद्रा से भूमि को अभिमन्त्रित करके 'ॐ रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा' पढ़ते हुये मुष्टि से निःसृत होकर गिर रहे जल से भूमिशोधन करना चाहिये ।

ततः सूर्यार्घ्यं दत्त्वा गुरुपूजां विधाय गुरुस्तोत्रं पठित्वा कुलकुशान् सुवर्णरजतरूपान् तर्जन्यनामासु सन्धार्य मन्त्राचमनं कुर्यात् ।

तदनन्तर सूर्य को अर्घ्य देकर गुरुपूजनोपरान्त गुरुस्तोत्र को पढ़ते हुये कुलकुश को तर्जनी तथा अनामिका में धारण करना चाहिये, जो कि स्वर्ण-चाँदी के समान होता है और तीन बार मन्त्राचमन करना चाहिये ।

विशेष—तारा का मन्त्राचमन है—'ॐ ह्रीं फट् स्वाहा' । विशेष मन्त्राचमन है—'ह्रीं स्त्रीं हुं ह्रां स्त्रीं हुं ह्रीं स्त्रीं हुं' । इसे तीन बार पढ़कर तीन मन्त्राचमन करना चाहिये तथा

'ह्लीं' से हाथ धोकर 'ह्लीं हुं' से दो बार ओठों का मार्जन करके फट् मन्त्र से पुनः हाथ धोना चाहिये। तत्पश्चात् 'ॐ वैरोचनाय नमः' पढ़कर तत्त्वमुद्रा से मुख स्पर्श करके 'ॐ शङ्खाय नमः' से दक्षिणनासिका तथा 'ॐ पाण्डुराय नमः' से वामनासिका का स्पर्श करके 'ॐ पद्मनाभाय नमः' से दाहिने नेत्र का तथा 'ॐ असिताभाय नमः' से बाँयें नेत्र का स्पर्श करना चाहिये। 'ॐ नामकाय नमः' से दाहिने कान का तथा 'ॐ मामकाय नमः' से बाँयें कान का स्पर्श करना चाहिये। 'ॐ तारकाय नमः' से नाभि का, 'ॐ पद्मान्तकाय नमः' से हृदय का, 'ॐ यमान्तकाय नमः' से शिरोदेश का स्पर्श करके 'ॐ विघ्नान्तकाय नमः' से दाहिने कन्धे का तथा 'ॐ नरान्तकाय नमः' से वामस्कन्ध का स्पर्श करना चाहिये।

अथ पीठं चिन्तयेत्। यथा—

श्मशानं तत्र सञ्चिन्त्य तत्र कल्पद्रुमं स्मरेत्।
तन्मूले मणिपीठञ्च नानामणिविभूषितम्॥
नानालङ्कारसंयुक्तं मुनिदेवैर्विभूषितम्।
शिवाभिर्बहुमांसास्थिमोदमानाभिरन्ततः॥
चतुर्दिक्षु शवमुण्डचिताङ्गारास्थिसंयुतम्।
तन्मध्ये भावयेद्देवीं यथोक्तध्यानयोगतः॥

इति ध्यात्वा साधारणपूजापद्धतिक्रमेण आसनाधस्त्रिकोणमण्डलरचनादिना आसनं संशोध्य गुर्वादिप्रणामपर्यन्तं कृत्वा पुष्पशोधनं विधाय स्ववामे सामान्यार्घ्यं संस्थाप्य द्वारपूजां कुर्यात्।

तदनन्तर मूलोक्त श्लोक 'श्मशानं' से लेकर 'यथोक्तध्यानयोगतः' पर्यन्त पाठ द्वारा पीठचिन्तन (पीठध्यान) करना चाहिये। ध्यानोपरान्त साधारणपूजापद्धतिक्रमेण आसनशोधन करके गुर्वादि को नमस्कार करके पुष्पशोधन कर अपने बाँयीं ओर सामान्यार्घ्य-स्थापन करके द्वारपूजा करनी चाहिये।

विशेष—गन्ध-पुष्प को हाथ से मार्जित करके बाँयें हाथ में लेकर क्लीं मन्त्र से निर्मज्जन करना चाहिये। 'ॐ शताभिषेके हुं फट् स्वाहा' से पुष्प का अभ्युक्षण करके 'ॐ पुष्पकेतु राजार्हते शताय सम्यक् सम्बद्धाय हुं' से पुष्प का स्पर्श करके 'ॐ पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पसम्भवे। पुष्पचयावकीर्णे हुं फट् स्वाहा' से शोधन करना चाहिये। यही पुष्पशोधन कहलाता है।

द्वारपूजा यथा (पूर्वद्वारि) ॐ ह्रीं गां गणेशाय नमः, (दक्षिणे) ॐ ह्रीं वां वटुकाय नमः, (पश्चिमे) ॐ ह्रीं क्षां क्षेत्रपालाय नमः, (उत्तरे) ॐ ह्रीं यां योगिनीभ्यो नमः, (नैर्ऋत्यां) ॐ ब्रह्मणे नमः, ॐ वास्तुरूपाय नमः। सर्वत्र गन्धपुष्पाभ्यां अक्षतेन वा पूजयेत्।

मूलोक्त मन्त्र से गन्ध-पुष्प-अक्षत प्रदान करते हुए द्वार की पूजा करनी चाहिये।

ततः पीठपूजां कुर्यात्। यथा पीठमध्ये ॐ श्मशानाय नमः, ॐ कल्पवृक्षाय नमः। (तन्मूले) ॐ मणिपीठाय नमः, ॐ नानालङ्कारेभ्यः नमः। ॐ मुनिभ्यः नमः, ॐ देवेभ्यः नमः, ॐ बहुमांसास्थिमोदमानशिवाभ्यः नमः, ॐ शवमुण्डेभ्यः नमः, ॐ चिताङ्गारास्थिभ्यः नमः। (अग्न्यादि अष्टदलेषु) ॐ लक्ष्म्यै नमः, ॐ सरस्वत्यै नमः, ॐ रत्यै नमः, ॐ प्रीत्यै नमः, ॐ कीर्त्यै नमः, ॐ शान्त्यै नमः, ॐ पुष्ट्यै नमः, ॐ तुष्ट्यै नमः। मध्ये हेसौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः।

अब पीठपूजा मूलोक्त मन्त्र से गन्ध-पुष्प प्रदान करते हुये करनी चाहिये।

ततः 'ॐ मणिधरि वज्रिणि महाप्रतिसरे रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा' इति वस्त्राञ्चले ग्रन्थिं बध्नीयात्। ततः 'ॐ सर्वविघ्नानुत्सारय हुं फट् स्वाहा' इति नाराचमुद्रया अक्षतप्रक्षेपेण दिव्यदृष्ट्यावलोकनेन फट् इति मन्त्रेण वामपार्ष्णिघातत्रयेण च दिव्यान्तरीक्षभौमान् विघ्नान् उत्सार्य 'फट्' इति ऊर्ध्वोर्द्ध्वतालत्रयं दत्त्वा छोटिकभिर्दशदिग्बन्धनं कृत्वा गन्धपुष्पाभ्यां करौ संशोध्य 'आं हुं फट् स्वाहा' इति व्यापकतया कायवाक्चित्तं शोधयेत्।

तदनन्तर 'ॐ मणिधरि' इत्यादि मूलोक्त मन्त्र से वस्त्राञ्चल में एक गड्डी लगाकर 'ॐ सर्वविघ्नानुत्सारय हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से नाराच मुद्रा-योग से अक्षत-प्रक्षेप करके दिव्य दृष्टि द्वारा देखकर तथा वामपार्ष्णि द्वारा भूमि पर तीन आघात देकर अन्तरिक्ष तथा भूमिगत सभी विघ्नों को उत्सारित करके 'फट्' मन्त्र से ऊर्ध्व तथा अध: तीन ताली देकर चुटकी बजाकर दसो दिशाओं का दिग्बन्धन करके गन्ध-पुष्प से हाथों को शुद्ध करके 'आं हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से व्यापक रूप से काय, वाक् तथा मन को शुद्ध करना चाहिये।

ततोऽनुलोमविलोमकृतसबिन्दुमातृकावर्णपुटितबीजमन्त्रजपेन अथवा अंकंचंटंतंपंयंशं इत्यष्टवर्गाद्यष्टवर्णपुटितबीजमन्त्रजपेन मन्त्रशुद्धिं कुर्यात्। मूलान्ते 'फट्' इति मन्त्रेण समस्तपूजासम्भारं सम्प्रोक्ष्य धेनुमुद्रां दर्शयेत्। इति द्रव्यशुद्धिः।

तदनन्तर अनुलोम-विलोम बिन्दुयुक्त मातृकावर्ण-पुटित बीजमन्त्र-जप द्वारा अथवा अष्टवर्ग के आदि वर्णों के बीजमन्त्र-जप से मन्त्रशुद्धि करनी चाहिये। तदनन्तर मूल मन्त्र के अन्त में 'फट्' लगाकर उससे समस्त पूजाद्रव्यों का सम्प्रोक्षण करके धेनुमुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये। यही होती है—द्रव्यशुद्धि।

ततो भूतशुद्धिं कुर्यात्। तद्यथा—स्वाङ्के उत्तानौ करौ कृत्वा 'हंसः' इति मन्त्रेण कुलकुण्डलिनीं जीवात्मानं वैलोम्येन चतुर्विंशतितत्त्वानि च सुषुम्नावर्त्मना शिरोऽवस्थितपरमात्मनि परमशिवे संयोज्य 'ह्रीं'कारं रक्तवर्णं नाभौ ध्यायन् पूरकेण तस्य षोडशवारजपेन तदुद्भूतेन अग्निना लिङ्गशरीरं संदह्य 'स्त्रीं'कारं पीतवर्णं हृदि विचिन्त्य कुम्भकेन तस्य चतुःषष्टिवारजपेन तदुद्भूतेन वायुना भस्म प्रोत्सार्य 'हुं'कारं श्वेतवर्णं शिरसि ध्यायन् रेचकेन तस्य द्वात्रिंशद्वारजपेन तदुद्भूतेनामृतेन तदस्थि प्लावितं कृत्वा समस्तमपगतव्यथं विश्वं शरीरमाप्लावयेत्। तत् आत्मानमपगतव्यथं निर्मलं देवताभेदेन चिन्तयेत्। तस्मिन् विश्वव्यापके वारिणि आःकाराद्रक्तपङ्कजं तदुपरि टङ्कारात् श्वेतपङ्कजं तदुपरि नीलसन्निभं हुङ्कारं ध्यात्वा तदुपरि हुङ्कारबीजभूषितां कर्तृकां ध्यायेत्। ततः सोऽहं इति मन्त्रेण जीवं हृदयमानीय कुलकुण्डलिनी-पृथिव्यादीनि यथाक्रमेण स्वस्वस्थाने संस्थाप्य देवतां ध्यात्वा 'आं ह्रीं क्रों स्वाहा' इति मन्त्रं स्वशिरसि एकादशवारं जप्त्वा 'आं ह्रीं क्रों' इत्यादि एकजटादेवतायाः प्राणा इह प्राणाः' इत्यादिक्रमेण (आत्मनि) देवतायाः प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा आत्मानं तारिणीमयं विभाव्य ध्यायेत्।

तदनन्तर भूतशुद्धि करनी चाहिये। एतदर्थ साधक को अपनी गोद में हाथों को उत्तान करके पद्मासन पर बैठकर 'हंस' मन्त्र से कुलकुण्डलिनी जीवात्मा तथा चौबीस तत्त्वों को सुषुम्नापथ से शिरोदेश में अवस्थित परमात्मरूपेण परमशिव को संयुक्त करके रक्तवर्ण 'ह्रीं' मन्त्र का नाभि में ध्यान करके उक्त बीज का सोलह बार जप करके उससे उद्भूत अग्नि द्वारा भौतिक शरीर को (भावना से) भस्मीभूत करके पीतवर्ण 'स्त्रीं' बीज का हृदय में चिन्तन करके कुम्भक द्वारा उक्त बीज का चौसठ बार जप करके उससे उद्भूत वायु द्वारा भस्म को उड़ाकर श्वेतवर्ण 'हुं' बीज का शिरोदेश में चिन्तन करके रेचक द्वारा उक्त बीज का बत्तीस बार जप करके तदुद्भूत अमृत से शरीरादि को प्लावित करके अपगतव्यथ देह को आप्लावित करना चाहिये। तदनन्तर आत्मा के निर्मल हो जाने से देवता के साथ अपने अभेद का चिन्तन करना चाहिये। इस विश्वव्यापित जल में 'आः' वर्ण को रक्त पद्मरूप, उसके ऊपर 'ट' वर्ण को श्वेत पद्मरूप, उसके ऊपर 'हुं' बीज को नील पद्मरूप, उसके ऊपर 'हुं' बीज का चिन्तन कर्तृकारूप से करना चाहिये। उसके ऊपर सोऽहं मन्त्र से जीवात्मा को अपने हृदय में लाकर कुलकुण्डलिनी तथा पृथिवी आदि तत्त्वों को उनके अपने-अपने स्थान में संस्थापित करके देवता का चिन्तन करते-करते अपने शिर पर 'ॐ ह्रीं क्रों स्वाहा' का ग्यारह बार जप करके 'आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हंसः श्रीमत्तारायाः प्राणा इह प्राणाः, आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हंसः श्रीमत्तारायाः

सर्वेन्द्रियाणि, आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हंसः श्रीमत् ताराया वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा' इत्यादि क्रम से आत्मा में देवता की प्राणप्रतिष्ठा करके आत्मा में तारिणीमय भावना करके देवता का ध्यान करना चाहिये।

ध्यानं यथा—

प्रत्यालीढपदां घोरां मुण्डमालाविभूषिताम् ।
खर्वां लम्बोदरीं भीमां व्याघ्रचर्मावृतां कटौ ॥
नवयौवनसम्पन्नां पञ्चमुद्राविभूषिताम् ।
चतुर्भुजां ललज्जिह्वां महाभीमां वरप्रदाम् ॥
खड्गकर्त्तृसमायुक्तसव्येतरभुजद्वयाम् ।
कपोलोत्पलसंयुक्तसव्यपाणियुगान्विताम् ॥
पिङ्गोग्रैकजटां ध्यायेन्मौलावक्षोभ्यभूषिताम् ।
बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रयभूषिताम् ॥
ज्वलच्चितामध्यगतां घोरदंष्ट्राकरालिकाम् ।
सावेशस्मेरवदनां स्त्र्यलङ्कारविभूषिताम् ।
विश्वव्यापकतोयान्तः श्वेतपद्मोपरिस्थिताम् ॥

इति भूतशुद्धिः ।

देवी प्रत्यालीढ़पदा, भयङ्कराकृति, नरमुण्डमालायुता, खर्वा तथा लम्बोदरी हैं। इनका कटिदेश व्याघ्रचर्मावृत है। ये नवयौवना तथा पञ्चमुद्रा-अलङ्कृता, चतुर्भुजा, लोलजिह्वा-धारिणी, महाभयङ्कररूपा तथा वरप्रदात्री हैं। इनके दोनों दाहिने हाथ में खड्ग तथा कैंची है। बाँयें दो हाथों में नरमुण्ड तथा उत्पल है। ये शिरोदेश में पिङ्गलवर्ण की एक जटा से युक्त हैं। इनके कपाल पर नागरूपी अक्षोभ्य ऋषि स्थित हैं। ये नवोदित सूर्यमण्डलवत् त्रिनेत्रा हैं। ये प्रज्वलित चिता के बीच विराजिता हैं। इनकी दन्तपङ्क्ति अतीव भयानक है। ये कराली है। अपने आवेश से हास्यवदना हैं तथा स्त्रीगणोचित विविध अलङ्कार से भूषिता तथा विश्वव्यापक जलमध्य (कारणजल में) श्वेतपद्मवत् अवस्थिता हैं।

यही भूतशुद्धि कहलाती है।

ततो मानसपूजां, दानार्घ्यस्थापनं ह्रीं बीजेन हुं बीजेन वा प्राणायामञ्च कुर्यात्। अथ मातृकान्यासं, वर्णन्यासं पीठन्यासञ्च कृत्वा षोढान्यासं कुर्यात्।

तदनन्तर मानसपूजा, दानार्घ्य-स्थापन, प्राणायाम करके मातृकान्यास, वर्णन्यास तथा पीठन्यासोपरान्त षोढान्यास करना चाहिये (इन सबका वर्णन विशद् रूप से इस ग्रन्थ में किया गया है)।

विशेष—तारापूजा की षडङ्गपूजा दक्षिणकालिका से अलग है, इसे आगमतत्त्वविलास ग्रन्थ में देखना चाहिये। तारापूजा में षोढ़ान्यास करने के लिये पहले रुद्रन्यास, तदनन्तर ग्रहन्यास, तदनन्तर लोकपालन्यास, तदनन्तर शिवशक्तिन्यास, तदनन्तर तारादिन्यास, तदनन्तर पीठन्यास करने से एक बार का षोढ़ान्यास सम्पन्न होता है। रुद्रयामलोक्त षोढ़ान्यास इस प्रकार है—

अथ रुद्रन्यासः—

ह्रीं स्त्रीं हुं अं श्रीकण्ठाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं इं सूक्ष्मेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं उं अमरेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं ऋं भारभृतीशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं ऌं स्थाणुकेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं एं झिण्टीशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं ओं सद्योजातेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं अं अक्रूरेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं कं क्रोधीशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं गं पञ्चान्तकेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं ङं एकरुद्रेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं छं एकनेत्रेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं झं अजेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं टं सोमेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं डं दारुकेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं णं उमाकान्तेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं थं दण्डीशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं धं मीनेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं पं लोहितेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं बं छगलण्डेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं मं महाकालेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं रं भुजङ्गेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं वं खड्गीशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं षं श्वेतेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं हं नकुलीशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं क्षं संवर्तकेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं आं अनन्तेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं ईं त्रिमूर्त्तीशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं ऊं अर्घीशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं ॠं अतिथीशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं ॡं हरेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं ऐं भौतिकेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं औं अनुग्रहेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं अः महासेनाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं खं चण्डेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं घं शिवोत्तमेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं चं कूर्मेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं जं चतुराननेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं ञं सर्वेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं ठं लाङ्गुलीशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं ढं अर्द्धनारीश्वरेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं तं आषाढ़ीशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं दं अद्रीशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं नं मेषेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं फं शिखीशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं भं द्विरण्डेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं यं बालीशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं लं पिनाकीशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं शं बकेशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं सं मृग्वीशाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं ळं शिवेशाय नमः।

अथ पीठन्यासः—

मूलाधारे—	ह्रीं स्त्रीं हुं	अं आं	कं खं गं घं ङं	कामरूपपीठाय नमः ।
हृदि—	ह्रीं स्त्रीं हुं	इं ईं	चं छं जं झं ञं	जालन्धरपीठाय नमः ।
ललाटे—	ह्रीं स्त्रीं हुं	उं ऊं	टं ठं डं ढं णं	पूर्णगिरीपीठाय नमः ।
ललाटोद्र्ध्वे—	ह्रीं स्त्रीं हुं	ऋं ॠं	तं थं दं धं नं	उड्डीयानपीठाय नमः ।
भ्रुवोर्मध्ये—	ह्रीं स्त्रीं हुं	लृं ॡं	पं फं बं भं मं	वाराणसीपीठाय नमः ।
लोचनत्रये—	ह्रीं स्त्रीं हुं	एं ऐं	यं रं लं वं	ज्वलन्तीपीठाय नमः ।
मुखवृत्ते—	ह्रीं स्त्रीं हुं	ओं औं	शं षं सं हं	मायापतीपीठाय नमः ।
कण्ठे—	ह्रीं स्त्रीं हुं	अं अः	ळं क्षं	मधुपुरीपीठाय नमः ।
नाभिदेशे—	ह्रीं स्त्रीं हुं	अयोध्यापीठाय नमः ।		
कट्यां—	ह्रीं स्त्रीं हुं	अं आं	काञ्चीपीठाय नमः ।	

इस प्रकार से पीठन्यास करना चाहिये ।

अथ तारादिन्यासः—

ब्रह्मरन्ध्रे—ह्रीं स्त्रीं हुं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः तारायै नमः ।

ललाटे—	ह्रीं स्त्रीं हुं	कं खं गं घं ङं	उग्रायै नमः ।
भ्रूमध्ये—	ह्रीं स्त्रीं हुं	चं छं जं झं ञं	महोग्रायै नमः ।
कण्ठगह्वरे—	ह्रीं स्त्रीं हुं	टं ठं डं ढं णं	वज्रायै नमः ।
हृदये—	ह्रीं स्त्रीं हुं	तं थं दं धं नं	काल्यै नमः ।
नाभिदेशे—	ह्रीं स्त्रीं हुं	पं फं बं भं मं	सरस्वत्यै नमः ।
लिङ्गे—	ह्रीं स्त्रीं हुं	यं रं लं वं	कामेश्वर्यै नमः ।
मूलाधारे—	ह्रीं स्त्रीं हुं	शं षं सं हं ळं क्षं	चामुण्डायै नमः ।

इति रुद्रयामलोक्तषोढान्यासः

ततो मूलमुच्चार्य व्यापकत्रयं न्यसेत्, अथवा प्रणवपुटितमूलेन सप्तधा पञ्चधा वा व्यापकन्यासं कुर्यात् । ततः ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् । यथा— अस्य मन्त्रस्य अक्षोभ्य ऋषिर्बृहतीच्छन्दः श्रीमदेकजटा देवता हुं बीजं फट् शक्तिः ह्रीं स्त्रीं कीलकं धर्मार्थकाममोक्ष चतुर्वर्गसिद्धये विनियोगः ।

तदनन्तर मूल मन्त्र का उच्चारण करके व्यापकन्यास करना चाहिये अथवा प्रणव-पुटित मूल मन्त्र से सात या पाँच बार व्यापक न्यास करना चाहिये । ऋष्यादि न्यास मूलोक्त प्रकार से करना चाहिये ।

अथ ग्रहन्यासः—

हृदि रक्तवर्णं सूर्यं ध्यात्वा ब्रह्मरन्ध्रे—ह्रां स्त्रीं हुं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः सूर्यायै नमः ।

भ्रूमध्ये शुक्लवर्णं सोमं ध्यात्वा—ह्रीं स्त्रीं हुं यं रं लं वं सोमाय नमः ।
नेत्रत्रये लोहितं मङ्गलं ध्यात्वा—ह्रीं स्त्रीं हुं कं खं गं घं ङं मङ्गलाय नमः ।
हृदयमण्डले श्यामं बुधं ध्यात्वा—ह्रीं स्त्रीं हुं चं छं जं झं ञं बुधाय नमः ।
कण्ठकूपे पीतवर्णं गुरुं ध्यात्वा—ह्रीं स्त्रीं हुं टं ठं डं ढं णं गुरवे नमः ।
गलदेशे पाण्डुरं शुक्रं ध्यात्वा—ह्रीं स्त्रीं हुं तं थं दं धं नं शुक्राय नमः ।
नाभिदेशे नीलवर्णं शनैश्चरं ध्यात्वा—ह्रीं स्त्रीं हुं पं फं बं भं मं शनैश्चराय नमः ।
मुखे धूम्रवर्णं राहुं ध्यात्वा—ह्रीं स्त्रीं हुं शं षं सं हं राहवे नमः ।
गुदे धूम्रवर्णं केतुं ध्यात्वा—ह्रीं स्त्रीं हुं ळं क्षं केतवे नमः ।

इस प्रकार ग्रहन्यास करना चाहिये ।

अथ लोकपालन्यासः—

ह्रीं स्त्रीं हुं अं आं कं खं गं घं ङं इन्द्राय नमः ।
ह्रीं स्त्रीं हुं इं ईं चं छं जं झं ञं अग्नये नमः ।
ह्रीं स्त्रीं हुं उं ऊं टं ठं डं ढं णं यमाय नमः ।
ह्रीं स्त्रीं हुं ऋं ॠं तं थं दं धं नं निर्ऋतये नमः ।
ह्रीं स्त्रीं हुं ऌं ॡं पं फं बं भं मं वरुणाय नमः ।
ह्रीं स्त्रीं हुं एं ऐं यं रं लं वं वायवे नमः ।
ह्रीं स्त्रीं हुं ओं औं शं षं सं हं कुबेराय नमः ।
ह्रीं स्त्रीं हुं अं ळं क्षं ईशानाय नमः ।

अधः— ह्रीं स्त्रीं हुं अनन्ताय नमः ।
ऊर्ध्वे— ह्रीं स्त्रीं हुं अं ब्रह्मणे नमः ।

इस प्रकार लोकपालन्यास करना चाहिये ।

अथ शिवशक्तिन्यासः—

मूलाधारे—ह्रीं स्त्रीं हुं वं क्षं शं षं सं डाकिनीसहितब्रह्मणे नमः ।
स्वाधिष्ठाने—ह्रीं स्त्रीं हुं बं भं मं यं रं लं वं राकिनीसहितविष्णवे नमः ।
मणिपूरे—ह्रीं स्त्रीं हुं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं लाकिनीसहितरुद्राय नमः ।
अनाहते—ह्रीं स्त्रीं हुं कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं काकिनीसहितेश्वराय नमः ।
विशुद्धाख्ये—ह्रां स्त्रीं हुं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः शाकिनीसहितसदाशिवाय नमः ।
आज्ञाचक्रे—हं क्षं हाकिनीसहितपरशिवाय नमः ।

इस प्रकार शिव-शक्तिन्यास करना चाहिये ।

शिरसि—अक्षोभ्यऋषये नमः । मुखे—बृहतीच्छन्दसे नमः । हृदि—

श्रीमदेकजटायै देवतायै नमः । मूलाधारे—हुं बीजाय नमः । पादयोः—फट्शक्तये नमः । सर्वाङ्गे—ह्रीं स्त्रीं कीलकाय नमः ।

ततः कराङ्गन्यासौ—

ह्रां अखिलवाग्रूरूपिण्यै अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।
ह्रीं अखण्डवाग्रूरूपिण्यै तर्जनीभ्यां स्वाहा ।
ह्रूं ब्रह्मवाग्रूपिण्यै मध्यमाभ्यां वषट् ।
ह्रैं विष्णुवाग्रूपिण्यै अनामिकाभ्यां हुं ।
ह्रौं रुद्रवाग्रूपिण्यै कनिष्ठाभ्यां वौषट् ।
ह्रः सर्ववाग्रूपिण्यै करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट् ।

एवं हृदयादिषु—ह्रां अखिलवाग्रूपिण्यै हृदयाय नमः इत्यादि ।

ऋष्यादिन्यासोपरान्त मूलोक्त मन्त्रों से कराङ्गन्यास करना चाहिये ।

अथ तत्त्वन्यासः; यथा मूलं त्रिखण्डं विधाय प्रथमखण्डान्ते 'आत्मतत्त्वाय स्वाहा' इति पादादिनाभिपर्यन्तं, द्वितीयखण्डान्ते 'विद्यातत्त्वाय स्वाहा' इति नाभ्यादि हृदयपर्यन्तं, तृतीयखण्डान्ते 'शिवतत्त्वाय स्वाहा' इति हृदयादि शिरःपर्यन्तं न्यसेत् ।

अथ बीजन्यासः; यथा तत्त्वमुद्रया ब्रह्मरन्ध्रात् ललाटपर्यन्तं—ॐ नमः । ललाटात् मुखपर्यन्तं—ह्रीं नमः । मुखात् कण्ठपर्यन्तं—स्त्रीं नमः । कण्ठात् हृदयान्तं—हुं नमः । हृदयात् नाभ्यन्तं—फट् नमः ।

इस प्रकार कराङ्गन्यास, तत्त्वन्यास तथा बीजन्यास मूलोक्त प्रकार से करना चाहिये ।

विशेष—कालीतन्त्र में अन्य प्रकार का षोढ़ान्यास वर्णित है । यथा—मातृका (अ से क्ष पर्यन्त ५० वर्ण) को मूल मन्त्र से पुटित करके मातृकान्यासोक्त अङ्ग-प्रत्यङ्ग में न्यास करना चाहिये । अनुलोम-विलोम में छः बार न्यास करने से एक षोढ़ान्यास माना जाता है ।

जैसे ललाट में ह्रीं स्त्रीं हुं फट् अं ह्रीं स्त्रीं हुं फट् नमः, मुखे ह्रीं स्त्रीं हुं फट् आं ह्रीं स्त्रीं हुं फट् नमः इत्यादि रूप से न्यास करके (अनुलोम) इस प्रकार विलोम न्यास करना चाहिये—हृदय से मुख-पर्यन्त ह्रीं स्त्रीं हुं फट् क्षं ह्रीं स्त्रीं हुं फट् नमः, मुख से ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त ह्रीं स्त्रीं हुं फट् लं ह्रीं स्त्रीं हुं फट् नमः; इस प्रकार से न्यास करने पर विलोम न्यास होता है ।

तन्त्रान्तर में अङ्कित है कि सृष्टि-स्थिति-संहारक्रम से उक्त न्यास विहित है । सृष्टिन्यास विसर्गयुक्त, संहारन्यास बिन्दुयुक्त तथा स्थितिन्यास बिन्दु एवं विसर्ग दोनों से युक्त रहता है । वानप्रस्थाश्रमी त्रिविध न्यास कर सकते हैं, गृहस्थ सृष्टि तथा स्थिति न्यास

कर सकते हैं; लेकिन ब्राह्मण केवल सृष्टिन्यास के अधिकारी होते हैं । सृष्टिन्यास अ से क्ष-पर्यन्त से, स्थितिन्यास ड से फ-पर्यन्त से तथा संहारन्यास क्षकार से अकार-पर्यन्त से किया जाता है ।

अथ कूर्ममुद्रया रक्तपुष्पाञ्जलिं विरचय्यात्मभेदेन देवतां ध्यायेत् । ध्यानं पूर्ववत् ।

अब कूर्ममुद्रा से अञ्जलि में रक्तपुष्प लेकर अपने से अभेदात्मक रूप से भगवती का ध्यान करना चाहिये । तारा का ध्यान पहले लिखा गया है, उसे ही यहाँ भी करना चाहिये ।

एवं विभाव्य करकलितदूर्वाक्षतरक्तचन्दनमिलितदिनकरकिरणारुणकुसुमाञ्जलौ मातृकायन्त्रं ध्यात्वा हृदयात् मूलमन्त्रतेजोमयीं शुद्धज्ञानचैतन्यमयीं षट्चक्रभेदेन शिरःस्थितसहस्रदलकमलकर्णिकान्तर्गतपरमशिवं प्रापय्य तेन कुलकुण्डलिनीक्रियासमभिव्याहारजनितपरामृतेन इष्टदेवतां संप्लाव्य यमिति वायुबीजमुच्चरन् प्रवहद्वामनासापुटमार्गेणातिदीप्तां तां विनिःसार्य करस्थपुष्पेषु योजयन् मूलमन्त्रकल्पितमूर्त्तौ तत्पुरुषं निधाय आवाहयेत् । यथा—कृताञ्जलिपुटो भूत्वा 'ॐ देवेशि भक्तिसुलभे पारिवारसमन्विते । यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव' इति पठेत् ।

इस प्रकार से ध्यान-चिन्तन करके दूर्वाक्षत, रक्तचन्दन-मिश्रित सूर्यकिरणवत् अरुण-वर्ण की पुष्पाञ्जलि में मातृकायन्त्र का ध्यान करके हृदय से मूल मन्त्र-तेजोमयी शुद्धज्ञान-चैतन्यरूपा देवी को षट्चक्र-भेदन करने से शिरस्थ सहस्रदल कार्णिकान्तर्गत परमशिव के साथ सन्निहित करके कुलकुण्डलिनी क्रियासमभिव्याहार-जनित परामृत के द्वारा इष्टदेवता को आप्लावित करके 'यं' वायुबीज का उच्चारण करके प्रवहमान वामनासापुट से प्रदीप्ता देवी को पुष्पाञ्जलि में लाकर मूलमन्त्र-कल्पित मूर्त्ति को वह पुष्पाञ्जलि अर्पित करके अञ्जलिबद्ध स्थिति में उनका आवाहन करना चाहिये । आवाहन मन्त्र मूलोक्त 'ॐ देवेशि भक्तिसुलभे' से लेकर 'सुस्थिरा भव' पर्यन्त है, जिससे आवाहन किया जाता है ।

ततः पूर्ववत् आवाहनं कृत्वा 'हूं' इत्यवगुण्ठ्य अङ्गमन्त्रैः सकलीकृत्य धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य परमीकरणमुद्रया परमीकृत्य 'एं' बीजमुच्चार्य योनिमुद्रां ह्रीं बीजमुच्चार्य भूतिनीमुद्रां, ऐं बीजमुच्चार्य बीजमुद्रां, स्त्रीं बीजमुच्चार्य दैत्यधूमिनिमुद्रां, हुं बीजमुच्चार्य लेलिहानमुद्राञ्च प्रदर्शयेत् ।

तदनन्तर आवाहन करके 'हुं' बीज से अवगुण्ठन करके अङ्गमन्त्र से सकलीकृत्यो-परान्त धेनुमुद्रा से अमृतीकरण, परमीकरणमुद्रा से परमीकरण करके 'एं' का उच्चारण करके योनिमुद्रा को, 'ह्रीं' बीजोच्चारण करके भूतिनीमुद्रा को, 'ऐं' बीजोच्चारण करके बीजमुद्रा को, 'स्त्रीं' बीजोच्चारण करके दैत्यधूमिनीमुद्रा को एवं 'हुं' बीजोच्चारण करके लेलिहान मुद्रा को प्रदर्शित करना चाहिये ।

ततः आं ह्रीं क्रों स्वाहेति प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा मूलमन्त्रेण देवतां त्रिरभ्युक्ष्य मूलमुच्चार्य 'श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा' इति मन्त्रेण षोडशोपचारेण दशोपचारेण वा पूजयेत् ।

तदनन्तर 'आं ह्रीं क्रों स्वाहा' से प्राणप्रतिष्ठा करके मूल मन्त्र द्वारा देवता का तीन बार अभ्युक्षण करना चाहिये । तदनन्तर मूलोक्त मन्त्र से षोडशोपचार अथवा दशोपचार से देवी का पूजन करना चाहिये ।

अस्याः प्रयोगस्तु—मूलमुच्चार्य श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा एतत् पाद्यं श्रीमदेकजटायै देवतायै नमः इत्यादि । उपचारदानस्य विशेषविवरणं दक्षिणकालिकापूजापद्धतौ द्रष्टव्यम् ।

अब प्रयोग इस प्रकार किया जाता है—'मूलमन्त्रोच्चार करके श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा एतत् पाद्यं श्रीमदेकजटायै देवतायै नमः' इत्यादि से पूजन निवेदन करना चाहिये । इसका विशेष वर्णन दक्षिणकालिका-पूजापद्धति में देखना चाहिये ।

अथ वामहस्ततत्त्वमुद्रया सामान्यार्घ्योदकं दक्षिणहस्ततत्त्वमुद्रया अक्षतं च गृहीत्वा उभयतत्त्वमुद्रायोगेन मूलमुच्चार्य 'श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा श्रीमदेकजटां देवीं तर्पयामि स्वाहा' इति देव्या मुखे सन्तर्प्य मूलमुच्चार्य 'श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा एष सचन्दनपुष्पाञ्जलिः श्रीमदेकजटायै देवतायै वौषट्' इति मस्तके, हृदये, मूलाधारे, पादपद्मे, सर्वाङ्गे च पञ्चपुष्पाञ्जलीन् दत्त्वा पूर्ववत् योनिमुद्रां, भूतिनीमुद्रां, बीजमुद्रां, दैत्यधूमिनिमुद्रां लेलिहानमुद्राञ्च प्रदर्श्य प्रणमेत् ।

अब बाँयें हाथ की तत्त्वमुद्रा में सामान्य अर्घ्य का जल लेकर दाहिने हाथ की तत्त्वमुद्रा से अक्षत लेकर दोनों मुद्राओं को मिलाकर मूल मन्त्र के साथ 'श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा श्रीमदेकजटां देवीं तर्पयामि स्वाहा' पढ़ते हुये देवी के मुख में तर्पण करके मूल मन्त्र पढ़कर 'श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा एष सचन्दन-पुष्पाञ्जलिः श्रीमदेकजटायै देवतायै वौषट्' से न्यास करना चाहिये । मस्तक, हृदय, मूलाधार, पादपद्म तथा सर्वाङ्ग पर पञ्च पुष्पाञ्जलि देकर अथवा सर्वाङ्ग पर एक ही अञ्जलि देकर पूर्ववत् योनिमुद्रा, भूतिनी, बीज, दैत्यधूमिनि एवं लेलिहान मुद्रा प्रदर्शित करके प्रणाम करना चाहिये ।

ततो योनिमुद्रां प्रदर्श्य कृताञ्जलिपुटो भूत्वा 'देवि! आज्ञापय आवरणदेवांस्ते पूजयामि' इति प्रार्थ्य आवरणदेवताः पूजयेत् ।

तदनन्तर योनिमुद्रा प्रदर्शित करके अञ्जलिबद्ध होकर देवी से आदेश लेकर आवरण देवतागण का पूजन सम्पन्न करना चाहिये ।

तद्यथा 'केशरेष्वग्नीशासुरवायुषु मध्ये दिक्षु च षडङ्गानि पूजयेत्। यथा ह्रां एकजटायै हृदयाय नमः, ह्रीं तारिण्यै शिरसे स्वाहा, ह्रूं वज्रोदके शिखायै वषट्, ह्रैं उग्रजटे कवचाय हुं, ह्रौं महाप्रतिसरे नेत्रत्रयाय वौषट्; चतुर्दिक्षु—ह्रः पिङ्गोग्रैकजटे अस्त्राय फट्।

आवरणदेवताओं का पूजन मूलोक्त मन्त्रों से करना चाहिये।

ततः पीठन्यासोत्तरे वायव्यादीशानपर्यन्तं गुरुपङ्क्तिः पूजयेत्। यथा— ऐं ऊर्ध्वकेशानन्दनाथ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा। अनेन मनुना सर्वान् परिवारान् अर्चयेत्। एवं व्योमकेशानन्दनाथ-नीलकण्ठानन्दनाथ-वृषध्वजानन्दनाथान् पूजयेत्। एते दिव्यौघाः।

पीठन्यास के उत्तर में वायव्यादीशान-पर्यन्त गुरुपङ्क्ति की पूजा करनी चाहिये। यथा—'ऐं ऊर्ध्वकेशानन्दनाथ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा'।

तदनन्तर पीठन्यास के पश्चात् वायव्य ईशान आदि तक गुरुपङ्क्ति का पूजन करना चाहिये। मूलोक्त विधान से दिव्यौघ गुरुपङ्क्ति का पूजन करना चाहिये।

वशिष्ठानन्दनाथ-कूर्मनाथानन्दनाथ-मीननाथानन्दनाथ-महेश्वरानन्दनाथ-हरिनाथानन्दनाथान् पूजयेत्। एते सिद्धौघाः।

इसके बाद मूलोक्त सिद्धौघ गुरुओं का पूजन करना चाहिये।

एवं तारावत्यम्ब-भानुमत्यम्ब-जयाम्ब-विद्याम्ब-महोदर्यम्ब-सुखानन्द-नाथ, परानन्दनाथ-पारिजातानन्दनाथ-कुलेश्वरानन्दनाथ-विरूपाक्षा-नन्दनाथ-फेरव्यम्बाः पूजयेत्। एते मानवौघाः। अशक्तश्चेत् अक्षोभ्य-मात्रं पूजयेत्।

अब मूलोक्त मानवौघ गुरुगण का पूजन करना चाहिये। जो अशक्त हो, वह केवल अक्षोभ्य का ही पूजन कर सकता है।

ततः पूर्वादिदलमूले—महाकालीदेव्यम्बा वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा इति महाकालीदेव्यम्बां पूजयेत्। रुद्राणीदेव्यम्बा वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा इति रुद्राणीदेव्यम्बां पूजयेत्। उग्रादेव्यम्बा वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा इति उग्रादेव्यम्बां पूजयेत्। भीमादेव्यम्बा वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा इति भीमादेव्यम्बां पूजयेत्। घोरादेव्यम्बा वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा इति घोरादेव्यम्बां पूजयेत्। भ्रामरीदेव्यम्बा वज्र-पुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा इति भ्रामरीदेव्यम्बां पूजयेत्। महारात्रिदेव्यम्बा वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा इति महारात्रिदेव्यम्बां पूजयेत्। भैरवीदेव्यम्बा वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा इति भैरवीदेव्यम्बां पूजयेत्।

पूर्वादिचतुर्दले वामावर्त्तेन—वैरोचन वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा इति मन्त्रेण वैरोचनं अभ्यर्च्य अनेन प्रकारेण शङ्खपाण्डुरपद्मनाभान् पूजयेत्। अग्न्यादिकोणदलेषु असिताभनामकमामकतारकान् सम्पूज्य पूर्वादिद्वार-चतुष्टयेषु वामावर्त्तेन पद्मान्तकयमान्तकविघ्नान्तकनरकान्तकान् वज्रपुष्पं इत्यादिना पूजयेत्।

तदनन्तर मूलोक्त मन्त्रों से आवरणदेवतागण की पूजा करनी चाहिये।

अथ देव्या दक्षिणे सद्योजातमहाकालभैरवं दशोपचारेण पञ्चोपचारेण वा पूजयेत्। ध्यानं यथा—

महाकालं यजेद्देव्या दक्षिणे धूम्रवर्णकम्।
विभ्रमं दण्डखट्वाङ्गं दंष्ट्राभीममुखं शिशुम्॥
व्याघ्रचर्मावृतकटिं तुन्दिलं रक्तवाससम्।
त्रिनेत्रमूर्ध्वकेशञ्च मुण्डमालाविभूषितम्।
जटाभारलसच्चन्द्रखण्डमुग्रं ज्वलन्निभम्॥

मन्त्रो यथा—हुं क्ष्रौं यां रां लां वां आं क्रों सद्योजात महाकालभैरव सर्वविघ्नान् नाशय नाशय ह्रीं श्रीं फट् स्वाहा।

पूजामन्त्रो यथा—(बीजमन्त्र +) सद्योजात महाकालभैरव वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा एतत् पाद्यं सद्योजातमहाकालभैरवाय नमः—इत्यादि।

देवी के दक्षिण में सद्योजात महाकाल भैरव की मूलोक्त विधि से ध्यानोपरान्त पूजन करनी चाहिये।

ततस्तत्त्वमुद्रया देवीं तर्पयेत्। समर्थश्चेत् अस्मिन्नेव काले अन्नव्यञ्जनादिकं निवेदयेत्। यथा—पूर्वोक्तरीत्या अन्नव्यञ्जनादिकं त्रिकोणमण्डलोपरि संस्थाप्य संशोध्य मूलमुच्चार्य 'श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा इदं सघृतोपकरणमन्नं साङ्गायै सावरणायै सायुधायै सपरिवारायै सवाहनायै सद्योजातमहाकालभैरवसहितायै श्रीमदेकजटायै देवतायै निवेदयामि'। शेषं पूर्ववत्। ततो मस्तके हृदये मूलाधारे पादाम्बुजे सर्वाङ्गेषु च पञ्चपुष्पाञ्जलीन् दत्त्वा पूर्ववत् तत्तत् बीजमुच्चार्य योन्यादि-पञ्चमुद्राः प्रदर्श्य बलिदानं कुर्यात्।

तदनन्तर तत्त्वमुद्रा से देवी का तर्पण करना चाहिये। यदि समर्थ हो तब अन्न-व्यञ्जनादि को मूलोक्त मन्त्र से निवेदित करना चाहिये। शेष विधि पूर्ववत् करनी चाहिये। तदनन्तर बीजमन्त्र का उच्चारण करके योनिमुद्रा, भूतिनीमुद्रा, बीजमुद्रा, दैत्यधूमिनीमुद्रा तथा लेलिहानमुद्रा का प्रदर्शन करके प्रणाम करना चाहिये। इसके बाद बलिदान प्रदान

करना चाहिये (इसके पूर्व मस्तक, हृदय, मूलाधार, पादाम्बुज तथा सर्वाङ्ग पर पाँच पुष्पाञ्जलि देकर पूर्ववत् उन-उन बीजों का उच्चारण भी करना चाहिये तभी पञ्चमुद्रा (योन्यादि मुद्रा) का प्रदर्शन करना चाहिये ।

बलिदानं यथा—स्ववामे त्रिकोण-वृत्त-चतुरस्रमण्डलं कृत्वा पुष्पैस्त-मभ्यर्च्य तत्र विहितबलिद्रव्यभरितं साधारं पात्रं निधाय तद्वामाङ्गुष्ठा-नामिकाभ्यां विधृत्य—'ॐ ह्रीं एकजटे महायक्षाधिपतये मयोपनीतं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय मम सर्वशान्तिं कुरु कुरु परविद्या-माकृष्याकृष्य त्रुट त्रुट छिन्धि छिन्धि सर्वजगद्वशमानय ह्रीं स्वाहा' इति त्रिः पठित्वा बलिं दद्यात् ।

अपने बाँयीं ओर त्रिकोण-वृत्त-चतुरस्र मण्डल बनाकर पुष्पों से अर्चना करके वहाँ बलिद्रव्य से पूर्ण आधारयुक्त पात्र रखकर उसका स्पर्श वाम अङ्गुष्ठ तथा अनामिका से करके मूलोक्त मन्त्र को तीन बार पढ़ते हुये बलि प्रदान करना चाहिये ।

अथ दक्षिणाकालीपूजापद्धतिक्रमेण यथायथं नीराजनं नित्यहोमं च कृत्वा रहस्यमालया निगदेनोपांशुना मानसेन वा अष्टोत्तरसहस्रं अष्टोत्तर-शतं वा जपेत् ।

अब दक्षिणाकाली पूजापद्धति क्रम से नीराजन, नित्यहोम समापनोपरान्त रहस्य-माला से वाचनिक अथवा उपांशु अथवा मानसिक एक हजार आठ किंवा एक सौ आठ जप (मूल मन्त्रजप) करना चाहिये ।

जपरहस्यं यथा—मूलाधार-स्वाधिष्ठान-मणिपूरेषु यथाक्रमं बीजत्रय-व्याप्तिं तडित्-कोटिभास्वरां परस्परानुस्यूतां विभाव्य सर्वतेजोमयं फट्कारं विश्रान्तिमयं हृदि ध्यात्वा मूलमन्त्रमुच्चरेत् । एवं यथाशक्ति जप्त्वा जपसमर्पणादि-विसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ।

जपरहस्य कहते हैं—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर में कोटि विद्युत-सन्निभ प्रभायुक्त परस्पर अनुस्यूत 'ह्रीं स्त्रीं हुं' का यथाक्रमेण चिन्तन करके सर्वतेजोमय 'फट्' बीज का हृदय में चिन्तन करके मूल मन्त्र का जप करना चाहिये । यथाशक्ति जप करके जपसमर्पण से लेकर विसर्जन कृत्य तक दक्षिणाकाली-पद्धति से करना चाहिये ।
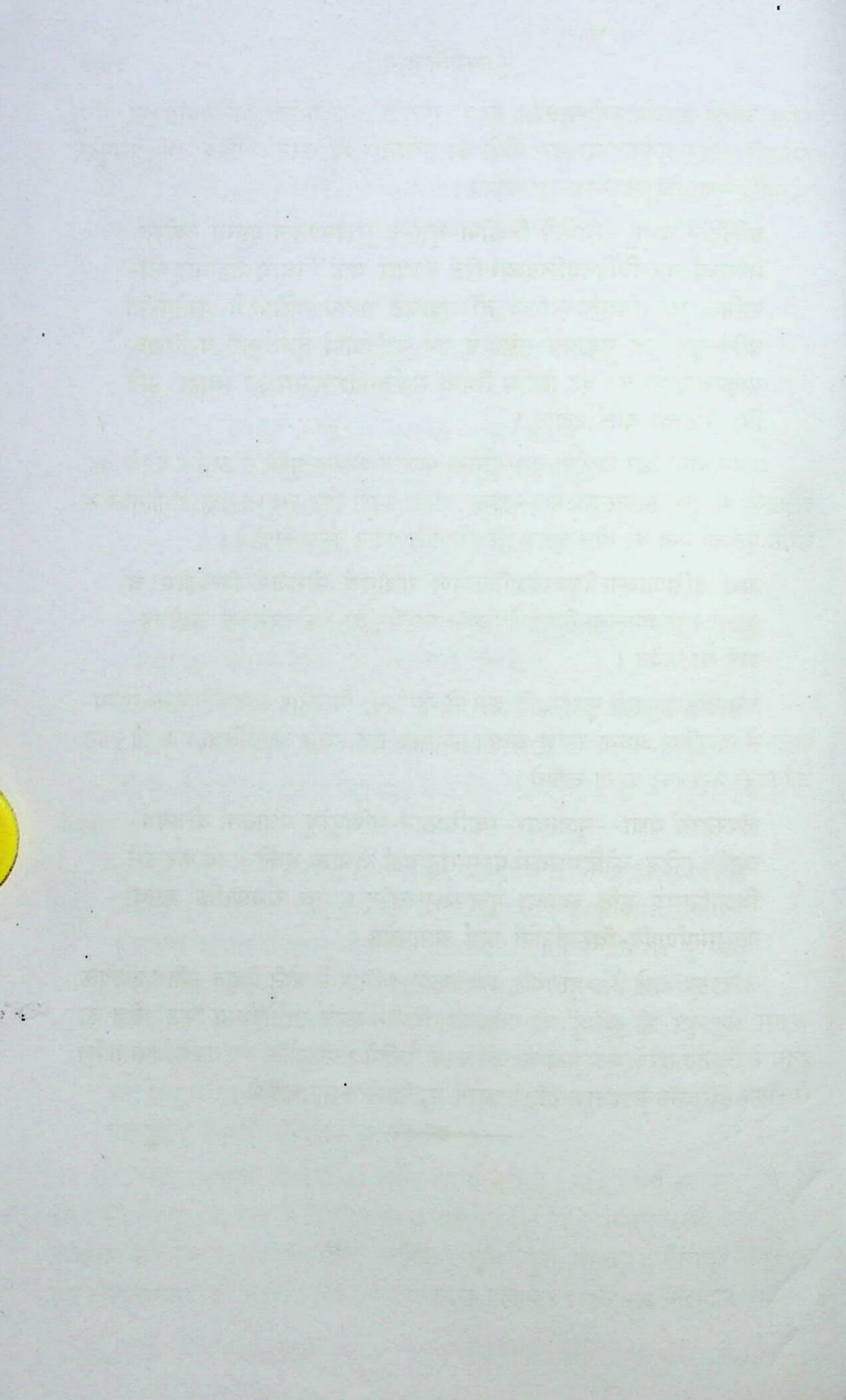
तन्त्रशास्त्र-ग्रन्थ

(हिन्दी टीका सहित)

श्री एस.एन. खण्डेलवाल द्वारा अनुदित

- सर्वोल्लासतन्त्र
- सिद्धनागार्जुनतन्त्र
- अन्नदाकल्पतन्त्र
- राधातन्त्र
- कालीतन्त्र-रुद्रचण्डीतन्त्र
- तोडलतन्त्र-निर्वाणतन्त्र
- आगमतत्त्वविलास (1-4 भाग सम्पूर्ण)
- श्रीसाम्बपुराण
- देवीपुराण
- शाबरमन्त्रसागर (1-2 भाग)
- नीलसरस्वती(तारा)तन्त्र
- सौभाग्यलक्ष्मीतन्त्र

श्रीश्यामाकान्त द्विवेदी द्वारा लिखित

- श्रीविद्या-साधना (1-2 भाग सम्पूर्ण)
- भारतीय शक्ति-साधना
- नाथसम्प्रदाय-सिद्धान्त एवं साधना
- ब्रह्मास्त्रविद्या एवं बगलामुखी-साधना
- काश्मीर शैवदर्शन एवं स्पन्दशास्त्र
- मुद्राविज्ञान एवं साधना
- कामकलाविलास
- वरिवस्यारहस्य
- स्पन्दकारिका
- शिवसूत्र
- शक्तितत्त्व एवं शाक्त साधना

श्री कपिलदेवनारायण द्वारा अनुदित

- लक्ष्मीतन्त्र (1-2 भाग)
- तन्त्रराजतन्त्र (1-2 भाग)
- श्रीविद्यार्णवतन्त्र (1-5 भाग)
- देवीरहस्य : (रुद्रयामलतन्त्रोक्त) (1-2 भाग)
- महानिर्वाणतन्त्र
- रेणुकातन्त्र-प्रचण्डचण्डिकातन्त्र
- बृहत्तन्त्रसार (1-2 भाग)
- मेरुतन्त्र (1-5 भाग सम्पूर्ण)

पुस्तक-परिचय

धर्मप्राण भारतभूमि को देवभूमि के नाम से भी ख्याति प्राप्त है; यतः देवगण भी इस भूमि पर अवतरण के लिये अनवरत लालायित रहते हैं। इसका कारण यह है कि सृष्टि के आरम्भ से ही यहाँ पर ज्ञात-अज्ञात समस्त देवताओं के अर्चन एवं विशेष अनुष्ठान होते रहे हैं। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि यह भूमि ही अनुष्ठानमय है। किसी भी प्रकार के अनु[illegible] में कतिपय विधि[illegible] गुप्त होती हैं अथवा शास्त्रों में कूट भाषा में निबद्ध हो[illegible] [illegible]का उद्भेदन [illegible] गुरुज्ञान के सम्भव नहीं हो पाता। उसे ही 'रहस्य' नाम [illegible] [illegible]ाता है।

प्रकृत पुस्तक में उन रहस्यों को ही विद्व[illegible] [illegible] द्वारा उद्भासि[illegible] किया गया है। इसी क्रम में मन्त्र-पुरश्चरण के रहस्य [illegible] [illegible]टित करते [illegible] [illegible]सके द्विविध अंगों–मुख्य अथवा पञ्चाङ्ग पुरश्चरण एवं [illegible] [illegible]रण का सांगो[illegible] विवेचन इस महनीय ग्रन्थ में किया गया है। साथ ही साथ पुरश्चरण-हेतु काल, स्थान आदि का विवेचन करते हुए अनुष्ठाता के लिये आवश्यक शौचाशौच, मन्त्रसंस्कार, दीक्षा, स्नान, जप, सिद्धादि विचार, विविध चक्र, पूजन, पञ्चदेवता-रहस्य, पूजाक्रम-रहस्य, कुण्डलिनी-पूजारहस्य, बलिदान-रहस्य, मुद्रा-रहस्य, दक्षिणकालिका पुरश्चरण-रहस्य, होम-रहस्य, तान्त्रिक अभिषेक-रहस्य आदि का सविधि उद्घाटन इस ग्रन्थ में स्पष्टतः किया गया है।

पूजन की समस्त ज्ञाताज्ञात विधियों को प्रस्फुटित करनेवाला यह ग्रन्थ लघुकाय होते हुए भी स्पृहणीय एवं सर्वतोभावेन ग्रहणीय है। साधकवर्ग इस ग्रन्थ की सहायता से अपने इष्टदेव की सांगोपांग फलप्रद साधना करने में सफल होंगे–यह कहना कथमपि अर्थवाद नहीं होगा।

ISBN : 978-93-89665-23-9

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

email : chaukhambasurbharatiprakashan@gmail.com
website : www.chaukhamba.co.in